CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

॥ श्री ॥

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्सना' समुद्भासितम्

द्वितीयोऽध्यायः

टीकाकारः सम्पादकश्च

डॉ० हरिनारायणतिवारी

Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्या-१५६४
R
८३

पुस्तकालय
NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY 1986 A.D.

R.८३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१६८

R

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना' समुद्भासितम्

(द्वितीयोऽध्यायः)

टीकाकार : सम्पादकश्च

डॉ० हरिनारायणतिवारी

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : २४२०४०४

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 2009 ई०
मूल्य : ३००.००

1 - 9 भाग : Rs. 3000.00

पुस्तकालय

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो० बा० नं० २११३
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : २३८५६३९१

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : २३३५२६३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पादानुक्रमद्वितीयाऽध्यायस्याह्निकानुक्रमणी

ाह्निकम्	पृष्ठाङ्काः
प्रथमः पादः	
थममाह्निकम्	१-६४
द्वितीयमाह्निकम्	६५-१२३
तीयमाह्निकम्	१२४-१७५
द्वितीयः पादः	
थममाह्निकम्	१७६-२१६
द्वितीयमाह्निकम्	२१७-२७४
तृतीयः पादः	
थममाह्निकम्	२७५-३१४
द्वितीयमाह्निकम्	३१५-३३६
तीयमाह्निकम्	३३७-३६९
चतुर्थः पादः	
थममाह्निकम्	३७०-४१६
द्वितीयमाह्निकम्	४१७-४५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीः ॥

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना' समुद्भासितम्

द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम्

समर्थः पदविधिः २.१.१

विधिरिति कोऽयं शब्दः? विपूर्वाद्धाञः कर्मसाधन इकारः विधीयते विधिरिति। किं पुनर्विधीयते? समासो, विभक्तिविधानं, पराङ्गवद्भावश्च।

प्रश्नभाष्य—**विधिरितीति**। 'विधि' यह शब्द कैसा है? 'विधिरिति कोऽयम्' इसका स्वरूप श्रोत्र से ही निश्चित है, अतः यहाँ स्वरूपप्रश्न में तात्पर्य नहीं है, अपि तु अर्थ का निश्चय नहीं होने पर पूर्वपक्ष है। शब्द और अर्थ का अभेद होने से 'कोऽयम्' इस भाष्य का 'किमर्थकोऽयम्' यह अर्थ है। यहाँ विधिशब्द भाव-साधन है, अथ वा कर्मसाधन है? करणसाधन तथा अधिकरणसाधन विधिशब्द का प्रकृत में अन्वय नहीं होने एवं प्रयोजन नहीं होने से जिज्ञासा नहीं की जा सकती है। जिनके मत में अर्थभेद से शब्दभेद है तथा सादृश्यनिबन्धन-प्रत्यभिज्ञा है उनके मतमें 'कः' यह प्रश्न विशिष्टशब्दनिर्धारण के लिए है। परन्तु जो लोग अर्थभेद होने पर भी शब्द का ऐक्य मानते हैं उनके मतमें अर्थभेद होने से शब्दभेद का आरोप कर 'कः' ऐसा प्रश्न है। भावसाधन में पदों के विधीयमानं होने सें कर्म में षष्ठी होगी, तथा कर्मसाधन में शेषषष्ठी होगी।

समाधानभाष्य—**विपूर्वादिति**। 'विधीयते इति विधिः' ऐसा विपूर्वक धाञ्

धा.पा.१०६२ धातु से 'उपसर्गे घोः किः' ३.३.६२ के द्वारा 'कि'प्रत्ययान्त विधि-शब्द कर्मसाधन है। यदि यहाँ विध विधाने धा.पा.१३२६ धातु से 'इगुपधात् कित्' उ.सू.५५६ के द्वारा औणादिकप्रत्यय कित् कहा जाये तो स्वरभेद होगा। औणादिक इन् प्रत्ययान्त आद्युदात्त होगा तथा 'कि' प्रत्ययान्त अन्तोदात्त होगा। बहुल-ग्रहण के द्वारा औणादिक प्रत्यय भी कर्म में सम्भव है, अतः कृत् प्रत्यय 'कि' यहाँ कर्मसाधन है' इसे 'विपूर्वाद्धाञः कर्मसाधन इकारः' इस भाष्य से स्पष्ट किया है। भावसाधननिवृत्ति के लिए भाष्यकार ने यहाँ कर्मसाधन स्पष्ट किया है। 'विधीयते' यह वाक्यप्रदर्शन सुखपूर्वक बोध के लिए है। यहाँ कार्य-विशेष का निर्देश नहीं होने से प्रश्न करते हैं-**किं पुनरिति**। यहाँ क्या विधान किया जा रहा है? आगे के भाष्य में विधीयमान कार्यविशेष की पर्यालोचना कर उत्तर देते हैं-**समास इति**। समास, विभक्तिविधान तथा पराङ्गवद्भाव इन तीन का यहाँ विधान है। यद्यपि 'समर्थः पदविधिः' सूत्र के अव्यवहितोत्तर 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे' २.१.२ सूत्र है, फिर भी पराङ्गवद्भाव अल्पविषय है, अतः उसका अनादर कर व्यवहितोत्तरपठित समास के बहुविषय होने से पहले परिगणन किया है। 'विभक्तिविधान'शब्द के द्वारा सामान्यविहित विभक्ति का 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ इत्यादि के द्वारा जो नियम है वह कहा जा रहा है। इस तरह यह पदविधि होता है। यदि एकवाक्यताश्रयण के द्वारा विभक्ति का विधान माना जाये तब भी पदान्तर सम्बन्ध होने से जिन विभक्तियों का विधान है, जैसे सुबन्त पद 'अन्तरान्तरेण युक्ते' २.३.४, तिङन्त पद 'नेर्विशः' १.३.१७, तदाश्रय के द्वारा पदविधि ही होगा। 'नेर्विशः' १.३.१७ सूत्र पर भाष्यकार ने निर् और विश दोनों को पद कहा है। वहाँ विभक्त्यवच्छिन्न होने से सामान्यविधान. क्रिया का विशिष्ट विधान कर्म होता है, अतः 'पाकं पचति' में सामान्य पाक का कर्म अवयव पाक को कहा है।

किं पुनरयमधिकारः, आहोस्वित् परिभाषा? कः पुनरधिकार-परिभाषयोर्विशेषः? अधिकारः प्रतियोगं तस्याऽनिर्देशार्थ इति योगे-योगे उपतिष्ठते। परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती सर्वं शास्त्रमभि-ज्वलयति प्रदीपवत्। यद्यथा प्रदीपः सुप्रज्वलित एकदेशस्थः सर्वं वेश्माऽभिज्वलयति।

प्रकृतसूत्र में कार्यविशेष का निर्देश नही है, अतः परिभाषा होने से इसे पारार्थ्य-समझ कर परार्थो का दो रूप देख कर जिज्ञासा करते हैं-**किं पुनरिति**। 'समर्थः पदविधिः' यह अधिकारसूत्र है, अथवा परिभाषासूत्र है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। अधिकार और परिभाषा में क्या भेद है? यहाँ अन्य प्रष्टा की भी जिज्ञासा है। 'किं पुनरयमधिकारः' यह पक्ष रखने वाला अधिकार और परिभाषा का विशेषज्ञ है, अन्यथा उक्त प्रश्न का उदय नहीं होता।

उत्तरभाष्य—**अधिकारः प्रतियोगमिति**। यदि इसे अधिकार मानेंगे तो प्रत्येक उत्तरसूत्रों में इसकी उपस्थिति होगी तथा वहीं अपना अर्थ स्पष्ट करेगा। प्रकृतप्रदेश में इसके निर्देश का कोई फल नहीं होगा। अधिकार से परिभाषा में भेद स्पष्ट करते हैं-**परिभाषा पुनरिति**। जैसे सुन्दर प्रज्वलित दीप स्वदेश में स्थिर रहता हुआ ही सम्पूर्ण **वेश्म** = गृह का प्रकाशन करता है, वैसे परिभाषा अपने उपदेशदेश में रह कर ही सम्पूर्णशास्त्र की उपकारिका होगी। परिभाषा के अर्थ की ही उपस्थिति विधिप्रदेश में होगी, सूत्र की नहीं। जब कि अधिकारसूत्र स्वदेश का परित्याग कर विधिसूत्र के साथ एकवाक्यतापन्न होगा।

कः पुनरत्र प्रयत्नविशेषः? अधिकारे सति स्वरयितव्यम्। परिभाषायां पुनः सत्यां सर्वमपेक्ष्यम्। तथेदमपरं द्वैतं भवति- एकार्थीभावो वा सामर्थ्यं स्याद् व्यपेक्षा वेति?

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। किस पक्ष में यत्न का लाघव है तथा किस पक्ष में गौरव है?

समाधानभाष्य—**अधिकारे सतीति**। अधिकारपक्ष में समर्थपद को स्वरित-गुणयुक्त पढना चाहिये। जैसे श्वेतगुण का 'श्वेतते' इस तरह का क्रियारूप से निर्देश किया जाता है वैसे यहाँ स्वरितगुण क्रियारूप से 'स्वरयितव्यम्' यह निर्देश है। इस पक्ष में 'पदविधिग्रहण नहीं करना चाहिये' यह अर्थ उक्त होता है। **परिभाषायामिति**। जितने पदकार्य हैं उन सभी की अपेक्षा कर पद-विधि शब्द के द्वारा परिभाषा करनी चाहिये। अन्य परिभाषाओं में भी जिस लिङ्ग का ग्रहण होता है उस लिङ्ग की अपेक्षा होती हैं। जिज्ञासु-**तथेदमपरमिति**। यहाँ एक दूसरा भी सन्देह उत्पन्न हो रहा है-सामर्थ्य एकार्थीभावरूप लिया जाये, अथवा व्यपेक्षारूप लिया जाये? 'द्वयोर्भावः द्विता, तत्र भवं द्वैतम्= संशयरूप ज्ञान। अथ वा 'द्वाभ्यामितम्=प्रकारद्वयेन विरुद्धत्वाद् भिन्नाधारवर्तिना युक्तं वस्तु द्वीतं, तत्र भवं द्वैतं=संशयज्ञान। इस तरह यहाँ द्वैतपद से संशयज्ञान वाच्य है। विरुद्धकोटिद्वय का अवगाहन कराने वाला ज्ञान **द्वैत** = संशय है। अनेक अर्थ का एकीभवन एकार्थीभाव है। अर्थात् जहाँ अनेक पद पृथक्-पृथक् स्वार्थ का परित्याग कर विशिष्टशक्तिवश समुदाय के द्वारा विशिष्ट अर्थ का

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDr

बोध कराते हैं वहाँ एकार्थीभाव होता है। जैसे-'राजपुरुषः'। परन्तु जहाँ अनेक पद आकाङ्क्षावश अनेक अर्थों को कहते हैं, वहाँ व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य होता है। जैसे-'राज्ञः पुरुषः'।

तत्रैकार्थीभावे सामर्थ्येऽधिकारे च सति समास एकः संगृहीतो भवति, विभक्तिविधानं पराङ्गवद्भावश्चाऽसंगृहीतः। व्यपेक्षायां पुनः सामर्थ्येऽधिकारे च सति विभक्तिविधानं पराङ्गवद्भावश्च संगृहीतो भवति। समासस्त्वेकोऽसंगृहीतः। अन्यत्र खल्वपि समर्थग्रहणानि युक्तग्रहणानि च कर्त्तव्यानि भवन्ति। क्वाऽन्यत्र? 'इसुसोः सामर्थ्ये' 'न चवाहाहैवयुक्ते' इति। व्यपेक्षायां पुनः सामर्थ्ये परिभाषायां च सत्यां यावान् व्याकरणे पदगन्धो नाम स सर्वः संगृहीतो भवति। समासस्त्वेकोऽसंगृहीतः।

तत्रेति-एकार्थीभावसामर्थ्य तथा व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य इन दोनों के मध्य में एकार्थीभावसामर्थ्य तथा प्रकृतसूत्र का अधिकारपक्ष मानने पर समास में एकार्थीभाव के होने से एकार्थीभाव का संग्रह होता है, परन्तु इस पक्ष में विभक्तिविधान तथा पराङ्गवद्भाव का संग्रह नहीं होता है। परन्तु यदि दूसरा पक्ष-व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य तथा प्रकृतसूत्र का अधिकार माना जाये तो विभक्तिविधान तथा पराङ्गवद्भाव संगृहीत हो जाता है, परन्तु इस पक्ष में एकार्थीभावरूप समास संगृहीत नहीं होता है। इस तरह एकार्थीभावसहित अधिकारपक्ष में भी दोष है। उक्त दोनों पक्षों के मध्य में कोई भी पक्ष निर्दुष्ट नहीं है। 'समर्थः पदविधिः' को अधिकार मानने में अन्यत्र भी दोष होगा, इसे स्पष्ट करते हैं-**अन्यत्रेति**। यदि प्रकृतसूत्र को एकार्थीभावसहित अधिकार मानेंगे तो अधिकारप्रयुक्तदोष मध्य के दो पादों में ही निवृत्त हो जायेगा। इससे अधिकार के तृतीयाध्याय में असम्बद्ध होने से अन्यत्र आष्टमिकसूत्र 'इसुसोः सामर्थ्ये' ८.३.४४ तथा 'न चवाहाहैवयुक्ते' ८.१.२४ में व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य इष्ट है, यहाँ दोनों सूत्रों में 'समर्थः पदविधिः' का अधिकार नहीं होने से दोष होगा। इससे अधिकारसहित उभयविधसामर्थ्याश्रयणपक्ष भी निरस्त हो गया। परन्तु प्रकृत में यदि व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य तथा सूत्र का परिभाषापक्ष माना जाये तो परिभाषा सुप्रज्वलित प्रदीप की तरह प्रकाशक होने से आष्टमिकसूत्रों की भी उपकारिका होगी। इस तरह परिभाषापक्ष में 'इसुसोः सामर्थ्ये' ८.३.४४ और 'न चवाहाहैवयुक्ते' ८.१.२४ में उक्त दोष नहीं आता है। इस पक्ष में व्याकरणशास्त्र में जितने भी पदविधि हैं उन सभी का संग्रह हो जाता है। परन्तु व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा सूत्र का परिभाषापक्ष में एकार्थीभावरूप समास का संग्रह नहीं होता है।

तत्रैकार्थीभावः सामर्थ्यं, परिभाषा चेत्येवं सूत्रमभिन्नतरकं भवति। एवमपि क्वचिदकर्तव्यं समर्थग्रहणं क्रियते, क्वचिच्च कर्तव्यं न क्रियते। अकर्तव्यं तावत्क्रियते-'समर्थानां प्रथमाद्वे'ति। कर्तव्यं तावन्न क्रियते-'कर्मण्यण्'। समर्थादिति। ननु च गम्यते तत्र सामर्थ्यं कुम्भकारो नगरकार इति। सत्यं, गम्यते उत्पन्ने हि प्रत्यये। स एव तावत्समर्थादुत्पाद्यः।

'एकार्थीभावसामर्थ्य और अधिकार' यह एक पक्ष है। 'व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य और अधिकार' यह दूसरा पक्ष है, तथा 'द्विविधसामर्थ्य और अधिकार' यह तीसरा पक्ष है। इसी तरह परिभाषापक्ष में तीन पक्ष होगा। मिल कर कुल छह पक्ष होते हैं। इन छह पक्षों में जो 'एकार्थीभाव और परिभाषापक्ष' है इसमें सूत्र अभिन्न रहता है। उभयविधसामर्थ्य मानने पर अर्थ के भिन्न होने से सूत्र का भेद होगा। अर्थभेद होने से सूत्रभेदरूपदोष न हो इसके लिए 'एकार्थीभाव और परिभाषापक्ष' माना जा रहा है। इसे स्पष्ट करते हैं-**तत्रैकार्थीभाव इति**। यद्यपि व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य में भी सूत्र अभिन्न ही रहता है, तथापि एकार्थीभावसामर्थ्य में कोई दोष नहीं होने से प्रकर्षयोग है, अतः 'अभिन्नतरकम्' ऐसा कह रहे हैं। इस पक्ष में पराङ्गवद्भाव में तन्निमित्त का ग्रहण है, अतः पराङ्गवद्भाव का संग्रह हो जायेगा। प्रकृत्यर्थ विभक्त्यर्थ का सर्वथा व्यपेक्षालक्षण ही होता है, अतः विभक्तिविधान में भी दोष नहीं होगा।

'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्रघटक समर्थपद का कृतसन्धिकार्यार्थकत्व नहीं जानाता हुआ कहते हैं-**एवमपीति**। **एवमपि**='एकार्थीभाव और परिभाषा' यह पक्ष होने पर भी कई ऐसे सूत्र हैं जिनमें समर्थग्रहण नहीं करना चाहिये था, परन्तु आचार्य उसमें समर्थग्रहण करते हैं। जैसे 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२। 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ इस अलुग्विधानरूप लिङ्ग से यह पक्ष आता है कि 'तद्धित प्रत्यय विभक्त्यन्त से उत्पन्न होता है', अतः तद्धितप्रत्यय के पदविधि होने से प्रकृत परिभाषा उपस्थित होगी। इससे असामर्थ्य होने पर प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा। एवं कई ऐसे भी सूत्र हैं जिनमें समर्थग्रहण किया जाना चाहिये था, परन्तु आचार्य उसमें समर्थग्रहण नहीं करते हैं। जैसे 'कर्मण्यण्' ३.२.१। 'पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः' पक्ष में प्रातिपदिक के द्वारा ही कर्म का ग्रहण होने से पदविधित्वपक्ष नहीं होगा। परन्तु 'त्रिकं प्रातिपदिकार्थः' पक्ष में कर्म विभक्ति के द्वारा वाच्य होगा। इससे इस परिभाषा की

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI

उपस्थिति होने से दोष नहीं है। अन्य आचार्य-**ननु चेति**। यदि कुम्भकार, नगरकार शब्द समर्थाभिधायी तथा असमर्थाभिधायी दोनों प्रकार का होता है तो असमर्थाभिधायी प्रयोग की निवृत्ति के लिए यत्न किया जा सकता था, अन्यथा नहीं। कुम्भकार, नगरकार शब्द समर्थाभिधायी ही है, अतः उसके लिए 'कर्मण्यण्' ३.२.१ सूत्र में समर्थग्रहण आवश्यक नहीं है।

इतर आचार्य इसकी पुष्टि करते हैं—**सत्यमिति**। अण्प्रत्यय उत्पन्न होने पर ही कुम्भकार, नगरकार शब्द समर्थाभिधायी होता है, अन्यथा नहीं। प्रत्ययोत्पत्ति से पूर्व अण् की प्रकृति असमर्थाभिधायी ही रहेगी। जैसे-असमर्थों का समास आदि न हो, इसके लिए 'समर्थः पदविधिः' सूत्र पढते हैं, वैसे 'कर्मण्यण्' ३.२.१ की प्रवृत्ति असमर्थ में न हो, इसके लिए इसमें समर्थग्रहण करना चाहिये।

अथ समर्थग्रहणं किमर्थम्? वक्ष्यति-'द्वितीयः श्रितादिभिः समस्यते', कष्टश्रितो नरकश्रित इति। समर्थग्रहणं किमर्थम्? पश्य देवदत्त! कष्टं,-श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्। 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन'। उपादानविकलः, शङ्कुलाखण्डः, किरिकाणः। समर्थग्रहणं किमर्थम्? तिष्ठ त्वं शङ्कुलया खण्डो धावति मुसलेन। किं त्वं करिष्यसि शङ्कुलया, खण्डो विष्णुमित्र उपलेन। 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः'। गोहितम्। वृषभहितम्। अश्वहितम्। समर्थग्रहणं किमर्थम्? सुखं गोभ्यो, हितं देवदत्ताय।

प्रश्नभाष्य—**अथ समर्थेति**। यहाँ प्रधानपर्यनुयोग के द्वारा सम्पूर्ण सूत्र पर आक्षेप है। यद्यपि इससे सामर्थ्य का विधान नहीं होता है, एवं वचन के द्वारा स्वतः असमर्थ का सामर्थ्य भी नहीं किया जा सकता है, फिर भी पदविधि के प्रति सामर्थ्य का उपस्थापक होने से यहाँ भाष्यकार समर्थपद को प्रधान कह रहे हैं।

उत्तरभाष्य—**वक्ष्यतीति**। आचार्य 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ इत्यादि के द्वारा द्वितीयान्त का श्रितादि के साथ समास कहेंगे, वह समर्थों को ही हो, असमर्थों को नहीं, इसके लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। यद्यपि समाससंज्ञामात्र का विधान किया जाता है, फिर भी अबुधबोध के लिए प्रक्रिया में भिन्न शब्दों का संश्लेष किया जाता है, अतः 'समस्यते' ऐसा कहा है।

प्रश्नभाष्य—**समर्थग्रहणमिति**। 'पदविधिः' इतना ही सूत्रनिर्देश कीजिये, 'समर्थ'पद का निर्देश क्यों करते हैं?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाधानभाष्य—**पश्य देवदत्त इति**। समर्थग्रहण नहीं करने पर 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्त- प्राप्तापन्नैः' २.१.२४ इत्यादि के द्वारा द्वितीयान्त का श्रितादि के साथ समास होगा। इस तरह 'पश्य देवदत्त! कष्टं, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्' में 'श्रितः' पद का 'गुरुकुलम्' पद के साथ सामर्थ्य है तथा 'पश्य' पद का 'कष्टम्' के साथ अन्वय है, अतः समर्थपद के अभाव में असमर्थपदों को समास की आपत्ति होने से उक्त वाक्यघटक 'कष्टम्' और 'श्रितः' पद का समास होने लगेगा। परन्तु जब समर्थपद देते हैं तब असमर्थों का समास नही होने से उक्त दोष नही आता है। समर्थग्रहण का अन्यत्र भी फल देते हैं-**तृतीया तत्कृतार्थेनेति**। 'उपादानेन विकल उपादानविकलः, शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः, किरिणा काणः किरिकाणः' में समर्थों का ही समास होता है। यदि समर्थग्रहण नहीं करेंगे तो 'तिष्ठ त्वं शङ्कुलया खण्डो धावति मुसलेन' इस असमर्थस्थल में भी समास की आपत्ति होगी। उक्त वाक्य का 'तिष्ठ त्वं, शङ्कुलया न प्रयोजनं, मुसलेन कृतः खण्डो धावति' यह अर्थ है। यहाँ खण्ड-पद का धावनक्रिया में तथा शङ्कुलापदोत्तर तृतीया अलम् अर्थ में है। मुसल-पदोत्तर तृतीयार्थ करण का 'कृ' धात्वर्थ में अन्वय है। 'किं त्वं करिष्यसि शङ्कुलया, खण्डो विष्णुमित्र उपलेन' इस वाक्य का 'हे विष्णुमित्र! त्वं शङ्कुलया किं करिष्यसि, उपलेन पाषाणेन कृतः खण्डः' यह अर्थ है। 'शङ्कुलया' में सह के योग में तृतीया है, ऐसा भी श्रीनागेश जी मानते हैं। यहाँ दोनों वाक्यों में तृतीयान्तार्थ कृतत्व है, अतः समर्थपद नहीं होने पर समास की आपत्ति होगी। समर्थग्रहण नहीं करने पर 'गोहितम्, वृषभहितम्, अश्वहितम्' में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' २.१.३६ से समास इष्ट होने पर भी इसकी अति-व्याप्ति 'सुखं गोभ्यो, हित देवदत्ताय' में होगी। यहाँ इस वाक्य में गो और हित इन दो असमर्थपदों को समास प्राप्त होगा।

'पञ्चमी भयेन'। वृकभयं, दस्युभयं, चोरभयम्। समर्थग्रहणं किमर्थम्। गच्छ त्वं, मा वृकेभ्यो,-भयं देवदत्ताद् यज्ञदत्तस्य। 'षष्ठी सुबन्तेन समस्यते'। राजपुरुषः। ब्राह्मणकम्बलः। समर्थग्रहणं किमर्थम्? भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्येति। 'सप्तमी शौण्डैः' अक्ष-शौण्डः, स्त्रीशौण्डः। समर्थग्रहणं किमर्थम्? कुशलो देवदत्तोऽक्षेषु, शौण्डः पिबति पानागारे।

समर्थग्रहण नहीं करने पर अन्यत्र भी अतिव्याप्ति देते हैं—**पञ्चमी भयेनेति**। 'वृकभयम्, दस्युभयम्, चोरभयम्' में 'पञ्चमी भयेन' २.१.३७ की प्राप्ति इष्ट

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर भी 'गच्छ त्वं, मा वृकेभ्यो, भयं देवदत्ताद् यज्ञदत्तस्य' में वृक और भय पद को समास की आपत्ति होगी। यहाँ 'वृकेभ्यः' इस पद का 'मा भैषीः' इस क्रिया के प्रति अपादानत्व है। 'देवदत्ताद् यज्ञदत्तोऽवश्यं रक्ष्य इति मार्गे सम्भावितमपि वृकभयं त्यक्त्वा तद्रक्षणार्थं त्वं गच्छ' यह वाक्यार्थ है। समर्थपद नहीं देने पर 'राजपुरुषः, ब्राह्मणकम्बलः' में 'षष्ठी' २.२.८ के द्वारा षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ जैसा समास है वैसा 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य' में जहाँ षष्ठ्यन्त 'राज्ञः' पद का भार्या में तथा 'देवदत्तस्य' पद का 'पुरुषः' में अन्वय है। यहाँ 'राज्ञः' का 'पुरुषः' के साथ अन्वय नहीं होने पर भी समर्थग्रहण के अभाव में असमर्थसमास की आपत्ति होगी। एवम् 'अक्षशौण्डः, स्त्रीशौण्डः' में सप्तम्यन्त का सुबन्त के साथ समास होने पर भी समर्थपद का ग्रहण नहीं करने पर 'कुशलो इदेवदत्तः अक्षेषु, शौण्डः पिबति पानागारे' में 'अक्षेषु' का 'कुशलः' के साथ एवं 'शौण्डः' का 'पिबति' के साथ अन्वय होने से अक्ष और शौण्ड का परस्पर अन्वयरूप असमर्थ होने पर भी समास की आपत्ति होगी। उक्त आपत्तियाँ न हों, इसके लिए समर्थग्रहण है।

अथ क्रियमाणेऽपि समर्थग्रहणे इह कस्मान्न भवति-महत्कष्टं श्रित इति? न वा भवति महाकष्टश्रित इति? भवति, यदैतद् वाक्यं भवति-महत्कष्टं महाकष्टं, महाकष्टं श्रितो महाकष्टश्रित इति। यदा त्वेतद् वाक्यं भवति-महाकष्टं श्रित इति, तदा न भवितव्यम्। तदा च प्राप्नोति। तदा कस्मान्न भवति। कस्य कस्मान्न भवति। किं द्वयोः, आहोस्विद् बहूनाम्? बहूनां कस्मान्न भवति? 'सुप्सुपे'ति वर्तते।

प्रश्नभाष्य—**अथ क्रियमाणेऽपीति**। प्रकृतसूत्र में समर्थग्रहण करने पर 'महत्कष्टं श्रितः' इस विग्रह में 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ के द्वारा द्वितीयान्त का श्रित के साथ समास क्यों नहीं होता है?, यहाँ श्रयणक्रिया के साथ द्वितीयान्त का सामर्थ्य है, अतः समास होना चाहिये, ऐसा मान कर प्रश्न है। यदि यहाँ कष्ट और श्रित पद का समास होगा तो 'महत्कष्टश्रितः' पद होगा। यदि यहाँ तीनों पदों का समास किया जाये तब भी उत्तरपद पर रहते महत् पद को विहित आत्त्व मध्य में पद का व्यवधान होने से नही हो सकेगा। यदि यहाँ तीनों पदों का समास में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' २.१.६१ के द्वारा पूर्व के दो पदों का समास मान कर 'महाकष्टं श्रितः महाकष्टश्रितः' का साधुत्व कहा जाये तो यहाँ 'अहीने द्वितीया' ६.२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४७ यह स्वर होगा, एवं 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा भी वही स्वर होगा जो 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ से हो रहा है। फिर भी 'महारण्यातीतः' इस समस्त पद में स्वरभेद होगा। 'महारण्यमतीतः' ऐसा दो पदों का समास करने पर 'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्' ६.२.१४४ यह स्वर होगा। परन्तु जब यहाँ पर 'महदरण्यम् अतीतः' ऐसा विग्रह कर तीन पदों का समास करेंगे एवम् पूर्व के दो पदों का 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' २.१.६१ के द्वारा समास करेंगे तब 'पूर्वशालाप्रियः' इस समासघटक पूर्वशाला पद की तरह महारण्यशब्द 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्त होगा। यहाँ श्रीकैयट जी का यह भाव है-उक्त तीनों पदों का समास करने पर महत् और कष्ट इन दोनों शब्दों के प्रधान के प्रति विशेषण होने पर परस्पर सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। इससे पूज्यमान तथा परस्पर विशेषणविशेष्यत्व नहीं होने से समास नहीं हो सकेगा। समास नहीं होने से आत्त्व प्राप्त नहीं हो सकेगा, 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ से महत् शब्द को प्रकृतिस्वर की आपत्ति होगी। 'महत्कष्टं श्रितः' इस विग्रह में समास क्यों नहीं होता है? यदि समास नहीं होता है तो 'महाकष्टश्रितः' यह वाक्य होगा अथ वा नहीं?

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। पहले 'महत् कष्टम्' इस स्थिति में विग्रह करके 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' २.१.६१ से समास करने के बाद 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' ६.३.४६ से आत्त्व हो कर महाकष्ट पद होगा। बाद में 'महाकष्टं श्रितः' इस विग्रह में श्रयणक्रिया के प्रति 'महाकष्टम्' पद को कर्म मानने पर द्वितीयान्तप्रकृतिक 'महाकष्टम्' का 'श्रितः' के साथ समास होगा। इस स्थिति में 'महाकष्टश्रितः' पद होगा। परन्तु जब 'महत् कष्टं श्रितः' यह विग्रह करेंगे तो वाक्य ही रहेगा, समास नहीं होगा। परन्तु त्रिपद विग्रह में भी द्वितीयान्त का श्रित के साथ समास प्राप्त हो रहा है।

प्रश्नभाष्य—**तदा कस्मान्नेति**। 'महत् कष्टं श्रितः' इस विग्रह में समास क्यों नहीं होता है? अन्य आचार्य-**कस्य कस्मान्नेति**। उक्त तीन पदों के विग्रह में किसका समास क्यों नहीं होता है, क्या 'कष्ट और श्रित का' अथ वा 'महत् और कष्ट; इन दो पदों का समास क्यों नहीं होता है'?, ऐसा पूछ रहे हैं, अथ वा बहुत पदों का समास क्यों नहीं होता है, ऐसा पूछ रहे हैं? प्राश्निक आचार्य अपना पक्ष स्पष्ट करते हैं-**सुप्सुपेति**। संख्या के विवक्षित होने से एक ही सुबन्त का एक ही सुबन्त के साथ समास होगा, अतः बहुतों का समास नहीं होता है। इसी के लिए 'सुप्सुपा' यह दोनों पद एकवचन में निर्दिष्ट हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननु च भो आकृतौ शास्त्राणि प्रवर्तन्ते। तद्यथा 'प्रातिपदिका'-दिति वर्तमानेऽन्यस्माच्चाऽन्यस्माच्च प्रातिपदिकादुत्पत्तिर्भवति। सत्यमेवमेतद्। आकृतिस्तु प्रत्येकं परिसमाप्यते, न समुदाये। यावत्येतत्परिसमाप्यते प्रातिपदिकादिति, तावत उत्पत्त्या भवितव्यम्। प्रत्येकं चैतत्परिसमाप्यते, न समुदाये। एवमिहापि यावत्येतत् परिसमाप्यते सुप्सुपेति, तावतः समासेन भवितव्यम्। द्वयोश्चैतत्परिसमाप्यते, न बहुषु।

अन्य आक्षेपक-ननु च भो इति। शास्त्र आकृति=जाति में प्रवृत्त होते हैं। जैसे 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इस श्रुतिवाक्य में ब्राह्मणपदोत्तर एकवचन से उपस्थित एकत्व का अन्वय ब्राह्मणत्वजाति में होता है, ब्राह्मणव्यक्ति में नहीं। नाना व्यक्ति में जाति एक ही होती है, अतः सम्पूर्ण ब्राह्मणों के हनन का निषेध होता है, एक ब्राह्मण का नहीं। इसी तरह 'सुप्सुपा' में एकवचन से सुबन्त-जाति निर्दिष्ट है, सुबन्तव्यक्ति नहीं, अतः वहुत सुबन्तों का भी समास होगा। आक्षेपक का समर्थन करते हैं-सत्यमिति। यही वात सही है कि शास्त्र आकृति=जाति में परिसमाप्त होते हैं, व्यक्ति में नहीं, अतः 'सुप्सुपा' सूत्र एकत्र चरितार्थ होकर भी जातिमहिम्ना सर्वत्र प्रवृत्त होता है। परन्तु आकृतिः= जाति की परिसमाप्ति प्रत्येक में ही होती है, समुदाय में नहीं, अतः प्रत्येक की प्रातिपदिकसंज्ञा होने से प्रत्येक से प्रत्यय उत्पन्न होता है, प्रातिपदिकसमुदाय से नहीं। वैसे सुवन्तसमुदाय के असुबन्त होने से 'महत्कष्टम्' इस समुदाय का सुबन्त 'श्रितः' के साथ समास नहीं होगा। परन्तु ब्राह्मणसमुदाय के हनन में शास्त्रार्थ अतिक्रान्त होता है, अतः 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इत्यादि निषेधवाक्यों में संख्या विवक्षित नहीं है। 'सुप्सुपा' यह शास्त्र दो ही में परिसमाप्त होता है, बहुत में नहीं, अतः बहुत पदों वाला विग्रह में दो पदों में विहित समास नहीं होता है।

द्वयोस्तर्हि कस्मान्न भवति? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? सापेक्षमसमर्थं भवतीति। यदि सापेक्षमसमर्थं भवतीत्युच्यते, 'राजपुरुषोऽभिरूपः' 'राजपुरुषो दर्शनीयः' अत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति। नैष दोषः। प्रधानमत्र सापेक्षम्। भवति च प्रधानस्य सापेक्षस्यापि समासः। यत्र तर्ह्यप्रधानं सापेक्षं भवति, तत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति-'देवदत्तस्य गुरुकुलम्'। 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रः'। 'देवदत्तस्य दासभार्ये'ति। अत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति। नैष दोषः। समुदायापेक्षाऽत्र षष्ठी सर्वं गुरुकुलमपेक्षते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिज्ञासु—**द्वयोस्तर्हीति**। उक्त विग्रह 'महत्कष्टं श्रितः' में जहाँ बहुत पद हैं वहाँ दो पदों का समास क्यों नहीं होता है?

समाधानभाष्य—**असामर्थ्यादिति**। उक्त बहुत पदों वाला विग्रहवाक्य में पद परस्पर असमर्थ हैं, अतः उनका समास नहीं होता है।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। उक्त विग्रह में पदों का असामर्थ्य कैसे है?

उत्तरभाष्य—**सापेक्षमिति**। सापेक्ष पद असमर्थ होता है। उक्त विग्रह में महत् पद कष्ट पद की अपेक्षा कर रहा है तथा कष्ट पद महत् पद की अपेक्षा कर रहा है, अतः ये दोनों पद आपस में असमर्थ हो गये। अथ वा यहाँ दूसरी वात यह भी है कि उक्त तीनों का समास करने पर प्रधान अर्थ का वाचक होने से महत् और कष्ट परस्पर विशेष्यविशेषणभाव नहीं है, अतः उक्त त्रिपद विग्रह में 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ से समास नहीं होता है। आक्षेपक-**यदि सापेक्षमिति**। आप यदि सापेक्ष को असमर्थ बता रहे हैं तो 'राजपुरुषो- ऽभिरूपः' में पुरुष पद अभिरूप में सापेक्ष है, अतः यहाँ राज पद का पुरुष पद के साथ समास नहीं होना चाहिये?

समाधानभाष्य—**नैष इति**। उक्त दोनों वाक्यों में पुरुष पद प्रधान है। प्रधान के सापेक्ष होने पर भी समास होता है।

आक्षेपभाष्य—**यस्तर्ह्यप्रधानमिति**। यदि आप प्रधान के सापेक्ष होने पर भी समास कहेंगे तो जहाँ अप्रधान सापेक्ष होगा वहाँ 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्, देवदत्तस्य दासभार्या, देवदत्तस्य गुरुपुत्रः' में कुल, भार्या और पुत्र प्रधान है तथा गुरु और दास अप्रधान है। यहाँ अप्रधान गुरु सापेक्ष है, अतः उसका कुल, भार्या और पुत्र के साथ समास नहीं होना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि में षष्ठ्यन्त का गुरुकुल इत्यादि पदैकदेश गुरु में अन्वय नहीं है, अपि तु समुदाय गुरुकुलं, दासभार्या और गुरुपुत्र में अन्वय है, अतः षष्ठी के समुदाय की अपेक्षा करने से 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि में समास हो जायेगा।

यत्र तर्हि न समुदायापेक्षा षष्ठी, तत्र ते वृत्तिर्न प्राप्नोति-'किमोदनः शालीनाम्'। 'सक्त्वाढकमापणीयानाम्'। 'कुतो भवान् पाटलिपुत्त्रक' इति। इह चाऽपि 'देवदत्तस्य गुरुकुलं' 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रो' 'देवदत्तस्य दासभार्ये'ति, यद्येषा समुदायापेक्षा षष्ठी स्यान्नैतन्नियोगतो गम्येत- देवदत्तस्य यो गुरुस्तस्य यः पुत्र इति। किं तर्हि? अन्यस्याऽपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुरुपुत्रो, देवदत्तस्य किञ्चिदित्येषोऽर्थो गम्येत। यतस्तु खलु नियोगतो देवदत्तस्य यो गुरुस्तस्य यः पुत्र इत्येषोऽर्थो गम्यते, अतो मन्यामहे-'नैषा समुदायापेक्षा षष्ठी'ति।

आक्षेपभाष्य—**यत्र तर्हीति**। जहाँ षष्ठी समुदाय की अपेक्षा नहीं कर रही है वहाँ समास प्राप्त नही हो सकेगा। जैसे 'किमोदनः शालीनाम्'। यहाँ इस वाक्य में 'केषामोदनः किमोदनः' ऐसा षष्ठीतत्पुरुष है। 'केषां शालीनां, किं **कलमानां**= श्यामशालीनाम् उताहो रक्तशालीनाम्, अन्येषां वा' यह प्रश्न है। 'सक्त्वाढकमापणीयानाम्' में 'आपणीयानां सक्तूनामाढकम्' अर्थ है। 'कुतो भवान् पाटलिपुत्रकः' का 'कस्मात् पाटलिपुत्राद् भवान् आगतः' अर्थ है। पाटलिपुत्र के अनेक होने की दशा में अथ वा उसके अवयवों के बारे में प्रश्न है। यहाँ 'पाटलिपुत्रक' में 'रोपधेतोः प्राचाम्' ४.२.१२३ यह तद्धितवृत्ति प्राप्त नही है। यहाँ उपर्युक्त तीनों उदाहरण में षष्ठी समुदाय की अपेक्षा नहीं कर रही है, अतः 'किमोदनः, सक्त्वाढकम्' में समासवृत्ति और 'पाटलिपुत्रकः' में तद्धितवृत्ति नहीं हो सकेगी। 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि में भी आक्षेप करते हैं-**यद्येषेति**। 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इस वाक्य से 'देवदत्तस्य यो गुरुस्तस्य कुलम्' ऐसा अर्थ आता है। 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रः' का 'देवदत्तस्य यो गुरुस्तस्य पुत्रः' यह अर्थ है। एवं 'देवदत्तस्य दासभार्या' इस वाक्य का 'देवदत्तस्य यो दासस्तस्य भार्या' यह अर्थ है। उपर्युक्त तीनों अर्थ तभी सम्भव होंगे जब यहाँ षष्ठी समुदाय की अपेक्षा नहीं करती हो। यदि यहाँ षष्ठी समुदाय की अपेक्षा करेगी तो 'अन्य का भी गुरुपुत्र है तथा देवदत्त का भी कुछ है' ऐसा अर्थ की आपत्ति होगी। उक्त वाक्य से 'देवदत्त का जो गुरु, उसका जो पुत्र' ऐसा अर्थबोध होता है। यह अर्थ तभी सम्भव है जब 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रः' इत्यादि में षष्ठी को समुदायापेक्ष नही माना जाये।

अन्यत्र खल्वपि समर्थग्रहणे सापेक्षस्याऽपि कार्यं भवति। क्वाऽन्यत्र? 'इसुसोः सामर्थ्ये' 'ब्राह्मणस्य सर्पिष्करोती'ति। तस्मान्नैतच्छक्यं वक्तुं 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति 'महत्कष्टं श्रित' इति?

उत्तरपक्षी आचार्य 'सापेक्षमसमर्थ भवति का खण्डन करते हैं—**अन्यत्र खल्वपीति**। 'ब्राह्मणस्य सर्पिष्करोति' में 'इसुसोः सामर्थ्ये' ८.३.४४ से मूर्धन्यादेश है। यहाँ सर्पिः पद ब्राह्मण में नित्य सापेक्ष है; फिर भी 'करोति' के साथ उसको मूर्धन्यादेश होता है। यदि समर्थग्रहण करने पर सापेक्ष को कार्य नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माना जाये तो 'ब्राह्मणस्य सर्पिष्करोति' में इष्ट मूर्धन्यादेश नहीं हो सकेगा। वह तभी होता है जब समर्थग्रहण करने पर सापेक्षों का भी कार्य माना जाये, अतः सापेक्ष को असमर्थ नहीं कहा जा सकता है।

आक्षेपभाष्य—**वृत्तिस्तर्हीति**। यदि 'सापेक्ष भी असमर्थ होता है' यह मान रहे हैं तब 'महत् कष्टं श्रितः' में 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ के द्वारा सापेक्षों को समास क्यों नहीं होता है?

* सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणयोगो न * **'सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं प्रयुज्यते' इति वक्तव्यम्। यदि 'सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यत' इत्युच्यते, 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रो' 'देवदत्तस्य दासभार्ये'त्यत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति।**

उत्तरभाष्य—**सविशेषणानामिति**। सविशेषणों की वृत्ति नहीं होती है तथा वृत्त का अन्य विशेषण के साथ योग नहीं होता है। 'महत् कष्टं श्रितः' में 'महत् कष्टम्' यह सविशेषण है, अतः श्रित पद के साथ उसका समास नहीं होगा। 'वृत्तिर्न' ऐसा कहने से 'ब्राह्मणस्य सर्पिष्करोति' इत्यादि में 'इसुसोः सामर्थ्ये' ८.३.४४ इत्यादि के द्वारा षत्व का वारण नहीं हुआ।

आक्षेपभाष्य—**यदीति**। यदि 'सविशेषणों की वृत्ति नहीं होती है तथा वृत्त का अन्य विशेषण के साथ योग नहीं होता है' ऐसा कह रहे हैं तो 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि में 'गुरुकुलम्' इत्यादि वृत्त हैं, उसमें अन्य विशेषेण देवदत्त आदि का योग क्यों है, अथ वा गुरु आदि सविशेषण हैं, फिर उसकी समासवृत्ति क्यों है?

* अगुरुकुलपुत्रादीनाम् * **अगुरुकुलपुत्रादीनामिति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यं 'सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यतेऽगुरुकुलपुत्रादीना'-मिति। न वक्तव्यम्। वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति?** * अगमकत्वात् * **इह समानार्थेन वाक्येन भवितव्यं, समासेन च। यश्चेहार्थो वाक्येन गम्यते 'महत्कष्टं श्रित' इति, नाऽसौ जातु चित् समासेन गम्यते 'महत्कष्टश्रित' इति। एतस्माद्धेतोर्ब्रूमः-'अगमकत्वा'दिति। न ब्रूमः-'अपशब्दः स्या'दिति। यत्र च गमको भवति, भवति तत्र वृत्तिः। यद्यथा-'देवदत्तस्य गुरुकुलं' 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रो' 'देवदत्तस्य दासभार्ये'ति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकदेशी—**अगुरुकुलादीनामिति**। 'सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणयोगो न' इसमें 'अगुरुकुलपुत्रादीनाम्' यह निषेधवचन पढना चाहिये। इससे गुरुकुल आदि का परित्याग कर 'सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणयोगो न' इस न्याय की प्रवृत्ति नहीं होने से 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि में समासवृत्ति हो जायेगी। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या 'सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषण-योगो न' इस न्याय में 'अगुरुकुलपुत्रादीनाम्' यह निषेधवचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त न्याय में निषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**वृत्तिस्तर्हीति**। यदि उक्त न्याय में निषेधवचन नहीं पढेंगे तो 'महत् कष्टं श्रितः' में समास क्यों नही होता है?

उत्तरभाष्य—**अगमकत्वादिति**। वृत्ति और वाक्य दोनों को समानार्थक होना चाहिये। 'महत् कष्टं श्रितः' इस वाक्य से जिस अर्थ का बोध होता है वह अर्थ 'महत्कष्टश्रितः' इस समास से प्राप्त नहीं होता है, अपि तु भिन्न अर्थ आता है। 'महत् कष्टं श्रितः' इस वाक्य से 'महान् कष्ट का आश्रयण करने वाला' यह अर्थ आता है; परन्तु समास करने पर 'जो कष्ट में है वह महान् कर्म करता है' ऐसा अर्थ आता है, अतः वाक्य तथा वृत्ति इन दोनों के भिन्नार्थक होने से 'महत् कष्टं श्रितः' में समास नहीं होता है; अतः यहाँ समास नही होने में आचार्य अगमक हेतु दे रहे हैं। यहाँ आचार्य यह भी कह रहे हैं कि उक्त स्थल में समास करने पर शब्द अपशब्द हो जायेगा, अतः जहाँ वाक्य के अर्थ का बोध वृत्ति से होता है वहाँ 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्, देवदत्तस्य दासभार्या, देवदत्तस्य गुरुपुत्रः' रग्ह समासवृत्ति होती है।

यद्यगमकत्वं हेतुः, नाऽर्थः समर्थग्रहणेन। इहाऽपि 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्ये'ति, योऽर्थो वाक्येन गम्यते, नाऽसौ जातु चित् समासेन गम्यते, 'भार्या राजपुरुषो देवदत्तस्ये'ति। तस्मान्नार्थः समर्थग्रहणेन। इदं तर्हि प्रयोजनम्- 'अयमस्त्यसमर्थसमासो नञ्स-मासो गमकः, तस्य साधुत्वं मा भदिति-'अकिञ्चित्कुर्वाणम्' अमाषं हरमाणम्' 'अगाधादुत्सृष्ट'मिति।

आक्षेपक—**यद्यगमकत्वमिति**। यदि समासवृत्ति होने में अगमकत्व को कारण मानते हैं तथा नहीं होने में भी अगमक ही हेतु है तब जहाँ वाक्य तथा वृत्ति समानार्थक होंगे वहाँ गमक होने से समास हो जायेगा। परन्तु जहाँ वाक्य तथा वृत्ति भिन्नार्थक होंगे वहाँ गमक नहीं होने से समास नही होगा। इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असमर्थों का समासवारण अगमक हेतु के द्वारा ही हो जायेगा; फिर इसी के लिए जो समर्थग्रहण किया वह व्यर्थ है। 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देव- दत्तस्य' इस विग्रह वाक्य का 'राजा की भार्या, देवदत्त का पुरुष' यह अर्थ है। परन्तु यह अर्थ 'भार्या राजपुरुषो देवदत्तस्य' इस वाक्य से नहीं आता है, अतः 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य' इस विग्रह में 'भार्या राजपुरुषो देवदत्तस्य' यह समास नहीं होता है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'अकिञ्चित्कुर्वाणम्' अमाषं हरमाणम्' 'अगाधादुत्सृष्टम्' में नञ्पद का क्रिया में अन्वय होने से क्रियापद के साथ ही सामर्थ्य है। परन्तु क्रियाभिन्न किञ्चित्, माष और अगाध पद के साथ असमर्थसमास है। इस असमर्थसमास को असाधु बताया जा सके, इसके लिए प्रकृतसूत्र में समर्थग्रहण है

एतदपि नाऽस्ति प्रयोजनम्। अवश्यं कस्य चिन्नञ्समासस्याऽसमर्थसमासस्य गमकस्य साधुत्वं वक्तव्यम्। 'असूर्यम्पश्यानि मुखानि' 'अपुनर्गेयाः श्लोकाः' अश्राद्धभोजी ब्राह्मण' इति। 'सुडनपुंसकस्ये'त्येतन्नियमार्थं भविष्यति-'एतस्यैवाऽसमर्थसमासस्य नञ्समासस्य गमकस्य साधुत्वं भवति, नान्यस्ये'ति। तस्मान्नार्थः समर्थग्रहणेन।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। समर्थग्रहण का असमर्थ नञ्समास को असाधु बताना भी प्रयोजन नहीं है। नञ्समास असमर्थ ही होता है तथा वह विग्रहवाक्यार्थ का बोधक होता है, अतः असमर्थ होने पर भी गमक होने से नञ्समास का साधुत्व माना जायेगा। जैसे 'असूर्यम्पश्यानि मुखानि' सूर्यकर्मकदृशिक्रिया के साथ नञ् का सम्बन्ध है, सूर्यस्थ सत्ता के साथ नहीं, अतः असामर्थ्य है। 'अपुनर्गेयाः श्लोकाः' में 'पुनर्न गेयाः' इस अर्थ से गान के साथ नञ्पद का सम्बन्ध है, पुनःशब्दार्थ के साथ नहीं, अतः असामर्थ्य है। 'अश्राद्धभोजी ब्राह्मण' में भुजि के साथ नञ् का सम्बन्ध है। श्राद्ध में भोजननिषेधबोध होने से श्राद्ध के साथ नहीं। 'अलवणभोजी ब्राह्मणः' में भी भुजि के साथ नञ् पद का सम्बन्ध है, लवण पद के साथ नहीं। यहाँ सर्वत्र असमर्थ नञ्समास है। परन्तु गमक होने से इनका साधुत्व है। इन सभी के साधुत्व में ज्ञापक देते हैं-**सुडनपुंसकस्येति**। 'सुडनपुंसकस्य' १.१.४३ सूत्र में 'न नपुंसकस्य अनपुंसकस्य' ऐसा समास है। निषेधार्थक नञ् का प्रसज्यप्रतिषेधपक्ष में 'अनपुंसकस्य' यह असमर्थ समास होगा। कुछ असमर्थ नञ्समासों का साधुत्वज्ञापन के लिए 'अनपुंसकस्य' पद में प्रतिषेधार्थक नञ् माना जा रहा है। परन्तु यदि यहाँ नञ् को पर्युदासार्थक माना जाये तब भी दोष नहीं होगा। समर्थग्रहण करने पर 'असूर्यम्पश्यानि मुखानि'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यादि को विध्यर्थग्रहण करना चाहिये। यदि समर्थग्रहण नही करते हैं तो 'अनपुंसकस्य' आदि नियमार्थक होंगे। नियम होगा-'असूर्यम्पश्यानि मुखानि' इत्यादि असमर्थ नञ्समास गमक का ही साधुत्व होगा, अन्य का नहीं'। इस तरह नियम के द्वारा 'असूर्यम्पश्यानि मुखानि' इत्यादि असमर्थसमासों का भी साधुत्व हो जा रहा है। इस तरह गमक हेतु के द्वारा कही असमर्थो का भी समास हो जाने से प्रकृत में समर्थग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है।

अथ क्रियमाणेऽपि समर्थग्रहणे 'समर्थ'मित्युच्यते, किं समर्थं नाम? * पृथगर्थानामेकार्थीभावः समर्थवचनम् * पृथगर्थानां पदानामेकार्थीभावः 'समर्थ'मित्युच्यते। क्व पुनः पृथगर्थानि, क्वैकार्थानि? वाक्ये पृथगर्थानि-'राज्ञः पुरुष' इति। समासे पुनरेकार्थानि-'राजपुरुष' इति।

आक्षेपभाष्य—**अथ क्रियमाणेऽपीति**। आचार्य द्वारा निर्दिष्ट समर्थ पद को यदि मान भी लिया जाये तब यहाँ यह परिभाषित करना आवश्यक है कि समर्थ क्या है? यद्यपि इससे पूर्व में एकार्थीभावसामर्थ्य तथा व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य यह दो प्रकार का सामर्थ्य बताया जा चुका है, फिर भी यहाँ सामर्थ्यविचार का प्रसङ्ग है, अतः आचार्य प्रश्न करते हैं-**'किं समर्थं ने'ति**। समर्थ क्या है?

उत्तरभाष्य—**पृथगर्थानीति**। 'राज्ञः पुरुषः' इस वाक्य में राज पद राजरूप अर्थ कां वाचक है तथा पुरुष पद पुरुषरूप अर्थ का वाचक है। इस तरह यहाँ पृथक्-पृथक् पदों की पृथक्-पृथक् शक्ति है। इसे व्यपेक्षा कहते हैं। परन्तु 'राजपुरुषः' इस समस्त पद में समुदाय अर्थवान् है। पदैकदेश राज अथ वा पुरुष अनर्थक है। यहाँ सम्मिलित 'राजपुरुष' इस अखण्ड पद की अखण्ड अर्थ में शक्ति है, इसे एकार्थीभाव कहते हैं।

पृथगर्थत्व तथा एकार्थत्व यह दोनों परस्पर विरुद्ध होने से एकत्र असम्भव है, अतः प्रश्न करते हैं-**क्व पुनरिति**। कहाँ पृथगर्थत्व है तथा कहँ एकार्थत्व है?

उत्तरभाष्य—**वाक्ये पृथगर्थानीति**। वाक्य में पदों का पृथक् अर्थ होता है। जैसे-राज्ञः पुरुषः'। समास में विभिन्न पदों का एक अर्थ होता है। जैसे 'राजपुरुषः'।

किमुच्यते-'पृथगर्थानी'ति, यावता 'राज्ञः पुरुष आनीयता'मित्युक्ते 'राजपुरुष' आनीयते, 'राजपुरुष' इति च स एव? नाऽपि ब्रूमः-'अन्यस्याऽनयनं भवती'ति। कस्तर्ह्येकार्थीभावकृतो विशेषः?

आक्षेपक—**किमुच्यत इति**। 'वाक्य में पदों का पृथक्-पृथक् अर्थ होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है' ऐसा आपने क्या कह दिया? वाक्य में पदों का पृथक् अर्थ तब होता है जब एक ही विशिष्ट अर्थ की प्रतीति नहीं होती हो। वृत्ति में 'राजपुरुषः' पद से पुरुष अर्थ की प्रतीति होती है तथा राज पद से भी पुरुष अर्थ की प्रतीति होती है; अतः पुरुषमात्र अर्थ की प्रतीति होने से समासवृत्ति में एकार्थीभाव होगा। 'राज्ञः पुरुष आनीयताम्' ऐसा कहने पर आनेता राजपुरुष का ही आनयन करता है तथा 'राजपुरुष आनीयताम्' ऐसा कहने पर आनेता राजपुरुष का ही आनयन करता है। इस तरह समासवृत्ति तथा वाक्य इन दोनों में एक ही अर्थ की उपस्थिति होती है; अतः वृत्ति तथा वाक्य में अर्थभेद नहीं है।

समाधानभाष्य—**नापि ब्रूम इति**। मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ 'राज्ञः पुरुष आनीयताम्' ऐसा कहने से अन्य का आनयन होगा, एवं 'राजपुरुष आनीयताम्' ऐसा कहने से अन्य का आनयन होगा। चाहे वाक्य का प्रयोग करे, अथ वा समासवृत्ति का, आनयन एक ही का होगा।

प्रश्नभाष्य—**कस्तर्हीति**। यदि वृत्ति और वाक्य में एक ही अर्थ की उपस्थिति होनी है तथा एक ही क्रिया होनी है तब व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य की अपेक्षा एकार्थीभावसामर्थ्य में क्या भेद है?

* सुबलोपो व्यवधानं यथेष्टमन्यतरेणाभिसम्बन्धः स्वरः * **इति। सुबलोपो भवति वाक्ये-'राज्ञः पुरुष' इति। समासे पुनर्न भवति-'राजपुरुष' इति। व्यधानं च भवति वाक्ये-'राज्ञ ऋद्धस्य पुरुष' इति। समासे तु न भवति-'राजपुरुष' इति। यथेष्टमन्यतरेणाऽभिसम्बन्धो भवति वाक्ये-'राज्ञः पुरुषः, 'पुरुषो राज्ञः' इति। समासे न भवति-'राजपुरुष' इति। द्वौ स्वरौ भवतो वाक्ये-'राज्ञः पुरुष' इति। समासे पुनरेक एव-''राजपुरुष' इति।**

उत्तरभाष्य—**सुबलोप इति**। वाक्य में सुबन्तपदों का प्रयोग होता है, वहाँ सुब्लुक् नहीं होता है। जैसे 'राज्ञः पुरुषः'। परन्तु समास में समासनिमित्तक प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुब्लुक् होकर समुदाय से मात्र एक विभक्ति आती है, तथा उसी का प्रयोग होता है। जैसे 'राजपुरुषः'। जब कि वाक्य में प्रत्येक पद के उत्तर में विभक्ति का श्रवण होता है। वृत्ति तथा वाक्य में व्यवधान भी विशेष है; इसे स्पष्ट करते हैं-**वाक्यं चेति**। अर्थभेद होने पर वाक्य में पदों का व्यवधान भी देखा जाता है। 'राज्ञ ऋद्धस्य पुरुषः' में ऋद्ध पद का व्यवधान है। अर्थभेद नही होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर पदों का व्यवधान नहीं होता है। जैसे 'राज्ञः पुरुषः'। परन्तु समासवृत्ति में चाहे अर्थ हो, अथ वा अर्थभेद नही हो, किसी भी परिस्थिति में पदों का व्यवधान सोढव्य नही है। वहाँ व्यवधानशून्य 'राजपुरुषः' यही प्रयोग होगा, 'राजर्द्धिपुरुषः' ऐसा व्यवधानसहित नहीं। वृत्ति और वाक्य में अन्य भी वैशिष्ट्य हैं, इसे स्पष्ट करते हैं-**यथेष्टमिति**। वाक्य में पदों का पौर्वापर्य नियत नहीं होता है, अतः 'राज्ञः पुरुषः' 'पुरुषो राज्ञः' ऐसा यथेच्छ प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु समास में पदों का पौवापर्य नियत होता है, अतः 'राज्ञः पुरुषः' इस विग्रह में समास करने पर 'राजपुरुषः' इस तरह का राज पद का पूर्वनिपात ही प्राप्त होगा, 'पुरुषराजः' ऐसा परनिपात नहीं। समास और वाक्य में अन्य भी वैशिष्ट्य हैं, इसे स्पष्ट करते हैं-**द्वौ स्वराविति**। वाक्य में पदों को पृथक्-पृथक् स्वर होता है। 'राज्ञः पुरुषः' ऐसा दो पदों का वाक्य है। राजन् शब्द राजृ दीप्तौ धा.पा. ८२२ धातु से कनिन् प्रत्ययान्त नित् है तथा पृ प्रीतौ धा. पा. १२५९ धातु से कुषन् प्रत्ययान्त पुरुषशब्द भी नित् प्रत्ययान्त है। इस तरह वाक्य में 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ के द्वारा दोनों को पृथक्-पृथक् आद्युदात्त होगा। परन्तु समास करने पर 'राजपुरुषः' में 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्तरूप मात्र एक ही स्वर होगा।

नैत एकार्थीभावकृता विशेषाः। किं तर्हि? वाचनिकान्येतानि। आह हि भगवान्-'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' 'उपसर्जनं पूर्वम्' 'समासस्याऽन्त उदात्तो भवती'ति।

खण्डनभाष्य—**नैत इति**। एकार्थीभावकृत जो 'सुबलोपो व्यवधानं यथेष्ट-मन्यतरेणाभिसम्बन्धः स्वरः' यह चार वैशिष्ट्य गिनाया था, वस्ततुः वह एक भी वैशिष्ट्य ठीक नहीं है। उक्त चारों वैशिष्ट्यों के लिए आचार्य ने पृथक्-पृथक् सूत्रनिर्देश कर दिया है। जैसे समास में सुप् का लुक् होता है, उसके लिए 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ सूत्र पढ दिया है। इससे समास में ही सुब्लुक् होगा, वाक्य में नहीं। 'समास में उपसर्जन का ही पूर्वप्रयोग होता है' ऐसा 'उपसर्जनं पूर्वम्' २.२.३० सूत्र पढ दिया है। इससे समास में पदों का यथेच्छ पौर्वापर्य नहीं होगा, अपि तु वाक्य में ही होगा। उपसर्जन का पूर्वप्रयोग यहाँ पूर्वत्व द्वितीयान्त आदि पदों से ही लिया जायेगा। इससे मध्य में ऋद्ध आदि पदान्तरों के व्यवधान की आपत्ति नहीं होगी। समास होने पर समस्त पदों का एक ही समासान्तस्वर होता है, इस के लिए आचार्य ने 'समासस्य' ६.१.२२३ सूत्र का निर्देश किया है। इस तरह एकार्थीभावकृत जो चार वैशिष्ट्य बताया था वह आचार्य के सूत्र से ही सिद्ध हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इमे तर्ह्येकार्थीभावकृता विशेषाः- * संख्यांविशेषो व्यक्ताऽभिधान-मुपसर्जनविशेषणं चयोगः * इति। संख्याविशेषो भवति वाक्ये-'राज्ञः पुरुषः' 'राज्ञोः पुरुषः' 'राज्ञां पुरुष' इति। समासे न भवति- 'राजपुरुष' इति। अस्ति कारणं येनैतदेवं भवति। किं कारणम्? योऽसौ विशेषवाची शब्दस्तदसानिध्यात्। अङ्ग! हि भवांस्तमु-च्चारयतु गंस्यते स विशेषः। ननु च नैतेनैवं भवितव्यम्। न हि शब्दकृतेन नामार्थेन भवितव्यम्। अर्थकृतेन नाम शब्देन भवि-तव्यम्। तदेतदेवं दृश्यतामूअर्थरूपमेवैतदेवंजातीयकं येनात्र विशेषो न गम्यत इति। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्। यो हि मन्यते-'योसौ विशेषवाची शब्दस्तदसानिध्यादत्र विशेषो न गम्यते' इति, इह तस्य विशेषो गम्येत-अप्सुचरो गोषुचरो वर्षासुज इति।

उत्तरपक्षी आचार्य एकार्थीभावकृत अन्य विशेष दिखाते हैं—**संख्याविशेष इति**। वाक्य में उपसर्जनबोधक पदों का विभक्त्यन्त प्रयोग होता है, अतः विभक्त्यर्थ से युक्त स्वार्थ का प्रतिपादक होने से कभी 'राज्ञः पुरुषः' में 'राज्ञः' ऐसा एकवचनान्त होगा, 'राज्ञोः' ऐसा द्विवचनान्त होगा तथा कभी 'राज्ञाम्' ऐसा बहुवचनान्त होगा। परन्तु समास में उपसर्जनगतसंख्या अन्तर्भूत होती है, अतः समास में पद अन्तर्भूत स्वार्थ प्रधान अर्थ का ही बोध कराते हैं। जैसे-'राजपुरुषः'। यहाँ संख्याविशेष का विभाग नहीं होने से एकत्व संख्या है।

आक्षेपभाष्य—**अस्ति कारणमिति**। 'राजपुरुषः' इत्यादि समस्तस्थल में उपसर्जनगत संख्या में एकत्व आदि का बोध नहीं होने में अन्य कारण उपसर्जन-पदोत्तर विभक्ति का उच्चारण नहीं करना है। यदि यहाँ उपसर्जनपद के उत्तर में विभक्ति का उच्चारण किया जाये तो उपसर्जनगत संख्या का बोध अवश्य होगा। **ननु चेति**। आचार्य 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ सूत्र का निर्देश कर विद्यमान अर्थ में विभक्ति का लुक् नहीं कहते हैं, अपि तु अर्थ का अभाव होने से शब्द की निवृत्ति का बता रहे हैं। **अर्थकृतेनेति**। जिस अर्थ का बोध कराना हो उसके लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है। समास में उपसर्जन की संख्या का बोध कराना इष्ट नहीं है, अतः उपसर्जनपदोत्तर विभक्ति का लुक् होता है। इसको इस रूप में देखिये-**अर्थरूपम्**=अर्थस्वभाव ही ऐसा है जिससे **अत्र**=समास आदि वृत्ति में उपसर्जननिष्ठसंख्याकृत विशेष का बोध नहीं होता है। संख्याविशेष आदि युक्तवस्तु का प्रतिपादन की इच्छा होने पर वाक्य का प्रयोग किया जाता है; परन्तु इससे भिन्नस्थिति में वृत्ति होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्ति होने पर भी जहाँ उपसर्जनगत संख्या का बोध कराने की इच्छा होती है वहाँ उपसर्जनपदोत्तरविभक्ति का लुक् नहीं होता है। जैसे-'वर्षासुजः, अप्सुचरः, गोषुचरः' में समास होने पर 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' ६.३.१४ के द्वारा उपसर्जन-पदोत्तरपदोत्तर विभक्ति का अलुक् है। 'अप्सुचरः' से मछली अर्थ वाच्य है। 'गोषुचरः' कुक्कुट कहलाता है। वह एक, दो अथ वा बहुत गायों के मध्य में विचरण करता है, अतः उपसर्जनपदोत्तरसंख्या के विवक्षित होने पर विभक्ति का अलुक् है। 'वर्षासुजः' पद से इन्द्रगोप अर्थ विवक्षित है। यहाँ एक ही ऋतु अर्थ में अवयवबहुत्वापेक्ष बहुवचनान्त वर्षा शब्द है। यहाँ ऋतुबहुत्व विवक्षित नहीं है। कहीं पर समास में लिङ्गविशेष का ग्रहण होता है। जैसे-कुमारीपुत्रः। कहीं पर लिङ्गविशेष का भी परित्याग होता है। जैसे-कुक्कुटाण्डम्, मृगमांसम्। यहाँ 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' वा.६.३.३५ से पुवद्भाव है। जात्यन्तरनिवृत्तिपरक वाक्य में भी लिङ्गविशेष की अविवक्षा देखी जाती है। जैसे-'छागस्य मांसम्'।

व्यक्ताऽभिधानं भवति वाक्ये-'ब्राह्मणस्य कम्बलस्तिष्ठती'ति। समासे पुनरव्यक्तम्-'ब्रह्मणकम्बलस्तिष्ठती'ति। सन्देहो भवति-सम्बुद्धिर्वा स्यात्, षष्ठीसमासो वेति। एषोऽप्यविशेषः। भवति हि किञ्चिद् वाक्येऽव्यक्तं, तच्च समासे व्यक्तम्-'अर्द्धं पशोर्देव-दत्तस्ये'ति; पशुगुणस्य वा देवदत्तस्य यदर्द्धम्, अथ वा योऽसौ संज्ञीभूतः पशुर्नाम तस्य यदर्द्धमिति। तच्च समासे व्यक्तं भवति-'अर्द्धपशुर्देवदत्तस्ये'ति।

द्वितीय प्रयोजन का अन्वाख्यान करते हैं-**व्यक्ताऽभिधानमिति**। वाक्य में व्यक्त कथन होता है। जैसे 'ब्राह्मणस्य कम्बलस्तिष्ठति' इस वाक्य में 'ब्राह्मण-स्वामिक कम्बलकर्तृक सत्ता' का बोध संशयरहित होता है। जब कि 'ब्राह्मण-कम्बलस्तिष्ठति' इस समस्तस्थल में सन्देह होता है-'हे ब्राह्मण! कम्बलस्तिष्ठति' ऐसा सम्बोधनान्त ब्राह्मणपद है, अथ वा 'ब्राह्मणस्य कम्बलो ब्राह्मणकम्बलः' ऐसा षष्ठीतत्पुरुष है। यह व्यपेक्षा तथा एकार्थीभावकृत विशेष है।

खण्डनभाष्य—**एषोऽपीति**। व्यपेक्षा तथा एकार्थीभावकृत विशेष वाक्य में व्यक्ताऽभिधान भी नहीं है। कहीं पर ऐसा भी देखा जाता है जहाँ वाक्य में सन्देह होने से अव्यक्त कथन होता है। जैसे 'अर्द्धं पशोर्देवदत्तस्य'। यहाँ इस वाक्य में सन्देह होता है-'पशु का अर्द्ध, अथ वा देवदत्त का अर्द्ध'। परन्तु इसी का जब समस्त रूप 'अर्द्धपशुर्देवदत्तस्य' निर्देश किया जाता है तब सन्देह नहीं रहता है। पशु पद के साथ अर्द्ध पद का अन्वय स्पष्ट हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपसर्जनविशेषणं भवति वाक्ये-'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुष' इति। समासे न भवति-'राजपुरुष' इति। एषोऽप्यविशेषः। समासेऽप्युपसर्जनविशेषणं भवति। तद्यथा-'देवदत्तस्य गुरुकुलं, देवदत्तस्य गुरुपुत्रो, देवदत्तस्य दासभार्येति।

व्यपेक्षा और एकार्थीभाव में अन्य भेद भी स्पष्ट करते हैं-**उपसर्जनविशेषणमिति**। वाक्य में उपसर्जन का विशेषण होता है। जैसे 'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः' यहाँ षष्ठ्यन्त 'राज्ञः' का विशेषण 'ऋद्धस्य' सम्भव है। परन्तु समास में उपसर्जन का विशेषण नहीं होता होने से 'ऋद्धस्य राजपुरुषः' यह प्रयोग नहीं होता है।

खण्डनभाष्य—**एषोऽपीति**। व्यपेक्षा तथा एकार्थीभावकृत विशेष उपसर्जनविशेषण भी नहीं है। समास में जहाँ उपसर्जनविशेषण इष्ट है वहाँ उपसर्जनविशेषण होता है। जैसे 'देवदत्त गुरुकुलम्' 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रः' इन दोनों स्थलों में उपसर्जन गुरुपद में देवदत्तपद विशेषण है। एवं 'देवदत्तस्य दासभार्या' इस इस समस्तस्थल दासभार्याघटक उपसर्जन दास पद में देवदत्त पद विशेषण है।

'च'प्रयोगो भवति वाक्ये, स्वचयोगः स्वामिचयोगश्चेति। स्वचयोगः-'राज्ञो गौश्चाऽश्वश्च पुरुषश्चे'ति। समासे न भवति-'राज्ञो गवाऽश्वपुरुषा' इति। स्वामिचयोगः,- 'देवदत्तस्य च यज्ञदत्तस्य च विष्णुमित्रस्य च गौ'रिति। समासे न भवति-'देवदत्तयज्ञदत्त-विष्णुमित्राणां गौ'रिति।

व्यपेक्षा तथा एकार्थीभाव में अन्य वैशिष्ट्य भी देते हैं—**चप्रयोग इति**। वाक्य में 'च' पद का प्रयोग होता है। जैसे 'राज्ञो गौश्च अश्वश्च पुरुषश्च' 'च' पद का वाक्य में प्रयोग है। परन्तु समास में 'च' पद प्रयोग नहीं करके मात्र 'राज्ञो गवाश्वपुरुषाः' ऐसा प्रयोग करते हैं। वाक्य में स्वामी अर्थ का बोध कराने के लिए प्रत्येक पद से विभक्ति आती है तथा प्रत्येक पद के साथ 'च' का प्रयोग होता है। जैसे-'देवदत्तस्य च यज्ञदत्तस्य च विष्णुमित्रस्य च गौः'। परन्तु समास में स्वामी अर्थ का बोध कराने के लिए प्रत्येक पद से विभक्ति नहीं आती है तथा प्रत्येक पद के उत्तर में अथ वा समुदाय के उत्तर में कहीं पर भी 'च' पद का प्रयोग नहीं होता है। जैसे 'देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्राणां गौः'।

अथैतस्मिन्नेकार्थीभावकृते विशेषे किं स्वाभाविकं शब्दैरर्थाभिधानम्, आहोस्विद् वाचनिकम्? * स्वाभाविकमर्थानादेशनात् * **स्वा-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाविकमित्याह। कुत एतत्? 'अर्थानादेशनात्'। न ह्यर्था आदिश्यन्ते। कथं पुनरर्थानादिशन्नेवं ब्रूयात्-'नार्था आदिश्यन्ते' इति, यदाह भगवान्-'अनेकमन्यपदार्थे' 'चार्थे द्वन्द्वः' 'अपत्ये' 'रक्ते' 'निर्वृत्ते' इति?

प्रश्नभाष्य—**अथैतस्मिन्निति**। इस एकार्थीभावकृत विशेष में क्या शब्द स्वभावतः अर्थ का वाचक होता है, अथ वा वाचनिक? वाचकता शब्द में है, ऐसा मान कर प्रश्न है। इसका भाव इस प्रकार है-यदि अर्थाभिधान वाचनिक है तो एकार्थीभाव नहीं होने पर भी चाऽर्थ में द्वन्द्वविधान होने से द्वन्द्व के द्वारा ही चाऽर्थ उक्त होगा, अतः 'च' पद का प्रयोग अन्यथासिद्ध होने से एकार्थीभाव का अनुमान नहीं हो सकेगा। परन्तु स्वाभाविक होने पर 'चाऽर्थे' इत्यादि अर्थनिर्देश अनर्थक होगा।

उत्तरभाष्य—**स्वाभाविकमिति**। 'अचतुरविचतुरसुचतुर–' ५.४.७७ इत्यादि सूत्रों में अर्थ का आदेश नहीं होता है, अतः अर्थ को स्वाभाविक ही मानना चाहिये, वाचनिक नहीं। आक्षेपक-**कथं पुनरिति**। आचार्य 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ सूत्र कह रहे हैं। इसका 'सुबन्तमनेकमन्यपदार्थे वर्तते, तच्च बहुव्रीहिसंज्ञम्' यह अर्थ है। यहाँ अन्यपदार्थ में शक्त अनेक प्रथमान्त पदों का बहुव्रीहिसंज्ञक अर्थ का आदेश है। परन्तु जब लोकप्रसिद्धार्थ अनुवाद के द्वारा 'यदन्यपदाऽर्थेऽनेकं वर्त्तते तद् बहुव्रीहिसंज्ञम्' ऐसा बहुव्रीहिसंज्ञा का विधान करते हैं तब अर्थ का आदेश नहीं होता है, एवं वाक्यभेद भी नहीं होता है। इसी तरह 'चाऽर्थे द्वन्द्वः' २.२.२९, 'तस्याऽपत्यम्' ४.१.९२, 'तेन रक्तं रागात्' ४.२.१, 'तेन निर्वृत्तम्' ४.२.६८ में भी आचार्य अर्थ का आदेश कर रहे हैं; फिर आप 'अर्थानादेशनात्' यह कैसे कह सकते हैं?

नैतान्यर्थादेशनानि। स्वभावत एतेषां शब्दानामेतेष्वर्थेष्वभिनिविष्टानां निमित्तत्वेनाऽन्वाख्यानं क्रियते। तद्यथा-'कूपे हस्तदक्षिणः पन्थाः, अभ्रे चन्द्रमसं पश्ये'ति। स्वभावतस्तत्रस्थस्य पथश्चन्द्रमसश्च निमित्तत्वेनान्वाख्यानं क्रियते। एवमिहापि चार्थे यः स द्वन्द्वसमासोऽन्यपदार्थे यः स बहुव्रीहिरिति।

खण्डनभाष्य—**नैतानीति**। 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ इत्यादि में अर्थों का आदेश नहीं है, अपि तु उन-उन अर्थों में स्वभावतः शक्त पदों का समास, प्रत्यय आदि संज्ञा के प्रति शास्त्र से अन्वाख्यान किया जाता है। 'परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्' १.४.४४ से 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति 'अभिनिविशश्च'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१.४.४७ में होती है, अतः 'अभिनिविशश्च' १.४.४७ के द्वारा विकल्प से कर्मसंज्ञा का विधान होने से 'एषु अर्थेषु' में सप्तमी है। शब्द स्वभावतः अपने अर्थ में शक्त होता है, इसे पुष्ट करने के लिए दृष्टान्त देते हैं-**कूपे हस्तदक्षिण इति**। 'कुआँ से मार्ग दाहिने हाथ है' ऐसा कहने से मार्ग का आदेश नही होता है।; अपि तु हस्तदक्षिणमार्ग का ग्रहण में कूप ज्ञापक है। इसी तरह 'अभ्र=जल में चन्द्रमा को देखो' ऐसा कहने से चन्द्रमा का ज्ञापक के रूप में अभ्र का निर्देश किया जा रहास है, अभ्र से चन्द्रमा का आदेश नही। वैसे प्रकृत में भी 'जो चाऽर्थ में है उसको द्वन्द्वसमास होता है, एवं जो अन्यपदार्थ में बहुव्रीहि समास होता है'।

किं पुनः कारणमर्था नादिश्यन्ते? *तच्च लघ्वर्थम्* लघ्वर्थं ह्यर्था नादिश्यन्ते। अवश्यं ह्यनेनार्थानादिशता केन चिच्छब्देनाऽर्थनिर्देशः कर्तव्यः स्यात्। तस्य च तावत्केन कृतो येनासौ क्रियते। अथ तस्य केन कृतः, तस्य केन कृतः, तस्य केन कृत इत्यनवस्था च स्यात् *असम्भश्च* असम्भश्च खल्वप्यर्थादिशनस्य। को हि नाम समर्थो धातुप्रातिपदिकप्रत्ययनिपातानामर्थानादेष्टुम्!।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि अर्थ का आदेश नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**तच्चेति**। यहाँ लघुशब्द लाघव अर्थ में है। लघुता के लिए अर्थो का आदेश नहीं होता है। अन्यथा अर्थो का आदेश करने पर गौरव तथा अनवस्था यह दोनों दोष होगा। इसे इस प्रकार समझना चाहिये-यदि 'चाऽर्थे वर्ततेऽनेकं तच्च द्वन्द्वसंज्ञम्' इस तरह का वाक्यभेद के द्वारा अर्थो का आदेश किया जाये तो यहाँ यह जिज्ञास्य होगा कि-'कः पुनश्चाऽर्थः'। यहाँ आचार्य को 'समाहार इतरेतरयोगश्च' ऐसा कहना होगा। इसके बाद पुनः 'कः समाहारः, क इतरेतराश्रयः' इस तरह का प्रश्न प्रतिप्रश्न से अनवस्था होगी, एवं गौरव भी होगा। अर्थो का आदेश नहीं होने में अन्य हेतु भी देते हैं-**असम्भवश्चेति**। अर्थो का आदेश करने में कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है, अतः असामर्थ्य होने से धातु, प्रातिपदिक, प्रत्यय तथा निपातों के अनेक अर्थ होते हैं, अतः उनका आदेश सम्भव नहीं है, यह ग्रन्थ का तात्पर्य है। धातु आदि का कोई-कोई अर्थ ही निर्दिष्ट है; किन्तु सम्बन्धमहिम्ना अन्य का भी बोध होता है, ऐसा मानना चाहिये। जैसे 'भवति' तथा 'अनुभवति' में अर्थभेद हो गया।

न चैतन्मन्तव्यं प्रत्ययार्थे निर्दिष्टे प्रकृत्यर्थोऽनिर्दिष्ट इति। भवति हि गुणाभिधाने गुणिनः सम्प्रत्ययः। तद्यथा-'शुक्लः' 'कृष्ण' इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न चैतन्मन्तव्यमिति। प्रत्यय का अर्थनिर्देश करने पर प्रकृति का अर्थ-निर्देश नहीं हुआ, ऐसा नहीं मानना चाहिये। किसी एक का ही अर्थनिर्देश किया जाता है तथा अन्य का अर्थबोध सम्बन्धमहिम्ना होता है। गुणमात्र का कथन होने पर गुणी का भी सम्बन्धमहिम्ना कथन हो जाता है। एकत्व आदि गुणों में सु आदि प्रत्ययों का विधान किया जाता है। निराधारगुण के असम्भव होने से गुणी का आक्षेप होता है। जैसे 'शुक्लः, कृष्णः' ऐसा गुणमात्र का निर्देश करने पर गुण के साधार होने से अर्थापत्ति के द्वारा गुणी का आक्षेप होता है। इसी तरह अपत्य अर्थ में प्रत्यय का निर्देश होने पर सामर्थ्यवश प्रकृत्यर्थ अपत्यवान् का आक्षेप होता है।

विषम उपन्यासः। सामान्यशब्दा एत एवं स्युः। सामान्य-शब्दाश्च नान्तरेण विशेषं प्रकरणं वा विशेषेष्ववतिष्ठन्ते। यतस्तु खलु नियोगतो 'वृक्ष' इत्युक्ते स्वभावतः कस्मिंश्चिदेव विशेषे वृक्षशब्दो वर्त्तते, अतो मन्यामहे-'नेमे सामान्यशब्दा' इति। न चेत्सामान्यशब्दाः प्रकृतिः प्रकृत्यर्थे वर्त्तते, प्रत्ययः प्रत्ययार्थे च वर्त्तते।

खण्डनभाष्य—**विषम उपन्यस इति।** आप ने 'गुणाऽभिधाने गुणिनः सम्प्रत्ययः' यह उल्टी वात कह दी। सामान्यशब्द ही ऐसे होते हैं जहाँ गुण का कथन होने पर गुणी का भी बोध होता है। विशेष अथ वा प्रकरण के विना सामान्य-शब्द विशेष अर्थों में नहीं होते हैं। जैसे 'शुक्लः, कृष्णः' इस गुणवाची शब्द के द्वारा गुणिमात्र का आक्षेप होगा, गुणिविशेष का नहीं; वैसे 'वृक्षः, प्लक्षः' में भी एकत्वाधार द्रव्यमात्र की प्रतीति होगी। यदि लोक से अर्थ का अवधारणपक्ष नहीं मानेंगे तथा 'शास्त्र के द्वारा शब्द की प्रतिकृति का निर्देश किया जाता है' यह पक्ष नहीं मानेंगे तो 'वृक्ष' आदि द्रव्यमात्र के वाचक होंगे। इससे प्रकरण आदि का अभाव होने पर 'वृक्ष' आदि पदों से विशेष बोध नहीं हो सकेगा। जब कि 'वृक्ष' आदि के द्वारा विशेष बोध होता है, अतः न चाहता हुआ भी शब्दार्थसम्बन्धव्युत्पत्ति वृद्धव्यवहार से ही माननी चाहिये।

* अप्रवृत्तिश्च * **अप्रवृत्तिः खल्वप्यर्थादेशनस्य। बहवोऽपि हि शब्दा येषामर्था न विज्ञायन्तेजर्भरी। तुर्फरीतू। अन्तरेण खल्वपि शब्दप्रयोगं बहवोऽर्था गम्यन्ते-अक्षिनिकोचैः पाणिविहारैश्च। न खल्वपि निर्ज्ञातस्याऽर्थस्यान्वाख्याने किञ्चिदपि प्रयोजनमस्ति। यो हि ब्रूयात् पुरस्तादादित्य उदेति पश्चादस्तं गच्छति, मधुरो**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुडः, कटुकं श्रृङ्गवेरमिति, किं तेन कृतं स्यात्?

अप्रवृत्तिश्चेति। अर्थदेश में प्रवृत्ति का अभाव होने से बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान नही होता है। जैसे 'जर्भरी, तुर्फरीतू'। इन दोनों शब्दों का अर्थज्ञान नहीं होने से इनका अर्थादेश सम्भव नहीं है। यद्यपि निरुक्तकार 'जर्भरी' शब्द का 'भर्त्तारौ' तथा 'तुर्फरी' शब्द का 'हन्तारौ' अर्थ बताते हैं, तथापि सर्वजनप्रसिद्धि नहीं होने तथा प्रकृतिप्रत्यय का अन्वाख्यान सम्भव नहीं होने से 'न विज्ञायन्ते' ऐसा कहा है। एवं शब्दप्रयोग नहीं होने पर भी आँखों तथा हाथ के इसारे से बहुत सारे अर्थो का बोध करा दिया जाता है। वहाँ शब्द नहीं होने पर भी अर्थ है। जो अर्थ ज्ञात है उनका वाक्यभेद से विधान कर आदेश करने से कोई लाभ नहीं है, अतः लोक सिद्धों का ही अन्वाख्यान होता है, यही सिद्धान्त है। जो कोई कहता है-'पहले सूर्य का उदय होता है तथा वह बाद में अस्त को जाता है, गुड मधुर होता है, **श्रृङ्गवेर**=अदरख कडवा होता है' यह अर्थ लोक से सिद्ध है, अतः इनका अर्थादेश व्यर्थ है। इस भाष्य से 'पुरस्तादादित्य उदेति–' इन वाक्यों के प्रयोग की अनर्हता सूचित करते हैं। परन्तु यदि माधुर्यातिशय का बोध प्रयोजन होगा तो उक्त वाक्यों का प्रयोग करना चाहिये।

* वावचनानर्थक्यं च स्वभावसिद्धत्वात् * **वावचनानर्थक्यम्**। किं कारणम्? 'स्वभावसिद्धत्वात्'। इह द्वौ पक्षौ,-वृत्तिपक्षश्चावृत्ति-पक्षश्चेति। स्वभावतश्चैतद् भवति-वाक्यं च समासश्च। तत्र स्वाभाविके वृत्तिविषये नित्ये समासे प्राप्ते वावचनेन किमन्य-च्छक्यमभिसम्बन्द्धुमन्यदतः संज्ञायाः? न च संज्ञाया भावाऽभावा-विष्येते। तस्मान्नार्थो वावचनेन। अथ ये वृत्तिं वर्त्तयन्ति, किं त आहुः। परार्थाभिधानं वृत्तिरित्याहुः।

अर्थाभिधान में स्वाभाविकत्वपक्ष में लाघव दिखाते हैं-**वावचनानर्थक्यं चेति**। व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य में समास नहीं होगा, अपि तु वाक्य ही रहेगा, एवम् एकार्थीभाव में समास ही होगा, वाक्य नही रहेगा। भिन्नविषय होने से इन दोनों में परस्पर बाध्यबाधकभाव नही है। यहाँ वार्तिक में 'वावचन' पद से 'विभाषा' २.१.११ सूत्र निर्दिष्ट है। इस 'विभाषा' २.१.११ को व्याख्यान से महाविभाषा कहा है। इस तरह इस भाष्य से एकार्थीभावपक्ष में वाक्य नही होने से महाविभाषा व्यर्थ है, यह पक्ष आता है। यह निषेधशास्त्र तथा 'नित्यं क्रीडाजीविकयोः' २.२.१७ इत्यादि में नित्यग्रहण का भी उपलक्षण है। यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्ति=समास तथा **अवृत्ति**=वाक्य यह दो पक्ष है तथा यह दोनों स्वाभाविक है। स्वाभाविकवृत्तिविषय में नित्य समास प्राप्त होने पर 'विभाषा' २.१.११ अधिकार के द्वारा संज्ञा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं किया जा सकता है। **न च संज्ञायामिति**। यहाँ 'एकार्थीभावविषये' यह शेष है। एकार्थीभाव में 'चित्रगुः' यही होगा, 'चित्रा गावो यस्य' नहीं, एवं 'राजपुरुषः' यही होगा, 'राज्ञः पुरुषः' नहीं। एकार्थीभाव में सर्वदा एकपद, एकस्वर तथा एकविभक्ति होती है, यह ग्रन्भ का भाव है। एकार्थीभाव में भाव तथा **अभाव**=वृत्ति तथा वाक्य यह दोनों इष्ट नहीं हैं, अपि तु मात्र वृत्ति इष्ट है, अतः 'विभाषा' २.१.११ यह अधिकार व्यर्थ है। अर्थाभिधान का वाचनिकत्वपक्ष में कहते हैं-**अथ ये वृत्तिमिति**। जो लोग **वृत्तिम्**=एकार्थीभावरूपा वृत्ति को **वर्त्तयन्ति**=शास्त्र से निष्पादन करते हैं, अर्थात् जो लोग शास्त्रैकगम्य सामर्थ्य मानते हैं वे क्या कहते हैं? इसका भाव इस प्रकार है-समर्थसूत्र का विधेय एकार्थीभावकृतविशेष है। सुबन्त सुबन्त के साथ अर्थवान् होता है तथा समर्थ समाससंज्ञ होता है। इस तरह विभाषाऽधिकार आदि सभी कुछ चरितार्थ हो जाता है। वृत्ति और वृत्तिमान् में अभेदोपचार होने से समास आदि में वृत्तिव्यवहार होता है। **किं त आहुरिति**। स्वाभाविकत्व मत में एकार्थीभावरूपा वृत्ति लोक से ही सिद्ध है, अतः यहाँ कुछ भी अतिरिक्त कहने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु जो लोग एकार्थीभावरूपा वृत्ति को शास्त्रनिष्पाद्या मानते हैं वे लोग एकार्थीभाव का शास्त्रविधानयोग्य स्वरूप कैसा मानते हैं?, यह प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**परार्थाऽभिधान-मिति**। परशब्द का जो अर्थ, शब्दान्तर से उसका कथन ही वृत्ति है। जैसे 'राजपुरुषः' इस पद में राजशब्द के द्वारा वाक्यावस्था में अनुक्त पुरुषरूप अर्थ वाच्य है, इसी को वृत्ति कहते हैं।

अथ तेषामेवं ब्रुवतां किं जहत्स्वार्था वृत्तिर्भवति, आहो स्विदजहत्स्वार्था भवति? किं चातः? यदि जहत्स्वार्था वृत्तिः स्याद् 'राजपुरुषमानये'त्युक्ते पुरुषमात्रस्यानयनं प्राप्नोति, 'औपगवमानये'-त्युक्तेऽपत्यमात्रस्य। अथाऽजहत्स्वार्था वृत्तिः, उभयोर्विद्यमानस्वार्थयोर्द्वयोर्द्विवचमिति द्विवचनं प्राप्नोति।

प्रश्नभाष्य—**अथ तेषामेवमिति**। एकार्थीभाव और व्यपेक्षामत मानने वालों के मत में एकार्थीभाव में जहत्स्वार्था वृत्ति होती है, अथ वा अजहत्स्वार्था वृत्ति होती है। 'जहति पदानि स्वार्थं यस्यां सा जहत्स्वार्था'=अर्थात् जिसमें पद अपने अर्थ का परित्याग कर अन्य अर्थ का वाचक होगा उसे जहत्स्वार्था वृत्ति कहते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। जिसमें पद अपने अर्थ का परित्याग नहीं करता हुआ अन्य अर्थ का वाचक होता है उसे अजहत्स्वार्था कहते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि यह भाष्य कार्यशब्दवाद को लेकर प्रवृत्त है। नित्यशब्दवाद में पद में जैसे वर्ण अनर्थक होता है वैसे वाक्य में 'राजपुरुषः' आदि पद भी अनर्थक होते हैं। जिज्ञासु-**किं चात इति**। वृत्ति में जहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष माना जाये, अथ वा अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष माना जाये, इसमें क्या भेद है? प्राश्निक आचार्य भेद स्पष्ट करते हैं-**यदि जहत्स्वार्थेति**। यदि जहत्स्वार्था वृत्ति मानेंगे तो 'राजपुरुषः' इस समस्त पद में राजपद से भी पुरुष अर्थ की ही उपस्थिति होगी। इस तरह याव और यावक की तरह पुरुष और राजपुरुषपद पर्याय होंगे तथा 'राजपुरुषमानय' ऐसा कहने से पुरुषमात्र का आनयन होगा, एवं राजपद का ग्रहण अनर्थक होने लगेगा। एवम् 'उपगोरपत्यमौपगवः' ('तस्याऽपत्यम्' ४.१.९२ से अण् प्रत्यय) में अण्प्रत्यय से अपत्य अर्थ की उपस्थिति होगी तथा उपगु से भी अपत्य अर्थ की ही उपस्थिति होगी। यहाँ भी याव और यावक की तरह उपगु और अण् पर्याय होंगे तथा 'औपगवमानय' ऐसा कहने से अपत्यमात्र का आनयन प्राप्त होगा एवम् उपगु पद अनर्थक होने लगेगा। परन्तु अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में उक्त दोनों स्थलों में क्रमशः राज तथा उपगु पद व्यर्थ नही होता है। परन्तु अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में अन्य दोष आते हैं, उसे स्पष्ट करते हैं-**अथाऽजहत्स्वार्थेति**। अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में 'राजपुरुषः' में दोनों पद तथा 'औपगवः' में प्रकृति तथा प्रत्यय यह दोनों अर्थवान् होंगे। इस तरह उक्त स्थल में द्वित्वसंख्या का वाचक प्रत्यय प्राप्त होने से 'राजपुरुषावानय' 'औपगवावानय' इस तरह का वाक्य की आपत्ति होगी। इस तरह दोनों ही वृत्तियों में दोष है।

का पुनर्वृत्तिर्न्याय्या? जहत्स्वार्था। युक्तं पुनर्यज्जहत्स्वार्था नाम वृत्तिः स्यात्? बाढं युक्तम्। एवं हि दृश्यते लोकेपुरुषोऽयं परकर्मणि प्रवर्त्तमानः स्वं कर्म जहाति। तद्यथा-तक्षा राजकर्मणि प्रवर्त्तमानः स्वं तक्षकर्म जहाति। एवं युक्तं यद्राजा पुरुषार्थे वर्तमानः स्वमर्थं जह्यात्, उपगुश्चापत्यार्थे वर्तमानः स्वमर्थं जह्यात्। ननु चोक्तं राजपुरुषमानयेत्युक्ते पुरुषमात्रस्यानयनं प्राप्नोति, औपगवमानयेत्युक्तेऽपत्यमात्रस्येति। नैष दोषः। जहदप्यसौ स्वार्थं नात्यन्ताय जहाति, यः परार्थविरोधी स्वार्थस्तं जहाति। तद्यथा-तक्षा राजकर्मणि प्रवर्त्तमानः स्वं तक्षकर्म जहाति, न तु हिक्कितश्वसितहसितकण्डूयितानि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न चायमर्थः परार्थविरोधी विशेषणं नाम, तस्मात्तन्न हास्यति।

अन्य प्राश्निक आचार्य-का **पुनरिति**। आक्षेपक ने दोनों ही वृत्तियों में दोष दे दिया, यहाँ कौन सी वृत्ति माननी चाहिये जो सदोष नही हो?

उत्तरभाष्य—**जहत्स्वार्थेति**। जहत्स्वार्था वृत्ति माननी चाहिये। 'जहति स्वानि=तत्त्वेन प्रसिद्धानि पदानि यं स जहत्स्वः, जहत्स्वः अर्थो यस्याः सा जहत्स्वार्था'। पद जिस वृत्ति में स्वार्थ का परित्याग करता है वह जहत्स्वार्था वृत्ति ही यहाँ ली जायेगी। जिज्ञासु-**युक्तं पुनरिति**। जैसे अग्नि अपनी उष्णता का परित्याग नही करता है वैसे प्राप्त अर्थ का त्याग नही करने पर भी क्या यहाँ जहत्स्वार्था वृत्ति सम्भव है?

समाधानभाष्य—**बाढमिति**। लोक में ऐसा देखा जाता है कि कोई पुरुष राजकर्म में प्रवृत्त होकर अपना कर्म का परित्याग कर देता है। जैसे **तक्षा**=बढई राजकर्म दौत्य आदि में प्रवृत्त होकर **स्वकर्म**=तक्षणकर्म का परित्याग कर देता है, अतः उचित यही है कि 'राजपुरुषः' में राजपद जब पुरुष अर्थ में शक्त होगा तब **स्वार्थ**=राजरूप अर्थ का परित्याग करदे, एवम् अपत्य अर्थ में शक्त होने पर उपगुपद भी स्वार्थ का परित्याग करदे। इससे पूर्व में जहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में जो दोष दिया था-'राजपुरुषमानय' ऐसा कहने से पुरुषमात्र का आनयन प्राप्त होगा तथा 'औपगवमानय' ऐसा कहने से अपत्यमात्र का आनयन प्राप्त होगा; वस्तुतः यहाँ यह दोष नही रहेगा। वह इस तरह कि जहत्स्वार्थावृत्ति में पद उन्ही अर्थो का परित्याग करता है जो विरोधी होते हैं। जैसे राजकर्म दौत्य आदि में प्रवृत्त तक्षा दौत्यकर्म का विरोधी कर्म तक्षण का परित्याग करेगा, हिचकी, स्वास, हसना तथा खुजलाना इन अविरुद्ध कर्मो का नहीं। हिचकी आदि कर्म अर्थ परार्थविरोधी नही है, अतः उसका परित्याग नहीं करता है।

अथवाऽन्वयाद्विशेषणं भविष्यति। तद्यथा-'घृतघटः, तैलघट' इति। निषिक्ते चाऽपि घृते तैले वाऽन्वयाद्विशेषणं भवति-अयं घृतघटोऽयं तैलघट इति। विषम उपन्यासः। भवति हि तत्र या च यावती चार्थमात्रा। अङ्ग! हि भवानग्नौ निष्टप्य घृतघटं तृण-कूर्चेन प्रक्षालयतु न गंस्यते स विशेषः। यथा तर्हि मल्लिकापुटः, चम्पकपुट इति। निष्कीर्णास्वपि सुमनःस्वन्वयाद्विशेषणं भवति-अयं मल्लिकापुटः, अयं चम्पकपुट इति।

अन्य प्रकार से भी इसे स्पष्ट करते हैं—**अथवेति**।अथवा 'राजपुरुषः' इस वाक्य में जहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में अन्वय के द्वारा राज पद इतर का व्यावर्तक होगा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा पुरुषरूप अर्थ में स्वार्थनिमित्त राजसम्बन्धरूप विशेष का पुरुष पद से उपस्थिति-विषय करके स्वजन्य-उपस्थितिविषयत्व का परित्याग कर देगा। इस तरह राज-शब्द से राजशब्दार्थ का बोध नहीं होने पर भी राजशब्द का अन्वयमात्र से वाक्य में शब्द के द्वारा यादृशविशेषणविशिष्ट पुरुष की प्रतीति होती है प्रकृत में भी अनुमान से राजपद के द्वारा तादृशी उपस्थिति ही होगी, एवं पुरुषपद का उसी प्रकार से शक्तिग्रह होगा। इसे उदाहरण से पुष्ट करते हैं-**घृतघट इति**। जैसे घृत अथ वा तैल से निषिक्त घट में घृत अथ वा तैल नहीं रहने पर भी घृत और तैल का अन्वय होता है तथा उसमें 'अयं घृतघटः' 'अयं तैलघटः' प्रयोग होता है, वैसे ही 'राजपुरुषः' में राजपद के द्वारा स्वार्थ का परित्याग करने पर भी वाक्य में राजपदकृत पुरुषगतविशेष अवश्य रहेगा, उसकी निवृत्ति नही होगी। इस तरह 'राजपुरुषः' इत्यादि में राजादिपदजन्य उपस्थितिविषयत्व नहीं होने से जहत्स्वार्थत्व है। जैसे पुष्पों का अभाव होने पर भी गन्धमात्र से पूर्ववर्तिनीपुष्पसत्ता का अनुमान कर 'अयं मल्लिकापुटः' इत्यादि व्यवहार होता है वैसे वृत्ति में राजपद का अर्थ नहीं रहने पर भी 'राज्ञः पुरुषः' इस वाक्य में दृष्ट अर्थवान् राजशब्द की वर्णानुपूर्वी सत्तामात्र से जैसे वाक्य में 'राज-सम्बन्धवान् पुरुष' की प्रतीति होती है, वैसे 'राजपुरुषः' इस वृत्ति में भी पुरुषपद के द्वारा 'राजसम्बन्धवान् पुरुषः' की ही प्रतीति होगी। तत्सादृश्यमात्र से अर्थवत्त्व की प्रतीति के द्वारा आत्त्व आदि भी हो जायेंगे, अतः दोष नहीं है।

आक्षेपभाष्य—**विषम इति**। 'अन्वयाद्विशेषणं भविष्यति' यह आपने उल्टी वात कह दी। घृतघट और तैलघट का जो दृष्टान्त दिया, वह भी ठीक नहीं है। घृतघट और तैलघट को आग से तपा कर **तृणकूर्च**=उबछन से माज दीजिये; उसमें घृत अथ वा तैल का तनिक भी गन्ध नहीं रहेगा। उत्तरपक्षी आचार्य अपना दृष्टान्त पृष्ट करते हैं-**यथा तर्हीति**। मल्लिकापुष्प एवं चपकपुष्प का दोना से पुष्प हटा देने पर पुष्प का गन्ध आता है, वैसे वृत्ति में 'राजपुरुषः' में जहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में राजपद के द्वारा स्वार्थ का परित्याग करने पर भी विशेषणवश राजपद की प्रतीति बनी रहेगी।

अथ वा समर्थाधिकारोऽयं वृत्तौ क्रियते। सामर्थ्यं नाम भेदः, संसर्गो वा। अपर आह-भेदसंसर्गौ वा सामर्थ्यमिति। कः पुनर्भेदः संसर्गो वा? इह 'राज्ञ' इत्युक्ते सर्वं स्वं प्रसक्तम्, 'पुरुष' इत्युक्ते सर्वः स्वामी प्रसक्तः। इहेदानीं 'राजपुरुषमानये'त्युक्ते राजा पुरुषं निवर्तयत्यन्येभ्यः स्वामिभ्यः, पुरुषोऽपि राजानमन्येभ्यः स्वेभ्यः। एवमेतस्मिन्नुभयतो व्यवच्छिन्ने यदि स्वार्थं जहाति कामं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहातु, न जातु चित्पुरुषमात्रस्यानयनं भविष्यति।

जहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में उपसर्जन राज आदि पदों को अन्य प्रकार से भी उपस्थापक बताते हैं-**अथ वेति**। अथ वा समभिव्याहृतपदार्थ-निरूपितसंसर्ग तथा तादृशसंसर्गातिरिक्तभेद, एतदुभयवान् जो अर्थ, तादृश अर्थ का समास से बोध होता है। तादृश पुरुष आदि उपथिति में ही राज आदि पद तात्पर्य का ग्राहक होता है। वृत्ति में समर्थाधिकार किया जा रहा है। भेद अथ वा संसर्ग सामर्थ्य है। यदि वृत्ति में भेद अथ वा संसर्ग नहीं होगा तो सामर्थ्य भी नहीं होगा। **संसर्ग**-अविनाभाव होने से भेद के द्वारा अनुमीयमान संसर्ग सामर्थ्य है। अथ वा **भेद**=अविनाभावी अनुमेय भेद संसर्ग है। अथ वा भेद और संसर्ग इन दोनों का एक ही साथ आश्रयण कर सामर्थ्य होगा। इतर आचार्य सामर्थ्य स्पष्ट करते हैं-**अपर आहेति**। अथ वा भेद और संसर्ग यह दोनों सम्मिलित सामर्थ्य हैं। भेद और संसर्ग में पार्थक्य स्पष्ट करते हैं-**इह राज्ञ इति**। 'राज्ञः पुरुषः' ऐसा कहने पर राजनूपदोत्तर षष्ठी के द्वारा सम्बन्धिमात्र का आक्षेप होता है। एवं पुरुष का सर्वविध पारतन्त्र्य उपस्थित होता है। परन्तु जब 'राजपुरुषः' ऐसा समस्तपद का निर्देश करते हैं तब राजनूपद अन्य स्वामी से पुरुष की निवृत्ति करा देता है; एवं पुरुष भी अन्य स्वामी से अतिरिक्त राजा की निवृत्ति करा देता है। इस तरह वृत्ति में दोनों ही भेदक हैं; जब कि वाक्य में कोई भी भेदक नहीं है। जब अन्य प्रमाण से पुरुष का पारतन्त्र्य प्रतिपन्न होगा तब उसी की अपेक्षा कर 'पुरुष इत्युक्ते सर्वः स्वामी प्रसक्तः' ऐसा कहा है। अन्यथा 'पुरुषः' ऐसा कहने पर स्वामिमात्र का आक्षेप न होकर 'अस्ति' का बोध होने लगेगा। भेदपक्ष में राजा अन्य स्वामी की अपेक्षा से पुरुष की निवृत्ति करा कर स्वार्थ का परित्याग करता है। परन्तु पुरुष स्वार्थ का परित्याग न करता हुआ भी अन्य स्व की अपेक्षा स्वार्थ राजा की निवृत्ति कराता है। इस तरह कृतकार्य की निवृत्ति रहेगी। यदि अकृतकार्य की निवृत्ति करेंगे तो वृत्ति ही नहीं होगी। इसी तरह संसर्गपक्ष में भी योजना करनी चाहिये। इस तरह दोनों के परस्पर व्यवच्छिन्न होने पर यदि राजपद स्वार्थ का परित्याग करता है, तो करे; उससे 'राजपुरुषमानय' ऐसा कहने से पुरुषमात्र का आनयन नहीं होगा, अपि तु राजविशिष्टपुरुष का ही आनयन होगा। वृत्तिस्थल में पुरुषपद से ही राजपुरुष अर्थ की उपस्थिति होगी एवं व्यर्थ राजपद तात्पर्य का ग्राह होगा।

अथ वा पुनरस्त्वजहत्स्वार्था वृत्तिः। युक्तं पुनरिदं यदजहत्स्वार्था नाम वृत्तिः स्यात्? बाढं युक्तम्। एवं हि दृश्यते लोके,-भिक्षुकोऽयं द्वितीयां भिक्षां समासाद्य पूर्वां न जहाति, संचयायैव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रवर्तते । ननु चोक्तम्-'उभयोर्विद्यमानस्वार्थयोर्द्वयोर्द्विवचमिति द्विवचनं प्राप्नोती'ति। कस्याः पुनर्द्विवचनं प्राप्नोति? प्रथामायाः । न प्रथमा समर्थो राजा। षष्ठ्यास्तर्हि प्राप्नोति। न षष्ठीसमर्थः पुरुषः। प्रथामाया एव तर्हि प्राप्नोति। ननु चोक्तम्-'न प्रथमा समर्थो राजे'ति। अभिहितः सोऽर्थोऽन्तर्भूतः प्रातिपदिकार्थः सम्पन्नः। तत्र प्रातिपदिकार्थे प्रथमेति प्रथमाया एव द्विवचनं प्राप्नोति।

अजहत्स्वार्था का भी समर्थन करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा 'राजपुरुषः' इस वृत्ति में राजपद में अजहत्स्वार्था वृत्ति ही मानिये।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**युक्तं पुनरिति**। क्या यह सम्भव है कि 'राजपुरुषः' इस वृत्तिघटक राजपद में अजहत्स्वार्था वृत्ति हो?

उत्तरभाष्य—**बाढमिति**। वृत्ति में अजहत्स्वार्था सम्भव है। इसे लौकिकदृष्टान्त से पुष्ट करते हैं-**एवं हीति**। लोक में ऐसा देखा जाता है कि भिक्षुक द्वितीयभिक्षा प्राप्त करने पर भी प्रथमभिक्षा का परित्याग नहीं करता है, अपि तु प्रथमभिक्षा के साथ-साथ संचय में ही प्रवृत्त होता है; वैसे वृत्ति में अन्य अर्थ को प्राप्त राज आदि पद भी प्रथम अर्थ का परित्याग नही करेंगे। अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में पूर्व में प्राप्त आक्षेपों का निवारण के लिए कहते हैं-**ननु चोक्तमिति**। अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में दोनों अर्थों के विद्यमान रहने पर द्वित्व की आपत्ति दी थी; यहाँ विचार करना चाहिये कि किसको द्वित्व होगा? यदि प्रथमा का द्विवचन कर 'राजपुरुषौ' ऐसा पद कहेंगे तो राजपद के प्रथमासमर्थ नहीं होने पर सम्बन्ध का बोध नही हो सकेगा, जिससे गुणप्रधानभाव की प्रतीति नहीं हो सकेगी। यदि यहाँ षष्ठी का द्विवचन 'ओस्'प्रत्यय का प्रयोग कर 'राजपुरुषयोः' ऐसा निर्देश किया जाये तो दोनों पदों के समकक्ष होने से अन्य सम्बन्धी की अपेक्षा सम्बन्ध का बोध नही हो सकेगा। उक्त वृत्ति में पुरुष षष्ठीसमर्थ नही है। आन्य आचार्य- **प्रथमाया एवेति**। अजहत्स्वार्थावृत्तिपक्ष में राजपुरुषपद के उत्तर में प्रथमाद्विवचन 'औ' प्रत्यय ही मानिये। यहाँ प्रथमाद्विवचन 'औ' प्रत्यय मानने में 'न प्रथमासमर्थो राजा' यह दोष दिया था, वह यहाँ नही रहेगा। वह इस तरह कि अन्य वृत्ति से कोई भी अर्थ उक्त होने पर प्रतिपदिकार्थ सम्पन्न हो जाता है, तथा उससे परमें प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमाविभक्ति होती है। 'राजपुरुषः' इस पद मे समासवृत्ति के द्वारा एकार्थीभावमहिम्ना स्वस्वामिभावसम्बन्ध उक्त होने पर राजपद प्रातिपदिकार्थ सम्पन्न हो गया; अतः उससे पर में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ से प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमाविभक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आयेगी। प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विहित होने से 'राजपुरुषः' इस समासवृत्ति में प्रथमाद्विवचन 'औ' प्रत्यय ही प्राप्त होगा।

*** सङ्घातस्यैकार्थ्यान्नावयवसङ्ख्यातः सुबुत्पत्तिः * सङ्घातस्यैकत्वमर्थः। तेनावयव-सङ्ख्यातः सुबुत्पत्तिर्न भविष्यति * परस्परव्यपेक्षां सामर्थ्यमेके * परस्परव्यपेक्षां सामर्थ्यमेक इच्छन्ति। का पुनः शब्दयोर्व्यपेक्षा? न ब्रूमः शब्दयोरिति। किं तर्हि? अर्थयोरिति। इह 'राज्ञः पुरुष' इत्युक्ते राजा पुरुषमपेक्षतेममायमिति, पुरुषोऽपि राजानमपेक्षते,अहमस्येति। तयोरभिसम्बन्धस्य षष्ठी वाचिका भवति। तथा कष्टं श्रित इति क्रियाकारकयोरभिसम्बन्धस्य द्वितीया वाचिका भवति।**

उत्तरपक्षी आचार्य—**सङ्घातस्येति**। वृत्ति में 'राजपुरुषः' यह **संघात**=समुदाय है। समुदाय में एकत्वसंख्या ही रहती है; अतः प्रथमा-एकवचन 'सु'प्रत्यय ही प्राप्त होगा, गुणभूत-अवयव संख्या का आश्रयण कर द्विवचन नहीं। एकार्थीभाव के भी व्यपेक्षापूर्वकत्व होने से यहाँ अन्य पक्ष कैसे है, इसे कहते हैं-**परस्पर-व्यपेक्षामिति**। एकार्थीभाववादी भी 'राजपुरुषः' इन दोनों पदों में परस्परबोध का अजनकत्वमूलक आकाङ्क्षा रहने पर ही तादृश आकाङ्क्षा के बल पर सम्बन्धांश में विशिष्टशक्ति की कल्पना करते हैं; परन्तु व्यपेक्षावादियों के मत में आकाङ्क्षा के द्वारा ही सम्बन्धांश का बोध होता है, व्यपेक्षावादियों के मत में विशिष्ट-शक्ति की कल्पना नहीं करनी पडती है; जब कि एकार्थीभाववादियों के मत में विशिष्टशक्ति की कल्पना करनी पडती है, अतः वृत्तिपक्ष में व्यपेक्षावादियों के मत में व्यपेक्षासामर्थ्य ही होगा, एकार्थीभाव नहीं।

प्रश्नभाष्य—**का पुनरिति**। दो शब्दों की परस्परव्यपेक्षा क्या है? अपने-अपने अर्थ के प्रति शब्द गौड होता है, तथा अर्थ प्रधान होता है। गौड प्रधान की अपेक्षा करता है, अप्रधान की नहीं; फिर प्रधान अर्थ के प्रति अप्रधान दो शब्दों की परस्परव्यपेक्षा सम्भव नहीं है, ऐसा मान कर प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**न ब्रूम इति**। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि प्रधान अर्थ के प्रति विशेषण दो शब्दों की आपस में व्यपेक्षा होती है; अपि तु दो अर्थों की परस्परव्यपेक्षा होती है। अर्थ ज्ञात होने पर 'कोऽस्याऽन्वयी अर्थः' इत्याकारक आकाङ्क्षा प्रमाता को होती है। प्रमातृगत व्यपेक्षा को अर्थ में आरोप कर शब्दों का संस्कार किया जाता है; इसे स्पष्ट करते हैं-**इह राज्ञः पुरुष इति**। 'राज्ञः पुरुषः' ऐसा कहने पर राजा पुरुष की अपेक्षा करता है-'यह मेरा सेवक है'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ दान आदि क्रियानिमित्त राजा का स्वामित्व उपपन्न होता है। एवं पुरुष भी राजा की अपेक्षा करता है-'मैं इस राजा का सेवक हूँ'। यहाँ पुरुष का वेतन आदि निमित्त स्वत्वोपपाद है। **तयोः**=राजा और पुरुष के अभिसम्बन्ध की वाचिका राजन्पदोत्तर षष्ठी विभक्ति है। परन्तु समास में वाक्य के तुल्य आकाङ्क्षा के होने से स्वस्वामिभाव का बोध आकाङ्क्षा के द्वारा ही होगा। विरुद्धराहित्य में भी भेदसम्बन्ध का बोध होता है यह ग्रन्थ का भाव है। विशेषणभावांश में वाक्यन्याय के द्वारा समास की भी शक्ति है। वहाँ शक्ति विशिष्ट उपस्थिति की नियामिका नहीं होगी। इस पक्ष में आकाङ्क्षा के द्वारा राजरूप अर्थ तथा पुरुषरूप अर्थ का सम्बन्ध में 'इदं शक्तम्' इस तरह का शक्तिग्रह होने से विशिष्ट उपस्थिति नहीं होगी। यह भी वृत्तिवर्त्तनवादी एकदेशी का ही पक्ष है, नित्यशब्दवादी का नहीं। परन्तु वाक्य में यह सम्बन्ध विभक्ति-वाच्य होगा। अनवस्थादोष होने से सम्बन्ध के सम्बन्ध को आकाङ्क्षालभ्य नहीं कहा जा सकता है। 'कष्टं श्रितः' इस वाक्य में क्रिया और कारक के सम्बन्ध का वाचक द्वितीया विभक्ति है। यहाँ कारकशब्द से शक्ति का आधार द्रव्य कहा जा रहा है। क्रिया और द्रव्य का अभिसम्बन्धनिमित्त होने से यहाँ शक्ति ही अभिसम्बन्ध है, अतः कर्मशक्ति का वाचक द्वितीया है, यह अर्थ आया। अथ वा यहाँ कारकशब्द के द्वारा शक्ति वाच्य है; अतः शक्ति का वाचक द्वितीया विभक्ति होगी। सामर्थ्यवश क्रियाकारकसम्बन्ध का भी बोध होने से 'क्रियाकारकसम्बन्ध का वाचक द्वितीया है' ऐसा कहा है।

अथ यद्येवैकार्थीभावः सामर्थ्यमथापि व्यपेक्षा सामर्थ्यम्, किं गतमेतदियता सूत्रेण, आहो स्विदन्यतरस्मिन् पक्षे भूयः सूत्रं कर्तव्यम्? गतमित्याह। कथम्? समोऽयमर्थशब्देन सह समासः। सं चोपसर्गः। उपसर्गाश्च पुनरेवमात्मकाः-'यत्र कश्चित् क्रियावाची शब्दः प्रयुज्यते तत्र क्रियाविशेषमाहुः'। न चेह कश्चित् क्रिया-वाची शब्दः प्रयुज्यते येन समः सामर्थ्यं स्यात्। तत्र प्रयोगादेतद् गन्तव्यं-'नूनमत्र कश्चित् प्रयोगार्हः शब्दो न प्रयुज्यते येन समः सामर्थ्य'मिति। तद्यथा धूमं दृष्ट्वा-'अग्निरत्रे'ति गम्यते, त्रि-विष्टब्धकं च दृष्ट्वा 'परिव्राजक' इति। कः पुनरसौ प्रयोगार्हः शब्दो न प्रयुज्यते? उच्यते। सङ्गतार्थं समर्थं, संसृष्टार्थं समर्थं, संप्रेक्षितार्थं समर्थं, सम्बद्धार्थं समर्थमिति। तद्यथा एकार्थीभावः सामर्थ्यन्तदेवं विग्रहः करिष्यते-सङ्गतार्थः समर्थः, संसृष्टार्थः समर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति। तद्यथा-'संगतं घृतं, संगतं तैलमित्युच्यते, एकीभूतमिति गम्यते। संसृष्टार्थः समर्थ इति। तद्यथा-'संसृष्टोऽग्नि'-रितित्युच्यते, एकीभूत इति गम्यते।

प्रश्नभाष्य—अथ यद्येवमिति। यहाँ एकार्थीभावसामर्थ्य मानें अथवा व्यपेक्षासामर्थ्य मानें, क्या 'समर्थः पदविधिः' इस सूत्र से यहाँ दोनों आकाङ्क्षा गतार्थ हो जायेगी; अथ वा किसी एक के ही गतार्थ होने से दूसरी आकाङ्क्षा के लिए अतिरिक्तसूत्र निर्देश करना पडेगा? यदि किसी सूत्र से द्विविधसामर्थ्य का बोध हो सकेगा तभी युक्तायुक्तविचार उचित है, अन्यथा नहीं, ऐसा मान कर प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—गतमित्याहेति। प्रकृतसूत्र से ही उभयविध आकाङ्क्षा गतार्थ हो जायेगी। 'समर्थः पदविधिः' सूत्र में समर्थपदघटक सम् उपसर्ग सहार्थ में है; अतः 'अर्थेन सह समर्थः' ऐसा समास होगा। यहाँ सम् उपसर्ग है। उपसर्ग का यह स्वभाव होता है कि वह क्रियावाची शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर क्रिया का वैशिष्ट्य बताते हैं। समर्थपद में कोई क्रियावाची शब्द प्रयुक्त नहीं है जिसके साथ सम् उपसर्ग का सामर्थ्य हो सके। इससे सम् उपसर्ग का अर्थशब्द के साथ सामर्थ्य उपपन्न नहीं होता है; अतः सम् उपसर्ग की उपादानयोग्या क्रिया का आक्षेप किया जाता है। जैसे धूम देख कर अग्नि का अनुमान होता है, एवं त्रिविष्टब्धक=दण्ड, कमण्डलु और गैरिक वस्त्र देख कर परिव्राजक का अनुमान होता है, वैसे सम् उपसर्ग से क्रिया का अनुमान हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—कः पुनरिति। यहाँ कौन सी क्रिया अप्रयुक्त है जिसका आक्षेप कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—उच्यत इति। सङ्गत अर्थ समर्थ है। संसृष्ट अर्थ समर्थ है। सम्प्रेक्षित अर्थ समर्थ है। सम्बद्ध अर्थ समर्थ है। इस तरह यहाँ गत, सृष्ट, इक्षित तथा बद्ध का अप्रयोग है जिसका आक्षेप करना चाहिये। पक्ष में सङ्गतार्थ और संसृष्टार्थ यह तुल्य अर्थ का निर्देश है। सम्प्रेक्षितार्थ तथा सम्बद्धार्थ यह पर्यायनिर्देश है। 'सङ्गतं घृतं, सङ्गतं तैलम्' ऐसा कहने से एकीभूत अर्थ का बोध होता है। एवं संसृष्टपद का भी एकीभूत अर्थ है। जैसे-संसृष्टोऽग्निः'।

यदा व्यपेक्षा सामर्थ्यन्तदैवं विग्रहः करिष्यते-सम्प्रेक्षितार्थः समर्थः, सम्बद्धार्थः समर्थ इति। कः पुनरिह संबध्नात्यर्थः? व्यतिसङ्गः। संबद्ध इत्युच्यते यो रज्ज्वाऽयसा वा कीले व्यतिषक्तो भवति। नावश्यं बध्नातिर्व्यतिषङ्ग एव वर्तते। किं तर्हि? अहानावपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्तर्तते। तद्यथा सम्बद्धाविमौ दम्यावित्युच्येते यावन्योन्यं न जहीतः। अथ वा भवति चैवंजातीयकेषु बध्नातिर्वर्त्तते। तथा-'अस्ति नो गर्गैः सह सम्बन्धः' 'अस्ति नो वत्सैः सह सम्बन्धः' इति। संयोग इत्यर्थः। अथैतस्मिन् व्यपेक्षायां सामर्थ्ये योऽसावेकार्थीभावकृतो विशेषः स वक्तव्यः।

जब व्यपेक्षारूप सामर्थ्य लेना होगा तब समर्थपद का 'सम्प्रेक्षितार्थः समर्थः, सम्बद्धार्थः समर्थः' ऐसा विग्रह करेंगे। व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्यपक्ष में सम् उपसर्ग से प्रेक्षित तथा सम्बद्ध क्रिया का आक्षेप होगा।

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिहेति**। यहाँ व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य में सम्बद्ध अर्थ क्या है?

उत्तरभाष्य—**व्यतिसङ्ग इति**। रज्जु आदि निमित्तसंश्लेष व्यतिषङ्ग है, वही यहाँ सम्बद्ध अर्थ है। सम्बद्ध ऐसा कहा जा रहा है। जो रस्सी अथ वा लोहे के तार से कील में व्यतिषक्त होता है, उसे सम्बद्ध कहते हैं। आक्षेपक-**नाऽवश्यमिति**। बन्ध धातु का प्रयोग व्यतिषङ्ग अर्थ में ही हो, यह कोई आवश्यक नहीं है, अपि तु हानि का अभाव=अहानि अर्थ में भी बन्ध धातु का प्रयोग देखा जाता है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। जो परस्पर एक दूसरे का परित्याग नहीं कर सकते हैं उन अभिन्नोपस्थितिविषय के लिए 'सम्बद्धाविमौ दम्यौ' ऐसा कहा जा रहा है। अथ वा **एवंजातीयकेषु**= व्यपेक्षायुक्त अर्थों में ही बन्ध धातु का प्रयोग होता है। जैसे 'गार्ग्यो के साथ हमारा सम्बन्ध है' 'वात्स्यों के साथ हमारा सम्बन्ध है' ऐसा कहने से यहाँ बन्ध धातु से संयोग अर्थ उपस्थित होता है। आक्षेपक-**अथैतस्मिन्निति**। इस व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य में जो एकार्थीभावकृतविशेष है, उसे कहना चाहिये। यदि समासवृत्ति में एकार्थीभाव नहीं मानेंगे तब वाक्य की तरह संख्या, विशेष, उपसर्जन और विशेषण आदि का प्रसङ्ग होने से उसका अभाव वचन से कहना होगा एवं समानार्थ वाक्य की निवृत्ति के लिए 'वा'वचन करना होगा। इस तरह शब्द का स्वाभाविकरूप कभी नित्यदर्शनपक्ष का आश्रयण कर अनुमान किया जायेगा, तथा कभी अबुधबोध के लिए कार्यदर्शनपक्ष का आश्रयण कर अनुमान किया जायेगा। परन्तु कार्यशब्दपक्ष में बहुत सारी वार्ता तथा धर्मों का प्रतिपादन करने से गौरव होगा। 'वाक्य में वृत्ति निष्पन्न होती है' ऐसा मानने वालों के मत में वाक्य में श्रूयमाण क्रान्त आदि पदों का शास्त्र के विना लोप असम्भव होगा, एवं वीप्सा आदि का बोध भी असम्भव होगा;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः उन-उन शास्त्रों की कल्पना करनी पडेगी। यही गौरव कार्यशब्दवादी के पक्ष में है। जैसे 'निष्कौशाम्बिः' में क्रान्त; 'गोरथः' में युक्त; 'घृतघटः' में पूर्ण; 'गुडधानाः' में मिश्र; 'केशचूडः' में संघात; 'सुवर्णालङ्कारः' में विकार तथा 'द्विदशाः' में सुच् प्रत्यय का लोप; एवं 'सप्तपर्णः' में वीप्सा तथा 'गौरखरः' में जातिविशेषाऽभिधायित्व का प्रतिपादन वचन से करना होगा। परन्तु नित्यदर्शनपक्ष में उपर्युक्त सभी विशेष एकार्थीभावकृत है; अतः अतिरिक्तवचन कुछ भी नहीं पढे जाने से गौरव नहीं है।

* तत्र नानाकारकान्निघातयुष्मदस्मदादेशप्रतिषेधः * तत्रैतस्मिन् व्यपेक्षायां सामर्थ्ये सति नानाकारकान्निघातयुष्मदस्मदादेशाः प्राप्नुवन्ति तेषां प्रतिषेधो वक्तव्यः। निघात-'अयं दण्डो हरानेन। अस्ति दण्डस्य हरतेश्च व्यपेक्षेति कृत्वा निघातः प्राप्नोति। युष्मदस्मदादेशाः-ओदनं पच तव भविष्यति। ओदनं पच मम भविष्यति। अत्स्योदनस्य युष्मदस्मदोश्च व्यपेक्षेति कृत्वा वाम्नावादयः प्राप्नुवन्ति, तेषां प्रतिषेधो वक्तव्यः। किमुच्यते-'नानाकारका'दिति, यदा तेनैवासज्य ह्रियते? नापि ब्रूमः-अन्येनासज्य ह्रियत इति। किं तर्हि? शब्दप्रमाणका वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्। शब्दश्चेह सत्तामाह-'अयं दण्डः'। अस्तीति गम्यते। स दण्डः कर्त्ता भूत्वाऽन्येन शब्देनाऽभिसम्बध्यमानः करणं सम्पद्यते। तद्यथा-कश्चित् कञ्चित् पृच्छति-'क्व देवदत्त' इति? स तस्मायाचष्टे-'असौ वृक्षे' इति। कतरस्मिन्? 'यस्तिष्ठती'ति। स वृक्षोऽधिकरणं भूत्वाऽन्येन शब्देनाऽभिसम्बध्यमानः कर्ता सम्पद्यते।

इस तरह व्यपेक्षासामर्थ्य में दोष बता कर अब जो सर्वथा दोष है उसे बताते हैं-तत्र नानाकारकादिति। तत्र=इन दोनों पक्षों में व्यपेक्षासामर्थ्य मानने पर भिन्नक्रिया के नानाकारक होने पर निघात तथा युष्मद्, अस्मद् आदेश प्राप्त हो रहा है; उनका निषेध कहना चाहिये। यहाँ नानाशब्द पृथग्भाववाची है; अतः भिन्नक्रिया का जो कारक वह नानाकारक है। व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य में 'अयं दण्डो हराऽनेन' इस वाक्य में तिङन्त 'हर'क्रिया की व्यपेक्षा होने से 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ के द्वारा अतिङन्त 'दण्डः' से पद में तिङन्त 'हर' पद को निघात=सर्वानुदात्त प्राप्त है; उसका निषेध कहना चाहिये। 'ओदनं पच तव भविष्यति' 'ओदनं पच मम भविष्यति' इस वाक्य में ओदन, युष्मद् और अस्मद् शब्द की व्यपेक्षा है; अतः यहाँ 'तेमयावेकवचनस्य' ८.१.२२ की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्ति होने से युष्मद् को 'ते' और अस्मद् को 'मे' आदेश प्राप्त हो रहा है; उसका प्रतिषेध कहना चाहिये। अपदादि में ही उक्त 'ते' और 'मे' आदेश विहित हैं। उक्त स्थल में उक्त रीति से अपदादित्व होने से आदेश प्राप्त हो रहा है, जिसका प्रतिषेध कहना होगा। अन्य आचार्य-**किमुच्यत इति**। आप 'नानाकारकत्वात्' ऐसा कह कर 'अयं दण्डो हरानेन' में निघात की प्राप्ति दिखा रहे हैं। यदि इस वाक्य में हरणक्रिया के प्रति दण्ड का कारकत्व मान लिया जाये तब नानाकारकत्व नहीं रहेगा। 'अनेन' इस पद के द्वारा करणत्वरूप से दण्ड वाच्य है तथा उसी से हरणक्रिया सम्पन्न हो रही है। इस तरह नानाकारकत्व नहीं है।

उत्तरभाष्य—**नापि ब्रूम इति**। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि 'अयं दण्डो हरानेन' इस वाक्य में हरणक्रिया के प्रति दण्ड से अन्य करण है; हरणक्रिया में यहाँ दण्ड ही करण है। परन्तु हम वैयाकरण शब्द को प्रमाण मानते हैं। जो शब्द जिस अर्थ का वाचक होता है वही हमारा प्रमाण होता है। उक्त वाक्य में 'अयं दण्डः' यह कहने से 'अस्ति' इस सत्ताक्रिया का बोध होता है। 'अस्ति' यहाँ कर्ता में लकार है; अतः दण्ड सत्ताक्रिया का कर्ता होता हुआ हरणक्रिया के साथ सम्बद्ध होकर करण होता है। जैसे किसी ने किसी से पूछा-'देवदत्त कहाँ है'? उत्तरयिता ने प्रष्टा को उत्तर दिया-'देवदत्त वृक्ष पर है'। प्रष्टा ने फिर पूछा-'किस वृक्ष पर है'? उत्तर दिया-'जो विद्यमान है'। यहाँ 'असौ वृक्षे' इस उत्तर से वृक्ष पहले अधिकरण होता हुआ, फिर 'यस्तिष्ठति'घटक 'तिष्ठति' के साथ सम्बद्ध होकर बाद में कर्ता होता है। वैसे प्रकृत में दण्ड 'अस्ति'क्रिया का कर्ता होता हुआ हरणक्रिया के साथ सम्बद्ध होकर कर्ता होता है। जब बहुत पुरुष दूरस्थ होते हैं तब यह प्रश्न और उत्तर है।

*** प्रचये समासप्रतिषेधः * प्रचये समासस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। राज्ञो गौश्चाऽश्वश्च पुरुषश्चेति राजगवाश्वपुरुषा इति * समर्थतराणां वा * समर्थतराणां वा पदानां समासो भविष्यति। कानि पुनः समर्थतराणि? यानि द्वन्द्वभावीनि। कुत एतत्? एषां ह्याशुतरा वृत्तिः प्राप्नोति। तद्यथा-'समर्थतरोऽयं माणवकोऽध्ययनाये'त्युक्ते'आशुतर-ग्रन्थ' इति गम्यते।**

व्यपेक्षासामर्थ्य में अन्य भी दोष देते हैं—**प्रचय इति**। प्रचय= अनेक सम्बन्धी विवक्षित होने पर भी समास की आपत्ति होगी, उसका प्रतिषेध कहना होगा। जैसे 'राज्ञो गौश्चाऽश्वश्च पुरुषश्च' इस विग्रह में गोपद का राजन्पद के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* आख्यातं साऽव्ययकारकविशेषणं वाक्यम् * **आख्यातं साऽव्ययं सकारकं सकारकविशेषणं वाक्यसंज्ञं भवतीति वक्तव्यम्। साव्ययम्- 'उच्चैः पठति' 'नीचैः पठति'। सकारकम्-'ओदनं पचति'। सकारक-विशेषणम्-'ओदनं मृदु विशदं पचति'** * सक्रियाविशेषणं च * **सक्रिया-विशेषणं चेति वक्तव्यम्। सुष्टु पचति दुष्टु पचतीति। अपर आह-आख्यातं** सविशेषण'**मित्येव। सर्वाणि ह्येतानि क्रियाविशेष-णानि।**

अब इससे आगे के भाष्य में नानाकारक से पर में निघात आदि की निवृत्ति के लिए तथा कहीं पर नानाकारक से पर में निघात आदि की प्रवृत्ति के लिए निघात तथा युष्मद्, अस्मद् आदेश कहे जायेंगे। उसमें लौकिकवाक्यग्रहण का निषेध के लिए वाक्य का लक्षण बता रहे हैं-**आख्यातमिति**। यहाँ अव्यय, कारक तथा विशेषण तीनो में प्रत्येक तथा समुदाय इन दोनों पक्षों का ग्रहण है; अतः अव्ययसहित **आख्यात**=तिङ्ङन्त वाक्य कहलाता है। कारकसहित तिङ्ङन्त वाक्य कहलाता है। विशेषणसहित तिङ्ङन्त वाक्य कहलाता है; एवम् अव्यय, कारक और विशेषणसहित तिङ्ङन्त को भी वाक्य कहा जाता है। जैसे-साव्यय–'उच्चैः पठति; नीचैः पठति'। कारकसहित आख्यात–'ओदनं पचति'। कारक और विशेषणसहित आख्यात–'ओदनं मृदु विशदं पचति'। क्रिया और विशेषणसहित आख्यात भी वाक्य कहलाता है। जैसे–'सुष्ठु पचति, दुष्ठु पचति'। 'क्रियाविशेषणानां क्लीबत्वं कर्मत्वमेकत्वं च' इस सिद्धान्त के अनुसार पाकक्रिया में विशेषण सुष्ठु और दुष्ठु कर्म होने से कारक भी हैं। अव्यय, कारक और विशेषणयुक्त आख्यात भी वाक्य होता है, जिसका उदाहरण यहाँ 'उच्चैः साधु पुराणानि पठति' ऐसा देना चाहिये था। 'आख्यातम्' इसमें लक्षणविधानसामर्थ्य से एकत्व विवक्षित होगा। 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र पर आचार्य 'तिङ्ग्रतिषेधानर्थक्यं च समानवाक्याधिकारात्' ऐसा कहेंगे। 'पचति भवति' इत्यादि में साध्यसाधन-भाव होने पर भी दोनों आख्यातों के द्वित्व होने से समानवाक्यत्व नहीं है; अतः निघात की अतिव्याप्ति नहीं होगी। भाष्यकार 'आख्यातं साऽव्ययकारविशेषणं वाक्यम्' वार्तिक के स्थान पर अन्य प्रकार का वार्तिकपाठ करते हैं-**आख्यातं सविशेषणमिति**। उक्त वार्तिक के स्थान पर 'आख्यातं सविशेषणं वाक्यम्' इतना ही पढना चाहिये। प्रत्यासत्त्या क्रिया का जो विशेषण है वही लिया जायेगा। यहाँ आख्यात के द्वारा क्रियाप्रधानत्व लक्षित है; अतः 'देवदत्तेन शयितव्यम्' इत्यादि में भी वाक्यत्व सिद्ध हो जाता है। अव्यय, कारक आदि सभी कुछ क्रियाविशेषण ही होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** एकतिङ् * एकतिङ् वाक्यसंज्ञं भवतीति वक्तव्यम् । ब्रूहि-ब्रूहि * समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशाः * 'समानवाक्ये' इति प्रकृत्य निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः । किं प्रयोजनम्? नाना-वाक्येषु मा भूवन्निघातादय इति । अयं दण्डो हरानेन । ओदनं पच तव भविष्यति । ओदनं पच मम भविष्यति * योगे प्रतिषेधश्चादिभिः * चादिभिर्योगे प्रतिषेधो वक्तव्यः । ग्रामस्तव च स्वं, ग्रामो मम च स्वम् । किमर्थमिदमुच्यते?**

यहाँ भाष्यकार वाक्य का अन्य लक्षण भी देते हैं—**एकतिङ्ङिति**। यहाँ एकशब्द समानवाची है, संख्यावाची नही। 'एकः=समानः तिङ्=तिङ्न्तं यस्मिँस्त-देकेतिङ् वाक्यम्' ऐसा बहुव्रीहिसमास है। इससे 'ब्रूहिब्रूहि' में वीप्सा में द्वित्व होने पर समास तिङ्न्त होने से यह वाक्य होगा। तन्त्र के द्वारा एक पद संख्यावाची भी है; अतः 'एकतिङ्विशेष्यकं वाक्यम्' ऐसा अर्थ करना चाहिये। इससे 'ओदनं पचति' की भी वाक्यसंज्ञा होगी, एवं 'पचति भवति' में 'पाकानु-कूला भावना' ऐसा एकतिङ्विशेष्यक बोध होने से वाक्यत्व रहेगा। प्रतिषेधवादी आचार्य-**समानवाक्य इति**। 'समानवाक्ये' ऐसा अधिकारसूत्र पढ कर **निघात**= सर्वानुदात्त तथा युष्मद्, अस्मद् आदेश 'ते, मे' आदि का विधान करना चाहिये। इससे जहाँ एकवाक्यता होगी वही पर 'देवदत्तो हरति' आदि में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ के द्वारा निघात होगा। यदि 'समानवाक्ये' का अधिकार के विना निघात का विधान करेंगे तो 'अयं दण्डो हरानेन' में 'अस्ति'क्रिया के साथ 'दण्डः' का सामानाधिकरण्य है, वहाँ असमानवाक्य में भी 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ की प्रवृत्ति होने लगेगी, जो इष्ट नहीं है। अपदादि में युष्मद्, अस्मद् को 'ते, मे' आदि आदेश प्राप्त हैं। 'ओदनं पच तव भविष्यति, ओदनं पच मम भविष्यति' में 'तेमयावेकवचनस्य' ८.१.२२ से 'ते, मे' आदेश की आपत्ति होगी। परन्तु जब 'समानवाक्ये' ऐसा अधिकार कर 'ते, मे' आदेश का विधान करते हैं, तब 'ओदनं पच' के भिन्न वाक्य होने से तथा 'तव भविष्यति, मम भविष्यति' के भिन्न वाक्य होने से उक्त वाक्य में 'ते, मे' आदेश की आपत्ति नहीं रहती है। **योगे प्रतिषेधश्चादिभिरिति**। 'च' आदि का योग होने पर भी युष्मद्, अस्मद् आदेश का निषेध कहना चाहिये। इससे 'ग्रामस्तव च स्वम्' 'ग्रामो मम च स्वम्' में युष्मद्, अस्मद् को 'ते, मे' आदेश की अतिव्याप्ति नहीं रहेगी।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'योगे प्रतिषेधश्चादिभिः' वचन का आरम्भ क्यों करते हैं?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदाद्यन्यास एव चादिभिर्योगे प्रतिषेध उच्यते? इदमद्यापूर्वं क्रियतेवाक्यसंज्ञा, समानवाक्याधिकारश्च। तद् द्वेष्यं विजानीयात्सर्वमेतद् विकल्पत इति। तदाऽऽचार्यः सुहृद्भूत्वाऽन्वाचष्टे- 'चादिभिर्योगे यथान्यासमेव भवती'ति। सा चाऽवश्यं वाक्यसंज्ञा वक्तव्या, समानवाक्याधिकारश्च वक्तव्यः।

वार्तिकमतानुयायी—यदाद्यन्यास एवेति। मात्र आदि न्यास 'समानवाक्ये निघात-युष्मदस्मदादेशाः' पढते हैं तब 'ग्रामस्तव च स्वम्' 'ग्रामो मम च स्वम्' में युष्मद्, अस्मद् को 'ते, मे' आदेश की अतिव्याप्ति हो रही है, जिसका निरास के लिए 'योगे प्रतिषेधश्चादिभिः' का आरम्भ है। 'एकतिङ् वाक्यम्' यह वाक्यसंज्ञा तथा दूसरा समानवाक्याधिकार यह दोनों अपूर्व कर रहे हैं। परस्पर विरुद्ध होने से यह दोनों विकल्प होने लगेगा। यह असमर्थ में प्राप्त होने से अपूर्वविधायक की तरह चादि के योग में भी अपवाद होने से अपूर्वविधायक होगा; अधिकार नहीं, ऐसा किसी को भ्रम हो तो उसका निवारण के लिए 'तद् द्वेष्यं विजानीयात्, सर्वमेतद् विकल्पत इति' ऐसा कहा है। 'न चवाहाहैवयुक्ते' ८.१.२४ इस सूत्र का आरम्भसामर्थ्य से चादि के योग में युष्मद्, अस्मद् आदेश नहीं होता है, यह अन्वाख्यान का तात्पर्य है। इसी तरह 'एकतिङ् वाक्यम्' इस वाक्यलक्षण के निश्चित होने पर 'सर्वत्र 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' ८.२.८२ इत्यादि में यही वाक्यलक्षण उपस्थित होगा' ऐसा जिसको भ्रम हो उसको बताने के लिए कि यह भी वाक्यलक्षण शास्त्र में लिया जाता है, इसके लिए आद्य लक्षण है। 'समानवाक्ये' यहाँ पर 'एकतिङ् वाक्यम्' इसी का उदाहरण होने से अन्यत्र भी इसका आश्रयण सूचित है। 'चादिभिर्योगे' यह भी उप-लक्षण है, यह वात 'इदमद्यापूर्वं क्रियते वाक्यसंज्ञा समानवाक्याऽधिकारश्च तद् द्वेष्यम्' इस भाष्य से सूचित है। 'यहाँ जो दो किया जा रहा है, वह द्वेष्य है' यह स्वरतः बोध होता है। 'विकल्पते' का 'व्याप्नोति' अर्थ है। इस तरह 'समानवाक्ये' यह अधिकारपरक है तथा 'एकतिङ्' यही यहाँ वाक्यपदार्थ है। आद्यलक्षण अर्थरिच्छेदद्वारा 'हरति'क्रियाविशेषण होने से 'अयं दण्डो हरानेन' की भी वाक्यसंज्ञा हो रही है, इससे 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ के द्वारा निघात की आपत्ति हो रही है। 'ओदनं पच तव भविष्यति, ओदनं पच मम भविष्यति' में हेतुहेतुमद्भाव से अन्वय के द्वारा भवनक्रिया के प्रति पाकक्रिया में विशेषण होने से वाक्यत्व है। 'न चवाहाहैवयुक्ते' ८.१.२४ सूत्र में 'समानवाक्ये' का अधिकार सम्भव नहीं होने से करुणा कर आचार्य ने 'च आदि के योग में युष्मद्, अस्मद् आदेश नही होता है' यह पढ दिया। उक्त वाक्यसंज्ञा तथा समान-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्याधिकार अवश्य कहना चाहिये।

* समर्थनिघाते हि समानाधिकरणयुक्तयुक्तेषूपसङ्ख्यानमसमर्थत्वात् * समर्थनिघाते हि सति समानाधिकरणयुक्तयुक्तेषूपसङ्ख्यानं कर्तव्यं स्यात्। समानाधिकरणे-पटवे ते दास्यामि, मृदवे ते दास्यामि। समानाधिकरणे। युक्तयुक्ते-नद्यास्तिष्ठति कूले, वृक्षस्य लम्बते शाखायाम्, शालीनां ते ओदनं ददामि, शालीनां मे ओदनं ददाति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'असमर्थत्वात्'।

समानवाक्याधिकार का फल बताते हैं—समर्थनिघाते हीति। यहाँ निघातग्रहण युष्मद्, अस्मद् आदेश का भी उपलक्षण है। समानाधिकरण तथा युक्तयुक्त में निघात तथा युष्मद्, अस्मद् आदेश कहना चाहिये। 'पटवे ते दास्यामि, मृदवे ते दास्यामि' यह दोनों चतुर्थी एकवचन होने से समानाधिकरण है; अतः यहाँ 'तेमयावेकवचनस्य' ८.१.२२ के द्वारा युष्मद्, अस्मद् को क्रमशः 'ते, मे' आदेश हो जाता है। 'समानाधिकरणमसमर्थवद् भवति' ऐसा वाचनिक असामर्थ्य होने से 'पटवे ते, मृदवे ते' में युष्मद् को ते आदेश प्राप्त नहीं है; अतः यहाँ युष्मद्स्थानिक आदेश के लिए समानवाक्याधिकार है। 'नद्यातिष्ठति कूले' इत्यादि युक्तयुक्त में साक्षात् सामर्थ्य नहीं होने से 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। एवं 'शालीनां ते ओदनं ददामि' इत्यादि में युष्मद् आदि को आदेश नहीं हो सकेगा; अतः युक्तयुक्तग्रहण कर यहाँ 'तिष्ठति, लम्बते' में निघात आदेश तथा 'शालीनां ते' इत्यादि में युष्मद् आदि को 'ते' आदि आदेश किया है। युक्त कूल से युक्त नदी अतिङ्ङन्त से पर में तिङ्ङन्त 'तिष्ठति' को तथा युक्त शाखा से युक्त वृक्ष अतिङ्ङन्त से पर में तिङ्ङन्त 'लम्बते' को निघात है। 'नद्याः' तथा 'वृक्षस्य' यह दोनों कारकविशेषण हैं। युक्त शालि के साथ युक्त ओदन के प्रति साकाङ्क्ष होने से उक्तस्थल में युष्मद्, अस्मद् पद असमर्थ हो गया; अतः उसको 'ते, मे' आदेश प्राप्त नही होने से युक्तयुक्त में भी उक्त आदेश कहा गया है।

* राजगवीक्षीरे द्विसमासप्रसङ्गो द्विषष्ठीभावात् * राजगवीक्षीरे द्विसमासप्रसङ्गः। किं कारणम्? 'द्विषष्ठीभावात्'। द्वे ह्यत्र षष्ठ्यौराज्ञो गोः क्षीरमिति। किमुच्यते 'द्विसमासप्रसङ्ग' इति, यावता सुप्सुपेति वर्त्तते। द्विसमासप्रसङ्ग इति नैवं विज्ञायते-द्वयोः सुबन्तयोः समासप्रसङ्गो द्विसमासप्रसङ्ग इति। कथं तर्हि? द्विप्रकारस्य समासस्य प्रसङ्गो-द्विसमासप्रसङ्ग इति। राजगोक्षीरमित्यपि प्राप्नोति। न चैवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवितव्यम्? भवितव्यं च यदैतद् वाक्यं भवति-गोः क्षीरं गोक्षीरम्, राज्ञो गोक्षीरं राजगोक्षीरमिति। यदा त्वेतद् वाक्यं भवति-राज्ञो गोः क्षीरमिति, तदा न भवितव्यं, तदा च प्राप्नोति। तदा कस्मान्न भवति?

वार्तिककार—**राजगवीक्षीरमिति**। 'राज्ञो गोः क्षीरम्' इस विग्रह में दो षष्ठी-समास प्राप्त हो रहा है। प्रथम राजन्पद का गो पद के साथ तथा दूसरा गो-पद का क्षीर पद के साथ। यदि 'राज्ञः' पद का 'गोः' पद के साथ समास करते हैं तब 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से टच्, अवङ् आदेश तथा टिल्लक्षण ङीप् ४.१.१५ हो कर पहले 'राजगवी' पद होगा तथा बाद में 'क्षीरम्' के साथ षष्ठीसमास होकर 'राजगवीक्षीरम्' रूप होगा। परन्तु जब गो पद के साथ 'क्षीरम्' का समास करते हैं तब 'राजगोक्षीरम्' पद की आपत्ति हो रही है।

आक्षेपभाष्य—**किमुच्यत इति**। जब 'सुप्सुपा' का अनुवर्तन आ रहा है, तब 'द्वयोः षष्ठ्यन्तयोः समासप्रसङ्गः' ऐसा आप ने क्या कह दिया? 'द्वयोः षष्ठ्यन्तयोः समासप्रसङ्गः' ऐसा मान कर आक्षेप है। 'सुप्सुपा' का अधिकार आ रहा है; यहाँ प्रथमान्त तथा तृतीयान्त इन दोनों में एकवचन का निर्देश है; जब कि 'राज्ञो गोः क्षीरम्' इस विग्रह में 'राज्ञो गोः' इस समुदाय से कोई सुप् प्रत्यय नही आता है; अतः यहाँ समास प्राप्त नहीं हो रहा है।

उत्तरभाष्य—**द्विसमासप्रसङ्ग इति**। द्विसमासप्रसङ्ग पद से मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि दो सुबन्तों का समास हो, अपि तु 'राज्ञो गोः क्षीरम्' इस विग्रह में दो प्रकार का समास प्राप्त हो रहा है। इससे 'राजगवीक्षीरम्' इस इष्ट रूप की साधुता होने पर 'राजगोक्षीरम्' इस अनिष्ट रूप की आपत्ति भी हो रही है।

प्रश्नभाष्य—**न चैवमिति**। तो क्या 'राजगोक्षीरम्' यह पद नही होता है?

उत्तरभाष्य—**भवितव्यं चेति**। 'गोः क्षीरं गोक्षीरं, राज्ञो राजगोक्षीरम्' इस तरह का विग्रह में समास होकर 'राजगोक्षीरम्' पद साधु है, तथा इष्ट भी है। परन्तु जब 'राज्ञो गोः क्षीरम्' ऐसा विग्रह करेंगे तब 'राजगवीक्षीरम्' यही समास होगा, 'राजगोक्षीरम्' नही।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**तदा कस्मान्नेति**। 'राज्ञो गोः क्षीरम्' इस विग्रह में 'राजगोक्षीरम्' ऐसा समस्त पद क्यों नही होता है?

* सिद्धं तु राजविशिष्टाया गोः क्षीरेण सामर्थ्यात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'राजविशिष्टाया गोः क्षीरेण सामर्थ्यात्'। राजविशिष्टाया**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोः क्षीरेण सह समासो भवति, न केवलायाः। किं वक्तव्यमेतद्? नहि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? यथैवाऽयं गवि यतते, न च क्षीर-मात्रेण सन्तोषं करोति एवं राजन्यपि यतते, राज्ञो या गौस्तस्या यत्क्षीरमिति। नैव वा पुनरत्र गो राजानमपेक्षमाणायाः क्षीरेण सह समासः प्राप्नोति। किं कारणम्? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? सापेक्षमसमर्थं भवतीति।

उत्तरभाष्य—**सिद्धं त्विति।** 'राज्ञो गोः क्षीरम्' इस विग्रह में राजविशिष्ट गो का क्षीर के साथ सामर्थ्य है; अतः राजविशिष्ट गो-पद का क्षीर के साथ समास होकर 'राजगवीक्षीरम्' यह समस्तपद 'राजविशिष्टगोसम्बन्धिक्षीर' इस अर्थ का वाचक होता है। इसी अर्थ में 'राजगोक्षीरम्' पद की भी आपत्ति हो रही है; जब कि यह पद; अन्य अर्थ 'गवावच्छिन्नं क्षीरं राजस्वामिकम्' में साधु है। राजविशिष्टा गो का क्षीर के साथ समास होकर 'राजगवीक्षीरम्' यह पद होता है। यहाँ गो पद का पहले राजन् पद के साथ सम्बन्ध है तथा बाद में क्षीर पद के साथ सम्बन्ध है।

प्रश्नभाष्य—**किं वक्तव्यमिति।** क्या 'राजगवीक्षीरम्' की सिद्धि के लिए 'सिद्धं तु राजविशिष्टाया गो क्षीरेण सह सामर्थ्यात्' यह वचन कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नहीति।** 'राजगवीक्षीरम्' की सिद्धि के लिए उक्त वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**कथमनुच्यमानमिति।** यदि उक्त वचन नहीं पढेंगे तो 'सिद्धं तु राजविशिष्टाया गो क्षीरेण सह सामर्थ्यात्' इस अर्थ का लाभ कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**यथैवायमिति।** राजविशिष्टा गो का क्षीर की कामना रखने वाला मात्र गाय में प्रयत्न करके ही सन्तुष्ट नहीं होता है, अपि तु राजा में भी प्रयत्न करता है। चूँकि उसे राजसम्बन्धिगाय का दुग्ध चाहिये, केवल गोदुग्ध नहीं; अतः क्षीर की कामना वाला मात्र गो में ही प्रयत्न नहीं करके राजा में भी प्रयत्न करता है-'राजा की जो गाय, उसका जो क्षीर, उसकी कामना करता है'। आक्षेपक-**नैव वेति।** 'राज्ञो गोः क्षीरम्' में राजा की अपेक्षा करने वाली गो का क्षीर पद के साथ समास नहीं हो सकेगा। यहाँ गो पद राजन् पद की अपेक्षा कर रहा है; अतः सापेक्ष हुआ। सापेक्ष असमर्थवान् होता है तथा असमर्थों का समास नहीं होने से उक्त स्थल में समास नहीं हो सकेगा।

कथं तर्हि गोः क्षीरमपेक्षमाणाया राज्ञा सह समासो भवति?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधानमत्र तदा गौर्भवति। भवति च प्रधानस्य सापेक्षस्यापि समासः।

प्रश्नभाष्य—कथं तर्हीति। यदि राजा के प्रति सापेक्ष होने से असमर्थ गो पद का क्षीर पद के साथ समास प्राप्त नही है तब फिर यहाँ समास कैसे होता है?

समाधानभाष्य—प्रधानमत्रेति। सापेक्ष होने पर भी प्रधान का समास होता है। जब उक्त विग्रह में गो पद प्रधान होगा तब सापेक्ष होने पर भी उसका समास हो जायेगा।

अथ किमर्थं पदविधौ समर्थाधिकारः क्रियते? * पदविधौ समर्थवचनं वर्णाश्रये शास्त्र आनन्तर्यविज्ञानात् * पदविधौ समर्थाधिकारः क्रियते। वर्णाश्रये शास्त्रे आनन्तर्यमात्रे कार्यं यथा विज्ञायेतेति। 'तिष्ठतु दध्यशान त्वं शाकेन' 'तिष्ठतु कुमारी च्छत्रं हर देवदत्ते'ति।

प्रश्नभाष्य—अथ किमर्थमिति। पदविधि में समर्थाधिकार क्यों करते हैं? पारार्थ्यसामर्थ्य होने से यहाँ परिभाषा भी अधिकारशब्द से कही जा रही है। विनियोग ही अधिकार है तथा वह परिभाषा में भी है। 'कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च' ८.३.३७ सूत्र पर आचार्य 'अधिकारो नाम त्रिप्रकारः' ऐसा कहेंगे। प्रकृतसूत्र में पदग्रहण का आक्षेप होगा; अतः 'समर्थो विधिः' इतना ही कहना चाहिये।

उत्तरभाष्य—पदविधौ समर्थवचनमिति। वर्णाश्रयशास्त्र में आनन्तर्यमात्र से कार्य हो, इसके लिए पदविधि में समर्थग्रहण है। इससे 'तिष्ठतु दध्यशान त्वं शाकेन' में 'दधि+अशान' का परस्पर अन्वय नहीं होने से असमर्थ होने पर भी वर्णाश्रयकार्य यणादेश हो जाता है, तथा 'तिष्ठतु कुमारी च्छत्रं हर देवदत्त' में 'दीर्घात्' ६.१.७४ से असामर्थ्य में भी नित्य तुग्विधि होता है। 'पदाद्वा' ६.१.७५ से ही दीर्घ के द्वारा पदविशेष्यमाण लब्ध होने पर पदान्तत्व में ही अन्तग्रहण कर जो 'पदाद्वा' ६.१.७५ ऐसा सूत्रनिर्देश किया, उससे 'पदान्तदीर्घ को तुक् होता है; दीर्घान्त पद को नहीं'। इस तरह पदविधित्व नही होने पर भी अथ वा सामर्थ्य नही होने पर भी तुक् हो जायेगा; यहाँ ऐसा श्रीकैयट जी का ऐसा मानना है। परन्तु यदि यहाँ पदग्रहण नही करेंगे तो वर्णकार्य में भी समर्थपरिभाषा की उपस्थिति होने से 'तिष्ठतु कुमारी च्छत्रं हर देवदत्त' में इष्ट तुक् अप्राप्त रहेगा, यह भाष्यकार का आशय है।

* समर्थाधिकारस्य विधेयसामानाधिकरण्यान्निर्देशानर्थक्यम् * समर्थाधिकारोऽयं विधेयेन समानाधिकरणः। किं च विधेयम्? समासः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यावद् ब्रूयात्-'समर्थः समासः' इति, तावद्-'समर्थः पदविधि'-रिति। न च 'राजपुरुष' इत्येतस्यामवस्थायां समर्थाधिकारेण किञ्चि-दपि शक्यं प्रवर्तयितुं निवर्तयितुं वा। समर्थाधिकारस्य विधेय-सामानाधिकरण्यान्निर्देशोऽनर्थकः।

आक्षेपभाष्य—समर्थाधिकारस्येति। प्रकृतसूत्र में विधिपद 'विधीयते इति विधिः' ऐसा कर्मसाधन है। उसका पदसम्बन्धिसमास आदि अर्थ कहना चाहिये। इस तरह 'पदसम्बन्धी समानाधिकरण समर्थ है' ऐसा अर्थ लब्ध हुआ। यदि यहाँ विधिशब्द को भावसाधन माना जाये तो भावविधि के द्वारा पदकर्मकविधान नही होने से समास आदि का असंग्रह होगा। इस तरह यहाँ विधिपद को कर्मसाधन मानने तथा उसका पदसम्बन्धी समास आदि अर्थ वाच्य होने से असमर्थपदों के समास की निवृत्ति नहीं होगी, जिससे समर्थवचन का कोई प्रयोजन नहीं होगा। यहाँ समास विधेय है। समर्थो का जो समास है, वह समर्थ ही है। 'भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य' इत्यादि में इत्यादि में जो असमर्थो का समास है वह भी कोई नियम नहीं होने से निवृत्त हो गया; अतः इस समर्थवचन के द्वारा असमर्थो की समासनिवृत्ति का भी कोई फल नहीं है। 'अकिञ्चित् कुर्वाणम्' इत्यादि असमर्थ नञ्समास भी परिगणन से निरस्त हो गया; अतः इसके लिए भी समर्थग्रहण नहीं हो सकता है।

* सिद्धं तु समर्थानामिति वचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'समर्था-नामिति वचनात्'। 'समर्थानां पदानां विधिर्भवती'ति वक्तव्यम्। एवमपि द्व्येकयोर्न प्राप्नोति * एकशेषनिर्देशाद्वा * अथ वा एकशेषनिर्देशोऽयम्। समर्थस्य च, समर्थयोश्च समर्थानां च,-समर्थानामिति। एवमपि षट्प्रभृतीनामेव प्राप्नोति। षट्प्रभृतिषु ह्येकशेषः परिसमाप्यते। नैष दोषः। 'प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्ति-र्दृष्टे'ति द्व्येकयोरपि भविष्यति। एवमपि विविभक्तीनां न प्राप्नोति समर्थात्समर्थे, पदात्पद इति।

उत्तरभाष्य—सिद्धं त्विति। समर्थ के पदसम्बन्धी होने से उपचारवश यहाँ समर्थशब्द के द्वारा पदविधि वाच्य है; अतः आचार्यो का व्याख्यान मान कर यहाँ 'समर्थपदों की विधि है' ऐसा कहना चाहिये। अन्य आचार्य 'समर्थानां पदानां विधिः' ऐसा ही सूत्र मान कर आक्षेप करते हैं-एवमपीति। उक्त सूत्र में 'समर्थानां पदानाम्' यह बहुवचननिर्देश है; अतः बहुत पदों का ही पद-सम्बन्धी विधि होने से एक तथा दो पदों का पदविधि प्राप्त नहीं है। बहुवचन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निर्देशपक्ष में एकवचन तथा द्विवचन में इतर आचार्य पदविधि स्पष्ट करते हैं- **एकशेषनिर्देशाद्वेति**। 'समर्थानाम्' यह एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन का 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' १.२.६४ के द्वारा एकशेष कर निर्देश है; अतः एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन इन तीनों में पदविधि होता है।

आक्षेपभाष्य—**एवमपीति**। एकशेषपक्ष में एक, दो तथा तीन का जोड करने पर कुल छह संख्या हो रही है; अतः षट्प्रभृति में ही एकशेष के परिसमाप्त होने से एक से पाँच पर्यन्त में पदविधि प्राप्त नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। प्रत्येक में भी वाक्यपरिसमाप्ति देखे जाने पर भी जहाँ भिन्न असमर्थविभक्तिक पद है वहाँ 'अयं दण्डो हरानेन' इत्यादि में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ इत्यादि की प्रवृत्ति नही होगी। समर्थपद से समर्थपद पर रहते ही निघात आदि प्रवृत्त होंगे। यहाँ 'दण्डः' का 'अस्ति'क्रिया के साथ सामर्थ्य है; अतः अतिङ्न्त 'दण्डः' से परमें तिङ्न्त 'हर' पद को निघात प्राप्त नही होगा। वस्तुतः यहाँ निघात इष्ट नही है; परन्तु 'प्राप्त होगा' ऐसा आक्षेपक का अभिमानमात्र है। 'निघातप्रकरण में भी समर्थपरिभाषा उपस्थित होती है' यह मान कर यह भाष्य है। तद्धितविधि में 'प्रातिपदिकात्' इसका उपलक्षण है।

एवं तर्हि समर्थपदयोरयं विधिशब्देन सर्वविभक्त्यन्तः समासः,- समर्थस्य विधिः समर्थविधिः, समर्थयोर्विधिः समर्थविधिः, समर्थानां विधिः समर्थविधिः, समर्थाद्विधिः समर्थविधिः, समर्थे विधिः समर्थ-विधिः। पदस्य विधिः पदविधिः, पदयोर्विधिः पदविधिः, पदानां विधिः पदविधिः, पदाद् विधिः पदविधिः, पदे विधिः पदविधिः। समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थ-विधिश्च-समर्थविधयः। पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदवि-धिश्च पदविधिश्च-पदविधयः। समर्थविधयश्च पदविधयश्च समर्थः पदविधिः। पूर्वः समास उत्तरपदलोपी यादृच्छिकी च विभक्तिः।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। समर्थ और पदशब्द का विधिशब्द के साथ सर्वविभक्त्यन्तसमास करेंगे। 'समर्थस्य विधिः समर्थविधिः' से आरम्भ कर 'समर्थः पदविधिः'पर्यन्त समर्थ तथा पद के साथ विधिशब्द का सर्वविभक्त्यन्त विग्रह एवं समास स्पष्ट कर समर्थपदोत्तर विधिशब्द का लोप दिखाया है। यहाँ समर्थ पद से ही 'समर्थविधि' अर्थ गतार्थ है; अतः समर्थपद के उत्तर में विधिशब्द का प्रयोग नहीं है। 'समर्थपदाश्रय होने से विधि ही समर्थपद का वाच्य है' यह भाष्यकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का हृदय है। सम्बन्धसामान्यवचन षष्ठ्यन्त और पदशब्द का विधिशब्द के साथ समास होने पर विभक्त्यन्तर अर्थ भी अन्तर्भूत है; अतः सभी कुछ सूत्र से ही सिद्ध हो जाता है। भेद और अभेद उभयविध विवक्षा सम्भव होने पर यदृच्छा के द्वारा अभेदविवक्षा का आश्रयण कर प्रथमान्त के द्वारा 'समर्थः पदविधिः' ऐसा निर्देश किया है।

* समानाधिकरणेषूपसंख्यानमसमर्थत्वात् * **समानाधिकरणेषूपसंख्यानं कर्तव्यम्। वीरः पुरुषो वीरपुरुषः। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'असमर्थत्वात्'। कथमसामर्थ्यम्?** * द्रव्यं पदार्थ इति चेत् * **यदि द्रव्यं पदार्थो, न भवति तदा सामर्थ्यम्। 'भेदाऽभावत्'। अथ हि गुणः पदार्थः, भवति तदा सामर्थ्यम्। अन्यो हि वीरत्वं गुणः, अन्यो हि पुरुषत्वम्। नाऽन्यत्वमस्तीतीयता सामर्थ्यं भवति। अन्यो हि देवदत्तो गोभ्यश्चाऽश्वेभ्यश्च। न चैतस्यैतावता सामर्थ्यं भवति। को वा विशेषो यद् गुणे पदार्थे सामर्थ्यं स्याद् द्रव्ये च न स्यात्? एष विशेषः-एकं तयोरधिकरणम्। अन्यश्च वीरत्वं गुणः, अन्यः पुरुषत्वम्।**

वार्तिक—**समानाधिकरणेष्विति**। कोई आचार्य 'द्रव्यं पदार्थः' ऐसा पक्ष मानते हैं, तथा कोई आचार्य 'आकृतिः पदार्थः' पक्ष मानते हैं। द्रव्य को पदार्थ मानने वाले आचार्य के मत में 'वीरः पुरुषः' इस समानाधिकरण स्थल में 'वीराऽभिन्नः पुरुषः' ऐसा अभेदबोध होने से पद असमर्थ हो गया; अतः समास प्राप्त नहीं होने से यहाँ समासविधान कहना चाहिये। परन्तु जिनके मतमें 'गुणः पदार्थः'=जाति पदार्थ है उनके मतमें वीरत्व तथा पुरुषत्व यह भिन्न-भिन्न है; अतः इनके एक नहीं होने से भेदपूर्वक संसर्ग है। विशेषणविशेष्य भाव के द्वारा अन्वयरूप उपकारविवक्षा में सामर्थ्य है, अन्यत्वमात्र में नहीं। प्राश्निक-**अन्यो हि देवदत्त इति**। गो और अश्व से देवदत्त भिन्न है, इस लिए उसका 'गो और अश्व के साथ सामर्थ्य हो' ऐसी कोई व्याप्ति नहीं है। **गुणपदार्थ**=जातिपदार्थपक्ष में सामर्थ्य होगा तथा द्रव्यपदार्थपक्ष में सामर्थ्य नहीं होगा, इसमें क्या कारण है?

उत्तरभाष्य—**एष विशेष इति**। 'द्रव्यं पदार्थः' पक्ष में 'वीरः पुरुषः' इस समानाधिकरणस्थल में दोनों पदों का एक ही अभेदरूप अधिकरण है। इसके बाद अभेद के द्वारा उक्त दोनों पदों का विशेष्यविशेषणभाव होता है। परन्तु गुणपक्ष=जातिपक्ष में वीरत्व तथा पुरुषत्व यह भिन्न-भिन्न गुण हैं; अतः यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेदपूर्वक संसर्ग होने से सामर्थ्य है।

द्रव्यपदार्थिकस्यापि तर्हि गुणभेदात् सामर्थ्यं भविष्यति। अशक्यो द्रव्यपदार्थिकेन द्रव्यस्य गुणकृत उपकारः प्रतिज्ञातुम्। ननु चाऽभ्यन्तरोऽसौ भवति। यद्यप्यभ्यन्तरो न तु गम्यते। न हि 'गुड' इत्युक्ते मधुरत्वं गम्यते, 'श्रृङ्गवेर'मिति वा कटुकत्वम्।

आक्षेपभाष्य—**द्रव्यपदार्थिकस्यापीति**। एक भी द्रव्य भिन्नगुणसंसर्ग से परस्पर विशेषणविशेष्यभावरूप भेदकार्य को प्राप्त होता है; अतः द्रव्यपदार्थिक का भी गुणभेद से सामर्थ्य होगा।

खण्डनभाष्य—**अशक्य इति**। वृत्ति नहीं होने से अभ्यन्तर शब्द का भी विशेषणविशेष्यभावरूप से प्रतीतिप्रयोजकता नहीं है। इसका भाव इस प्रकार है-द्रव्य के साथ नित्यसम्बन्धी बहुत से गुण हैं, परन्तु सर्वदा सभी गुणों का स्मरण नहीं होता है; अतः शब्दजन्योपस्थिति के अभाव में भेदबोधकत्व बता पाना असम्भव है।

आक्षेपभाष्य—**ननु चाऽभ्यन्तर इति**। द्रव्य का गुण के साथ नित्य सम्बन्ध है; अतः द्रव्य से गुण की उपस्थिति होगी। जात्यवच्छिन्न द्रव्य के भिन्न-भिन्न होने से 'वीरः पुरुषः' इस समानाधिकरणस्थल में द्रव्यपक्ष में भी सामर्थ्य हो जायेगा।

समाधानभाष्य—**यद्यप्यभ्यन्तर इति**। यद्यपि द्रव्य में **गुण**=जाति अभ्यन्तर होती है, तथापि उसका बोध नही होता है। द्रव्य वाच्य होने पर गुण वाच्य नही होगा। फिर भी **सन्निधि**= स्मृतिमात्र के द्वारा परिच्छेदहेतुता होने से जाति को अभ्यन्तर कहा है। गुण ऐसा कहने से शब्द से प्रकारविधया गुणत्व की ही उपस्थिति होगी, मधुरत्व की नहीं। मधुरपद से प्रकारविधया मधुरत्व की उपस्थिति होगी। एवं **श्रृङ्गवेर**=अदरख ऐसा कहने से शब्द के द्वारा प्रकारविधया श्रृङ्गवेरत्व की ही उपस्थिति होगी, कटुकत्व की नही। परन्तु कटुक पद से प्रकारविधया कटुकत्व की ही उपस्थिति होगी।

गुणपदार्थिकेनापि तर्हि अशक्यो गुणस्य द्रव्यकृत उपकारः प्रतिज्ञातुम्। अथ गुणपदार्थिकः प्रतिजानीते। द्रव्यपदार्थिकोऽपि कस्मान्न प्रतिजानीते? एवमनयोः सामर्थ्यं स्याद्वा न वा। क्व च तावदिदं स्यात्-समानाधिकरणेनेति? यत्र सर्वं समानं-'इन्द्रः शक्रः पुरुहुतः पुरन्दरः' 'कन्दुः कोष्ठः कुसूल' इति। नैवंजातीयकानां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासेन भवितव्यं, प्रत्ययेन वोत्पत्तव्यम्। किं कारणम्?

अन्य आक्षेपक—**गुणपदार्थिकेनापीति**। यदि अवाच्य की उपकारकता नहीं मानते हैं तब गुणवाद में भी द्रव्य की अवाच्यता के द्वारा गुण का द्रव्यकृत सामर्थ्य कहना सम्भव नहीं है। यदि अवाच्य को भी उपकारक मानते हैं तब द्रव्यपदार्थिक आचार्य तथा गुणपदार्थिक आचार्य इन दोनों के मतमें साम्य है। इस तरह यदि **गुण**=जाति को पदार्थ मानने वाले आचार्य समानाधिकरणस्थल में यदि सामर्थ्य की प्रतिज्ञा करते हैं तब द्रव्य को पदार्थ मानने वाले आचार्य के मत में समानाधिकरणस्थल 'वीरः पुरुषः' में भी सामर्थ्य रहेगा। इस तरह समानाधिकरणस्थल में गुणपदार्थवादी तथा द्रव्यपदार्थवादी इन दोनों की स्थिति एक जैसी है। या तो दोनों ही वहाँ समास की प्रतिज्ञा करेंगे; अथ वा दोनों ही वहाँ समास की प्रतिज्ञा नहीं करेंगे। इतर आचार्य आशय नहीं जानते हुए प्रतिज्ञामात्र से अर्थसिद्धि का अभाव बताते हैं-**एवमनयोरिति**। असामर्थ्य से समास का अभाव निश्चय होगा, इस आशय से जिज्ञासा करते हैं-**क्व चेति**। यदि 'समानाधिकरणपदों का परस्पर असामर्थ्य होने से समास नहीं होता है' ऐसा मान रहे हैं तो आचार्य द्वारा निर्दिष्ट 'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' २.२.११ सूत्र का आरम्भ कर समानाधिकरणों का समासानुशासन करते हैं, उसकी क्या गति होगी? यदि यहाँ सूत्रारम्भ के द्वारा समानाधिकरणों का भी समास कहेंगे तो जहाँ सभी पद समानाधिकरण हैं, जैसे 'इन्द्रः शक्रः पुरुहूतः पुरन्दरः' तथा 'कन्दुः कोष्ठः कुसूलः' यहाँ समास होगा, अथवा नहीं?

उत्तरभाष्य—**नैवंजातीयकानामिति**। पर्यायशब्दों के समानाधिकरण होने पर समास भी नहीं होगा तथा इनसे प्रत्यय भी उत्पन्न नहीं होगा।

* अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः * **'अर्थं सम्प्रत्याययिष्यामी'ति शब्दः प्रयुज्यते। तत्रैकेनोक्तत्वात्तस्याऽर्थस्य द्वितीयस्य प्रयोगेण न भवितव्यम्। किं कारणम्? 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति। न तर्हीदानीमिदं भवति-'भृत्यभरणीय' इति। नैतौ समानार्थौ। एकोऽत्र शक्यार्थे कृत्यः, अपरोऽर्हार्थे। शक्यो भर्त्तुं-भृत्यः। अर्हति भृतिं भरणीयः। भृत्यो भरणीयो भृत्यभरणीय इति। यदि तर्हि यत्र किञ्चित् समानं कश्चिच्च विशेषस्तत्र भवितव्यमिहापि तर्हि प्राप्नोति-दर्शनीयाया माता दर्शनीयामातेति। अत्रापि किञ्चित् समानं कश्चिच्च विशेषः। किं पुनस्तत्? सद्भावाऽन्यभावौ। न क्वचित् सद्भावाऽन्यभावौ स्तः, उच्यते चेदं समानाधिकरणनेति, तत्र प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते-यत्र**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधीयः सामानाधिकरण्यम्। क्व च साधीयः सामानाधिकरण्यम्? यत्र सर्वं समानं सद्भावाऽन्यभावौ, द्रव्यं च।

इसमें हेतु देते हैं—**अर्थगत्यर्थ इति**। अर्थबोध कराने के लिए शब्दों का प्रयोग होता है। 'इन्द्रः शक्रः पुरुहूतः पुरन्दरः' यह चारों शब्द तथा 'कन्दुः कोष्ठः कुसूलः' यह तीनों शब्द पर्याय हैं। पर्यायशब्दों के मध्य में एक के द्वारा अर्थ उक्त होने से 'उक्त अर्थ का बोध कराने के लिए किसी अन्य शब्द का प्रयोग नहीं होता है' इस न्याय से अन्य शब्दों का प्रयोग नहीं होगा। जिज्ञासु आचार्य-**न तर्हीदानीमिति**। यदि 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से पर्याय-शब्दों का एकत्र अप्रयोग मानते हैं तो डुभृञ् धारणपोषणयोः धा.पा. १०८७ से कृत्य प्रत्यय क्यप् तथा अनीयर् कर्म अर्थ में होकर 'भृत्यभरणीयः' प्रयोग है। ये दोनों पद समानार्थक होने से पर्याय हैं, अतः इनका एक साथ प्रयोग नहीं होना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**नैताविति**। भृत्य और भरणीय पद समानार्थक नहीं हैं, अपि तु इनमें परस्पर अर्थभेद है। 'भर्त्तुंशक्यो भृत्यः' में भृ धातु से शक्य अर्थ में क्यप् प्रत्यय है, तथा 'भरणीयः' में 'अर्हे कृत्यतृचश्च' ३.३.१६९ के द्वारा अर्ह अर्थ में अनीयर् प्रत्यय है। इस तरह अर्थभेद होने से भृत्य और भरणीय शब्द पर्याय नहीं हैं; अतः इनका एकत्र समस्त प्रयोग हो सकता है। आक्षेपक-**यदि तर्हि यत्रेति**। 'भृत्यभरणीयः' में प्रकृति समान है तथा प्रत्यय भिन्न है। यहाँ **'किञ्चित्समानम्**=प्रकृत्यर्थ समान है, तथा **कश्चिद्विशेषः**=प्रत्ययार्थ भिन्न है' इस तरह 'भृत्यभरणीयः' का यदि एक साथ समस्त प्रयोग हो सकता है तो 'दर्शनीयाया माता दर्शनीयामाता' में अनीयर् प्रत्यय तथा कर्मवाचक मातृ पद समान अर्थ में हैं; एवं दर्शनीयत्व तथा मातृत्व विशेष है; इस तरह यहाँ 'दर्शनीयामाता' में भी कुछ विशेष तथा कुछ समान होने से समास होना चाहिये। 'दर्शनीयामाता' में सत्ता समान होने से समास प्राप्त है। 'समानाधिकरणेन न' ऐसा प्रतिषेधवचन होने से यहाँ षष्ठीसमास नहीं होगा। समानाधिकरणसमास होने पर यहाँ पुंवद्भाव की आपत्ति होगी। आचार्य समानाधिकरण के साथ समास कह रहे हैं। कहीं पर भी **सद्भाऽभावाऽन्यभावौ**=दर्शनीयत्व और मातृत्व के केवलान्वयी होने से सद्भाव और अन्यभाव अन्य सत्ता नहीं है। जहाँ समानाधिकरण के साथ समास कहते हैं वहाँ पर भी प्रकर्षगति ली जाती है। जहाँ सद्भाव, अन्यभाव तथा द्रव्य यह तीनों समान होते हैं वहीं पर प्रकर्ष-सामानाधिकरण्य होता है, तथा वहीं समास भी होता है। 'दर्शनीयामाता' में भिन्नसत्ता है, अतः यहाँ सामानाधिकरण्य नहीं होने से समास नहीं होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वा समानाधिकरणेनेति यत्समानमाश्रीयते यत्समानं भवति, न च भवति। न चैतत्समानं क्वचिदपि न भवति। अथ वा यावद् ब्रूयात्-समानद्रव्येणेति, तावत्समानाधिकरणेनेति। द्रव्यं हि लोके-'ऽधिकरण'मित्युपचर्यते। तद्यथा-'एकस्मिन् द्रव्ये व्युदितम्'। 'एकस्मिन्नधिकरणे व्युदितम्'। तथा व्याकरणे 'विप्रतिषिद्धं चाऽनधिकरणवाचि'। अद्रव्यवाचीति गम्यते। एवमपीदमवश्यं कर्त्तव्यं-'समानाधिकरणमसमर्थवद् भवती'ति। किं प्रयोजनम्? 'सर्पिः कालकं, यजुः पीतकमित्येवमर्थम्'। यदि समानाधिकरणमसमर्थवद् भवती'त्युच्यते-'सर्पिष्पीयते' 'यजुष्क्रियत' इत्यत्र षत्वं न प्राप्नोति। अधात्वभिहितमित्येवं तत्।

अन्य पक्ष में भी इसका समाधान देते हैं—**अथ वेति**। अथ वा 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ इत्यादि सूत्रों में वही समानाधिकरण लिया जायेगा जो विशेष्यविशेषणभाव से सर्वत्र समानविभक्तिक होता है। जैसे 'वीरः पुरुषो वीरपुरुषः'। यहाँ समानाधिकरणघटक अधिकरणपद 'अभिधेयवाचि है' ऐसा मान कर प्रश्न किया था इसको द्रव्यवाचि मान कर समाधान है। 'दर्शनीयाया माता' यहाँ पर द्रव्यभेद है। सूत्र में समानपद एकत्ववाचि है। परन्तु सत्ता को समान मानेंगे तो वाच्य की समानतापत्ति होगी। वह वाच्य धर्म होगा, यह अन्य वात है। 'दर्शनीयाया माता' में द्रव्यभेद है; अतः यह कहीं पर भी समान नहीं है; इस लिए इसका समानाधिकरणसमास नहीं होता है। चूँकि सूत्रघटक अधिकरणपद द्रव्यवाची है; अतः 'समानाधिकरणेन' २.१.४९ इत्यादि के स्थान पर आचार्य 'समानद्रव्येण' ऐसा भी पाठ कर कसते थे। लोक में द्रव्य को ही अधिकरण कहा जाता है। जैसे 'एकस्मिन् द्रव्ये व्युदितं=विवादः कृतः' इस अर्थ में 'एकस्मिन्नधिकरणे व्युदितम्' ऐसा प्रयोग भी किया जाता है। वैसे व्याकरणशास्त्र मे 'विप्रतिषिद्धं चाऽनधिकरणवाचि' ऐसा कहने से अनधिकरणवाचिपद का अद्रव्यवाचि अर्थ होता है। अन्य आचार्य-**एवमपीति**। **एवमपि**=उक्त अधिकरणपद को द्रव्यवाचि मान कर दर्शनीयत्व और मातृत्व के भिन्नद्रव्य होने पर से 'दर्शनीयाया माता' में समासवारण करने पर भी समानाधिकरण को असमर्थवान् अवश्य कहना होगा; अन्यथा समानाधिकरणों के भी समर्थवान् होने से 'सर्पिः कालकम्' 'यजुः पीतकम्' में भी समानाधिकरणसमास की आपत्ति होने लगेगी। इतर आचार्य-**यदि समानेति**। यदि 'समानाधिकरण असमर्थवान् होता है' ऐसा कहेंगे तो 'सर्पिष्पीयते, यजुष्क्रियते' में भी कारक और क्रिया का समानाधिकरण है; यहाँ भी असमर्थवान्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा; अतः सामर्थ्य होने पर 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' ८.३.४१ के द्वारा होने वाला मूर्धन्यादेश असमर्थवान् 'सर्पिष्पीयते' इत्यादि में प्राप्त नहीं होगा। अन्य आचार्य-**अधात्वभिहितमिति**। अधातु-अभिहित समानाधिकरण को ही असमर्थवान् कहेंगे। 'सर्पिष्पीयते' इत्यादि में धातु-अभिहित समानाधिकरण है; अतः उसके समर्थवान् होने से मूर्धन्यादेश हो जायेगा।

एवं च कृत्वा-* समानाधिकरणेषूपसंख्यानमसमर्थत्वात् * **समानाधिकरणेषूपसंख्यानं कर्तव्यम्। वीरः पुरुषो वीरपुरुष इति। किं कारणम्? 'असमर्थत्वात्'** * न वा वचनप्रामाण्यात् * **न वा कर्तव्यम्। किं कारणम्? 'वचनप्रामाण्यात्'। वचनप्रामाण्यादत्र समासो भविष्यति। किं वचनप्रामाण्यम्? 'समानमध्यममध्यमवीराश्चे'ति** * लुप्ताख्यातेषु च * **लुप्ताख्यातेषु चोपसंख्यानं कर्तव्यम्। निष्कौशाम्बिः निर्वाराणसिः।**

इतर आचार्य—**एवं च कृत्वेति**। समानाधिकरण को असमर्थवान् कहने में 'वीरः पुरुषो वीरपुरुषः' इस समानाधिकरणस्थल वाले समासों के लिए अतिरिक्त-वचन पढना चाहिये। अन्यथा असमर्थ होने से 'वीरपुरुषः' ऐसा समास नहीं हो सकेगा। अन्य आचार्य- **न वा वचनेति**। 'वीरपुरुषः' में वचनप्रमाण से समास हो जायेगा। इसके लिए आचार्य ने 'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च' २.१.५८ सूत्र का निर्देश किया है। वार्तिक-**लुप्ताख्यातेषु चेति**। आख्यातपद से क्रान्त आदि क्रियापद भी वाच्य हैं। जहाँ क्रान्त आदि पदों का लोप है वहाँ भी असमर्थ होने से समास प्राप्त नहीं है। वहाँ समास का विधान करना चाहिये। जैसे-'निर्गतः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः; निर्गतो वाराणस्या निर्वाराणसिः' में निर् उपसर्ग क्रान्त आदि के साथ समर्थवान् है, परन्तु उसका यहाँ कौशाम्बी एवं वाराणसी के साथ समास हो रहा है; अतः यहाँ असमर्थ होने पर समर्थो का विहित समास प्राप्त नहीं होने से उसके लिए वचन पढना चाहिये।

* लुप्ताख्यातेषु च * **किमृ? 'वचनप्रामाण्या'दित्येव। किं वचनप्रामाण्यम्? 'कुगतिप्रादय' इति। अस्त्यन्यदेतस्य वचने प्रयोजनम्। किमृ? सुराजा, अतिराजेति। न ब्रूमो 'वृत्तिसूत्रप्रामाण्य'दिति। किं तर्हि? वार्त्तिककारवचनप्रामाण्यदिति। 'सिद्धं तु क्वाङ्स्वतिदुर्गतिवचनात्'-'प्रादयः क्तार्थे' इति** * तदर्थगतेर्वा * **तदर्थगतेर्वा पुनः सिद्धमेतत्। किमिदं तदर्थगतेरिति? तस्यार्थस्तदर्थः, तदर्थस्य गतिस्त-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दर्थगतिरिति। यस्यार्थस्य कौशाम्ब्या सामर्थ्यं स निसोच्यते। अथ वा सोऽर्थस्तदर्थः, तदर्थस्य गतिस्तदर्थगतिस्तदर्थगतेरिति। योऽर्थः कौशाम्ब्या समर्थः स निसोच्यते।

उत्तरभाष्य—**लुप्ताख्यातेषु चेति**। जहाँ क्रान्त आदि क्रियापद का लोप है वहाँ निष्कौशाम्बिः, निर्वाराणसिः' में भी 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' ग.सू. २.२.१८ इत्यादि भाष्यप्रमाण से ही समास हो जायेगा। इसे भाष्यकार ने 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ भाष्य में व्याख्या की है। अन्य आचार्य-**अस्त्यन्यदिति**। 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ इस सूत्र पर पढे गये गणसूत्रों का अन्य प्रयोजन है। इससे 'शोभनो राजा सुराजा' 'अतिगतो राजा अतिराजा' में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथया' (तत्रैव) से समास है। यहाँ गम् आदि धातुनिरूपित उपसर्गत्व प्र आदि में है, तथा प्र आदि का समास राजा आदि के साथ हो रहा है; अतः असमर्थ होने से समास अप्राप्त होने पर गणसूत्र का आरम्भ है। यहाँ 'न पूजनात्' ५.४.६९ से समासान्त टच् प्रत्यय का निषेध है। इतर आचार्य-**न ब्रूम इति**। मैं यह नही कह रहा हूँ कि 'सुराजा, अतिराजा' में सूत्रप्रामाण्य से समास हो जायेगा; अपि तु वार्तिककारवचनप्रामाण्य से यह समास होगा, ऐसा मेरा मानना है। स्मृतिशास्त्र होने से वार्तिककारवचन का प्रामाण्य भी यहाँ गृहीत है। यहाँ वार्तिककारवचन का प्रामाण्य उद्धृत करते हैं-**सिद्धं त्विति**। 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ सूत्र पर आचार्य 'सिद्धं तु क्वाङ्स्वतिदुर्गतिवचनात्' तथा 'प्रादयः क्तार्थे' यह वार्तिक पढेंगे। इससे कु, आङ्, सु, अति, दुर् और गति का भी समास कहा है। इससे 'निष्कौशाम्बिः, निर्वाराणसिः' में समास हो जायेगा। यहाँ समास होने में अन्य प्रकार भी देते हैं-**तदर्थगतेर्वेति**। कौशाम्बी और वाराणसी के साथ जिस अर्थ का सामर्थ्य है उस निष्क्रान्तरूप अर्थ को निस् कह रहा है; अतः सामर्थ्य होने से 'निष्कौशाम्बिः, निर्वाराणसिः' यह समास हो जायेगा। तदर्थगतिपद का अर्थ विग्रह के द्वारा मूल में स्पष्ट है।

अथ यत्र बहूनां समासप्रसङ्गः किं तत्र द्वयोर्द्वयोः समासो भवति, आहोस्विदविशेषेण? कश्चात्र विशेषः * समासो द्वयोर्द्वयोश्चेद् द्वन्द्वेऽनेकग्रहणम् * समासो द्वयोर्द्वयोश्चेद् द्वन्द्वेऽनेकग्रहणं कर्तव्यम्। 'चार्थे द्वन्द्वोऽनेक'मिति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-'प्लक्षन्यग्रोधखदिरपलाशा' इति। नैष दोषः। अत्रापि द्वयोर्द्वयोः समासो भविष्यति * द्वयोर्द्वयोः समास इति चेन्न बहुषु द्वित्वाऽभावात् * द्वयोर्द्वयोः समास इति चेत्। तन्न। किं कारणम्? 'बहुषु द्वित्वाऽभावात्'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न बहुषु द्वित्वमस्ति। किञ्च नाऽवश्यमेवं विग्रहः कर्तव्यः-प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च खदिरश्च पलाशश्चेति। एवं विग्रहः करिष्यते-प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ, खदिरश्च पलाशश्च खदिरपलाशौ, प्लक्षन्यग्रोधौ च खदिरपलाशौ च-प्लक्षन्यग्रोधखदिरपलाशा इति।

आक्षेपक आचार्य—**अथ यत्र बहूनामिति**। जहाँ द्वन्द्व में एक साथ अनेक पदों का समास प्राप्त हो रहा है वहाँ 'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च खदिरश्च पलाशश्च' इस विग्रह में दो दो का द्वन्द्व होगा, अथ वा सभी का एक साथ द्वन्द्व होगा? यदि दो दो का एक साथ द्वन्द्व होगा तो 'चाऽर्थे द्वन्द्वः' २.२.२९ सूत्र में अनेक पद का ग्रहण कर उक्त सूत्र के स्थान पर 'चाऽर्थे द्वन्द्वोऽनेकम्' ऐसा सूत्र पढना होगा। अन्य आचार्य-**नैष दोष इति। अत्रापि**='प्लक्षन्यग्रोधखदिरपलाशाः' में भी दो दो पदों का ही समास होगा। आक्षेपक-**द्वयोर्द्वयोः समास इति**। यदि दो दो का ही समास करेंगे तो जहाँ बहुत पदों का द्वन्द्व किया जा रहा है वहाँ 'प्लक्षन्यग्रोधखदिरपलाशाः' में द्वन्द्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। द्वित्व बहुतों में नहीं है, अपि तु दो में ही है।

समाधानभाष्य—**नावश्यम् एवमिति**। जहाँ बहुत पदों का द्वन्द्व करना है वहाँ 'प्लक्षन्यग्रोधखदिरपलाशाः' में चारों पदों का एक साथ विग्रह नहीं कर दो वार द्वन्द्व करेंगे। बाद में दो समस्त पदों का एक वार पुनः विग्रह कर दो पदों का ही समास करेंगे। इससे दो पदों का ही द्वन्द्व होगा। इसे विग्रह से स्पष्ट करते हैं-**एवं विग्रह इति**। 'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ, खदिरश्च पलाशश्च खदिरपलाशौ, प्लक्षन्यग्रोधौ च खदिरपलाशौ च-प्लक्षन्यग्रोधखदिरपलाशा इस तरह का विग्रह एवं समास करने से बहुत पदों के समास में भी दो दो का ही विग्रह रहेगा।

होतृपोतृनेष्टोद्गातारस्तर्हि न सिद्ध्यन्ति। होतापोतानेष्टोद्गातार इति प्राप्नोति। न चैतदेवं भवितव्यम्। भवितव्यं च यदैवं विग्रहः क्रियते-होता च पोता च होतापोतारौ, नेष्टा चोद्गाता च नेष्टोद्गातारौ, होतापोतारौ च नेष्टोद्गातारौ च होतापोतानेष्टोद्गातार इति। होतृपोतृनेष्टोद्गातारस्तु न सिद्ध्यन्ति * समासान्तप्रतिषेधश्च * समासान्तस्य च प्रतिषेधो वक्तव्यः। वाक्त्वक्स्रुग्दृषदमिति। वाक्त्वचस्रुग्दृषदमिति प्राप्नोति। नैष दोषः। अत्रापि परेण परेण सह समासो भविष्यति। स्रुक्च दृषच्च स्रुग्दृषदम्, त्वक्च स्रुग्दृषदं च त्वक्स्रुग्दृषदम्। वाक्च त्वक्स्रुग्दृषदञ्च वाक्त्वक्स्रुग्दृषदमिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक—**होतृपोतृनेष्टोद्गातार इति**। यदि दो दो का द्वन्द्व करेंगे तो 'आनङ्ऋतो द्वन्द्वे' ६.३.२५ के द्वारा उत्तरपद पर रहते द्वन्द्व में पूर्वपदघटक ऋत् को आनङ् होकर 'होतापोतारौ, नेष्टोद्गातारौ' रूप होगा। पुनः इन दोनों को द्वन्द्व तथा आनङ् होकर 'होतापोतानेष्टोद्गातारः' रूप प्राप्त होगा; 'होतृ-पोतृनेष्टोद्गातारः' रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा।

प्रश्नभाष्य—**न चैतदेवमिति**। तो क्या 'होतापोता- नेष्टोद्गातारः' रूप नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**भवितव्यं चेति**। जब दो दो का विग्रह कर द्वन्द्व करेंगे तब 'आनङ्ऋतो द्वन्द्वे' ६.३.२५ से प्रत्येक पूर्वपद को आनङ् आदेश होगा; फिर समस्त दोनों पदों का द्वन्द्व करने पर पूर्वपद के ऋत् को आनङ् आदेश होगा। इस तरह दो दो का द्वन्द्व करने पर 'होतापोतानेष्टोद्गातारः' रूप प्राप्त होगा। परन्तु इस पक्ष में 'होतृपोतृनेष्टोद्गातारः' रूप नहीं हो सकेगा; जब कि यह भी रूप इष्ट है; अतः दो दो का विग्रह कर समास करने में यह दोष है। दो दो का विग्रह मूल से ही स्पष्ट है। दो दो का समास करने पर अन्य भी दोष आता है, इसे स्पष्ट करते हैं-**समासान्तप्रतिषेधश्चेति**। 'वाक् च त्वक् च' इस विग्रह में समास करने पर 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' ५.४.१०६ से समासान्त टच् प्रत्यय होकर 'वाक्त्वचः' रूप होगा। बाद में 'स्रुग्दृषदम्' के साथ समास होकर 'वाक्त्वचस्रुग्दृषदम्' रूप की आपत्ति हो रही है। जब कि यहाँ 'वाक्त्वक्स्रुग्दृषदम्' रूप इष्ट है।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'वाक्त्वक्स्रुग्दृषदम्' में उत्तर-उत्तर के साथ विग्रह कर समास करेंगे; अतः चान्त त्वच् पद से समासान्त टच् की आपत्ति नहीं होगी। विग्रह मूल में स्पष्ट है।

होतृपोतृनेष्टोद्गातारस्तर्हि न सिद्ध्यन्ति। इह च—

सुसूक्ष्मजटकेशेन सुनताजिनवाससा।
समन्तशितिरन्ध्रेण द्वयोर्वृत्तौ न सिद्ध्यति।।

अस्तु तर्ह्यविशेषेण। * अविशेषेण बहुव्रीहावनेकपदप्रसङ्गः * **यद्य-विशेषेण, बहुव्रीहावनेकपद- प्रसङ्गः। तत्र को दोषः?** * तत्र स्वरस-मासान्तपुंवद्भावेषु दोषः * **तत्र स्वरसमासान्तपुंवद्भावेषु दोषो भवति।** स्वर- **पूर्वशालाप्रियः। अपरशालाप्रियः**। स्वर। समासान्त-**पञ्च-गवप्रियः। पञ्चनावप्रियः**। समासान्त। पुंवद्भाव-**खादरेतरशम्यम्। रौरवेतरशम्यम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक—**होतृपोत्रीति**। उक्त रीति से 'वाक्त्वक्स्रुग्दृषदम्' में त्वक्पदोत्तर समासान्त का वारण करने पर भी दो दो का समास करके 'होतृपोतृनेष्टोद्गातारः' की सिद्धि नहीं हो पा रही है। यहाँ प्रत्येक को आनङ् आदेश प्राप्त हो रहा है।

एवं दो दो का समास करने पर अन्य भी दोष है, उसे स्पष्ट करते हैं—**इह चेति**। मात्र दो पदों का ही समास करने पर 'सुसक्ष्मजटकेश, सुनताजिन-वासस्' एवं 'समन्तशितिरन्ध्र' यह बहुत पदों वाला समास सिद्ध नही हो सकेगा। 'सुष्ठु सुक्ष्मा जटाः केशा अस्य, समन्तः शिती रन्ध्रो अस्य' इस तरह यहाँ बहुत पदों का समास है। परन्तु अविशेषेण समासपक्ष में 'होतृपोतृनेष्टोद्गातारः' तथा सुसक्ष्मजटकेश आदि सभी की सिद्धि होने पर भी अन्यत्र दोष होगा, इसे स्पष्ट करते हैं-**अविशेषेणेति**। **अविशेषेण**=सामान्यरूप से समासपक्ष बहुव्रीहि में अनेकपदों का समास होने पर स्वर, समासान्त तथा पुंवद्भाव में दोष होगा। जैसे स्वर-जब बहुत पदों का बहुव्रीहि करेंगे तब 'पूर्वशालाप्रियः, अपरशालाप्रियः' में पूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा पूर्वशब्द तथा अपरशब्द 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' फि. सू.२६ के द्वारा आद्युदात्त होगा, परन्तु परन्तु जब दो पदों का ही बहुव्रीहि करेंगे तब तब इस पक्ष में 'पूर्वा शाला पूर्वशाला, अपरा शाला अपरशाला' में 'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च' २.१.५८ के द्वारा समास करने पर 'समासस्य' ६.१.२२३ से पूर्वशाला तथा अपरशाला पद अन्तोदात्त होगा। फिर 'पूर्वशाला प्रिया अस्य' 'अपरशाला प्रिया अस्य' इस विग्रह में दो पदों का बहुव्रीहि करने पर पूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा शाला शब्द का आकार उदात्त होगा। त्रिपदबहुव्रीहि में समासान्त भी सिद्ध नही होता है, इसे बताते हैं-**पञ्चनावप्रिय इति**। यदि 'पञ्च गावः प्रिया अस्य, पञ्च नावः प्रिया अस्य' ऐसा तीन पदों का बहुव्रीहि करेंगे तब 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ तथा 'नावो द्विगोः' ५.४.९९ के द्वारा होने वाला समासान्त प्रत्यय गो और नौ पद से पर में नही हो सकेगा। इस पक्ष में यहाँ समासान्त प्रिय पद पर रहेगा, गो और नौ पद पर नहीं; परन्तु जब दो पदों का बहुव्रीहि मानते हैं तब 'पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्, पञ्चानां नावां समाहारः पञ्चनावम्, तत् प्रियमस्य' इस द्विपद बहुव्रीहि में 'पञ्चगवप्रियः, पञ्चनावप्रियः' रूप हो जाता है। बहुत पदों के बहुव्रीहि में पुंवद्भाव में भी दोष है; इसे स्पष्ट करते हैं-**खादरेतरशम्यमिति**। 'खादिरी इतरा शम्या अस्य, रौरवी इतरा शम्या अस्य' इन तीन पदों का बहुव्रीहि होने पर उत्तरपद पर रहते अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट पूर्वपद खादिरी और रौरवी नहीं होने से उसको पुंवद्भाव नहीं हो सकेगा। परन्तु जब दो पदों का बहुव्रीहि मानते हैं तब 'इतरा शम्या इतरशम्या' ऐसा समास मानने पर 'खादिरी इतर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शम्या अस्य, रौरवी इतरशम्या अस्य' ऐसा दो पदों का समास होने से उत्तरपद इतरशम्या पर रहते खादिरी तथा रौरवी को पुंवद्भाव हो जाता है।

*** न वाऽवयवतत्पुरुषत्वात् * न वैष दोषः। किं कारणम्? 'अवयवतत्पुरुषत्वात्'। अवयवोऽत्र तत्पुरुषसंज्ञस्तदाश्रयौ समासान्तपुंवद्भावौ भविष्यतः। स्वरः कथम्? * तस्यान्तोदात्तत्वं विप्रतिषेधात् * तस्यान्तोदात्तत्वं विप्रतिषेधात्। तस्यान्तोदात्तत्वं क्रियतां पूर्वपदप्रकृतिस्वर इति अन्तोदात्तत्वं भवति विप्रतिषेधेन। नैष युक्तो विप्रतिषेधः। 'विप्रतिषेधे पर'मित्युच्यते। पूर्वं चाऽन्तोदात्तत्वम्, परं पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। न परविप्रतिषेधं ब्रूमः। किं तर्हि? अन्तरङ्गविप्रतिषेधम्।**

त्रिपद बहुव्रीहिपक्ष में प्राप्त पूर्वोक्त दोषों का वारण करते हैं—**न वाऽवयवतत्पुरुषत्वादिति**। पञ्चगवप्रियः, पञ्चनावप्रियः, खादिरेतरशम्यम्, रौरवेतरशम्यम्' में तीन पदों का बहुव्रीहि करने पर 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ के द्वारा पूर्व के दो पदों का तत्पुरुष होता है; अतः तत्प्रयुक्त समासान्त तथा पुंवद्भाव हो जाता है। तत्पुरुष और बहुव्रीहि के भिन्नविषय होने पर भी एकसंज्ञाऽधिकार में कोई विरोध नहीं है। 'खादिरेतरशम्यम्, रौरवेतरशम्यम्' में पुंवद्भावसिद्धि के लिए तत्पुरुष कर लेने पर 'खादिरी इतरशम्या अस्य, रौरवी इतरशम्या अस्य' ऐसा दो पदों का बहुव्रीहि करने से पुंवद्भाव हो जाता है; अतः यहाँ त्रिपदबहुव्रीहि नही है। 'खादिरी, रौरवी' में विकार अर्थ में प्रत्ययविधान होने से 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्याऽरक्तविकारे' ६.३.३९ यह प्रतिषेध नहीं है। त्रिपदबहुव्रीहि में स्वरसिद्धि में दोष प्राप्त था, उसका उद्धार करते हैं-**तस्यान्तोदात्तत्वमिति**। त्रिपदबहुव्रीहिस्थल 'पूर्वशालाप्रियः, अपरशालाप्रियः' में विप्रतिषेध के द्वारा अन्तोदात्त हो जायेगा। त्रिपदबहुव्रीहि करने पर उसको 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्त किया जाये, अथ वा 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर किया जाये?, इस जिज्ञासा में विप्रतिषेध के द्वारा अन्तोदात्त होगा। आक्षेपक-**नैष युक्त इति**। आचार्य 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ ऐसा कह कर तुल्यबलविरोध होने परशास्त्र को बलवान् कह रहे हैं। 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ की अपेक्षा 'समासस्य' ६.१.२२३ पूर्वशास्त्र है; अतः परशास्त्र के बलवान् होने से पूर्वपदप्रकृतिस्वर ही होगा; अन्तोदात्त नही।

समाधानभाष्य—**न परविप्रतिषेधमिति**। यहाँ मैं परविप्रतिषेध को बलवान् नही कह रहा हूँ, अपि तु अन्तरङ्गविप्रतिषेध कह रहा हूँ। 'अनुदात्तं पदमेक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्जम्' ६.१.१५८ इस वचन से दो स्वरों के युगपद् असम्भव होने, कक्षान्तर को प्राप्त होने, बाध्यबाधकभाव का अभाव होने तथा अवयवाश्रयता के कारण अन्तरङ्गत्वव्यवस्था का यहाँ आश्रयण है।

*** निमित्तस्वरबलीयस्त्वाद्वा * अथ वा निमित्तस्वरान्निमित्तिस्वरो बलीयानिति वक्तव्यम्। किं पुनर्निमित्तं, को वा निमित्ती? बहुव्रीहिर्निमित्तं, तत्पुरुषो निमित्ती। तत्तर्हि वक्तव्यं-'निमित्तस्वरान्निमित्तिस्वरो बलीया'निति? न वक्तव्यम् * एकशितिपात्स्वरवचनं तु ज्ञापकं निमित्तिस्वरबलीयस्त्वस्य * यदयं युक्तरोह्यादिष्वेकशितिपाच्छब्दं पठति तज्ज्ञापयत्याचार्यो'निमित्तस्वरान्निमित्तिस्वरो बलीया'निति। कः पुनरर्हति युक्तरोह्यादिष्वेकशितिपाच्छब्दं पठितुम्? एवं किल नाम पठ्यते-एकः शितिः एकशितिः, एकशितिः पादो यंस्येति।**

सति शिष्ट बहिरङ्ग स्वर के द्वारा अन्तरङ्गस्वर का भी बाध होता है, ऐसा अनैमित्तिक अन्तरङ्ग मान कर अन्य हेतु देते हैं-**निमित्तस्वरबलीयस्त्वादिति**। निमित्तस्वर की अपेक्षा निमित्तस्वर बलवान् होता है। बहुव्रीहि होने पर बहुव्रीहि का अवयव उत्तरपदाश्रय दो पदों का तत्पुरुष होता है; अतः बहुव्रीहि निमित्त है एवं तत्पुरुष निमित्ती है; अतः निमित्तिस्वर के बलवान् होने से 'पूर्वशालाप्रियः' में तत्पुरुषस्वर होगा। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। तो क्या 'पूर्वशालाप्रियः' इत्यादि में तत्पुरुषस्वरसिद्धि के लिए 'निमित्तस्वरबलीयस्त्वाद्वा' यह वचन पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। 'युक्तरोह्यादयश्च' ६.२.८१ गणपाठ में पूर्वपद को आद्युदात्तविधानार्थ 'एकशितिपाद्' शब्द का पाठ है। कन्प्रत्ययान्त होने से एक शब्द 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' फि.सू.२६ के द्वारा आद्युदात्त है। यहाँ त्रिपदबहुव्रीहि करने पर तथा दो पदों का तत्पुरुष करने पर 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ के द्वारा आद्युदात्त सिद्ध होगा, पुन' इसी के लिए युक्तरोह्यादिगण में एकशितिपाद् शब्द का पाठ व्यर्थ पड कर 'निमित्तस्वर की अपेक्षा निमित्तिस्वर के बलवान्' होने का ज्ञापक है। आक्षेपक-**कः पुनरर्हतीति**। 'एकः शितिरेकशितिः' ऐसा तत्पुरुषसमास करेंगे। बाद में 'एकशितिः पादो यस्य सः' ऐसा बहुव्रीहि करेंगे। इस तरह तत्पुरुषगर्भबहुव्रीहि होने से सर्वथा स्वर सिद्ध हो जा रहा है; अतः युक्तरोह्यादिगण में जो एकशितिपाद् शब्द का पाठ किया वह 'निमित्तिस्वरबलीयस्त्वाद्वा' का ज्ञापक नहीं हो सकता है।

तच्च न। एवं विग्रहः करिष्यते-एकः शितिरेषु त इमे एक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शितयः, एकशितयः पादो यस्येति एकशितिपादिति। अथाऽप्येवं विग्रहः क्रियते-एकः शितिरेकशितिः, एकशितिः पादो यस्येति, एवमपि नाऽर्थ पाठेन। 'इगन्ते द्विगा'वित्येष स्वरोऽत्र बाधको भविष्यति। अस्य तर्हि बहुव्रीह्यवयवस्य तत्पुरुषसंज्ञा प्राप्नोति- 'सुसूक्ष्मजटकेशेन सुनताजिनवाससा।

समन्तशितिरन्ध्रेणे'ति। तत्र को दोषः? 'तस्यान्तोदात्तत्वं विप्रतिषेधा'दित्यन्तोदात्तत्वं स्याद् विप्रतिषेधेन।

अन्य आचार्य इस पक्ष का खण्डन करते हैं-**तच्च नेति**। एकशितिपाद् शब्द का उक्त विग्रह नही करके 'एकः शितिरेषु त एकशितयः, एकशितयः पादा यस्य स एकशितिपाद्' ऐसा बहुव्रीहिगर्भ बहुव्रीहि करेंगे। इससे तत्पुरुषस्वर प्राप्त नहीं होगा तथा पूर्वपदप्रकृतिस्वर ही होगा। इससे युक्तरोह्यादिगण में एकशितिपाद् शब्द का पाठ स्वरविधान के प्राप्त नहीं होने पर ही होगा। इस तरह व्यर्थ नही होने से वह ज्ञापक नही हो सकता है' अतः 'निमित्तस्वरबलीयस्त्वाद्वा' को वाचनिक ही मानना चाहिये; ज्ञापकसिद्ध नहीं। अथ वा यदि 'एकः शितिरेक-शितिः, एकशितिः पादोऽस्य' ऐसा विग्रह करेंगे तब भी 'इगन्तकालकपालभगालभरावेषु द्विगौ' ६.२.२९ के द्वारा इगन्तद्विगु को पूर्वपदप्रकृतिस्वर प्राप्त होगा। इससे 'समासस्य' ६.१.२२३ सूत्र से प्राप्त स्वर का बाध हो जायेगा। आक्षेपक-**अस्य तर्हीति**। 'सुसक्ष्मजटकेशेन, सुनताजिनवाससा, समन्तशितिरन्ध्रेण' में बहुव्रीहि है तथा इसका अवयव तत्पुरुष भी है। अवयव के तत्पुरुष होने से 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा विप्रतिषेध से तत्पुरुषप्रयुक्त अन्तोदात्तस्वर होगा।

नैष दोषः। नेदं बहुव्रीह्यवयवस्य तत्पुरुषस्य तल्लक्षणमारभ्यते। किं तर्हि? यस्य यस्य बहुव्रीह्यवयवस्य तत्पुरुषस्य तल्लक्षणमस्ति तस्यान्तोदात्तत्वं भविष्यति विप्रतिषेधेन। ननु चाऽस्याप्यस्ति। किम्? 'विशेषणं विशेष्येण बहुल'मिति। बहुलवचनान्न भविष्यति। अस्य तर्हि बहुव्रीह्यवयवस्य तत्पुरुषसंज्ञा प्राप्नोति-'अधिकषष्टि-वर्ष' इति। तत्र को दोषः? 'तस्यान्तोदात्तत्वं विप्रतिषेधा'दित्यन्तो-दात्तत्वं स्याद् विप्रतिषेधेन। नैष दोषः। 'इगन्ते द्विगा'वित्येष स्वरोऽत्र बाधको भविष्यति। यस्तर्हि नेगन्तः-'अधिकषष्टिवर्ष' इति। इह चाऽप्यधिकषष्टिवर्ष इति समासान्तः प्राप्नोति 'डचः प्रकरणे सङ्ख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं निस्त्रिंशाद्यर्थ'मिति। नैष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोषः। अव्ययादेरित्येवं तत्।

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। यदि 'बहुव्रीह्यवयवस्तत्पुरुषो भवति' यह अपूर्ववचन करेंगे तब 'सुसुक्ष्मजटकेशेन' इत्यादि में दोष होगा। परन्तु यदि उत्तरपद पर रहते दिग्वाची और संख्यावाची का तत्पुरुष करेंगे तब कोई दोष नही होगा। 'तस्यान्तोदात्तत्वं विप्रतिषेधात्' यह लक्षण बहुव्रीहि का अवयव तत्पुरुष के लिए नहीं है; अपि तु जिस-जिस बहुव्रीहि का अवयव तत्पुरुष का वह लक्षण है उसी को विप्रतिषेध के द्वारा अन्तोदात्त होगा। आक्षेपक-**ननु चाऽयमस्तीति**। 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ के द्वारा जो समास है, वह बहुव्रीहि का अवयव तत्पुरुष को भी प्राप्त होगा, तथा वहाँ तत्पुरुषनिमित्तकस्वर की आपत्ति होगी।

उत्तरभाष्य—**बहुलवचनान्नेति**। उक्त सूत्र में आचार्य ने जो बहुलग्रहण किया है, उसकी प्रवृत्ति 'क्वचिदन्यदेव' रूप से भी होती है; अतः बहुव्रीहि का अवयव तत्पुरुष को विशेषणसमास होने पर उसको प्राप्त अन्तोदात्त का वारण बहुलग्रहण से हो जायेगा। इस भाष्य के द्वारा भाष्यकार 'एतत्प्रपञ्चभूतों तथा पूर्वनिपातनियमार्थो की निवृत्ति बहुलग्रहण से सूचित होती है' ऐसा कह रहे हैं। आक्षेपक-**अस्य तर्हीति**। 'अधिका षष्टिर्वर्षाण्यस्य' इन तीन पदों का बहुव्रीहि में पूर्व के दो पदों का तत्पुरुष होने से उसको अन्तोदात्त की आपत्ति होगी, जब कि यहाँ पूर्वपदप्रकृतिस्वर इष्ट है।

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ सूत्र पर 'अधिकग्रहणं चाऽलुकि समासोत्तरपदवृद्ध्यर्थम्' कह कर भाष्यकार ने अधिक पद की संख्यासंज्ञा की है। संख्यापूर्व तत्पुरुष की द्विगुसंज्ञा होती है। 'इगन्तकालकपाल-भगालशरावेषु द्विगौ' ६.२.२९ के द्वारा इगन्तद्विगु अधिकषष्टि पद का पूर्वपदप्रकृति-स्वर हो जाने से प्रकृत में अन्तोदात्तरूप दोष नही आता है। आक्षेपक-**यस्तर्हीति**। अधिक शब्द की संख्यासंज्ञा होने पर भी जो इगन्तद्विगु नही है, उस 'अधिकशत-वर्ष' में तीन पदों का बहुव्रीहि में पूर्व के दो पदों का द्विगु करने पर इगन्त-द्विगुनिमित्तक पूर्वपदप्रकृतिस्वर प्राप्त नहीं होगा, इससे अन्तोदात्त की आपत्ति होगी; एवम् 'अधिकषष्टिवर्षः' में भी दोष होगा। वह इस तरह कि 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' ५.४.७३ सूत्र पर परसंख्यान्त तत्पुरुष से भी डच् किया है। 'अधिकषष्टिवर्षः' इस बहुव्रीहिघटक अधिकषष्टि पद संख्यान्त तत्पुरुष है; अतः उससे डच् प्रत्यय प्राप्त होगा। 'डचः प्रकरणे सङ्ख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं निस्त्रिंशाद्यर्थम्' के द्वारा कहा है। यहाँ डच् प्रत्यय होने पर 'चितः' ६.१.१६३ के द्वारा अन्तोदात्त की आपत्ति हो रही है, जब कि यहाँ पूर्वपदप्रकृतिस्वर इष्ट है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। अव्ययपूर्वपदसंख्यान्ततत्पुरुष में ही डच् प्रत्यय होता है, अन्यत्र नहीं। 'अधिकषष्टिवर्षः' में अधिकषष्टि पद अव्ययपूर्वक संख्यान्ततत्पुरुष है, अधिकषष्टिवर्ष नहीं; अतः उसको डच् नहीं होने से अन्तोदात्त की आपत्ति नहीं होगी।

किं पुनः कारणम्-'अव्ययादेरित्येवं तत्'? इह मा भूद्-गोत्रिंशद्, गोचत्वारिंशदिति। बहुव्रीहिसंज्ञा तर्हि प्राप्नोति'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नादूराऽधिकसंख्याः संख्येये' इति। न संख्यां संख्येये वर्तयिष्यामः। कथम्? एवं विग्रहः करिष्यते-'अधिका षष्टिर्वर्षाणामस्येति। यथा तर्हि स योगः प्रत्याख्यायते तथा पूर्वेण प्राप्नोति। कथं च स योगः प्रत्याख्यायते? 'अशिष्यः संख्योत्तरपदः संख्येयार्थाभिधायित्वादि'ति। प्रत्याख्याते तस्मिन् योगे संख्यां संख्येये वर्तयिष्यामः। तत्रैवं विग्रहः करिष्यतेअधिका षष्टिर्वर्षाण्यस्येति।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। आचार्य डच्प्रकरण में अव्ययपूर्वपद संख्यान्त का ही ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**इह मा भूदिति**। जहाँ अव्ययपूर्वसंख्या नहीं है वहाँ 'गोत्रिंशत्, गोचत्वारिंशत्' में डच् की प्रवृत्ति न हो, इसके लिए अव्ययादिग्रहण है। आक्षेपक-**बहुव्रीहिसंज्ञा तर्हीति**। 'अधिकषष्टिवर्षः' में तीन पदों का बहुव्रीहि करने पर 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ के द्वारा दो पदों का तत्पुरुष प्राप्त है, उसका बाध कर 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ से बहुव्रीहि प्राप्त होने पर 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' ५.४.७३ से डच् की आपत्ति होगी।

उत्तरभाष्य—**न संख्यामिति**। हम यहाँ संख्या को संख्येय में शक्त मान कर 'अधिका षष्टिर्वर्षाण्यस्य' ऐसा विग्रह नहीं करेंगे, अपि तु 'अधिका षष्टिः वर्षाणामस्य' ऐसा विग्रह करेंगे। यद्यपि इस विग्रह में भी 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ के द्वारा बहुव्रीहि प्राप्त है, ऐसा कह सकते हैं, तथापि संख्येय अर्थ में संख्या की वृत्ति नहीं होने से डच् की अप्राप्ति हो रही है; अतः प्रयोजन का अभाव कहा जा सकता है; इस आशय से–'यथा तर्हि स योगः प्रत्याख्यायते तथा पूर्वेण' ऐसा कहा है। **'स योगः'**='संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ यह योग।

प्रश्नभाष्य—**कथं च स योग इति**। 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ यह योग कैसे प्रत्याख्यात है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**अशिष्य इति**। संख्या उत्तरपद संख्येय अर्थ का वाचक होने से **अशिष्य**=अकरणीय होगी। इससे 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ के द्वारा ही समास हो जाने से 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ सूत्र का प्रत्याख्यान हो जायेगा। अव्यविकन्याय के द्वारा 'अधिका षष्टिः वर्षाणामस्य' इस विग्रह में वाक्य ही रहेगा।

सर्वथा वयमधिकषष्टिवर्षान्न मुच्यामहे। कथम्? यावता स च योगः प्रत्याख्यायते। अयं च विग्रहोऽस्ति-अधिका षष्टिर्वर्षाणामस्येति। यत्तु तदुक्तम्-'अधिकषष्टिवर्षो न सिद्ध्यती'ति, स सिद्धो भवति। कथम्? यावता स च योगः प्रत्याख्यायते। अयं च विग्रहोऽस्ति--अधिका षष्टिर्वर्षाण्यस्येति। अधिकशतवर्षस्तु न सिद्ध्यति। कर्तव्योऽत्र यत्नः।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम्

●

समासवृत्ति के लिए 'अधिका षष्टिर्वर्षाणि अस्य' ऐसा विग्रह करेंगे। अव्यविकन्याय नहीं मान कर कहते हैं-**सर्वथेति**। 'अधिकषष्टिवर्षाणाम्' यह भी रूप प्राप्त होता है; अतः 'अधिका षष्टिर्वर्षाणाम्' इस विग्रह में बहुव्रीहि होकर समासान्त डच् प्रत्यय एवं टिलोप है। यहाँ 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ इस सूत्र का प्रत्याख्यान होने पर 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ के द्वारा बहुव्रीहि प्राप्त है। इससे पूर्व में जो आक्षेप किया था कि 'अधिकषष्टिवर्षः' की सिद्धि नहीं होती है' वह भी उचित नहीं है। 'संख्ययाऽव्यया- ऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.५५ सूत्र का प्रत्याख्यान होने पर 'अधिका षष्टिर्वर्षाणि अस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ के द्वारा ही समास हो जायेगा। आक्षेपक-**अधिकशतवर्षस्त्विति**। अधिकशतवर्ष में पूर्व के दोनों पदों को तत्पुरुष करने पर समासान्तोदात्त प्राप्त हो रहा है, जब कि यहाँ पूर्वपद- प्रकृतिस्वर इष्ट है।

समाधानभाष्य—**कर्तव्योऽत्रेति**। युक्तरोह्यादिगण में अधिकशतवर्ष पद का पाठ कर उसे पूर्वपदप्रकृतिस्वर करना चाहिये। {समर्थः पदविधिः}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय प्रथम पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे २.१.२

सुबिति किमर्थम्? करोष्यटन्। नैतदस्ति। असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'समानाधिकरणमसमर्थवद् भवती'ति। इदं तर्हि पीड्ये पीड्यमान!। इदं चाप्युदाहरणं-करोष्यटन्। ननु चोक्तम्-'असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'समानाधिकरणमसमर्थवद् भवती'ति। नैष दोषः। 'अधात्वभिहित'मित्येवं तत्र।

सूत्रार्थ—'आमन्त्रित पर रहते स्वर की कर्त्तव्यता में सुबन्त पर का अङ्गवत् हो'। 'सामन्त्रितम्' २.३.४८ के द्वारा सम्बोधन में प्रथमान्त सु'विभक्त्यन्त की आमन्तित्रसंज्ञा होती है।

प्रश्नभाष्य—**सुबिति किमर्थमिति**। 'आमन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' इतना ही सूत्र रखिये; सुब्ग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है। आमन्त्रित पद होगा; अतः उसके पर रहते विधीयमान पराङ्गवद्भाव के पदविधि होने से समर्थपरिभाषा की उपस्थिति होगी। इस तरह सुबन्त को ही पराङ्गवद्भाव होगा, तिङन्त को नहीं। इसे इस प्रकार समझना चाहिये-'व्यधिकरण तिङन्त का वास्तविक स्वरूप होगा तथा सामानाधिकरण्य का वाचनिक। अतिव्याप्तिनिरास के लिए 'षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनम्' (अत्रैव भाष्ये) यह अवश्य करना पडेगा। इसी से तिङन्त का निरास सिद्ध हो जायेगा। परन्तु सुब्ग्रहण करने पर 'तीक्ष्णया सूच्या सीव्यन्!' इत्यादि में सुबन्तसमुदाय को अप्राप्त होने से अव्याप्ति होती है।

उत्तरभाष्य—**करोष्यटन्निति**। सुब्ग्रहण करने से 'करोष्यटन्!' में तिङन्त को पराङ्गवद्भाव नही होता है। आक्षेपक-**नैतदस्तीति**। 'करोषि अटन्!' यह प्रथमासमानाधिकरण है। प्रथमासमानाधिकरण असमर्थवान् होता है; अतः असामर्थ्यात् 'करोषि अटन्!' में तिङन्त को पराङ्गवद्भाव नहीं होगा। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'पीड्ये पीड्यमान!' में तिङन्त 'पीड्ये' को पराङ्गवद्भाव न हो, एतदर्थ सुब्ग्रहण है। यहाँ 'हे पीड्यमान! त्वदीयया पीडयाऽहं पीड्ये' इस अन्वय में सामर्थ्य है। अथ वा यहाँ सम्बोधनपद के क्रिया का ही विशेष्यक होने से सामर्थ्य है। इस तरह 'व्रजानि देवदत्त!' में निघात नही होता है। 'पीड्ये' में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुक- मनुदात्तमन्ह्विङोः' ६.१.१८६ के द्वारा लसार्वधातुक का अनुदात्तत्व है। यक्प्रत्यय के उदात्त होने से 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ से एकार उदात्त है। 'पीड्यमान!' में पद से उत्तर में पद को निघात है। 'करोष्यटन्!' के भी प्रत्युदाहरण होने का मण्डन करते हैं-**इदं चापीति**। 'करोष्यटन्!' भी प्रत्युदाहरण हो सकता है। आपने जो इसे समानाधिकरण होने से असमर्थवद् कह रखा था वहाँ 'अधात्वभिहित' ऐसा सङ्कोच है। यहाँ धातु के द्वारा अभिहित समानाधिकरण है; अतः समर्थवान् ही रहेगा।

* आमन्त्रितस्य पराङ्गवद्भावे षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनम् * **आमन्त्रितस्य पराङ्गवद्भावे षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनं कर्तव्यम्। आमन्त्रितस्य पराङ्गवद्भावे षष्ठ्यन्तमामन्त्रितकारकं च पराङ्गवद् भवतीति वक्तव्यम्। षष्ठ्यन्तं तावत्-मद्राणां राजन्, मगधानां राजन्। आमन्त्रितकारकम्-कुण्डे नाऽटन्। नास्त्यत्र विशेषः सति च पराङ्गवद्भावेऽसति वा। इदं तर्हि परशुना वृश्चन्।**

वार्तिक—**आमन्त्रितस्येति**। आमन्त्रित को पराङ्गवद्भावविधि में षष्ठ्यन्त तथा आमन्त्रितकारक का भी ग्रहण करना चाहिये। जैसे-षष्ठ्यन्त-'हे मद्राणां राजन्!, हे मगधानां राजन्!' में षष्ठ्यन्त को पराङ्गवद्भाव होता है। आमन्त्रित पर रहते जो विधान किया जाता है वह आमन्त्रितसम्बन्धी होता है; अतः 'आमन्त्रितस्य' ऐसा षष्ठीनिर्देश है। आमन्त्रितकारकवचन–'आमन्त्रित पर रहते जो धातुवाच्या क्रिया, उसका जो कारक, उसको भी पराङ्गवद्भाव हो'। जैसे–'कुण्डे नाऽटन्!'।

खण्डनभाष्य—**नाऽस्त्यत्रेति**। 'कुण्डे नाऽटन्!' में कुण्ड शब्द को पराङ्गवद्भाव किया जाये, अथ वा नहीं किया जाये, कोई भेद नहीं है। 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य' फि.सू.२६ के द्वारा कुण्डशब्द आद्युदात्त है। पद से पर आमन्त्रित को निघात होगा। यहाँ पराङ्गवद्भाव होने पर भी सुबन्तसमुदाय को आद्युदात्त तथा शेषनिघात होने से कोई भेद नहीं है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। आमन्त्रितकारक का 'परशुना वृश्चन्!' यह प्रयोजन है। 'आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च' उ.सू.३३ के द्वारा कु-प्रत्ययान्त परशुशब्द अन्तोदात्त है।

* तन्निमित्तग्रहणं वा * **तन्निमित्तग्रहणं वा कर्तव्यम्। आमन्त्रितनिमित्तं परस्याङ्गवद् भवतीति वक्तव्यम्। मद्राणां राजन्। तच्चाऽवश्यमन्यतरद् वक्तव्यम्** * अवचने हि सुबन्तमात्रप्रसङ्गः * **अनुच्यमाने ह्येतस्मिन् सुबन्तमात्रस्य पराङ्गवद्भावः प्रसज्येत। अस्यापि प्रसज्येत,-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः संरभस्व, मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व। किं पुनरत्र ज्यायः? तन्निमित्तग्रहणमेव ज्यायः। इदमपि सिद्धं भवतिगोषु स्वामिनू!, अश्वेषु स्वामिनू!। एतद्धि नैव षष्ठ्यन्तं नाप्यामन्त्रितकारकम्।

वार्तिक—**तन्निमित्तग्रहणं वेति**। यहाँ 'वा'पद विकल्पार्थक है। '**तस्य**=आमन्त्रित का जो निमित्त, वह विकल्प से पराङ्गवद् हो' यह वार्तिकार्थ है। जैसे 'मद्राणां राजनू!' में मद्रनिमित्त राजत्व होने से तन्निमित्तत्व है। भृत्यदेशनिमित्ता ही राजता होती है। **तच्चाऽवश्यम्**='तन्निमित्तग्रहणं वा' यह अथ वा 'षष्ठ्यामन्त्रित-कारक- वचनम्' इसमें से कोई एक अवश्य पढना चाहिये। इसका निर्देश नहीं करने पर दोष देते हैं-**अवचने हीति**। उक्त वार्तिक नहीं पढने पर सुबन्त-मात्र को पराङ्गवद्भाव की आपत्ति होगी। इससे 'क्षत्रेणाग्ने स्वायुः संरभस्व, मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व' में आख्यातवाच्या क्रिया की अपेक्षा क्षत्र और मित्र करण हैं। यदि 'तन्निमित्तग्रहणं वा' इस वार्तिक का निर्देश नहीं करेंगे तो यहाँ क्षत्र और मित्र को भी क्रिया द्वारा व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य होने से पराङ्गवद्भाव की आपत्ति होगी। यहाँ वचन के द्वारा अतिप्रसङ्ग निरस्त होने पर पूर्वसूत्र से एकार्थी-भावसामर्थ्य ही लिया जायेगा। अन्यथा द्विविधसामर्थ्य के आश्रयण की आपत्ति होगी।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरत्रेति**। यहाँ क्या उचित है? तन्निमित्तग्रहण किया जाये, अथ वा 'षष्ठ्यमन्त्रितकारकवचनम्' का निर्देश किया जाये? गौरव और लाघव का अनादर कर प्रयोजनापेक्ष प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**तन्निमित्तग्रहण-मेवेति**। तन्निमित्तग्रहण ही करना चाहिये। इससे 'गोषु स्वामिनू!, अश्वेषु स्वामिनू!' का भी ग्रहण हो जाता है। यहाँ शेषषष्ठीविषय में सप्तमी का विधान होने से कारकत्व नहीं है। परन्तु पूर्वोक्तन्याय से यहाँ निमित्तत्व है। यहाँ 'गोषु' और 'अश्वेषु' षष्ठ्यन्त भी नहीं हैं तथा मामन्त्रितकारक भी नही हैं।

* सुबन्तमात्रस्य पराङ्गवद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यानमनन्त रत्वात् * **सुबन्तमात्रस्य पराङ्गवद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्। तीक्ष्णया सूच्या सीव्यनू, तीक्ष्णेन परशुना वृश्चनू। किं पुनः कारणं न सिद्ध्यति? 'अननन्तरत्वात्'। ननु च परस्य पराङ्गवद्भावे कृते पूर्वस्यापि भविष्यति** * स्वरेऽवधारणाच्च * **स्वरेऽवधारणाच्च न सिद्ध्यति। स्वरेऽवधारणं क्रियते, नानन्तर्ये।**

वार्तिक—**सुबन्तस्येति**। 'तीक्ष्णया सूच्या सीव्यनू!' में 'सूच्या' का एवं 'तीक्ष्णेन परशुना वृश्चनू!' में 'परशुना' का **अनन्तत्वात्**=व्यवधान होने से पराङ्गवद्भाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त नहीं है; अत इसका पराङ्गवद्भाव के लिए समानाधिकरणसुबन्त का भी ग्रहण करना चाहिये। इससे 'तीक्ष्णया सूच्या' तथा 'तीक्ष्णेन परशुना' के समानाधिकरण होने से 'तीक्ष्णया' तथा 'तीक्ष्णेन' को भी पराङ्गवद्भाव हो जाता है। 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ परिभाषा के द्वारा अव्यवहितपूर्वत्व की उपस्थिति होने से अप्राप्त होने पर वार्तिकावतार है। **स्वरेऽवधारणाच्चेति**। प्रसिद्ध लौकिक आनन्तर्य में स्वर के विधीयमान होने पर पराङ्गवद्भाव का विधान किया जाता है। परन्तु स्व में क्रियाविरोध होने तथा अन्य अतिदेश का अभाव होने से पराङ्गवद्भाव की कर्तव्यता में इसी के द्वारा आनन्तर्य का सम्पादन नहीं होता है। परन्तु जब स्वरग्रहण नहीं करते हैं तब विषयभेद से लक्षणभेद होता है। इस तरह पर का आनन्तर्यव्यवहार की कर्तव्यता में पराङ्गवद्भाव कर लेने पर पूर्व का भी पराङ्गवद्भाव प्राप्त होता है। मुख्यार्थ सम्भव होने पर गौण अर्थ का ग्रहण नहीं होने से यहाँ स्वरशब्द से स्वरार्थ आनन्तर्य नहीं कहा जा रहा है।

* परमपि च्छन्दसि * **परमपि च्छन्दसि पूर्वस्याङ्गवद् भवतीति वक्तव्यम्। आ तें पितर्मरुतां सुम्नमेतु। प्रतिं त्वा दुहितर्दिवः। वृणीष्व दुहितर्दिवः** * अव्ययप्रतिषेधश्च * **अव्ययानां च प्रतिषेधो वक्तव्यः। उच्चैरधीयान! नीचैरधीयान!** * अनव्ययीभावस्य * **अनव्ययीभावस्येति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-उपाग्न्यधीयान!, प्रत्यग्न्यधीयान!।**

वार्तिक—**परमपि च्छन्दसीति**। 'वेद में पर सुबन्त भी पूर्व आमन्त्रित का अङ्ग होता है' ऐसा कहना चाहिये। इससे 'आ तें पितर्मरुतां सुम्नमेतु' में 'पितः' यह आमन्त्रित निघात के द्वारा अनुदात्त है। उससे पर में 'मरुताम्' यह सुबन्त भी अनुदात्त ही होता है। इसी तरह 'प्रतिं त्वा दुहितर्दिवः' 'वृणिष्व दुहितर्दिवः' में भी 'दुहितः' पद आमन्त्रितनिघात के द्वारा अनुदात्त है तथा उससे पर में सुबन्त 'दिवः' पद भी पूर्वाङ्गवद्भाव के द्वारा अनुदात्त होगा। **अव्ययप्रतिषेधेति**। अव्ययों के पराङ्गवद्भाव का प्रतिषेध कहना चाहिये। इससे 'उच्चैरधीयान!' 'नीचैरधीयान!' में आमन्त्रित पर रहते 'उच्चैः' 'नीचैः' को पराङ्गवद्भाव नहीं होगा। 'उच्चैः'शब्द स्वरादि में अन्तोदात्त पढा गया है। अधिकरणशक्तिप्रधान होने से तन्निमित्तसद्भाव है। **अनव्ययीभावस्येति**। अव्ययीभाव से भिन्न अव्यय का ही पराङ्गवद्भाव में प्रतिषेध कहना चाहिये। इससे 'अग्नेः समीपमुपाग्न्यधीयान!' एवम् 'अग्निमग्निं प्रतीति प्रत्यग्न्यधीयान!' में उपाग्नि तथा प्रत्यग्नि का पराङ्गवद्भाव हो जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ किमर्थं स्वरेऽधारणं क्रियते? * स्वरेऽधारणं सुबलोपार्थम् * स्वरेऽधारणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'सुबलोपार्थम्'। सुब्लोपो मा भूदिति। परशुना वृश्चन्! * न वा सुबन्तैकान्तत्वात् * न वा कर्तव्यम्। किं कारणम्? 'सुबन्तैकान्तत्वात्'। सुबन्तैकान्तः पराङ्गवद्भावो भवति।

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। आचार्य स्वर की कर्तव्यता में पराङ्गवद्भाव क्यों कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**सुबलोपार्थमिति**। यदि यहाँ स्वर की कर्तव्यता में पराङ्गवद्भाव नही करेंगे तो यह सुप्कार्य नहीं होकर प्रातिपदिककार्य होगा। इससे 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुप् के लुक् की आपत्ति होगी। स्वरकार्य में पराङ्गवद्भाव होने से सुब्लोप नहीं होता है। आक्षेपक- **न वेति**। स्वर की कर्तव्यता में सुबन्त का पराङ्गवद्भाव सुप् का अलुक् करने के लिए नहीं करना चाहिये। पराङ्गवद्भाव सुबन्त का **एकान्तः**=अवयव ही होता है। पराङ्गवद्भावविषयता होने से यहाँ पराङ्गवद्भाव कहा जा रहा है। 'पराङ्गवत्' इस भाष्य में 'पर'शब्द के द्वारा सन्निधिवश आमन्त्रित कहा जा रहा है। वह आमन्त्रित भी सुबन्त ही है; अतः अन्तरङ्गता होने से सुबन्तकार्य ही होगा, प्रातिपदिककार्य नहीं।

*** प्रातिपदिकैकान्तस्तु सुब्लोपे * प्रातिपदि-कैकान्तस्तु भवति सुब्लोपे कृते। प्रत्ययलक्षणेन सुबन्तैकान्तता स्यात्, तस्मात् स्वरेऽधारणं न कर्तव्यं सुबलोपार्थम्। प्रातिपदिकस्थायाः सुपो लुगुच्यते। तस्मात् स्वरग्रहणेन नार्थः। इदं तर्हि प्रयोजनं-षत्वणत्वे मा भूतामिति। कूपे सिञ्चन्!, चर्म नमन्निति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम। इह तावत्कूपे सिञ्चन्निति स्वाश्रयं पदादित्वं भविष्यति। चर्म नमन्निति,-'पूर्वपदात् संज्ञायामग' इत्येतस्मान्नियमान्न भविष्यति। ननु च समास एवैतद्भवति पूर्वपदमुत्तरपदमिति। 'ने'त्याह। अविशेषेणैवैतद् भवति-पूर्वं पदं पूर्वपदम्, उत्तरं पदमुत्तरपदमिति। {सुबामन्त्रिते}।**

यदि पराङ्गवद्भाव को प्रातिपदिक का अवयव माना जाये तो उस पक्ष में कहते हैं-**प्रातिपदिकैकान्तस्त्विति**। 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' ६.१.६९ से सुब्लुक् करने पर सुबन्त आमन्त्रित पर रहते प्रातिपदिक का ही अवयव होगा, सुबन्त का नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**प्रत्ययलक्षणेनेति**। सम्बोधन में 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' ६.१.६९ के द्वारा प्रत्यय का लुक् होने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ के द्वारा सुबन्तत्व का लाभ हो जाने से सुबन्त को सुबन्त का पराङ्गवद्भाव होगा। अतः सुबन्त सुबन्त का ही अवयव होगा, प्रातिपदिक का नहीं। इस तरह 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः; २.४.७१ से सुब्लुक् प्राप्त नहीं है; अतः सुप् का अलुक् के लिए सुबन्त को सुबन्त का पराङ्गवद्भाव कहना व्यर्थ है। इस तरह इसके लिए किया गया स्वरग्रहण व्यर्थ है। भाष्यकार ने 'प्रातिपदिकस्थायाः सुपः' ऐसा प्रयोग किया है। इस भाष्यप्रमाण से सुप् पद की स्त्रीलिङ्गता है। मण्डनवादी-**इदं तर्हीति**। यदि प्रकृतसूत्र में स्वरग्रहण नहीं करेंगे तो 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्' इतना ही सूत्र होगा। इससे स्वर तथा अन्य षत्व, णत्व की कर्तव्यता में भी पराङ्गवद्भाव होने से 'कूपे सिञ्चन्!' में समानपदत्व होने से सकार पदादि नहीं होगा; अतः षत्व की आपत्ति होगी। एवं 'चर्म नमन्!' में पराङ्गवद्भाव होने से 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ के द्वारा समानपदत्वरूप णत्व की अतिव्याप्ति होगी।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। प्रकृतसूत्र में स्वरग्रहण का यह भी फल नहीं है। पराङ्गवद्भाव होने पर भी 'कूपे सिञ्चन्!' में स्वाश्रयपदादित्व का विघात नहीं होने से षत्व का वारण हो जायेगा। 'चर्म नमन्!' में 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ के नियम से ही वारण हो जायेगा। 'पूर्वपदस्थ निमित्त से पर में गकारवान्-भिन्न उत्तरपदस्थ नकार को णत्व हो तो णत्व से संज्ञा गम्य होने पर ही हो, अन्यत्र नहीं' इस नियम से स्वाश्रयसिद्ध पदत्व का आश्रयण कर णत्व का वारण हो जायेगा। अन्य आक्षेपक-**ननु च समास इति**। पूर्वपद और उत्तरपद समास में रूढ है।

खण्डनभाष्य—**'ने'त्याहेति**। पूर्वपद और उत्तरपद सामान्यरूप से भी व्यवहृत होते हैं तथा समास भी शक्त हैं। व्याप्तिन्याय का आश्रयण करने से यहाँ 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ सूत्र में यौगिक पूर्वपद ही लिया जायेगा, यह भाष्याशय है। इस तरह भाष्यकार ने यहाँ स्वरग्रहण का प्रत्याख्यान कर दिया है। इसके प्रत्याख्यात होने पर प्रकृतसूत्र में समानाधिकरण का ग्रहण भी प्रत्याख्यात हो जाता है। पर का पराङ्गवद्भाव करने पर भी विषयभेद से लक्षण का अवर्तन होगा, जिससे पराङ्गवद्भाव सिद्ध हो जायेगा। {सुबामन्त्रिते परा-}।

प्राक्कडारात् समासः २.१.३

प्राग्वचनं किमर्थम्? * प्राग्वचनं समाससंज्ञाऽनिवृत्त्यर्थम् * प्राग्वचनं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'समाससंज्ञाऽनिवृत्त्यर्थम्'। समाससंज्ञाया अनिवृत्तिर्यथा स्यादिति। अक्रियमाणे हि प्राग्वचनेऽनवकाशा अव्ययीभावादयः संज्ञाः समाससंज्ञां बाधेरन्, ता मा बाधिषतेति प्राग्वचनं क्रियते।

सूत्रार्थ—'कडारात्=कडारपदघटितसूत्र 'कडाराः कर्मधारये' २..२.३८ से पूर्व तक 'समासः' का अधिकार हो'।

प्रश्नभाष्य—**प्राग्वचनं किमर्थमिति**। यहाँ आक्षेप के द्वारा अवधित्व का भी द्योतन हो जायेगा। स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर 'प्रत्ययः' ३.१.१ की तरह मात्र 'समासः' मात्र इतना ही अधिकार कीजिये,। अनवकाश होने से अन्य संज्ञाओं के साथ समाससंज्ञा का समावेश हो जायेगा; फिर यहाँ सूत्र में 'प्राक्कडारात्' ऐसा अवधि का निर्देश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**समाससंज्ञेति**। अव्ययीभाव आदि संज्ञाओं से समाससंज्ञा का बाध न हो, इसके लिए 'प्राक्कडारात्' पद का निर्देश है। अन्यथा 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ के द्वारा एकसंज्ञा का अधिकार होने से अव्ययीभाव आदि संज्ञाओं के द्वारा समाससंज्ञा के बाध की आपत्ति होगी। परन्तु प्राग्वचन करने पर अव्ययीभाव आदि संज्ञा तथा समाससंज्ञा यह दोनों संज्ञायें एकाधिकरण में उपपन्न हो जाती हैं।

अथ क्रियमाणेऽपि हि प्राग्वचने यावता अनवाकाशा अव्ययीभावादयः संज्ञाः कस्मादेव न बाधन्ते? क्रियमाणे हि प्राग्वचने सत्यां समाससंज्ञायामेता अवयवसंज्ञा आरभ्यन्ते। तत्र वचनात् समावेशो भविष्यति। समाससंज्ञाऽप्यनवकाशा, सा वचनाद् भविष्यति। साऽवकाशा समाससंज्ञा। कोऽवकाशः? विस्पष्टादीन्यवकाशः। विस्पष्टं पटुः विस्पष्टपटुः। व्यक्तं पटुः व्यक्तपटुः। नैषोऽस्त्यवकाशः।

आक्षेपक—**अथ क्रियमाणेऽपि हीति**। अनवकाशविधि अपवाद होता है। अव्ययीभाव आदि संज्ञा के अनवकाश होने से समाससंज्ञा का बाध होना चाहिये; परन्तु यहाँ बाध क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**क्रियमाणे हीति**। स्वरितत्वप्रतिज्ञा के द्वारा ही अधिकार प्राप्त होने पर 'प्राक्कडारात्' इस उपादानसामर्थ्य से 'प्राक्'पद की आवृत्ति करेंगे। इससे पहले समाससंज्ञक होंगे। पश्चात् समाससंज्ञक होता हुआ अव्ययीभाव-आदि-संज्ञक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होंगे। इस तरह समावेश सिद्ध हो जाता है। 'समाससमूह की अपेक्षा से किसी समास की कोई संज्ञा होती है' इसको 'अव्ययसंज्ञा आरभ्यन्ते' पद से कहा है। 'समासः' इस वनचसामर्थ्य से समाससंज्ञा का भी अव्ययीभाव आदि संज्ञाओं के साथ समावेश हो जायेगा। उत्तरसूत्रों से विहित अव्ययीभाव आदि संज्ञाओं के साथ अनवकाश होने से समाससंज्ञा भी हो जायेगी; अतः प्रत्येक की अव्ययीभाव आदि तथा समास, यह दो संज्ञायें होगी।

उत्तरभाष्य—**सावकाशा इति**। 'विस्पष्टं पटुः विस्पष्टपटुः' में प्रवृत्तिनिमित्त पाटव आदि का विस्पष्ट विशेषण है, द्रव्य का नहीं; अतः 'विस्पष्टम्' ऐसा नपुंसक निर्देश है। अत एव मुख्य सामानाधिकरण्य नही होने से विस्पष्टपटुः' में तत्पुरुष नहीं कहा जा सकता है। इस तरह 'व्यक्तं पटुः व्यक्तपटुः' में भी उक्त कारण से ही तत्पुरुष नही है; अतः 'विस्पष्टपटुः, व्यक्तपटुः' में मात्र समाससंज्ञा ही प्राप्त है; तत्पुरुष आदि नहीं; अत एव समाससंज्ञा चरितार्थ है।

एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते-'येनैवावयवकार्यं भवति तैनैव समुदायकार्यमपि भवती'ति। येनैव चात्रावयवकार्यं स्वरः क्रियते, तेनैव समुदायकार्यमपि समासो भविष्यति-'विस्पष्टादीनि गुण-वचनेषु' इति। इदं तर्हिकाकतालीयम्, अजाकृपणीयमिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। अत्रापि येनैव चात्रावयवकार्यं प्रत्ययोत्पत्तिः क्रियते, तेनैव समुदायकार्यं समाससंज्ञा भविष्यति- 'समासाच्च तद्विषया'दिति।

खण्डनभाष्य—**एषा हीति**। आचार्य की यह **शैली** {=शीले=स्वभावे भवा वृत्तिः शैली} देखी जाती है कि जिस कार्य से अववयकार्य बताते हैं, उसी हेतु से समुदायकार्य भी बताते हैं। 'विस्पष्टपटुः, व्यक्तपटुः' में जिस हेतु से 'सह सुपा' २.१.४ के अभाव में भी **अवयवकार्य**=पूर्वपदप्रकृतिस्वर किया जा रहा है; उसी हेतु से **समुदायकार्य**=समाससंज्ञा भी हो जायेगी। 'सह सुपा' २.१.४ सूत्र के अभाव में भी वृद्धकुमारीवरन्याय से 'विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु' ६.२.२४ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर का विधान होने से तन्निमित्तक समाससंज्ञा भी हो जायेगी। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'काकतालीयम्, अजाकृपणीयम्' में काक-ताल तथा अजाकृपण पद में 'सह सुपा' २.१.४ का केवलसमास है। भूतसमासा-नुवाद के द्वारा यहाँ 'समासाच्च तद्विषयात्' ५.३.१०६ से 'छ' प्रत्यय है। इवार्थ में अन्यपदार्थ होने पर भी यह बहुव्रीहि नही है; अतः यहाँ 'सह सुपा' २.१.४ के द्वारा ही समास है। 'काकस्यागमनमिव चैत्रस्यागमनं, तालस्य पतनमिव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दस्योरुपनिघातः' यह प्रथम इवार्थ है तथा इसी अर्थ में समास है। इसके बाद 'तेन तालेन पतता यथा काकस्य वधस्तथा दस्युना चैत्रस्य' यह द्वितीय इवार्थ है। इसमें 'छ' प्रत्यय है। यहाँ 'छ' प्रत्यय समास से ही है; अतः जिस हेतु से यहाँ अवयवकार्य 'छ' प्रत्यय की उत्पत्ति करते हैं, उसी हेतु से समाससंज्ञा भी हो जायेगी; अतः यहाँ समाससंज्ञा को सावकाश नही कह सकते हैं। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हि पुनाराज इति**। 'पुनाराजः, पुनर्गवः' में क्रमशः 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ तथा 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ के द्वारा समासान्त प्रत्यय समाससंज्ञानिमित्तक है। यहाँ किसी भी सूत्र से तत्पुरुष प्राप्त नही है; अतः 'सह सुपा' २.१.४ के द्वारा ही समास होगा। यहाँ समाससंज्ञा सावकाश है। आचार्य यहाँ 'अच्' ऐसा योगविभाग से तत्पुरुषसंज्ञा के विना भी रूपसिद्धि मान रहे हैं।

इदं तर्हि-पुनाराजः पुनर्गवः। अत्राप्यवश्यं तत्पुरुषसंज्ञा वक्तव्या, तत्पुरुषाश्रयः समासान्तो यथा स्यात्। इदं तर्हि-पुनराधेयम्। अत्राप्यवश्यं गतिसंज्ञा वक्तव्या, 'गतिकारकोपपदात् कृ'दित्येष स्वरो यथा स्यात्। इदं तर्हि-'पुनरुत्स्यूतं वासो देयम्'।

आक्षेपक—**अत्राऽप्यवश्यमिति**। 'पुनाराजः, पुनर्गवः' इत्यादि में भी 'मयूरव्यंसकादयश्च' २.१.७२ के द्वारा तत्पुरुष ही समझना चाहिये तथा तत्पुरुषाश्रय समासान्त टच् प्रत्यय ही करना चाहिये। इससे 'पुनर्गवी' में टिल्लक्षण ङीप् ४.१.१५ की सिद्धि हो सकेगी। प्रयोजनवादी-**अत्रापीति**। 'पुनराधेयम्' में पुनर् पद की गतिसंज्ञा करके 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ के द्वारा तत्पुरुषसमास कहना चाहिये। इससे यहाँ 'गतिकारकोपपदात् कृत्' ६.२.१३९ के द्वारा कृत्स्वर सिद्ध हो सकेगा; अतः यहाँ भी केवलसमास चरितार्थ नहीं है। 'पुनराधेयम्' में 'यतोऽनावः' ६.१.२१३ के द्वारा धेयशब्द के आद्युदात्त होने से पुनराधेयशब्द का एकार उदात्त है। परन्तु गतिसंज्ञा के अभाव में यहाँ समासान्तोदात्तत्व की आपत्ति होगी। समासान्तोदात्तत्व नही होने पर कोई भेद नहीं होने से समाससंज्ञा का ही भाव मान रहे हैं। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'पुनरुत्स्यूतं वासो देयम्' यह समस्तपद है। यहाँ किसी विशेषसूत्र से कोई विशेषसमास प्राप्त नहीं होने से 'सह सुपा' २.१.४ के द्वारा केवलसमास होने पर समाससंज्ञा चरितार्थ है।

अत्राप्यवश्यं गतिसंज्ञा वक्तव्या, 'गतिर्गता'विति निघातो यथा स्यात्। यदि तत्रास्ति 'पुनश्चनसौ च्छन्दसी'ति। सति तस्मिँस्तेनैव सिद्धम्। एवमप्येका संज्ञेति वचनान्नास्ति यौगपद्येन सम्भवः। अनुवृत्तिः क्रियेत। पर्यायः प्रसज्येत। तस्मात् प्राग्वचनं कर्तव्यम्। {प्राक्कडारात्}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक—**अत्राप्यवश्यमिति**। 'पुनरुत्स्यूतम्' में पुनर् पद की गतिसंज्ञा कर 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ के द्वारा तत्पुरुषसमास ही कहना चाहिये। इससे 'गतिर्गतौ' ८.१.७० के द्वारा 'उत्' इस गति के पर रहते 'पुनर्' इस गति का **निघात**=सर्वानुदात्त हो सकेगा। गतिसंज्ञा नहीं होने पर यहाँ 'समासस्य' ६.१.२२३ से अन्तोदात्त की आपत्ति होगी। परन्तु 'गतिरनन्तरः' ६.२.४९ में अनन्तरग्रहणसामर्थ्य के द्वारा 'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्' ६.२.१४४ का बाध कर 'उत्' शब्द को प्रकृतिस्वर उदात्त होता है। परन्तु पर होने से पुनःशब्द का शेषनिघात का बाध कर 'गतिर्गतौ' ८.१.७० से निघात होता है। 'गतिश्च' १.४.६० सूत्र पर भाष्यकार ने 'पुनश्चनसौ च्छन्दसि' वचन पढ कर पुनः और चनस् पद की गतिसंज्ञा कही है; उसी से यहाँ पुनःशब्द की गतिसंज्ञा हो जायेगी। 'गतिश्च' १.४.६० सूत्रस्थ भाष्यवार्तिक 'पुनश्चनसौ च्छन्दसि' नहीं मानेंगे तो इस सूत्र पर वचननिर्देश कर पुनःशब्द की गतिसंज्ञा कहनी होगी। इस तरह 'सह सुपा' २.१.४ की निरवकाशता में एकदेशी के द्वारा प्रतिपादित होने पर भी पर्याय ही प्राप्त हो रहा है, समावेश नहीं, इसे बताते हैं-**एवमप्येकसंज्ञेति**। उक्त पर्याय प्राप्त होने पर भी 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ इस एकसंज्ञाधिकार से एक वार में एक ही संज्ञा होने से पर्यायप्रसङ्ग नहीं होगा। यदि मात्र 'समासः' इतना ही सूत्रपाठ कर स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर उत्तरसूत्रों में अनुवृत्ति करेंगे तो समास तथा अव्ययीभाव आदि संज्ञाओं की पर्यायत्वापत्ति होगी। परन्तु जब प्राग्वचन करते हैं तब पर्यायत्व की आपत्ति नहीं होकर उभयसंज्ञाओं का एकत्र समावेश हो जाता है। समाससंज्ञा का फल प्रातिपदिकसंज्ञा होना तथा अव्ययीभावसंज्ञा का फल नपुंसक तथा अव्यय होना है। {प्राक्}।

सह सुपा २.१.४

सहवचनं किमर्थम्? * सहवचनं पृथगसमासार्थम् * **सहवचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? पृथगसमासार्थम्'। सहभूतयोरेव समाससंज्ञा यथा स्यादेकैकस्य समाससंज्ञा मा भूदिति। किं च स्यात्,-यद्येकैकस्य समाससंज्ञा स्यात्? इह 'ऋक्पाद' इति समासान्तः प्रसज्येत। इह च 'राजाश्व' इति च द्वौ स्वरौ स्यातम्।**

'सह' अव्ययपद, 'सुपा' तृतीयान्त होने से यह दो पदों का सूत्र है। 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे' २.१.२ सूत्र से 'सुप्' इस प्रथमान्त पद की अनुवृत्ति होती है। सूत्रार्थ-'सुबन्त के साथ सुबन्त का समास हो'।

प्रश्नभाष्य—**सहवचनं किमर्थमिति**। जैसे 'वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१.२.६५ में 'यूना' यह तृतीयान्तनिर्देश होने से 'सह' अर्थ का बोध होता है, वैसे प्रकृत में तृतीयान्त 'सुपा' इस तृतीयान्तनिर्दिश होने से 'सह' अर्थ का बोध हो जाता; इस तरह सहार्थ का लाभ होने पर भी पुनः 'सह' पद का निर्देश क्यों करते हैं।

उत्तरभाष्य—**सहवचनमिति**। जैसे 'पुत्रेण सहागतः' में पिता और पुत्र दोनों का आगमनक्रिया के साथ संम्बन्ध है, वैसे सहग्रहण के अभाव में प्रत्येक की समाससंज्ञा की आपत्ति होगी। परन्तु जब 'सह'ग्रहण करते हैं तब सहभूत दो पदों की एक ही समाससंज्ञा होती है।

प्रश्नभाष्य—**किं च स्यादिति**। यदि प्रत्येक की समाससंज्ञा होगी तो क्या दोष होगा?

उत्तरभाष्य—**इह ऋक्पाद इति**। प्रत्येक की समाससंज्ञा होने पर 'ऋक्पादः' में ऋक् भी समाससंज्ञक होगा तथा पाद भी। इस तरह यहाँ 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त प्रत्यय की आपत्ति होगी। एवं 'राजाश्वः' में प्रत्येक की समाससंज्ञा होने पर दोनों को पृथक्-पृथक् स्वर प्राप्त होगा। जब कि समुदाय की समाससंज्ञा होने पर 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा समुदाय को एक ही स्वर समासान्तोदात्त होता है। यद्यपि यहाँ प्रत्येक की समाससंज्ञापक्ष में राजन्शब्द से समासान्त टच् ५.४.७५ प्रत्यय भी प्राप्त है, तथापि समासान्त होने तथा नहीं होने पर कोई दोष नहीं होने से स्वरद्वयप्रसङ्गरूप दोष दिया है। इसी तरह 'ऋक्पादः' में भी दो स्वरों का भी दोष समझना चाहिये।

कथं च कृत्वैकैकस्य समाससंज्ञा प्राप्नोति? 'प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिर्दृष्टे'ति। तद्यथा-वृद्धिगुणसंज्ञे प्रत्येकं भवतः। ननु चाऽयमप्यस्ति दृष्टान्तः-'समुदाये वाक्यपरिसमाप्ति'रिति। तद्यथा 'गर्गाः शतं दण्ड्यन्ता'मिति, अर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति, न च प्रत्येकं दण्डयन्ति। सत्येतस्मिन् दृष्टान्ते यदि तत्र प्रत्येकमित्युच्यते, इहापि 'सह'ग्रहणं कर्तव्यम्। अथ तत्रान्तरेण 'प्रत्येक'मिति वचनं प्रत्येकं गुणवृद्धिसंज्ञे भवतः, इहापि नार्थः सहग्रहणेन।

प्रश्नभाष्य—**कथं च कृत्वेति**। एकार्थीभाव में समासविधान है। समुदाय ही विशिष्ट अर्थ का वाचक होता है; अतः समुदाय का ही संस्कार होगा। समुदाय ही प्रधान होगा तथा अवयव अप्रधान होगा; अतः द्विर्वचन की तरह समुदाय की ही समाससंज्ञा होगी; फिर प्रत्येक की समाससंज्ञा की आपत्ति कैसे दे रहे हैं? अभिप्राय का ग्रहण नहीं करके इतर आचार्य कहते हैं प्रत्येकमिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्येक में भी वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे गुणसंज्ञा औ वृद्धिसंज्ञा प्रत्येक की होती है वैसे सह पद का निर्देश नहीं करने पर समाससंज्ञा भी प्रत्येक की होगी। अन्य आचार्य-**ननु चाऽयमपीति**। समुदाय में भी वाक्य-परिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे 'गर्गगोत्र वालों को सौ दण्ड लगावो'। चूँकि राजा को धन चाहिये; अतः प्रत्येक को दण्ड नहीं देकर समुदाय को ही दण्डित करता है। इस तरह समुदाय में वाक्यपरिसमाप्तिदृष्टान्त के होने पर भी प्रकृतसूत्र में प्रत्येक की समाससंज्ञा का वारण के लिए यदि 'सह'ग्रहण करते हैं तो 'गर्गाः शतं दण्ड्यन्ताम्' में भी 'सह'ग्रहण करना चाहिये था। अथ वा गुण वृद्धि संज्ञा में प्रत्येक पद का निर्देश नहीं करने पर भी यदि प्रत्येक की गुणसंज्ञा और वृद्धिसंज्ञा होती है, तब समुदाय में वाक्यपरिसमाप्तिन्याय से समुदाय की ही समाससंज्ञा होगी, प्रत्येक की नहीं; अतः 'सह'ग्रहण व्यर्थ है।

एवं तर्हि सिद्धे सति यत्सहग्रहणं करोति-तस्यैतत्प्रयोजनम्-'योगाङ्गं यथा विज्ञायेत'। सति च योगाङ्गे योगविभागः करिष्यते-'सह'। सह सुप्समस्यते। केन सह? समर्थेन। अनुव्यचलत्, अनुप्राविशत्।

समाधानभाष्य—**एवं तर्हि सिद्ध इति**। इस तरह 'सह'ग्रहण के अभाव में भी समुदाय की ही समाससंज्ञा होने पर आचार्य ने जो 'सह'ग्रहण किया है उसका प्रयोजन यह है कि प्रकृतसूत्र को योगाङ्ग जाना जाये। इसके योगाङ्ग होने से हम इसका योगविभाग करेंगे। इससे 'सह' यह प्रथमयोग होगा। इसमें पूर्वसूत्र 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे' २.१.२ से 'सुप्' पद की अनुवृत्ति होगी। अर्थ होगा-'सुबन्त का समर्थ के साथ समास हो'। इससे 'अनुव्यचलत्, अनुप्राविशत्' में सुबन्त और तिङ्न्तों का भी समास हो जाता है। 'सुप्' यह एकवचननिर्देश है; अतः दोनों स्थलों में 'वि' और 'प्र' का तथा बाद में अनु का समास होगा; अतः समाससंज्ञा होने पर शाकलप्रतिषेध से यणादेश होता है। 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ इस निघात से बाधित होने के कारण समासान्तोदात्त नहीं होता है। यहाँ 'गतिर्गतौ' ८.१.७० से 'अनु' निघात है। 'वि' शब्द उदात्त है। 'उदात्तस्वरितोदयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ८.२.४ के द्वारा अकार स्वरित है। इस तरह 'अनुप्राविशत्' में प्रयोजन होने से भाष्यकार का उदाहरण अव्यक्त होता है; अतः 'सतिशिष्ट होने से यहाँ समासान्तोदात्त होना चाहिये' ऐसा श्रीकैयट जी का कहना है। यहाँ तिङ् के द्वारा एकत्व के उक्त होने से प्रातिपदिक-संज्ञा होने पर भी सुप् की उत्पत्ति नहीं होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततः 'सुपा'। सुपा च सह सुप् समस्यते। अधिकारश्च। लक्षणं च। यस्य समासस्याऽन्यल्लक्षणं नास्ति इदं तस्य लक्षणं भविष्यति। 'पुनरुत्स्यूतं वासो देयम्' 'पुनर्निष्कृतो रथः' इति *इवेन विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च* **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम्। वाससीइव। कन्येइव।** {सह सुपा}।

द्वितीययोग 'सुपा' यह तृततीयान्त पद होगा। इसमें पूर्वसूत्र से 'सुप्' २.१.२ तथा पूर्वयोग 'सह' की अनुवृत्ति होगी। अर्थ होगा-'सुवन्त का सुबन्त के साथ समास हो'। 'देवदत्तः पचति' में सुबन्त और तिङ्ङन्त का वारण के लिए उत्तरसूत्रों में अधिकार होने से 'सुप् सह सुपा' सह अधिकार होगा। एवं जिस समास का अन्य लक्षण अव्ययीभाव आदि नहीं होगा उस 'पुनरुत्स्यूतम्' 'पुनर्निष्कृतः' में सुबन्त का सुबन्त के साथ समासविधान करने से यह लक्षण भी होगा। गतिसंज्ञा नहीं होने पर भी पुनःशब्द को 'परादिश्छन्दसि बहुलम्' ६.२.१९९ के द्वारा 'उद्' शब्द को समासान्तोदात्त का अपवाद आद्युदात्तत्व होगा, ऐसा मान रहे हैं। अथ वा काठक में पुनःशब्द अन्तोदात्त ही पढा गया है, इस अभिप्राय से पुनःशब्द की गतिसंज्ञा नहीं होने पर भी यह उदाहरण है। वार्तिक-**इवेन विभक्त्यलोप इति**। सुबन्त का 'इव' पद के साथ समास, विभक्ति का अलोप तथा पूर्वपदप्रकृतिस्वर कहना चाहिये। 'सुपा' इस लक्षण से ही यहाँ समास सिद्ध होने पर अन्य कार्यविधान के लिए वचन का आरम्भ है। 'वासंस्' शब्द 'वस्तेर्णित्' उ.सू.६५७ से असुन् प्रत्ययान्त आद्युदात्त है। समास से उत्पन्न 'सु' प्रत्यय का 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से लुक् है। 'कन्याराजन्यमनुष्याणाम्' फि.सू.७६ में पाठ होने से कन्याशब्द अन्तस्वरित है। {सह सुपा}।

अव्ययीभावः २.१.५

किमर्थं महती संज्ञा क्रियते? अन्वर्थसंज्ञा यथा विज्ञायेतअनव्ययमव्ययं भवतीत्यव्ययीभावः। अव्ययीभावोऽव्ययसंज्ञो भवती-त्येतन्न वक्तव्यं भवति।

यह संज्ञासूत्र है। इसका अधिकार 'तत्पुरुषः' २.१.२२ से पूर्व तक है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'लघ्वर्थं संज्ञाकरणम्' १.१:१ कह कर भाष्यकार ने लघ्वीसंज्ञा का समर्थन किया है। आचार्य भी 'टि, घु' आदि लघ्वी संज्ञा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते हैं। परन्तु प्रकृत में 'अव्ययीभावः' यह महती संज्ञा की है; इसका क्या प्रयोजन है? सिद्धान्ती-**अन्वर्थसंज्ञेति**। यहाँ आचार्य बृहत्संज्ञा करके कुछ अव्ययकार्य का प्रारम्भ करते हैं। 'न अव्ययमनव्ययम्, अनव्ययमव्ययं भवतीत्यव्ययीभावः' इस विग्रह से अव्ययीभाव को अव्ययकार्य होने से अव्ययीभाव को अव्ययकार्य के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं होती है। {अव्ययीभावः}।

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु २.१.६

इह कस्मान्न भवति-सुमद्राः सुमगधाः, सपुत्रः सच्छात्र इति। समृद्धौ साकल्य इति च प्राप्नोति? नैष दोषः। इह कश्चित् समासः पूर्वपदार्थप्रधानः। कश्चिदुत्तरपदार्थप्रधानः। कश्चिदन्यपदार्थप्रधानः। कश्चिदुभयपदार्थप्रधानः। पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः। उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः। अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः। उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः। न चात्र पूर्वपदार्थप्राधान्यं गम्यते।

सूत्रार्थ—'विभक्ति आदि अर्थों में शक्त अव्यय का समर्थसुबन्त के साथ समास हो एवम् उसकी समाससंज्ञा और अव्ययीभावसंज्ञा हो'।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। 'मद्राणां समृद्धिः' अथ वा 'मद्रानपरित्यज्य' इस विग्रह में उक्तसूत्र से समृद्धि और साकल्य अर्थ में अव्ययीभाव होकर 'सुमद्रम्' आदि रूप प्राप्त है; वह क्यों नहीं होता है?

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। इन समासों के मध्य में कोई पूर्वपदार्थप्रधान है, कोई उत्तरपदार्थप्रधान है, कोई अन्यपदार्थप्रधान है, कोई उभयपदार्थप्रधान है। पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव होता है। उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष होता है। अन्यपदार्थप्रधान बहुव्रीहि होता है। उभयपदार्थप्रधान द्वन्द्व होता है। 'सुमद्राः' आदि में पूर्वपदार्थ की प्रधानता गम्य नहीं है, अतः इसे अव्ययीभाव नहीं कहा जा सकता है। 'अर्द्धपिप्पली' इत्यादि तत्पुरुष में पूर्वपदार्थप्रधानता है। 'उन्मत्तगङ्गं नाम देशः' इस अव्ययीभाव में अन्यपदार्थप्रधानता है। 'द्वादश' इत्यादि बहुव्रीहि में उभयपदार्थप्रधानता है; एवं द्वन्द्व में समाहारप्रधानता गम्य होने से उक्त लक्षण बाहुल्याभिप्रायेण समझना चाहिये।

अथ वा नेमे समासार्था निर्दिश्यन्ते। किं तर्हि? अव्ययार्था

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इमे निर्दिश्यन्ते-'एतेष्वर्थेषु यदव्ययं वर्तते तत्सुबन्तेन सह समस्यत' इति ।

अन्य पक्ष में भी उक्त आक्षेप का निवारण करते हैं—**अथ वेति**। विभक्ति, समीप आदि को समासार्थ मान कर '–समीपसमृद्धि–' आदि का निर्देश नहीं है; अपि तु अव्ययार्थ का निर्देश है-'समीप आदि अर्थों में जो अव्यय, उसका सुबन्त के साथ समास हो'। 'सुमद्राः' इत्यादि में 'सु' और 'सत्' अव्यय पद समीप आदि अर्थों में शक्त नहीं है; अतः यहाँ अव्ययीभावसमास नहीं होगा। {अव्यय-}।

यथाऽसादृश्ये २.१.७

असादृश्य इति किमर्थम्? यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्त इति। असादृश्य इत्युच्यते, तत्रेदं न सिद्ध्यति-यथाशक्ति, यथाबलमिति। किं कारणम्? यथेत्ययं प्रकारवचने थाल्, स च सादृश्ये वर्तते। नैष दोषः। अयं यथाशब्दोऽस्त्येवाव्युत्पन्नं प्रातिपदिकं वीप्सावाचि। अस्ति प्रकारवचने थाल्। तत्र यदव्युत्पन्नं प्रातिपदिकं वीप्सावाचि तस्येदं ग्रहणम्। अथ यः प्रकारवचने थाल्तस्य ग्रहणं कस्मान्न भवति, पूर्वेण प्राप्नोतिसादृश्यसम्पत्ती'ति? प्रतिषेधवचनसामर्थ्यान्न भविष्यति। {यथाऽसादृश्ये}।

पूर्वसूत्र 'अव्ययं विभक्ति'-में सादृश्य अर्थ यथाशब्द के द्वारा गृहीत है; अतः अदादृश्य=योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य से भिन्न अर्थ में शक्त जो यथाशब्द, उसी का समास हो, अन्य का नहीं' ऐसा नियम होगा।

प्रश्नभाष्य—**असादृश्य इतीति**। 'यथाशब्दः सुबन्तेन सह समस्यते, सादृश्ये द्योत्ये न' ऐसा सूत्रार्थ होगा। इसका 'यथाशक्ति' ऐसा उदाहरण है। सूत्रगृहीत अव्यय के साथ समास नहीं होने से 'यथाशक्ति' में यथार्थत्वेन समासं सिद्ध नहीं होता है; अतः प्रश्न है-'असादृश्यग्रहण क्यों करते हैं? यहाँ सम्पूर्णसूत्र पर प्रश्न नहीं है, अपि तु सूत्रैकदेश असादृश्य पर ही प्रश्न है। पूर्वोक्त रीति से 'यथा' इतना ही मात्र सूत्र होना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**यथा देवदत्त इति**। 'यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः'. में जहाँ सादृश्य गम्य हो रहा है वहाँ 'यथा' मात्र इतना ही सूत्र रखने से सादृश्य अर्थ में यथाशब्द के साथ भी समास की आपत्ति हो रही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपभाष्य—**असादृश्य इतीति**। यदि प्रकृतसूत्र में असादृश्यग्रहण करते हैं तब 'शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति, बलमनतिक्रम्य यथाबलम्' में सादृश्य अर्थ गम्य है; अतः यहाँ इष्ट समास प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इसका कारण स्पष्ट करते हैं-**यथेत्ययमिति**। 'येन प्रकारेण' इस विग्रह में 'प्रकारवचने थाल्' ५.३.३३ से थाल् प्रत्यय प्रकारवचन अर्थ में है। प्रकारवचन का सादृश्य अर्थ ही है; अतः थाल्प्रत्यय का सादृश्य अर्थ होने से असादृश्य अर्थ गम्य होने पर 'यथाशक्ति' आदि इष्ट रूप की असिद्धि हो रही है।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' १.२.४५ एवं 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ सूत्र का आरम्भ कर आचार्य ने व्युत्पन्न तथा अव्युत्पन्न दोनों प्रकार के प्रातिपदिकों का समर्थन किया है। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' १.२.४५ सूत्र से अव्युत्पन्न पक्ष, एवं 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ से व्युत्पन्नपक्ष भी शास्त्रसिद्ध है। प्रकृतसूत्र में वीप्सावाची अव्युत्पन्न प्रातिपदिक कहा का ग्रहण है; एवं पूर्वसूत्र 'अव्ययं विभक्ति–'२.१.६ में 'यद्' प्रातिपदिक से थाल् प्रत्ययान्त व्युत्पन्न प्रातिपदिक का ग्रहण है। थाल् प्रत्ययान्त व्युत्पन्न प्रातिपदिक का प्रकृत में ग्रहण नहीं है; अपि तु जो वीप्सावाची अव्युत्पन्नप्रातिपदिक 'यथा'शब्द है, उसी का यहाँ ग्रहण है। यहाँ वीप्साग्रहण उपलक्षण है; अतः योग्यता और पदार्थानतिवृत्ति अर्थ का भी ग्रहण होगा।

प्रश्नभाष्य—**अथ य इति**। जो थाल्प्रत्ययान्त यथाशब्द है उसका प्रकृत में ग्रहण क्यों नही होता है?

उत्तरभाष्य—**पूर्वेण प्राप्नोतीति**। पूर्व सूत्र 'अव्ययं विभक्ति–'२.१.६ में यथाशब्द का पाठ कर थाल्प्रत्ययान्त यथाशब्द का योग्यता आदि अर्थों में समास-विधान है; जब कि प्रकृतसूत्र में 'असादृश्य' इस निषेधवचन सामर्थ्य से अव्युत्पन्न 'यथा' इस प्रातिपदिक का ही ग्रहण होता है; थाल्प्रत्ययान्त व्युत्पन्न का नहीं। इस तरह इस भाष्य से यह आया कि 'अव्ययं विभक्ति–'२.१.६ के द्वारा व्युत्पन्नप्रातिपदिक थाल्प्रत्ययान्त यथाशब्द का सादृश्य अर्थ में शक्त होने पर ही समास होगा; जब कि प्रकृतसूत्र में योग्यता, वीप्सा और पदार्थानतिवृत्ति अर्थ में शक्त अव्युत्पन्न प्रातिपदिक का समास होगा। {यथाऽसादृश्ये}।

सुप्प्रतिना मात्रार्थे २.१.९

'सुबि'ति वर्तमाने पुनः सुब्ग्रहणं किमर्थम्? 'अव्यय'मित्येवं तदभूत्, सुब्मात्रे यथा स्यात्-माषप्रति सूपप्रति ओदनप्रति। {सुप्प्रतिना}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'सुबन्त का मात्रा अर्थ में शक्त प्रति के साथ समास हो, एवम् उसकी समाससंज्ञा तथा अव्ययीभावसंज्ञा हो'। शाकस्य लेशः शाकप्रति। सूपस्य लेशः सूपप्रति।

प्रश्नभाष्य—**सुबिति वर्तमान इति**। 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे' २.१.२ सूत्र से 'सुप्' पद की अनुवृत्ति आ रहा थी; फिर प्रकृतसूत्र में 'सुप्' पद का ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**अव्ययमित्येवमिति**। 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे' २.१.२ सूत्र में 'सुप्' पद के अव्ययसम्बद्ध होने से सुबन्त अव्ययों का ही समास होगा। जैसे-अधिहरि इत्यादि। 'सुप्'मात्र में उसकी प्रवृत्ति नहीं होगी; जब कि 'सुप्'मात्र का समास इष्ट है; उसी के लिए सुब्ग्रहण करते हैं। इससे सुबन्त मात्र का मात्रार्थक 'प्रति' के साथ समास होने से 'माषप्रति, सूपप्रति, ओदनप्रति' की भी सिद्धि हो जाती है। {सुप्प्रतिना मात्रार्थे}।

अक्षशलाकासंख्याः परिणा २.१.१०

* अक्षादयस्तृतीयान्ताः परिणा पूर्वोक्तस्य यथा न तदयथाद्योतने * **अक्षादयस्तृतीयान्ताः परिणा सह समस्यन्त इति वक्तव्यम्। 'पूर्वोक्तस्य यथा न तत्'। 'अयथाद्योतने'। अयथाजातीयके द्योत्ये। अक्षेणेदं न तथा वृत्तं यथा पूर्वमिति,-अक्षपरि शलाकापरि** * अक्षशलाकयोश्चैकवचनान्तयोः * **अक्षशलाकयोश्चैकवचनान्तयोरिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-अक्षाभ्यां वृत्तम्, अक्षैर्वृत्तमिति** * कितवव्यवहारे च * **कितवव्यवहार इति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-अक्षेणेदं न तथा वृत्तं, शकटेन यथा पूर्वमिति।**

सूत्रार्थ—'अक्ष, शलाका और संख्यावाची परि पद के साथ समस्त हों, तथा उसकी समास एवम् अव्ययीभावसंज्ञा हो'।

वार्तिक—**अक्षादयस्तृतीयान्ता इति**। जयकाल में अक्ष आदि एकरूप जो वर्तन, तद्विपरीतपराजय में जो वर्तन, वह यदि 'परि' पद से द्योत्य है, तब अक्ष आदि तृतीयान्त का 'परि' पद के साथ समास कहना चाहिये। अक्ष आदि का वर्तन-क्रिया में कर्तृता है; अतः न्याय से ही तृतीयान्त अर्थ लब्ध होने पर विभक्त्यन्त-रभ्रमनिरास के लिए 'अक्षादयस्तृतीयान्ताः' ऐसा कहा है। **पूर्वोक्तस्य**=पूर्ववृत्त का। धातुओं के अनेकार्थक होने तथा नियतविषय होने से वच परिभाषणे धापा.१०६३ धातु यहाँ इस भाष्यप्रयोग में वर्तन अर्थ में है। अतः पूर्ववृत्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जय का सम्बन्धी जो वर्तन हुआ, यदि सम्प्रति वह वर्तन उस तरह नही होता है, तब पराजय गम्य होने पर ही समास होगा। जैसे-अक्षेणेदं न तथा वृत्तं यथा पूर्वमिति अक्षपरि। शलाकयेदं न तथा वृत्तं यथा पूर्वमिति शलाकापरि। **अक्षशलाकयोरिति**। अक्ष और शलाका पद का एकवचन में विग्रह होने पर ही समास कहना चाहिये, द्विवचन और बहुवचन से विग्रह में नहीं। इससे 'अक्षाभ्यां वृत्तम्, अक्षैर्वा वृत्तम्' 'शलाकाभ्यां वृत्तं, शलाकाभिर्वा वृत्तम्' इस द्विवचन तथा बहुवचन में विग्रह करने पर समास नहीं होगा। वृत्ति में द्वित्व तथा बहुत्व का बोध असम्भव होगा; एवम् एकवचन के उत्सर्गतः सिद्ध होने पर यह वार्तिक है। **कितवव्यवहारे चेति**। **कितव**=धूर्तता का व्यवहार अर्थात् जूआ खेलना अर्थ गम्य होने पर ही उक्त समास कहना चाहिये, अन्यथा नहीं। पञ्चिका नाम का द्यूत पाँच अक्षों अथ वा शलाकाओं से होता है। वे पाँचों यदि एकरूप में ही गिरते हैं तब गिराने वाला विजयी होता है। परन्तु उनका अन्यथा पतन होने पर गिराने वाला पराजित होता है।

उपर व्याख्यात वार्तिको हा यहाँ कारिकारूप में संग्रह करते हैं—

अक्षादयस्तृतीयान्ताः पूर्वोक्तस्य यथा न तत्।
कितवव्यवहारे च एकत्वेऽक्षशलाकयोः।।

(अक्षशलाकासंख्याः परिणा)

विभाषाऽपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या २.१.११-१२

* विभाषेति योगविभागः * **विभाषेति योगविभागः कर्तव्यः। 'विभाषे'त्ययमधिकारः। ततः-'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्ये'ति।।**

भाष्यकार—**विभाषेति योगविभाग इति**। 'विभाषाऽपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' ऐसा संहितापाठ है। इसका योगविभाग कर 'विभाषा' यह प्रथमयोग तथा 'अप-परिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' यह द्वितीय योग कहना चाहिये। इसमें प्रथम योग अधिकार होगा तथा द्वितीय योग विधि होगा।

* पञ्चमीग्रहणं शक्यमकर्तुम् * **कथम्? सुबन्तेनेति वर्तते। एतैश्च कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी विधीयते। तत्राऽन्तरेणापि पञ्चमीग्रहणं पञ्चम्यन्तेनैव समासो भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-'बहिःशब्देन योगे पञ्चमी न विधीयते, तत्रापि यथा स्याद्-बहिर्ग्रामं बहिर्ग्रामात्।**

खण्डनभाष्य—**पञ्चमीग्रहणमिति**। यह सम्पूर्ण विधिसूत्र का खण्डन है। 'अपपरी वर्जने' १.४.८८ से अप और परि की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तथा उसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योग में 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' २.३.१० से पञ्चमी विहित है। एवम् 'अन्यारादितर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९ के द्वारा अञ्चू धातु के योग में पञ्चमी का विधान है; अतः प्रकृतसूत्र में पञ्चमीग्रहण नहीं होने पर भी पञ्चमी का लाभ हो रहा है। इस तरह प्रकृतसूत्र में पञ्चमीग्रहण नहीं करना चाहिये था। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। बहिःशब्द के योग में पञ्चमीविधान नहीं है। बहिःपद का भी पञ्चम्यन्त के साथ समास होकर 'ग्रामाद् बहिः' इस विग्रह में 'बहिर्ग्रामम्' यह अव्ययीभावसमास हो, इसके लिए पञ्चमीग्रहण है।

अथ क्रियमाणेऽपि पञ्चमीग्रहणे यावता बहिःशब्देन योगे पञ्चमी न विधीयते कथमिवैतत् सिद्ध्यति? पञ्चमीग्रहणसामर्थ्यात्। {विभाषाऽपपरि}।

आक्षेपक—**अथ क्रियमाणेऽपीति**। कहीं पर बहिःपद के योग में पञ्चमी विहित नहीं है, फिर प्रकृत सूत्र में पञ्चमी ग्रहण करने पर भी बहिः के योग में अप्राप्त पञ्चमी कैसे होगी?

उत्तरभाष्य—**पञ्चमीग्रहणेति**। प्रकृतसूत्र में पञ्चमीग्रहणसामर्थ्य से बहिः के योग में भी पञ्चमी सिद्ध होती है; अन्यथा यहाँ बहिर्ग्रहण भी व्यर्थ होने लगेगा। {**विभाषाऽपपरि-**}।

आङ् मर्यादाऽभिविध्योः २.१.१३

* मर्यादाऽभिविधिग्रहणं शक्यमकर्तुम् * **कथम्? पञ्चम्यन्तेनेति वर्तते। आङा च कर्मप्रवचनीयेन युक्ते पञ्चमी विधीयते। एतयोश्चैवार्थयोराङ् कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति नान्यत्र।** {आङ् मर्यादाऽभिविध्योः}।

पूर्वसूत्र 'अपपहिरबरिञ्चवः पञ्चम्या; २.१.१२ से 'पञ्चम्या' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ-'मर्यादा और अभिविधि अर्थ में शक्त आङ् पद का पञ्चम्यन्त के साथ समास हो तथा उसकी अव्ययीभाव एवं समाससंज्ञा हो'।

भाष्यकार प्रकृतसूत्रस्थ 'मर्यादाऽभिविध्योः' का खण्डन करते हैं-**मर्यादाऽभिविधिग्रहणमिति**। 'आङ् मर्यादावचने' १.४.८९ सूत्र में वचनग्रहणसामर्थ्य से अभिविधि का भी ग्रहण है, अतः मर्यादा और अभिविधि अर्थ में शक्त आङ् की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा 'आङ् मर्यादावचने' १.४.८९ से होती है तथा उक्त कर्मप्रवचनीय आङ् के योग में 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' २.३.१० के द्वारा पञ्चमी विहित है। पूर्वसूत्र 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' २.१.१२ से 'पञ्चम्या' की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुवृत्ति हो रही है; अतः तत्सामर्थ्य से यहाँ मर्यादा और अभिविधि अर्थ में शक्त आङ् ही लिया जायेगा; अन्यत्र नहीं; अतः प्रकृतसूत्र में मर्यादा और अभिविधिग्रहण व्यर्थ है। {आङ्-}।

यस्य चायामः २.१.१६

किमुदाहरणम्? अनुगङ्गं हास्तिनपुरम्। अनुगङ्गं वाराणसी। अनुशोणं पाटलिपुत्रम्। 'यस्य चायाम' इत्युच्यते। गङ्गा चाप्यायता, हास्तिनपुरमप्यायतं, वाराणस्याप्यायता, तत्र कुत एतत् गङ्गया सह समासो भविष्यति, न पुनर्हास्तिनपुरेण, न पुनर्वाराणस्येति? एवं तर्हि 'लक्षणेने'ति वर्तते। गङ्गा चैव हि लक्षणं न वाराणसी। अथ वा 'यस्य चायाम' इत्युच्यते। गङ्गा चाप्यायता वाराणस्यप्यायता। तत्र प्रकर्षगतिर्विज्ञाते- 'साधीयो यस्यायामः' इति। साधीयश्च गङ्गायाः, न वाराणस्याः। {यस्य चायामः}।

'अनुर्यत्समया' २.१.१५ से यहाँ 'अनुः' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'अनु के द्वारा जिसका दैर्ध्य द्योत्य है उस लक्षणभूत के साथ अनु का समास हो एवम् उसकी अव्ययीभावसंज्ञा तथा समाससंज्ञा हो'।

जिज्ञासु—**किमुदाहरणमिति**। प्रकृतसूत्र का क्या उदाहरण है?

उत्तरभांष्य—**अनुगङ्गमिति**। गङ्गादैर्घ्यसदृश दैर्घ्योपलक्षित हास्तिनपुर, वाराणसी एवं शोणदैर्घ्यसदृश दैर्घ्योपलक्षित पाटलिपुत्र, यह उदाहरण है। लक्ष्य और लक्षण इन दोनों के आयाम होने से सन्दिग्ध जिज्ञासु पूर्वपक्ष करते हैं-**यस्येति**। 'जिसका विस्तार द्योत्य हो' ऐसा कहा जा रहा है। उक्त उदाहरण में गङ्गा, हास्तिनपुर और वाराणसी इन तीनों का तथा शोण और पाटलिपुत्र यह दोनों का दैर्घ्यबोध हो रहा है; फिर क्या कारण है कि गङ्गा पद और शोण पद के साथ समास होगा हास्तिनपुर, वाराणसी और पाटलिपुत्र के साथ समास नहीं होगा?

समाधानभाष्य—**गङ्गा चैवेति**। 'लक्षणेनाऽभिप्रती आभिमुख्ये' २.१.१५ से प्रकृतसूत्र में 'लक्षणेन' इस तृतीयान्त पद की अनुवृत्ति होती है। अनेकदेशव्याप्य गङ्गा आदि का ही आयाम गृहीत होने से गङ्गा और शोण ही लक्षण हैं, हास्तिनपुर आदि नहीं; अतः गङ्गा आदि के साथ ही समास होता है, हास्तिनपुर आदि के साथ नहीं। 'लक्षणेन' २.१.१५ पद की अनुवृत्ति नहीं होने पर भी सिद्धि बताते हैं-**अथ वेति**। आचार्य 'यस्य चायामः' ऐसा निर्देश कर रहे हैं। गङ्गा भी **आयाता**= दैर्घ्योपलक्षिता है, तथा वाराणसी भी दैर्घ्योपलक्षिता है। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरह दोनों के आयात होने पर आयात में प्रकर्षगति लेंगे। उपमानभाव और उपमेयभाव में यह समास हो रहा है। न्यून गुण उपमेय होता है तथा परिपूर्णगुण उपमान होता है। सम्पूर्ण गुण की सन्निधि होने पर न्यून गुण असद्गुण की तरह जान पडता है; अतः सामर्थ्यवश प्रकर्षगति ली जायेगी। प्रकृष्ट और अप्रकृष्ट सन्निधि होने पर कार्य के साथ प्रकृष्ट का सम्बन्ध होता है; इतर के साथ नहीं। यहाँ प्रकृष्ट आयाता गङ्गा आदि हैं; वाराणसी आदि नहीं; अतः गङ्गा के साथ ही समास होगा; वाराणसी आदि के साथ नहीं। {यस्य-}।

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च २.१.१७

किमर्थश्चकारः? * एवकारार्थश्चकारः * **तिष्ठद्गुप्रभृतीन्येव। क्व मा भूत्? परमं तिष्ठद्गु** * तिष्ठद्गु कालविशेषे * **तिष्ठद्गु कालविशेष इति वक्तव्यम्। तिष्ठन्ति गावोऽस्मिन् काले स तिष्ठद्गु। वहद्गु** * खलेयवादीनि प्रथमान्तान्यन्यपदार्थे * **खलेयवादीनि प्रथमान्तान्यन्यपदार्थे समस्यन्त इति वक्तव्यम्। खलेयवम्। खलेबुसम्। लूनयवम्। लूयमानयवम्। पूनयवम्। पूयमानयवम्।** {तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च}।

तिष्ठद्गुप्रभृतिगणपठित शब्दों का समास तथा अव्ययीभावसंज्ञा निपातित है। 'तिष्ठन्त्यो गावो यस्मिन् काले स तिष्ठद्गु दोहनकालः, आयत्यो गावो यस्मिन् काले स आयतीगवं कालः'। यहाँ प्रथमासमानाधिकरण होने से लट् को शतृ आदेश अप्राप्त है जिसका निपातन किया गया है। तिष्ठद्गु में अप्राप्त पुंवद्भाव का भी निपातन है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि' इतना ही सूत्र कीजिये, इससे निपातन सिद्ध हो जायेगा; 'च'कार का निर्देश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**एवकारार्थ इति**। निपात अनेकार्थक होते हैं; अतः 'च' पद का निर्देश एवकारार्थ में है। इससे तिष्ठद्गुप्रभृति ही एकार्थीभावविषय होते हैं; परन्तु 'वे अन्य शब्द के साथ एकार्थीभाव नही होते हैं' यह अर्थ आता है। 'परमं तिष्ठद्गु' में बहुव्रीहि होगा; अव्ययीभाव नही।

वार्तिक-**तिष्ठद्गु कालविशेष इति**। कालविशेष अर्थ गम्य होने पर ही उक्त तिष्ठद्गु आदि निपातन कहना चाहिये। इससे तिष्ठन्त्यो गावो यस्मिन् काले स तिष्ठद्गु दोहनकालः, वहन्त्यो गावो यस्मिन् काले स वहद्गु' ऐसा कालविशेष में ही समास होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिक-**खलेयवादीनीति**। 'खलेयवम्' इत्यादि प्रथमान्त का अन्यपदार्थ में निपातन कहना चाहिये। अव्यतिरिक्त प्रातिपदिकार्थ में ही इनका प्रयोग कहना चाहिये; अन्यत्र नहीं; यह ग्रन्थ का भाव है। मात्र काल ही अन्यपदार्थ गम्य होने पर 'खलेयवम्' आदि का अव्ययीभाव निपातन नहीं कहना चाहिये; अपि तु अन्यत्र भी कहना चाहिये; इसे स्पष्ट करते हैं-**अन्यपदार्थ इति**। {तिष्ठद्गु–}।

पारे मध्ये षष्ठ्या वा २.१.१८

वावचनं किमर्थम्? विभाषा समासो यथा स्यात्। समासेन मुक्ते वाक्यमपि यथा स्यात्-पारं गङ्गाया इति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृता महाविभाषा, तया वाक्यमपि भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्अव्ययीभावेन मुक्ते षष्ठीसमासो यथा स्यात्-गङ्गापारमिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। अयमपि विभाषा, षष्ठीसमासोऽपि, तावुभौ वचनाद् भविष्यतः।

सूत्रार्थ—'पार और मध्य शब्द का षष्ठ्यन्त समर्थसुबन्त के साथ विकल्प से समास हो तथा उसकी अव्ययीभावसंज्ञा हो, पक्ष में षष्ठीतत्पुरुष भी हो'। यहाँ 'पारे, मध्ये' यह दोनों एदन्तत्वनिपातन हैं। पक्ष में वाक्य भी रहेगा।

प्रश्नभाष्य—**वावचनमिति**। आचार्य 'विभाषा' २.१.११ यह महाविभाषाऽधिकार करते हैं; इसी से ही पक्ष में षष्ठीसमास तथा वाक्य सिद्ध हो जायेगा, फिर प्रकृतसूत्र में 'वा'ग्रहण का क्या प्रयोजन है?

एकदेशिभाष्य—**विभाषेति**। पक्ष में 'गङ्गापारम्' यह षष्ठीसमास भी हो सके तथा समास से मुक्त होने पर 'गङ्गायाः पारम्' यह वाक्य भी हो सके, एतदर्थ 'वा'वचन है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। आचार्य 'विभाषा' २.१.११ यह अधिकार सूत्र पढते हैं; इसी से 'गङ्गायाः पारम्' यह वाक्य भी होगा; अतः 'वा'ग्रहण का यह प्रयोजन कहना व्यर्थ है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। अव्ययीभाव से मुक्त होने पर पक्ष में षष्ठीसमास होकर 'गङ्गापारम्' ऐसा तत्पुरुष भी हो, इसके लिए 'वा'वचन है।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। अव्ययीभाव भी विकल्प से है तथा षष्ठीतत्पुरुष भी विकल्प से है; अतः 'विभाषा' २.१.११ से ही दोनों की सिद्धि हो जायेगी; इसी के लिए किया गया 'वा'वचन व्यर्थ है।

अत उत्तरं पठति-* पारे मध्ये षष्ठ्या वावचनम् * **पारे मध्ये षष्ठ्या वेति वक्तव्यम्** * अवचने हि षष्ठीसमासाऽभावो यथैकदेशि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधाने * अक्रियमाणे हि वावचने षष्ठीसमासस्याऽभावः स्यात्। 'यथैकदेशिप्रधाने'। तद्यथा-एकदेशिसमासेन मुक्ते षष्ठीसमासो न भवति। किं पुनः कारणमेकदेशिसमासेन मुक्ते षष्ठीसमासो न भवति? समासतद्धितानां वृत्तिर्विभाषा, वृत्तिविषये नित्योऽपवादः।

समाधानभाष्य—**अत उत्तरमिति**। 'वावचनं किमर्थम्' इस पूर्वपक्ष के उत्तरकाल में उसका समाधानभूत वार्तिक पढते हैं' यह 'अत उत्तरं पठति' का अर्थ है। वच परिभाषणे धा.पा. १०६३ धातु से 'कृत्याश्च' के द्वारा आवश्यक अर्थ में कृत्य-संज्ञक तव्यत् प्रत्यय होकर 'वक्तव्यम्' ऐसा रूप है; अतः प्रकृतसूत्र में 'वा'-ग्रहण कर 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' ऐसा अवश्य कहना चाहिये। यदि प्रकृतसूत्र में 'वा'वचन नहीं करेंगे तो उस पक्ष में सम्भावित दोष देते हैं-**अवचने हीति**। जैसे एकदेशिघटित समुदाय का समास विधीयमान होने पर एकदेशिसमास 'पूर्वकायः' में समास से मुक्त अवस्था में षष्ठीसमास नही होता है, वैसे प्रकृत में 'वा'ग्रहण नहीं करने पर बहुव्रीहि से मुक्त अवस्था में 'गङ्गापारम्' ऐसा षष्ठीतत्पुरुष नहीं हो सकेगा। परन्तु जब 'वा'ग्रहण करते हैं तब अव्ययीभाव से मुक्त अवस्था में तत्पुरुष भी हो जाता है।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनः कारणमिति**। क्या कारण है कि एकदेशिसमास से मुक्त होने पर षष्ठीसमास नही होता है?

उत्तरभाष्य—**समासतद्धितानामिति**। तुल्यन्याय होने से विचार के लिए यहाँ तद्धित का भी निर्देश है। समास और तद्धितों की भी **वृत्ति**=एकार्थीभाव विकल्प से है। **वृत्ति**=एकार्थीभाव के विषय में अपवाद नित्य है। इसका भाव इस प्रकार है-'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' २.१.१२ इत्यादि में 'समासः' २.१.३ पद की अनुवृत्ति है। परिभाषा होने से 'समर्थः' २.१.१ पद की भी उपस्थिति होगी। वहाँ लोकसिद्ध एकार्थीभाव कहाँ है, कहाँ नहीं है, यह जानने के लिए असमर्थ अल्पज्ञों को स्फुटबोध के लिए उन-उन सूत्रों में समास आदि संज्ञा की तरह एकार्थीभावरूप सामर्थ्य का भी विधान किया जाना चाहिये। व्याख्यान-वश 'विभाषा'ग्रहण का सम्बन्ध सामर्थ्य के साथ ही होगा। सामर्थ्य में समास का विकल्प अनिष्ट होने से 'सुबन्तं श्रितादिभिः सहोच्चार्यमाणं वा समर्थं भवति, समर्थं च समाससंज्ञं भवति' इस तरह का अर्थ होगा। इससे सामर्थ्य होने पर नित्य ही समास होगा तथा जिस पक्ष में सामर्थ्य नही है उस पक्ष में वाक्य ही रहेगा, समास प्राप्त नही होगा। निषेधसूत्रों के द्वारा भी समास-निषेध होने पर सन्नियोगशिष्टन्याय के द्वारा सामर्थ्यनिषेध भी होगा, वहाँ सामर्थ्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निषेध होने पर समास स्वतः अप्राप्त रहेगा। परन्तु प्रकृत में 'वा'पद का निर्देश-सामर्थ्य से एकार्थीभाव में ही संज्ञा का विकल्पबोध होगा। इससे वाक्य के द्वारा अभिधान प्राप्त होने पर आरभ्यमाण वृत्ति वाक्य की बाधिका हो रही है। पक्ष में विकल्प से वाक्य का अनुज्ञान किया जा रहा है। अपवाद में भी विकल्प से विधीयमान विकल्पवाक्य का ही अनुज्ञान करता है; अतः उत्सर्ग का नित्य ही बोध होना चाहिये। सूत्र में 'वा'ग्रहण से पक्ष में उत्सर्ग का भी अभ्यनुज्ञान होने से अव्ययीभाव, तत्पुरुष तथा वाक्य होकर यहाँ 'पारेगङ्गम्, गङ्गापारम्, गङ्गायाः पारम्' यह तीन रूप हो जाता है।

इह पुनर्वावचने क्रियमाणे एकया वृत्तिर्विभाषा, अपरया वृत्ति-विषये विभाषाऽपवादः *एकारान्तनिपातनं च* **एकारान्तनिपातनं च कर्तव्यम्। पारेगङ्गम्। न कर्तव्यम्। सप्तम्या अलुका सिद्धम्। भवेत् सिद्धं यदा सप्तमी, यदा त्वन्या विभक्तयस्तदा न सिद्ध्यति।** {पारे मध्ये}।

यहाँ प्रकृतसूत्र में 'वा'ग्रहण करने से **एकया**=एक विभाषा के द्वारा **वृत्तिः**=एकार्थीभाव विकल्प से होगा तथा **अपरया**=दूसरी विभाषा के द्वारा वृत्तिविषय में विभाषा का अपवादत्व होगा। प्रकृतसूत्र का 'वा'ग्रहण तथा 'उदश्वितोऽन्यतरस्याम्' ४.२.१९ में 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण 'यत्रोत्सर्गापवादौ वृत्तिषु विभाषा, तत्रापवादेन मुक्ते वाक्यं न भवति' का ज्ञापक है। वार्तिक-**एकारान्तनिपातनमिति**। 'गङ्गायाः पारम्, गङ्गायाः मध्यम्' इस विग्रह में 'पारेगङ्गम्, मध्येगङ्गम्' यह रूप हो सके, इसके लिए पार और मध्य शब्द को एकारान्त निपातन करना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। यहाँ एकारान्तनिपातन की आवश्यकता नहीं है। 'गङ्गायाः पारे, गङ्गायाः मध्ये' ऐसा विग्रह कर सप्तमी का अलुक् करेंगे; अतः एकारान्तनिपातन व्यर्थ है। वार्तिकमतानुयायी-**भवेत्सिद्धमिति**। सप्तमी से विग्रह होने पर विभक्ति का अलुक् होने की दशा में एदन्तत्व का लाभ हो जायेगा। परन्तु प्रथमा आदि से विग्रहपक्ष में एदन्तत्व अप्राप्त रहेगा; अतः एकारान्तनिपातन करना चाहिये। {पारे-}।

नदीभिश्च २.१.२०

नदीभिः संख्यासमासेऽन्यपदार्थे प्रतिषेधः **नदीभिः संख्यासमासेऽन्यपदार्थे प्रतिषेधो वक्तव्यः। द्वीरावतीको देशः। त्रीरावतीको देशः। 'नदीभिः संख्ये'ति प्राप्नोति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'संख्या वंश्येन' २.१.१९ से 'संख्या' की अनुवृत्ति है। 'नदीभिः' इस बहुवचन-निर्देश से यहाँ नदी पद अर्थपरक है। सूत्रार्थ-'संख्यावाची का समर्थ सुबन्त नदीवाची के साथ समास हो एवम् उसकी अव्ययभावसंज्ञा भी हो'। जैसे-सप्तानां गङ्गानां समाहारः सप्तगङ्गम्; द्वयोर्यमुनयोः समाहारो द्वियमुनम्।

अर्थविशेष का ग्रहण नहीं करके पूर्वपद तथा उत्तरपदमात्र निर्देश से विहित यह समास द्विगु की तरह बहुव्रीहि का भी बाधक होगा, ऐसा मान कर वार्तिक का भी आरम्भ करते हैं-**नदीभिः समास इति**। नदी के साथ संख्यासमास में अन्यपदार्थ में अव्ययीभाव का निषेध कहना चाहिये। जैसे 'द्वे इरावत्यौ यस्मिन् देशे स द्वीरावतीको देशः, तिस्र इरावत्यो यस्मिन् देशे सत्रीरावतीको देशः' में अन्यपदार्थ गम्य होने पर 'नदीभिः' की प्रवृत्ति प्राप्त हो रही है जिसका निषेध कहा गया है।

न वक्तव्यः। इह कश्चित् समासः पूर्वपदार्थप्रधानः, कश्चिदुत्तर-पदार्थप्रधानः, कश्चिदन्यपदार्थप्रधानः, कश्चिदुभ-यपदार्थप्रधानः। पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः। उत्तरपदार्थ-प्रधानस्तत्पुरुषः। अन्य-पदार्थ-प्रधानो बहुव्रीहिः। उभयपदार्थ-प्रधानो द्वन्द्वः। न चात्र पूर्वपदार्थप्राधान्यं गम्यते।

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। उक्त निषेधवार्तिक पढने की आवश्यकता नही है। उक्त निषेध नही पढने पर भी 'द्विरावतीकः' इत्यादि में अव्ययीभाव नही होगा। इसे स्पष्ट करते हैं-**इह कश्चिदिति**। इस समासप्रकरण में कोई समास पूर्वपदार्थप्रधान होता है। कोई समास उत्तरपदार्थप्रधान होता है। कोई समास अन्यपदार्थप्रधान होता है। कोई समास उभयपदार्थप्रधान होता है। पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव होता है। उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष होता है। अन्यपदार्थपदार्थप्रधान बहुव्रीहि होता है। उभयपदार्थप्रधान द्वन्द्व होता है। 'द्वीरावतीको देशः' इत्यादि में पूर्वपदार्थ-प्रधान नहीं होने से अव्ययीभाव प्राप्त नहीं है; अतः उसका प्रतिषेधवचन व्यर्थ है। यहाँ सभी समासलक्षणों में प्रायःपद जोड कर व्याख्या करनी चाहिये। मैं इसे 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि–'२.१.६ सूत्र पर स्पष्ट कर आया हूँ।

ननु च यद्येनोच्यते स तस्याऽर्थो भवति, अत्र च वयमेताभ्यां पदाभ्यामेतमर्थमुच्यमानं पश्यामः। एतदेव न जानीमः-यद्येनोच्यते स तस्याऽर्थ इति। अपि चान्यपदार्थप्रधानता न कल्पेतचित्रगुः शबलगुरिति। किं कारणम्? अत्रापि वयमेताभ्यां शब्दाभ्यामेतमर्थ-मुच्यमानं पश्यामः। यद्यप्यत्रैताभ्यां पदाभ्यामेषोऽर्थ उच्यते, अन्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदार्थोऽपि तु गम्यते, तत्रान्यपदार्थाश्रयो बहुव्रीहिर्भविष्यति। इहापि तर्हि यद्यप्यन्यपदार्थोऽत्र गम्यते, स्वपदार्थोऽपि तु गम्यते, तत्र स्वपदाश्रयोऽव्ययीभावः प्राप्नोति।

आक्षेपक—**ननु चेति**। जो अर्थ जिस पद के द्वारा वाच्य होता है वह उसका अर्थ होता है। 'द्वीरावतीकः, त्रीरावतीकः' में 'द्वि+इरावती' इन दो पदों से, तथा 'त्रि+इरावती' इन दो पदों से देशविशेष अर्थ वाच्य है। यहाँ देश ही प्रधान अर्थ है; अतः पूर्वपद का अर्थ भी हुआ। इस तरह पूर्वपदार्थप्रधान होने से 'द्वीरावतीकः' इत्यादि में अव्ययीभाव प्राप्त है। समाधानवादी-**एतदेव न जानीम इति**। मुझे भी अच्छी तरह मालूम है कि जो जिस पद से का जाता है वह उसका अर्थ होता है। 'द्वीरावतीकः, त्रीरावतीकः' में अन्यपदार्थ देशरूप अर्थ दोनों पदों के समस्त होने पर समास से गम्य है; केवल पूर्वपद तथा उत्तरपद से नहीं; अन्यथा यहाँ पूर्वपदार्थ का प्राधान्य होने से अव्ययीभाव मानेंगे तो उत्तरपदार्थ का भी प्राधान्य होने से तत्पुरुष की भी आपत्ति होगी। पृथक्-पृथक् द्वि शब्द द्वित्वावच्छिन्न तथा त्रिशब्द त्रित्वावच्छिन्न संख्येयमात्र को कह रहा है; देश को नही। एवम् इरावती शब्द भी नदीविशेष का वाचक है, देशविशेष का नही। इस तरह द्वि शब्द तथा त्रि शब्द का अर्थ देश नहीं होने पर यहाँ पूर्वपदार्थ का प्राधान्य नही कहा जा सकता है; अतः अव्ययीभाव प्राप्त नहीं होता है। यदि पृथक् पदों का अर्थ लेकर पूर्वपदार्थप्राधान्य तथा उत्तरपदार्थप्राधान्य की कल्पना करेंगे तो इसमें अन्यत्र भी दोष देते हैं-**अपि चेति**। 'चित्रा गावो यस्य' 'शबला गावो यस्य' इस विग्रह में पूर्वपद एवम् उत्तरपद अपना-अपना अर्थ कहेगा। किसी का भी अर्थ अन्यपदार्थप्राधान्य नहीं है; अतः यहाँ 'चित्रगुः, शबलगुः' ऐसा अन्यपदार्थ में बहुव्रीहि प्राप्त नही हो सकेगा। परन्तु समास से अन्यपदार्थ गम्य होने पर यहाँ बहुव्रीहि हो जाता है। आक्षेपक-**यद्यप्यत्रेति**। 'चित्रगुः, शबलगुः' में यद्यपि चित्रा, शबल तथा गो पदों के द्वारा पूर्वपद तथा उत्तरपद स्व-स्व अर्थ का वाचक हैं; फिर भी यहाँ अन्यपदार्थ भी गम्य हो रहा है; अतः 'चित्रगुः, शबलगुः' में अन्यपदार्थाश्रय बहुव्रीहि हो जायेगा। अन्य आक्षेपक-**इहापि तर्हीति**। जैसे 'चित्रगुः, शबलगुः' में पूर्व और पर के दो पदों द्वारा स्वार्थबोध होने पर भी अन्यपदार्थ का बोध होने से अन्यपदार्थाश्रय बहुव्रीहि हो जा रहा है; वैसे 'द्वीरावतीको देशः, त्रीरावतीको देशः' में अन्यपदार्थ का बोध होने पर भी पूर्वपद एवम् उत्तरपद के द्वारा स्वार्थबोध भी हो रहा है; अतः पूर्वपद का अर्थबोध होने पर उसकी प्रधानता होने से अव्ययीभाव की भी आपत्ति होगी।

एवं तर्हीदमिह सम्प्रधार्यम्-अव्ययीभावः क्रियतां बहुव्रीहिरिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुव्रीहिर्भविष्यति विप्रतिषेधेन। भवेदेकसंज्ञाऽधिकारे सिद्धम्, परं कार्यत्वे तु न सिद्ध्यति। आरम्भसामर्थ्यादव्ययीभावः प्राप्नोति, परं कार्यत्वाच्च बहुव्रीहिः। परं कार्यत्वे च न दोषः *नदीभिः सङ्ख्यायाः समाहारेऽव्ययीभावो वक्तव्यः* **स चावश्यं वक्तव्यः। 'सर्वमेकनदीतरे'।** {नदीभिंश्च}।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीदमिहेति**। 'द्वीरावतीको देशः, त्रीरावतीको देशः' से बहुव्रीहि तथा अव्ययीभाव यह दोनों प्राप्त हो रहा है। यहाँ निश्चय किया जाना चाहिये कि अव्ययीभाव किया जाये, अथ वा बहुव्रीहि किया जाये? इतर आचार्य-**बहुव्रीहिरिति**। 'अव्ययीभावः' २.१.५, 'द्विगुश्च' २.१.२२, 'शेषो बहुव्रीहिः' २.२.२२ यह सूत्र क्रम है। 'पुरस्तादपवाद'न्याय परि.शे.६७ के द्वारा पूर्व में पढा गया अपवाद अव्ययीभाव से अनन्तर में पढा गया द्विगु का ही बाधक होगा, व्यवहितोत्तर में पठित बहुव्रीहि का नहीं। परन्तु पर होने से बहुव्रीहि के द्वारा अव्ययीभाव का बाध होने से 'द्विरावतीकः' इत्यादि में बहुव्रीहि ही होगा, अव्ययीभाव नहीं। 'शेषो बहुव्रीहिः' २.२.२२ सूत्र पर भाष्यकार ने शेषग्रहण का प्रत्याख्यान कर दिया है; अन्यथा इन दोनों पदों का अव्ययीभावसमास होने से बहुव्रीहि नहीं होता। अन्य आचार्य-**भवेदेकेति**। बाध्यविशेष की चिन्ता में 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ इस एकसंज्ञाऽधिकार में एक की एक ही संज्ञा होगी जो पर एवम् अनवकाश हो। परन्तु 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ इससे पर कार्य की बलवत्ता में 'द्विरावतीको देशः' इत्यादि में बहुव्रीहि सिद्ध नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि पूर्वशास्त्र 'नदीभिश्च' के द्वारा प्राप्त अनवकाश अव्ययीभावसंज्ञा के द्वारा बाध प्राप्त होने पर पर-कार्य बहुव्रीहि का विधान के लिए 'नदीभिः सङ्ख्यासमासेऽन्यपदार्थे प्रतिषेधः' का आरम्भ है। इस तरह समाहार में द्विगु तथा अव्ययीभाव यह दोनों की सिद्धि कहनी होगी। 'पुरस्तादपवाद'न्याय परि.शे.६७ की प्रकृत में प्रवृत्ति नहीं होने से जैसे द्विगु एवम् अव्ययीभाव यह दोनों प्राप्त हो रहा है, वैसे अन्यपदार्थ के विषय में अव्ययीभाव तथा बहुव्रीहि दोनों होने लगेगा। 'नदीभिश्च' इस सूत्रारम्भसामर्थ्य से 'द्विरावतीको देशः' इत्यादि में अव्ययीभाव प्राप्त है तथा परकार्य होने से बहुव्रीहि प्राप्त है।

समाधानभाष्य—**नदीभिरिति**। नदीवाची के साथ संख्यावाची का समास में समाहार गम्य होने पर ही अव्ययीभाव कहना चाहिये। जैसे 'द्वियमुनम्, सप्तगङ्गम्। 'द्विरावतीको देशः' में समाहारगम्य नहीं है; अतः अव्ययीभाव नही होगा। इसका फल देते हैं-**सर्वमेकनदीतर इति**। यह किसी पद्य का शेष है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृ प्लवनतरणयोः धा.पा. धातु का 'तर' यह रूप है। कहीं पर 'तीरे' यह भी पाठ है। यदि 'नदीभिः सङ्ख्यायाः समाहारेऽव्ययीभवो वक्तव्यः' यह नही कहने पर 'पुरस्तादपवाद'न्याय परि.शे.६७ के द्वारा 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ का बाध कर 'एकनदीतरे' में ही अव्ययीभाव होता। इस तरह यहाँ 'अव्ययीभावप्रयुक्त टच् तथा नपुंसकत्व होता' यह भाष्यकार का आशय है। टच् होने से टिल्लक्षण ङीप् होकर स्त्रीत्व में 'एकनदीतरी' की आपत्ति होगी। {नदीभिश्च}।

द्विगुश्च २.१.२३

द्विगोस्तत्पुरुषत्वे कानि प्रयोजनानि? * द्विगोस्तत्पुरुषत्वे समासान्ताः प्रयोजनम् * **द्विगोस्तत्पुरुषत्वे समासान्ताः प्रयोजयन्तिपञ्चगवं दशगवम्। पञ्चराजं दशराजम्। {द्विगुश्च}।**

'च' पद के द्वारा 'तत्पुरुषः' २.१.२२ की अनुवृत्ति है। यह संज्ञासूत्र है; अतः 'द्विगु की तत्पुरुष संज्ञा हो' यह सूत्रार्थ है।

प्रश्नभाष्य—**द्विगोस्तत्पुरुषत्व इति**। द्विगु की तत्पुरुषसंज्ञा करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**समासान्ता इति**। द्विगु की तत्पुरुषसंज्ञा करने का समासान्त प्रयोजन है। इससे 'पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्' आदि में द्विगु है। यहाँ तत्पुरुष होने से तत्पुरुषनिबन्धन 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से समासान्त टच् हो जाता है। एवं 'पञ्चानां राज्ञां समाहारः पञ्चराजम्' आदि में 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। 'द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्येति द्व्यङ्गुलम्' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगु होने पर इसकी तत्पुरुषसंज्ञा होने से 'तत्पुरुषस्याऽङ्गुलेः सङ्ख्याऽव्ययादेः' ५.४.८६ से समासान्त अच् प्रत्यय है। यद्यपि टच् और अच् यह दो ही समासान्त प्रत्यय हैं, तथापि प्रकृतिभेद होने से 'समासान्ताः' यह मूल में बहुवचननिर्देश है। {द्विगुश्च}।

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २.१.२४

* श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसंख्यानम् * **श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्। ग्रामं गमी ग्रामगमी, ग्रामं गामी ग्रामगामी** * श्रितादिभिरहीने द्वितीयासमासवचनानर्थक्यं, बहुव्रीहिकृतत्वात् * **श्रितादिभिरहीनवाचिन्या द्वितीयायाः समासवचनमनर्थकम्। किं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणम्? 'बहुव्रीहिकृतत्वात्'। इह यः कष्टं श्रितः कष्टमनेन श्रितं भवतीति तत्र बहुव्रीहिणा सिद्धम् *अहीने द्वितीयास्वरवचनानर्थक्यं च* अहीने द्वितीयापूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवती'त्येतत्स्वरवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? बहुव्रीहिकृतत्वादेव।

'प्राक्कडारात् समासः' २.१.३ से 'समासः' तथा 'तत्पुरुषः' २.१.२२ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'द्वितीयान्त समर्थसुबन्त श्रित आदि के साथ समस्त हो तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः। दुःखमतीतो दुःखातीतः।

वार्तिक—**श्रितादिष्विति**। श्रितादि में गमी, गामी आदि का पाठ कर इनके साथ भी द्वितीयान्त का समास कहना चाहिये। इससे 'ग्रामं गमी' इस विग्रह में 'ग्रामगमी' तथा 'ग्रामं गामी' इस विग्रह में ग्रामगामी' ऐसी वृत्ति होगी। 'विभाषा' २.१.११ की अनुवृत्ति होने से यहाँ सर्वत्र विकल्पविधि है। अन्य औणादिकों का संग्रह के लिए गमी और गामी दोनों का संग्रह है। 'गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि' २.३.१२ सूत्र में द्वितीयाग्रहण अपवादविषय में भी द्वितीयाविधान के लिए है; अतः कृत्प्रत्यय के प्रयोग में द्वितीया विभक्ति ही होगी। वहाँ षष्ठी की प्राप्ति नहीं है; फिर भी जो लोग वहाँ 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' २.३.१७ के द्वारा षष्ठी के निषेध की कल्पना करते हैं उनको पूर्वापर का विस्मरण हो चुका है; ऐसा मान कर उनकी उपेक्षा करनी चाहिये। 'गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि' २.३.१२ सूत्र का भाष्यकार ने प्रतिषेध किया है; अतः कृत्प्रत्ययप्रयोग में भाष्यकार के मत में षष्ठी प्राप्त होने पर 'ग्रामं गमी' आदि में सौत्रषष्ठी का निषेध कहना चाहिये।

भाष्यकार अहीन अर्थ में शक्त श्रित आदि के साथ द्वितीयान्त के समास का खण्डन करते हैं- **श्रितादिभिरहीन इति**। 'यः कष्टं श्रितः कष्टमनेन श्रितो भवति' यहाँ बहुव्रीहि के द्वारा दोनों ही वाक्यों से 'कष्टकर्मक श्रयणकर्तृकत्वविशिष्ट' अर्थ का प्रतिपादन हो रहा है। पूर्वनिपातप्रकरण के बहुव्रीहि में अनित्य होने से श्रित आदि के पूर्वनिपात की आशङ्का भी नहीं की जा सकती है। बहुव्रीहि के द्वारा विवक्षित अर्थ का लाभ हो जा रहा है। अर्थस्वरूपभेद तथा स्वरभेद भी नहीं है; अतः अहीनवाचक द्वितीयान्त का श्रित आदि के साथ समास नही कहना चाहिये। यहाँ श्रिञ् धा.पा.८९७ धातु गत्यर्थक है; अतः 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ से कर्ता में क्त प्रत्यय है। **अहीने द्वितीयेति**। 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ सूत्र का निर्देश कर अहीनवाची समास में क्तान्त पर रहते द्वितीयान्त को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृतिस्वर का विधान किया है, वह व्यर्थ है। यहाँ अहीन अर्थ गम्य होने पर श्रित आदि के साथ बहुव्रीहि होने से 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ के द्वारा ही पूर्वपदप्रकृतिस्वर हो जायेगा; अतः इसी के लिए 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ का आरम्भ व्यर्थ पड जाता है।

*** जातिस्वरप्रसङ्गस्तु * जातिस्वरप्रसङ्गस्तु प्राप्नोतिग्रामं गतो ग्रामगतः, अरण्यगत इति। 'जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽकृतमितप्रतिप्रन्ना' इति * तत्र जातादिषु वावचनात् सिद्धम् * तत्र जातादिषु वावचनात् सिद्धम्। यदेतद् 'वा जाते' इति, एतद् 'वा जातादि'ष्विति वक्ष्यामीति, इमे जातादयो भविष्यन्ति। ननु च भेदो भवति-बहुव्रीहौ सति समासान्तोदात्तत्वेनापि भवितव्यं, पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेनापि भवितव्यम्। तत्पुरुषत्वे सति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेनैव। नास्ति भेदः। योऽपि हि तत्पुरुषमारभते न तस्य दण्डवारितों बहुव्रीहिर्भवति। तत्र तत्पुरुषे सति द्वौ समासौ, द्वौ स्वरौ, बहुव्रीहौ सत्येकः समासो, द्विस्वरत्वम्।**

आक्षेपक—**जातिस्वरेति**। यदि अहीन अर्थ में श्रित आदि के साथ द्वितीयान्त का बहुव्रीहि करेंगे तो 'जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽमितप्रतिपन्नाः' ६.२.१७० के द्वारा 'ग्रामगतः, अरण्यगतः' में अन्तोदात्त की आपत्ति होगी। बहुव्रीहिवादी आचार्य स्वरदोष का परिहार करते हैं-**तत्र जातादिष्विति**। 'वा जाते' ६.३.१७१ इस न्यास का परित्याग कर 'वा जातादिषु' ऐसा न्यास करेंगे। श्रित आदि भी जातादि होंगे। इससे पक्ष में अन्तोदात्त तथा पक्ष में पूर्वपदप्रकृतिस्वर यह दोनों सिद्ध हो जायेगा। **इमे**=श्रित, गत, पतित शब्द जातादि होंगे। इस तरह 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ यह सूत्रपाठ नहीं करने से लाघव होता है। तत्पुरुषवादी आचार्य-**ननु चेति**। उक्त स्थल में तत्पुरुष और बहुव्रीहि दोनों में भेद है। उक्त स्थल में बहुव्रीहि होने पर 'वा जातादिषु' इस न्यास के द्वारा पक्ष में अन्तोदात्त तथा पक्ष में पूर्वपदप्रकृतिस्वर के होने से दो स्वर होता है। जब कि तत्पुरुष होने पर 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ के द्वारा नात्र पूर्वपदप्रकृतिस्वर ही हो रहा है। इस तरह यहाँ तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि में भेद है। बहुव्रीहिवादी-**नास्तीति**। उक्त स्थल में चाहे तत्पुरुष करें, अथ वा बहुव्रीहि करें, दोनों में स्वर समास है। यहाँ जो लोग तत्पुरुष करने के पक्षधर हैं वे लोग दण्डे के द्वारा बहुव्रीहि को दूर नही हटा पायेंगे; अपि तु उनके मत में यहाँ बहुव्रीहि होगा। यहाँ तत्पुरुषसमासपक्ष में दो समास तथा दो स्वर–'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ से पूर्वपदप्रकृतिस्वर अहीनसमासपक्ष में पहला; तथा हीनसमासपक्ष में 'समासस्य'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्तस्वर दूसरा होगा। बहुव्रीहिपक्ष में उभयविध अर्थो में एक ही समास होगा तथा 'जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽमितप्रतिपन्नाः' ६.२.१७० से अन्तोदात्त भी होगा; एवं 'वा जातादिषु' ६.२.१७१ इस सूत्र न्यास से पूर्वपदप्रकृतिस्वर भी होगा।

एवं तर्हि सिद्धे सति यत्ततपुरुषं शास्ति, तज्ज्ञापयत्याचार्यः 'समानार्थे केवलं विग्रहभेदाद्यत्र तत्पुरुषः प्राप्नोति बहुव्रीहिश्च, तत्र तत्पुरुष एव भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? राज्ञः सखा राजसखः। राजा सखाऽस्येति बहुव्रीहिर्न भवति। नैतज्ज्ञापकसाध्यम्। 'अपवादैरुत्सर्गा बाध्यन्ते' इति बाधकेनाऽनेन भवितव्यं सामान्यविहितस्य विशेषविहितेन। अथ न सामान्यविहितः।

ज्ञापकवादी—**एवं तर्हीति**। उक्त रीति से स्वरभेद नही होने तथा बहुव्रीहि के द्वारा भी लक्ष्य सिद्ध होने पर आचार्य तत्पुरुष का आरम्भ का ज्ञापन करते हैं–'जहाँ मात्र विग्रहभेद से तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि दोनों प्राप्त हो रहा हो, वहाँ तत्पुरुष ही होता है, बहुव्रीहि नहीं'। इस तरह बहुव्रीहि का अभाव होने पर 'निष्ठा च द्व्यजनात्' ६.१.२०५ से कष्टशब्द के आद्युदात्त होने से 'अहीने द्वितीया' ६.२.४७ के द्वारा 'कष्टश्रितः' इस का पूर्वपद आद्युदात्त होता है, जातिलक्षण बहुव्रीहिनिबन्धन अन्तोदात्त नहीं। इस ज्ञापन के द्वारा भाष्यकार ने यहाँ अव्यविकन्याय का स्मरण कराया है। 'अवेर्मांसम्' यह विग्रह ही रहेगा तथा अविक पद से प्रत्ययोत्पत्ति होकर 'आविकम्' रूप होगा। वैसे 'कष्टं श्रितमनेन' यह वाक्य ही रहेगा तथा 'कष्टं श्रितः' में समास होगा। जिज्ञासु आचार्य-**किमेतस्येति**। इस ज्ञापन का क्या फल है? ज्ञापनवादी आचार्य फल स्पष्ट करते हैं-**राज्ञः सखेति**। 'राजसखः' में 'राज्ञः सखा' इस विग्रह में तत्पुरुष तथा 'राजा सखा अस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि यह दोनों प्राप्त होने पर तत्पुरुष ही होता है, बहुव्रीहि नहीं। उत्सर्गापवादन्याय से बहुव्रीहि का अभाव मानने वाले कोई आचार्य कहते हैं-**नैतदिति**। 'राजसखः' में तत्पुरुष ही हो, बहुव्रीहि नही, यह ज्ञापन का फल है। अर्थाऽभेद में बहुव्रीहि प्राप्त होने पर तत्पुरुष का आरम्भ है, अतः बहुव्रीहि सामान्यशास्त्र है तथा तत्पुरुष विशेषशास्त्र है। विशेष से सामान्य का बाध होता है; अतः बहुव्रीहि और तत्पुरुष दोनों सम्भव होने पर विशेषशास्त्र तत्पुरुष से सामान्यशास्त्र बहुव्रीहि का बाध होने से इसी के लिए किया गया ज्ञापन व्यर्थ है। ज्ञापनवादी आचार्य अपने पक्ष का मण्डन करते हैं-**अथ वेति**। 'कष्टं श्रितः' यहाँ पर 'स्व' पदार्थ में तत्पुरुष का विधान होने तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विग्रह में बहुव्रीहि के प्राप्त होने से बहुव्रीहि को सामान्यविहित नहीं बताया जा सकता है। अन्तर्भूत अर्थ शब्दसंस्कार में निमित्त नहीं होता है; किन्तु शब्दवाच्य अर्थ ही शब्दसंस्कार में निमित्त होता है।

यदुच्यते-'बहुव्रीहिकृतत्वा'दिति। एतदयुक्तम्। अस्ति खल्वपि विशेषो बहुव्रीहेस्तत्पुरुषस्य च। किं शब्दकृतोऽथाऽर्थकृतः? शब्दकृतश्चाऽर्थकृतश्च। शब्दकृतस्तावत्- बहुव्रीहौ सति कपा भवितव्यं, तत्पुरुषत्वे सति न भवितव्यम्। अर्थकृतः-तत्पुरुषत्वे सति रुहादीनां क्तः कर्तरि भवति धात्वर्थस्यानपवर्गे-आरूढो वृक्षं देवदत्त इति। बहुव्रीहौ व्यपवृक्ते कर्मणि भवति-आरूढो वृक्षो देवदत्तेनेति।

इसी सूत्र पर वार्तिककार ने 'श्रितादिभिरहीने द्वितीयासमासवचनानर्थक्यं, बहुव्रीहिकृतत्वात्' यह पढा था, उसका खण्डन करते हैं-**यदप्युच्यत इति**। 'बहुव्रीहिकृतत्वात्' ऐसा जो कहा था, वह भी उचित नही है। अर्थभेद होने से श्रित आदि का ग्रहण किया गया है। यदि यहाँ यह कहा जाये कि 'कष्टश्रितः' इस समासप्रयोग में लोक में विग्रहवाक्य का प्रयोग नहीं होता है तथा तात्पर्य का भी भेद नही होता है; अतः बहुव्रीहिकृतत्व है तो इस आशङ्का से कहते हैं-**अस्ति खल्वपीति**। यहाँ बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष होने पर दोनों की पृथक्-पृथक् विशेषतायें हैं। जिज्ञासु-**किं शब्देति**। तत्पुरुष और बहुव्रीहि में शब्दकृतभेद है, अथ वा अर्थकृतभेद है?

उत्तरभाष्य—**शब्दकृतश्चाऽर्थकृतश्चेति**। उक्त दोनों समासों में शब्दकृतभेद भी है, तथा अर्थकृतभेद भी है। बहुव्रीहि होने पर 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से समासान्त कप् प्रत्यय होकर 'कष्टश्रितकः' तथा तत्पुरुष में समासान्तप्रत्यय नही होने से 'कष्टश्रितः' पद होगा, यह दोनों समासों में शब्दकृत विशेष है। यहाँ दोनों समासों में अर्थकृत विशेष भी है। तत्पुरुष होने पर 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ से गत्यर्थक श्रिञ् धा.पा.८९७ धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय होकर 'कष्टं श्रितः' इस अर्थ में 'कष्टश्रितः' होता है। 'रुहादीनाम्' में आदि शब्द प्रकार अर्थ में है; अतः गत्यर्थक आदि भी लिये जायेंगे। 'आरूढो वृक्षं देवदत्तः' में सम्पूर्ण धात्वर्थ के अनधिष्ठितत्व होने पर भी धात्वर्थैकदेशभूतत्वाश्रय के द्वारा आरोहणक्रियाविशिष्ट में ही शब्दशक्तिस्वभाववश 'वृक्षमारूढः' ऐसा प्रयोग किया जाता है। जैसे बन्धन का अनुभव करता हुआ ही 'बद्ध' ऐसा कहा जाता है, वैसे कष्ट का अनुभव करता हुआ ही 'कष्टश्रितः' ऐसा कहा जाता है, यह तत्पुष का अर्थकृतविशेष है। परन्तु यदि यहाँ बहुव्रीहि करेंगे तो धातु से क्त प्रत्यय कर्ता अर्थ में न होकर कर्म अर्थ में होगा, एवम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'आरूढो वृक्षो देवदत्तेन' ऐसा विग्रह 'वृक्षारूढः' तथा 'श्रितं कष्टमनेन' इस विग्रह में 'कष्टश्रितः' होने पर 'वृक्षारूढ' आदि समस्त पद विग्रह वाक्यार्थ को कहेंगे। इस तरह दोनों समासों में अर्थकृतविशेष भी है।

अन्यथाजातीयकः खल्वपि प्रत्यक्षेणाऽर्थसम्प्रत्ययोऽन्यथाजातीयकः सम्बन्धात्। राज्ञः सखा राजसखः। संबन्धादेतद् गन्तव्यं-नूनं राजाऽप्यस्य सखेति। उभयं खल्वपीष्यते-'स्वस्ति सोमसखा', 'पुनरेहि गवांसखे'ति।

उक्त दोनों समासों में अन्य भेद भी है, इसे बताते हैं—**अन्यथाजातीयक इति**। तत्पुरुष में व्यवधानरहित होने के कारण शब्द से ही अर्थबोध होता है। जैसे 'राजसखः' कहने से तत्पुरुष के द्वारा 'राजा का सखा' ऐसा **प्रत्यक्षेण**=शब्द के द्वारा ही व्यवधान रहित बोध होता है। जब कि 'राजा इसका सखा है' इस तरह का बहुव्रीहिनिष्ठ अर्थबोध प्रत्यक्ष के द्वारा न होकर सम्बन्ध- महिम्ना होता है। पूर्वोक्त ज्ञापन का फलनिवारण के लिए कहते हैं-**उभयं खल्वपीति**। तत्पुरुष और बहुव्रीहि दोनों प्राप्त होने पर दोनों ही इष्ट हैं। 'सोमः सखा यस्य स सोमसखः' में बहुव्रीहि होने से 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ के द्वारा होने वाला टच् प्रत्यय नही होता है। यदि यहाँ 'सोमस्य सखा' इस विग्रह में समास किया जाये तो टच् होकर 'सोमसखः' की आपत्ति होगी। तत्पुरुष भी इष्ट है। यदि 'गवां सखा यस्य' ऐसा बहुव्रीहि करेंगे तो षष्ठी का लुक् होने से यहाँ 'सोमसखा' रूप की आपत्ति होगी। परन्तु जब तत्पुरुष करते हैं तब 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' ६.३.१४ अथ वा 'षष्ठ्याक्रोशे ६.३.२१ से षष्ठी का अलुक् होकर 'गवांसख!' ऐसा रूप हो जाता है। 'पुनरेहि गवांसख!' यह किसी पद्य का अंश है। यहाँ 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ के द्वारा समासान्त टच् होकर सम्बोधनान्त 'गवांसख!' ऐसा प्रयोग है। {द्वितीया श्रितातीत–}।

खट्वा क्षेपे २.१.२६

किमुदाहरणम्? खट्वारूढो जाल्मः। क्षेप इत्युच्यते, कः क्षेपो नाम? अधीत्य स्नात्वा गुरुभिरनुज्ञातेन खट्वाऽऽरोढव्या। य इदानीमतोऽन्यथा करोति स उच्यते- खट्वाऽऽरूढोऽयं जाल्मः। नाऽतिव्रतवानिति। {खट्वा क्षेपे}।

पूर्वसूत्र 'द्वितीया श्रितातीत–'२.१.२४ से 'द्वितीया' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ- '**क्षेप**=निन्दा गम्य होने पर समर्थसुबन्त के साथ द्वितीयान्त का समास हो तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। खट्वामारूढः खट्वारूढो जाल्मः। यहाँ समास से ही निन्दा गम्य है, वाक्य से नहीं; अतः यह नित्यसमास है।

'खट्वारूढः' में निन्दा का हेतुधर्म का निर्देश नही होने से क्रियाकारकसम्बन्धमात्र का बोध हो रहा है; अतः पूर्वपक्ष करते हैं-**किमुदाहरणमिति**। प्रकृतसूत्र का क्या उदाहरण है?

उत्तरभाष्य—**खट्वारूढ इति**। 'खट्वारूढो जाल्मः' यह उदाहरण है। मात्र अर्थ का स्फुटबोध के लिए यहाँ जाल्म पद का प्रयोग है। समास का ही क्षेप अर्थ है।

प्रश्नभाष्य—**क्षेप इत्युच्यत इति**। **क्षेप**=निन्दा गम्य होने पर ही यहाँ समास कहा जा रहा है; यहाँ क्षेप क्या है?

उत्तरभाष्य—**अधीत्येति**। 'गुरुकुल में रहता हुआ ब्रह्मचारी **अधीत्य**=वेदों का सम्यक् अध्ययन समाप्त कर **स्नात्वा**=समावर्त्तनसंस्कार के बाद गुरु की अनुज्ञा से गृहस्थाश्रम में खट्वा पर आरूढ हो' (मनुस्मृति द्वि.अ.) यह धर्म है। परन्तु जो **'अन्यथा करोति'**=गुरुकुल में ही भूमिशयन का परित्याग कर खट्वाशयन करता है, वह व्रत का पालन नहीं करने वाला ब्रह्मचारी 'खट्वारूढः' कहा जाता है। यहाँ निन्दा में तात्पर्य है। {खट्वा-}।

अत्यन्तसंयोगे च २.१.२८

* अत्यन्तसंयोगे समासस्याऽविशेषवचनात् क्तेन समासवचनार्थक्यम् * **अत्यन्तसंयोगे समासस्याऽविशेषवचनात् क्तान्तेन चाऽक्तान्तेन च 'कालाः क्तान्तेने'त्येतत् समासवचनमनर्थकम्। 'अत्यन्तसंख्योग' इत्येव सिद्धम्** * अनत्यन्तसंयोगार्थन्तु * **अनत्यन्तसंयोगार्थन्तर्हीदं वक्तव्यम्। षण्मुहूर्ताश्चराचराः। ते कदाचिदहर्गच्छन्ति कदाचिद्रात्रिम्। तदुच्यतेअहर्गता रात्रिगता इति। नैतदस्ति। गतग्रहणादप्येतत् सिद्धम्। इदं तर्हि-अहरतिसृताः, रात्र्यतिसृताः, मासप्रमितश्चन्द्रमाः।** {अत्यन्तसंयोगे च}।

यहाँ पूर्वसूत्र 'कालाः' २.१.२८ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'अत्यन्त संयोग गम्य होने पर कालवाची द्वितीयान्त का समर्थसुबन्त के साथ समास हो तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो' मुहूर्तं सुखं मुहूर्तसुखम्।

'कालाः' यह पृथक् योग नहीं कहना चाहिये। 'काला अत्यन्तसंयोगे' यह एक ही सूत्रनिर्देश कीजिये। 'स्वयं क्तेन' २.१.२५ से आ रहा 'क्तेन' की निवृत्ति 'काला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यन्तसंयोगे' में होने से सर्वत्र समास सिद्ध हो जाता है; ऐसा मान कर खण्डन-भाष्य का आरम्भ करते हैं-**अत्यन्तसंयोग इति**। अत्यन्तसंयोग में समासविधान करने पर कालवाची अत्यन्तसंयोग के भी सभी उदाहरण संगृहीत होते हैं, अतः 'कालाः' सूत्र का आरम्भ नही करना चाहिये, उसके सभी लक्ष्य 'अत्यन्तसंयोगे' से ही सिद्ध हो जा रहे हैं।

मण्डनभाष्य—**अनत्यन्तेति**। अत्यन्तसंयोग नही होने पर द्वितीयान्त कालवाची का समर्थसुबन्त के साथ समास हो। जैसे 'षण् मुहूर्ताः षण्मुहूर्ताश्चराचराः=चरन्ति' में उत्तरायण में दिन में जाते हैं तथा दक्षिणायन में रात्रि में जाते हैं। यहाँ चर धा.पा. ५५९ धातु से 'चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमक्चाऽभ्यासस्य' वा.३.१.१३४ से अच् प्रत्यय; धातु को द्वित्व तथा अभ्यास को आक् का आगम है। यहाँ उत्तरायण में दिवा तथा दक्षिणायन मे रात्रि में संचरण होने से काल का क्रिया के साथ अत्यन्तसंयोग नही होने से समास प्राप्त नही है; अतः अनत्यन्तसंयोग में समासविधान के लिए 'कालाः' यह पृथक् योग पढना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ सूत्र में गतग्रहण है। उससे 'षण्मुहूर्ताः' में समास हो जायेगा। यहाँ षण् मुहूर्त के साथ रात्रि तथा दिन के साथ अत्यन्तसंयोग नही होने पर भी क्रमपूर्वक जाने वाले का संकलन कर 'षण्मुहूर्ताश्चराचराः' यह प्रयोग है। अथ वा एकदेशगमन से ही 'जाता है' ऐसा कहा जाता है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'अहरतिसृताः' 'रात्र्यतिसृताः' 'मासप्रमितः' में जहाँ अत्यन्तसंयोग नही है उसमें समासविधान के लिए 'कालाः' यह पृथक् सूत्रनिर्देश करना चाहिये। 'मासप्रमितः'घटक 'प्रमितः' में प्रपूर्वक माङ् धातु से 'आदिकर्मणि क्तः' ३.४.७१ के द्वारा आदिकर्म में क्त प्रत्यय है। 'मासं परिच्छेत्तुमारब्धवान्' यह 'मासप्रमितः' का अर्थ है। प्रतिपच्चन्द्र के साथ मास का अत्यन्तसंयोगाभाव है। {अत्यन्तसं-}।

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २.१.३०

तत्कृतार्थेनेति किमर्थम्? दध्ना पटुः। घृतेन पटुः। नैतदस्ति। असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। नहि दध्नः पटुना सामर्थ्यम्। केन तर्हि? भुजिना। दध्ना भुङ्क्ते पटुरिति। इहापि तर्हि न प्राप्नोति-शङ्कुलाखण्डः किरिकाण इति। अत्रापि न शङ्कुलायाः खण्डेन सामर्थ्यम्। केन तर्हि? करोतिना। शङ्कुलया कृतः खण्ड इति। वचनाद् भविष्यति। इहापि तर्हि वचनात् प्राप्नोति-दध्ना पटुः घृतेन पटुरिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मात् तत्कृतार्थग्रहणं कर्तव्यम् ।

'तत्कृत' यह लुप्ततृतीयाक पद है। सूत्रार्थ-'तृतीयान्तार्थकृतगुणवचन तथा अर्थ शब्द के साथ तृतीयान्त पद का समास हो एवम् उसकी समास तथा तत्पुरुषसंज्ञा हो'। जैसे तृतीयान्तार्थकृत गुणवचन- शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः। अर्थ के साथ धान्येनाऽर्थो धान्याऽर्थः।

प्रश्नभाष्य—**तत्कृतार्थेनेतीति**। 'तृतीया गुणवचनेन' इतना ही सूत्र रखिये। 'तत्कृतार्थेन' पद का निर्देश क्यों करते हैं? यहाँ प्राश्निक का आशय है कि 'दध्ना पटुः, घृतेन पटुः' में यदि दधिकृत तथा घृतकृत पाटव विवक्षित है तो समास अवश्य होना चाहिये। तत्कृतत्व सम्भव होने से विशिष्ट द्रव्य से संस्कृत दधि आदि भी पाटव करता है। परन्तु यदि भोजन आदि की अपेक्षा से दधि आदि का करणत्व माना जाये तो सामर्थ्य नही होने से समास नही होगा।

उत्तरभाष्य—**दध्ना पटुरिति**। जहाँ तत्कृतार्थ नही है वहाँ 'दध्ना पटुः' इत्यादि में समास न हो, इसके लिए तत्कृतार्थग्रहण है।

आक्षेपभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'दध्ना पटुः' इत्यादि में असामर्थ्य नही होने से समास नही होगा। सर्वत्र क्रियाद्वारक ही सम्बन्ध लिया जाता है। यदि प्रकृत में वही सम्बन्ध लिया जाये तो समास हो सकता है। परन्तु यहाँ क्रियाद्वारक सम्बन्ध का तिरस्कार कर 'असामर्थ्यादत्र न भविष्यति' ऐसा कहा है।

अन्य प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। 'दध्ना पटुः' इत्यादि में कैसे असामर्थ्य है?

उत्तरभाष्य—**सापेक्षमिति**। सापेक्ष असमर्थ होता है। दधि आदि पद भोजन-क्रिया के साथ सापेक्ष हैं; अतः असमर्थ होने से 'दध्ना पटुः' 'घृतेन पटुः' में समास नही होगा। जहाँ 'दध्योदनः' इत्यादि में साक्षात् सामर्थ्य नही है वहाँ वचनसामर्थ्य से प्रतीयमान क्रियाद्वारक सम्बन्ध का आश्रयण कर समास हो जायेगा। परन्तु 'शङ्कुलया खण्डः' इत्यादि में जहाँ साक्षात् सामर्थ्य सम्भव है वहाँ वचन के चरितार्थ होने से 'दध्ना पटुः' इत्यादि में समास नही होगा। आक्षेपक-**इहापि तर्हीति**। 'शङ्कुलया कृतः खण्डः, शङ्कुलाखण्डः' 'किरिणा कृतः काणः किरिकाणः' में भी तृतीयान्त का कृ धात्वर्थ के साथ तृतीयान्त का अन्वय है, खण्ड आदि के साथ नहीं; अतः असामर्थ्य होने से 'शङ्कुलाखण्डः' 'किरिकाणः' में भी समास होना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**वचनादिति**। 'शङ्कुलाखण्डः इत्यादि में असामर्थ्य होने से करोतिक्रियाकृतसम्बन्ध का आश्रयण कर समास हो जायेगा। अन्य आचार्य-**इहापि तर्हीति**। यदि 'शङ्कुलाखण्डः' इत्यादि में असमर्थ होने पर सूत्रारम्भसामर्थ्य से करोतिक्रियाकृतसम्बन्ध का आश्रयण कर समास कह सकते हैं तब 'दध्ना पटुः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यादि में असमर्थ होने पर भी सूत्रारम्भसामर्थ्य से भोजनक्रियाकृतसम्बध का आश्रयण कर समास की आपत्ति होगी; अतः इसका वारण करने के लिए 'तत्कृतार्थेन' ग्रहण अवश्य करना चाहिये।

गुणवचनेनेति किमर्थम्? गोभिर्वपावान्। धान्येन धनवान्। किं पुनरिहोदाहरणम्? शङ्कुलाखण्डो देवदत्त इति। कथं पुनर्गुणवचनेन समास उच्यमानो द्रव्यवचनेन स्यात्? इह 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणेने'तीयता सिद्धम्, सोऽयमेवं सिद्धे सति यद्वचनग्रहणं करोति तस्यैतत्प्रयोजनम्-एवं यथा विज्ञायेत-'गुणमुक्तवता गुणवचनेने'ति।

प्रश्नभाष्य—**गुणवचनेनेति**। 'तृतीया तत्कृतार्थेन' इतना ही सूत्र रखिये। गुणवचनग्रहण क्यों करते हैं? जाति के नित्य होने से जाति को कृत नहीं कह सकते हैं; जातिवचन के साथ समास सम्भव नहीं है। 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ इस सूत्रनिर्देश में क्रियावचन के साथ ही समास होता है। 'स्वभाव-सिद्धं हि द्रव्यम्' इस सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य का तत्कृतत्व सम्भव नहीं है; अतः द्रव्यवाची के साथ भी समास नहीं होगा; फिर पारिशेष्याद् गुणवचन ही शेष है तथा उसका निर्देश नहीं करने पर भी लाभ हो रहा है, फिर गुणवचन-ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**गोभिर्वपावानिति**। 'गोसम्बन्धि दधि आदि का भक्षण करने से यह व्यक्ति **वपावान्**=चर्वी वाला है' यह 'गोभिर्वपावान्' का अर्थ है; अतः यहाँ तत्कृतत्व है। वपावत् शब्द गुणवचन नहीं है। जो गुण बता कर द्रव्य का वाचक हो वही गुणवचन होता है। जैसे 'शुक्लः पटः' में शुक्ल पद गुण-वंचन है। जब कि वपावत् शब्द सर्वदा वपासम्बन्धविशिष्ट द्रव्य का वाचक है; अतः यह गुणवचन नहीं है। इसी तरह 'धान्येन धनवान्' में भी योजना करनी चाहिये।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। गुणवचन का क्या उदाहरण है? 'दध्ना जाड्यम्' 'घतेन पाटवम्' इत्यादि में केवल गुणवाची के साथ समास इष्ट नहीं है। गुणोपसर्जनद्रव्यवचन होने से ही गुणवचन नहीं होता है, अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**शङ्कुलाखण्ड इति**। प्रकृत गुणवचनग्रहण का 'शङ्कुलाखण्डः' यह उदाहरण है।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। क्या कारण है कि गुणवचन के साथ कहा गया समास द्रव्यवचन के साथ नही होता है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**इह तृतीयेति**। 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' इस सूत्र के स्थान पर 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणेन' इतना ही सूत्र रखिये। यहाँ असम्भव होने से गुण के साथ समास नहीं होने पर गुण पद से स्वरूप का ग्रहण नहीं होकर अर्थ का ही ग्रहण होगा; अतः 'गुणेन' इस पद से 'गुणवचनेन' यही अर्थ लिया जायेगा। इस तरह वचनग्रहण नहीं करने पर भी वचन अर्थ का लाभ हो जा रहा था, फिर गुणवचनग्रहण से भूतकालिक का परिग्रह होगा; अतः 'गुण का वाचक होकर जो सम्प्रति गुणोपसर्जन द्रव्यवाची है, उसी के साथ समास हो' ऐसा अर्थ लब्ध होगा।

कथं पुनरयं गुणवचनः सन् द्रव्यवचनः सम्पद्यते? आरभ्यते तत्र मतुब्लोपः-'गुणवचनेभ्यो मतुपो लु'गिति। तद्यथा-शुक्लगुणः शुक्लः, कृष्णगुणः कृष्णः। एवं-खण्डगुणः खण्डः। यद्येवं नार्थस्तत्कृतार्थ-ग्रहणेन। भवति हि शङ्कुलायाः खण्डेन सामर्थ्यम्। असामर्थ्याच्चात्र न भविष्यति,-दध्ना पटुर्घृतेन पटुरिति। तस्मान्नार्थस्तत्कृतार्थग्रहणेन।

प्रश्नभाष्य—**कथं पुनरिति**। जो पहले भूतकाल में गुणवचन था वह अब वर्त्तमान में द्रव्यवचन कैसे हो गया? नित्यशब्दार्थसम्बन्ध का परित्याग से अन्य अर्थ का वाचकत्व असम्भव मान कर पूर्वपक्ष है।

उत्तरभाष्य—**आरभ्यते तत्रेति**। जैसे 'शुक्लोऽस्ति अस्मिन्निति शुक्लवान्, कृष्णोऽस्ति अस्मिन्निति कृष्णवान्' में 'तदस्त्यस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ से प्रशंसा में मतुप् होकर 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः' के द्वारा मतुप् का लुक् होकर 'शुक्लः' 'कृष्णः' पद है। शेष पद के लुप्यमान अर्थ के भी वाचक होने से भूत में द्रव्य का वाचक होकर भी सम्प्रति गुणवचन है। वैसे खण्ड पद भी मतुब्लुक् होने पर सम्प्रति गुणवचन है।

खण्डनभाष्य—**यद्येवमिति**। यदि पूर्व में द्रव्यवचन का वर्तमान में गुणवचन लेकर समास कर रहे हैं तो प्रकृतसूत्र में 'तत्कृतार्थग्रहण की आवश्यकता नहीं है। खण्ड के साथ ही शङ्कुला का सामर्थ्य होगा; अतः 'शङ्कुलाखण्डः' में समास हो जायेगा। 'दध्ना पटुः, घृतेन पटुः' में पटु के साथ दधि और घृत का सामर्थ्य नहीं है; अतः यहाँ समास नहीं होगा। इस तरह तत्कृतार्थग्रहण व्यर्थ है।

*** तृतीयासमासेऽर्थग्रहणमनर्थकमर्थगतिर्ह्यवचनात् * तृतीयासमासे-ऽर्थग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'अर्थगतिर्ह्यवचनात्'। अन्तरेणापि वचनमर्थगतिर्भविष्यति * निर्देश्यमिति चेत् तृतीयार्थनिर्देशोऽपि * अथैव-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मपि निर्देशः कर्तव्य इति चेत् तृतीयार्थनिर्देशोऽपि कर्तव्यः स्यात्। 'तृतीया तदर्थकृतार्थेन गुणवचनेने'ति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नाऽयमर्थनिर्देशः। किं तर्हि? योगाङ्गमिदं निर्दिश्यते। सति च योगाङ्गे योगविभागः करिष्यते-'तृतीया तत्कृतेन गुणवचनेन'। तृतीया तत्कृतेन गुणवचनेन समस्यते। ततः-'अर्थेन'। अर्थशब्देन च तृतीया समस्यते। धान्यार्थः वसनार्थः हिरण्यार्थः। 'पूर्वसदृश-समोनार्थे'त्यर्थग्रहणं न कर्तव्यं भवतीति।।

आक्षेपक—**तृतीयेति**। तत्कृतत्व अर्थत्व का अव्यभिचारी है; अतः तत्कृतग्रहण से ही अर्थ के साथ भी समास होने से 'धान्यार्थः' आदि की सिद्धि हो जायेगी। इस तरह प्रकृत सूत्र में किया गया अर्थग्रहण व्यर्थ है। अथ वा सामर्थ्यलभ्य का भी यदि स्पष्टप्रतिपत्ति के लिए ग्रहण करना ही है तो प्रकृतसूत्र में तृतीयार्थनिर्देश कर 'तृतीया तदर्थकृतार्थेन गुणवचनेन' ऐसा संहितापाठ करना चाहिये। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। तो क्या अर्थग्रहणपक्ष में तृतीयार्थनिर्देश कर 'तृतीया तदर्थकृतार्थेन गुणवचनेन' ऐसा संहितापाठ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त सूत्र में तृतीयार्थनिर्देश की आवश्यकता नहीं है। प्रकृतसूत्र में अर्थ पद के द्वारा तृतीयार्थनिर्देश नही है; अपि तु अर्थग्रहण **योगाङ्ग**=सूत्र का अङ्ग है। इसके योगाङ्ग होने पर प्रकृतसूत्र का योगविभाग कर 'तृतीया तत्कृतेन गुणवचनेन' यह प्रथमयोग होगा, तथा 'अर्थेन' यह द्वितीययोग होगा। पूर्वयोग से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति उत्तरयोग में होगी। अर्थ होगा-'अर्थपद के साथ भी तृतीयान्त का समास हो'। इससे 'धान्येनार्थो धान्यार्थः, वसनेनार्थो वसनार्थः, हिरण्येनार्थो हिरण्यार्थः' में अर्थ पद के साथ तृतीयान्त का समास हो जाता है। यहाँ सर्वत्र 'अर्थ्यते इत्यर्थः=प्रयोजनम्' अथ वा 'अर्थन-मर्थः=प्रार्थना ऐसा अर्थ है। यहाँ करण में तृतीया नही कहनी चाहिये। अन्यथा 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से ही समास हो जाने से प्रकृत आरम्भ व्यर्थ हो जायेगा; अतः धन का पर्याय अर्थ पद के साथ प्रकृत्यादित्वप्रयुक्त तृतीयान्त का समास होगा, एवं प्रथमार्थ में तृतीया होगी। अथ वा 'धान्येन कृतोऽर्थः' ऐसा विग्रह होगा। यहाँ अर्थग्रहण को योगाङ्ग मानने से उत्तरसूत्र 'पूर्वसदृशसमोनार्थ-कलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णै' २.१.३१ में अर्थग्रहण नही करना पडता है। {तृतीया तत्कृतार्थेन–}।

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः २.१.३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** पूर्वादिष्वरस्योपसंख्यानम् * पूर्वादिष्व- रस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्। मासावरोऽयं, संवत्सरावरोऽयम् *सदृशग्रहण उक्तम् * किमुक्तम्? 'सदृशग्रहणमनर्थकं तृतीयासमासवचनात्' 'षष्ठ्यर्थमिति चेत्तृतीया-समासवचनानर्थक्य'मिति। {पूर्वसदृश}।**

'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३०. से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'पूर्व आदि के साथ तृतीयान्त का समास हो एवम् उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। मासेन पूर्वो मासपूर्वः। मातृसदृशः। पितृसमः। माषोनं कार्षापणम्। माषविकलम्। वाक्कलहः। आचारनिपुणः। गुणमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः।

वार्तिक—**पूर्वादिष्विति**। पूर्वादिगणपाठ में 'अवर'पद का भी पाठ कर उसके साथ भी तृतीयान्त का समास कहना चाहिये। जैसे 'मासेनावरो मासावरः। संवत्सरेणावरः संवत्सरावरः। **अवर**=न्यून। प्रकृतसूत्र में सदृशग्रहण का भी खण्डन करते हैं-**सदृशग्रहण उक्तमिति**। 'सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये' ६.२.११ सूत्र पर आचार्य तृतीयासमास होने पर सदृश पद के पूर्व प्रकृतिस्वर कहेंगे। उसी से सदृश के योग में तृतीयासमास सिद्ध हो जायेगा; अतः प्रकृतसूत्र में सदृशग्रहण नहीं करना चाहिये। भावी विषय को भी बुद्धि के द्वारा निरूपितत्व होने से भूतकाल का निर्देश कर 'उक्तम्' ऐसा कहा है। यदि यहाँ यह कहा जायें कि 'मात्रा सदृशो मातृसदृशः' में प्रकृतसूत्र से समास करने पर 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ में पूर्वपदप्रकृतिस्वरविधानार्थ सदृशग्रहण व्यर्थ है। यदि यहाँ यह कहा जाये कि 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीया-ऽन्यतरस्याम्' २.३.७२ के द्वारा तुल्यार्थ के योग में तृतीया और षष्ठी दोनों का विधान होता है; अतः 'मातुः सदृशो मातृसदृशः' इस षष्ठीसमासपक्ष में पूर्वपदप्रकृतिस्वरविधानार्थ 'सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये' ६.२.११ में सदृशग्रहण है। इस तरह 'दास्याः सदृशः' में 'षष्ठ्याऽऽक्रोशे' ६.३.२१ से आक्रोश गम्य होने पर षष्ठी का अलुक् होने से पूर्वपदप्रकृतिस्वर सिद्ध होगा, तब षष्ठीसमास से ही स्वर और रूप दोनों सिद्ध होने पर तृतीयासमास में सदृशग्रहण नहीं करना चाहिये। यदि यहाँ कहा जाये कि 'विद्यया सदृशो विद्यासदृशः' इस हेतुतृतीया के लिए सदृशग्रहण है तो यह भी पक्ष उचित नही है। वह इस तरह कि सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठीसमास के द्वारा ही स्वर एवं रूप सिद्ध है। अथ वा पूर्वसूत्र 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० के द्वारा ही तत्कृत होने से स्वर और रूप में समास सिद्ध हो जायेगा। {पूर्वसदृशसमोनार्थ}।

कर्तृकरणे कृता बहुलम् २.१.३२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** कर्तृकरणे कृता क्तेन * कर्तृकरणे कृता क्तेनेति वक्तव्यम्। अहिहतः। नखनिर्भिन्नः। दात्रलूनम्। परशुच्छिन्नम्। कृता क्तेनेति किमर्थम्? इह मा भूत्-दात्रेण लूनवान्, परशुना च्छिन्नवान्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् * बहुलवचनात् सिद्धम् * {कर्तृकरणे}।**

'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'कर्ता और करण अर्थ में तृतीया का क्तान्त कृदन्त के साथ समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'।

वार्तिक—**कर्तृकरणे कृतेति**। 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' के स्थान पर 'कर्तृकरणे क्तेन बहुलम्' ऐसा सूत्रपाठ करना चाहिये। इससे 'हतः, भिन्नः, लूनम्, छिन्नम्' इत्यादि क्तान्त के साथ भी समास होगा। सूत्र के यथान्यासपक्ष में 'दात्रेण लूनवान्, परशुना च्छिन्नवान्' में भी करणतृतीया का कृदन्त क्तवतुप्रत्ययान्त के साथ समास की आपत्ति होगी। 'अहिना हतोऽहिहतः' में कर्तृतृतीया का समास है। 'दात्रेण लूनं दात्रलूनम्, 'परशुना च्छिन्नं परशुच्छिन्नम्, नखैर्निभिन्नं नखनिर्भिन्नम्' में करण में तृतीया है। यहाँ क्त प्रत्यय को नत्व है। कृदन्त क्तान्त का ग्रहण करने का फल बताते हैं-**इह मा भूदिति**। क्तान्त कृदन्त के साथ समास कहने पर अन्य कृदन्त के साथ समास नहीं होने से 'दात्रेण लूनवान्' इत्यादि में समास नहीं होगा। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या 'दात्रेण लूनवान्' इत्यादि में समास की अतिव्याप्तिवारण के लिए 'क्तेन' ऐसा निर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त अतिव्याप्तिवारण के लिए 'क्तेन' ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य प्रकृतसूत्र में बहुलग्रहण करते हैं; उसी से 'क्तान्त कृदन्त के साथ समास हो' ऐसी व्याख्या हो जाने से 'दात्रेण लूनवान्' इत्यादि में अतिव्याप्ति नहीं होगी। {कर्तृकरणे-}।

कृत्यैरधिकार्थवचने २.१.३३

*** कृत्यैरधिकार्थवचनेऽन्यत्रापि दृश्यते * 'कृत्यैरधिकार्थवचनेऽन्यत्रापि दृश्यत' इति वक्तव्यम्। बुसोपेन्ध्यं, घनघात्यम् * साधनं कृतेति वा पादहारकाद्यर्थम् * अथ वा 'साधनं कृता समस्यत' इति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'पादहारकाद्यर्थम्'। पादाभ्यां ह्रियते पादहारकः। गले चोप्यते गले चोपकः। {कृत्यैरधिकार्थ}।**

'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० से 'तृतीया' तथा 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से 'कर्तृकरणे' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'कर्ता और करण में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीया का कृत्य-प्रत्ययान्त के साथ अधिकार्थ वचन गम्य होने पर समास हो तथा उसकी तत्पुरुष संज्ञा हो'। काकपेया नदी। वातच्छेद्यं तृणम्। स्तुतिफलक वचन एवं निन्दाफलक वचन को अधिकार्थवचन कहते हैं।

वार्तिक—**अन्यत्रापीति**। 'कृत्यैरधिकार्थवचने' इस समासप्रकरण में कृत्यप्रत्ययों का अन्य अर्थों में भी समास देखा जाता है। 'बुसेन उपेन्ध्यं बसोपेन्ध्यम्= अग्नि के अल्प होने से यह काष्ठ **बुस**=भूसा से ही जलाना चाहिये। यहाँ ञिइन्धी दीप्तौ धा.पा. १४४६ धातु से ण्यत् प्रत्यय है। 'घनेन घात्यं घनघात्यम्' में हन हिंसागत्योः धा.पा. १०११ धातु से ण्यत् प्रत्यय है। यहाँ अयःप्रभृतिघन के द्वारा घात्य का काठिन्यबोध है; अतः अन्यत्र भी समास कहना चाहिये। **साधनं कृतेति वेति**। अथ वा पादहारक इत्यादि की सिद्धि के लिए कृदन्त के साथ साधन का समास कहना चाहिये। यहाँ बहुलग्रहणसहित सूत्रसन्दर्भापेक्ष विकल्प है। 'पादाभ्यां ह्रियते इति पादहारकः' .में अपादान में पञ्चमी है तथा 'कृत्यल्युटो बहुलम्' ३.३.११३ में बहुलग्रहणसामर्थ्य से कर्म में ण्वुल् प्रत्यय है। 'गले चोप्यते इति गले चोपकः' में ण्यन्त चोपि धातु से कर्म में ण्वुल् प्रत्यय है। {कृत्यैर–}।

अन्नेन व्यञ्जनम् २.१.३४
भक्ष्येण मिश्रीकरणम् २.१.३५

* अन्नेन व्यञ्जनं भक्ष्येण मिश्रीकरणमित्यसमर्थसमासः * **अन्नेन व्यञ्जनं भक्ष्येण मिश्रीकरण- मित्यसमर्थसमासोऽयं द्रष्टव्यः। किं कारणम्?** * कारकाणां क्रियासमर्थत्वात् * **कारकाणां क्रियया सामर्थ्यमस्ति, न तेषामन्योऽन्येन। तद्यथा-निश्रयण्या द्वाभ्यां काष्ठाभ्यां सामर्थ्यं, न तेषामन्योऽन्येन। एवं तर्ह्याहायम्- 'अन्नेन व्यञ्जनं' 'भक्ष्येण मिश्रीकरण'मिति, न चाऽस्ति सामर्थ्यम्, तत्र वचनात् समासो भविष्यति।**

'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० से 'तृतीया' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'संस्कारकद्रव्यवाचक तृतीयान्त का अन्न पद के साथ समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। दध्ना ओदनो दध्योदनः। यहाँ अन्तर्भूत उपसेकक्रियाद्वारा सामर्थ्य है। २.१.३४।

'मिश्रीक्रियते खाद्यं द्रव्यमनेनेति मिश्रीकरणं गुणादि' ही यहाँ मिश्रीकरण पद का वाच्य है। सूत्रार्थ-'मिश्रीकरण गुण आदि तृतीयान्त का भक्ष्य के साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समास हो' तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। गुडेन धाना गुणधानाः। यहाँ अन्तर्भूत मिश्रणक्रियाद्वारा सामर्थ्य है। २.१.३४।

तुल्यन्याय होने से भाष्यकार यहाँ दो सूत्रों का एक साथ विचार करते हैं-**अन्नेन व्यञ्जनमिति**। कारकों का क्रिया के साथ ही सामर्थ्य होता है, परस्पर नहीं। 'दध्योदनः, गुडधानाः' इत्यादि में क्रिया पद का प्रयोग नहीं है, अपि तु कारकों का ही प्रयोग है। जैसे **निश्रयण्या**={यहाँ समुदायवृत्ति निश्रयणी पद के द्वारा सोपानफलक वाच्य है} सोपानफलक **द्वाभ्याम्**=दो काष्ठ एक दूसरे से सम्बद्ध तथा अन्वित होते हैं वैसे कारक परस्पर सम्बद्ध तथा अन्वित नहीं होते हैं; अतः परस्पर अन्वित नहीं होने से असमर्थ होगा। असमर्थों का समास नहीं होने से 'दध्योदनः' आदि में समास प्राप्त नहीं हो रहा है। एकदेशी आचार्य-**एवं तर्हीति**। आचार्य 'अन्नेन व्यञ्जनम्' 'भक्ष्येण मिश्रीकरणम्' ऐसा निर्देश कर हरे हैं; अतः इस वनचसामर्थ्य से 'दध्योदनः' आदि में कारकों का भी सामर्थ्य हो जायेगा।

* वचनप्रामाण्यादिति चेन्नानाकारकाणां प्रतिषेधः * **वचनप्रामाण्यादिति चेन्नानाकारकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः। तिष्ठतु दध्ना ओदनो देवदत्तेन भुज्यत इति** * सिद्धं तु समानाधिकरणाधिकारे क्तस्तृतीयापूर्वपद उत्तरपदलोपश्च * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'समानाधिकरणाधिकारे वक्तव्यम्-'क्तान्तस्तृतीयापूर्वपदः समस्यते सुपा, उत्तरपदस्य च लोपो भवती'ति। दध्नोपसिक्तो दध्युपसिक्तः। दध्युपसिक्त ओदनो दध्योदनः। गुडेन संसृष्टा गुडसंसृष्टाः, गुडसंसृष्टा धाना गुडधानाः।**

आक्षेपक—**वचनप्रामाण्यादिति**। यदि वचनसामर्थ्य से कारकों का परस्पर सामर्थ्य कहेंगे तो 'तिष्ठतु दध्ना ओदनो देवदत्तेन भुज्यते' में जहाँ 'तिष्ठतु'-क्रियानिरूपित कारकत्व 'दध्ना' में तथा 'भुज्यते'क्रियानिरूपित कारकत्व 'ओदनः' में है, वहाँ भिन्न-भिन्न क्रिया के प्रति भिन्न-भिन्न कारकों का भी वचनप्रामाण्य से सामर्थ्यवश समास प्राप्त होगा जिसका निषेध कहना होगा। इस तरह सूत्रन्यास को दूषित कर वार्तिककार अपना पक्ष स्पष्ट करते हैं-**सिद्धं त्विति**। तृतीयापूर्वपद क्तान्त का सुबन्त के साथ समास कहना चाहिये, तथा उत्तरपद का लोप भी कहना चाहिये। इससे 'दध्योदनः, गुडधानाः' का समास हो जायेगा। यहाँ तृतीयान्त क्तान्त पूर्वपद 'दध्युपसिक्त' तथा 'गुडसंसृष्ट' है; एवम् उत्तरपद 'उपसिक्त' तथा 'संसृष्ट' का लोप है।

* षष्ठीसमासश्च युक्तपूर्णान्तः * **षष्ठीसमासश्च युक्तपूर्णान्तः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समस्यते, उत्तरपदस्य च लोपो वक्तव्यः। अश्वानां युक्तोऽश्वयुक्तः, अश्वयुक्तो रथोऽश्वरथः। दध्नः पूर्णो दधिपूर्णः, दधिपूर्णो घटो दधिघटः। तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम्? * न वाऽसमासेऽदर्शनात् * न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'असमासेऽदर्शनात्'। यद्धि असमासे दृश्यते, समासे च न दृश्यते तल्लोपारम्भं प्रयोजयति। न चाऽसमासे उपसिक्तशब्दः, संसृष्टशब्दो, युक्तशब्दः, पूर्णशब्दो वा दृश्यते। कथं तर्हि सामर्थ्यं गम्यते? * युक्तार्थसम्प्रत्ययाच्च सामर्थ्यम् * दध्ना युक्ताऽर्थता सम्प्रतीयते। कथं पुनर्ज्ञायते 'दध्ना युक्ताऽर्थता सम्प्रतीयत' इति?

उत्तरपदलोपप्रसङ्ग से अन्य भी लोप बताते हैं—**षष्ठीसमासश्चेति**। युक्तशब्दान्त तथा पूर्णशब्दान्त षष्ठीसमास का भी सुबन्त के साथ समास तथा उत्तरपद युक्त और पूर्ण का लोप कहना चाहिये। 'अश्वयुक्तः, दधिपूर्णः' यह षष्ठीसमासयुक्त तथा पूर्णपदान्त है। समास होने पर उत्तरपद युक्त का लोप होकर 'अश्वरथः', तथा पूर्ण का लोप होकर 'दधिघटः' पद होता है। सम्बन्धविवक्षा में 'अश्वानाम्' यह षष्ठी है। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। उक्त प्रयोगों की सिद्धि के लिए अनेक वार्तिक पढे गये हैं। क्या यहाँ अनेक वचन पढना आवश्यक है, अथ वा एक ही वचन से सभी की सिद्धि हो जायेगी?

खण्डनभाष्य—**न वेति**। यदि **असमासे**=विग्रह वाक्य में पद देखा जाता हो तब उत्तरपदलोप का आरम्भ करना चाहिये। 'दध्योदनः' का विग्रहवाक्य में 'उपसिक्त' पद, 'गुडधानाः' का विग्रहवाक्य में संसृष्ट पद, 'अश्वरथः' का विग्रहवाक्य में युक्त पद तथा 'दधिघटः' का विग्रहवाक्य में पूर्ण पद नहीं है; अतः उक्त 'दध्योदनः' आदि पदों का विग्रह उपसिक्त आदि पदों से रहित ही करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**कथं तर्हीति**। यदि 'दध्योदनः; आदि के विग्रह में उपसिक्त आदि पद नहीं देंगे तो क्रिया के अभाव में कारकों का परस्पर अन्वय नहीं होने पर भी सामर्थ्य कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**युक्तार्थेति**। यहाँ योग्यग्रहण योग्यक्रिया का उपलक्षण है; अतः उपसेक आदि का भी ग्रहण होगा। 'दध्योदनः' ऐसा कहने पर दधि का संस्कारकत्व तथा ओदन का संस्कार्यत्वज्ञान होता है। उपसेक के विना संस्कार्यसंस्कारकभाव का बोध सम्भव नहीं है; अतः सामर्थ्यवश उपसेकक्रिया की प्रतीति होने से सामर्थ्य हो जायेगा। इसी तरह 'गुडधानाः' में समाधान करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ अन्तर्भूत उपसेक आदि क्रियाओं के साथ ही सामर्थ्य कहना चाहिये। यह सर्वलोकव्यवहारहेतु है। अत एव अर्थविशिष्टज्ञान प्रतिज्ञात अर्थ का एकदेशज्ञान नहीं हो सकता है।

*** सम्प्रत्ययाच्च तदर्थाध्यवसानम् * सम्प्रत्ययाच्च तदर्थोऽध्यवसीयते। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् * सम्प्रतीयमानार्थलोपे ह्यनवस्था * यो हि मन्यते सम्प्रतीयमानार्थानां शब्दानां लोपो भवतीत्यनवस्था तस्य लोपस्य स्यात्। 'दधी'त्युक्ते बहवोऽर्था गम्यन्ते,-मन्दकमुत्तरकं निलीनकमिति। तद्वाचिनां शब्दानां लोपो वक्तव्यः स्यात्। तथा 'गुड' इत्युक्ते मधुरशब्दस्य, 'श्रृङ्गवेर'मिति च कटुकशब्दस्य। अन्तरेणापि खलु शब्दप्रयोगं बहवोऽर्था गम्यन्तेऽक्षिनिकोचैः पाणिविहारैश्च। तद्वाचिनां शब्दानां लोपो वक्तव्यः स्यात्।** {अन्नेन। भक्ष्येण}।

अन्तर्भूत उपसेक आदि क्रिया की प्रतीति से ही **तदर्थाध्यवसानम्**=सन्देहरहित तदर्थ का निश्चय होता है। सम्प्रतीयमान अर्थ का लोप कहने पर अन्य दोष भी आता है, उसे स्पष्ट करते हैं-**सम्प्रतीयमानेति**। 'दध्योदनः' आदि में सम्प्रतीयमान अर्थ का लोप मानने वालों के मत में अनवस्था दोष भी आयेगा। वह इस तरह कि दधि कहने पर **मन्दकम्**=मन्दजात, **उत्तरकम्**=परिपक्वाऽवस्था के उत्तर में घनभाव तथा **निलीनकम्**=परिपक्वावस्था के बाद भ्रष्ट यह सभी विशेषण सम्भव हैं। उन सभी का लोप कहना पडेगा जिससे अनवस्था होगी। इसे उदाहरण से भी पुष्ट करते हैं-**यथेति**। जैसे गुड कहने से मधुर अर्थ का बोध होता है तथा उसका लोप किया जाता है। एवं **श्रृङ्गवेरम्**=अदरख कहने से कटुक अर्थ का बोध होता है तथा उसका लोप होता है। जैसे शब्दप्रयोग नहीं करने पर भी आँखों तथा हाथ के इशारे से बहुत अर्थो का बोध होता है, वैसे युक्त आदि अर्थो का बोध भी शब्दप्रयोग के विना ही हो जायेगा। {अन्नेन। भक्ष्येण}।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २.१.३६

किं चतुर्थ्यन्तस्य तदर्थमात्रेण समासो भवति? एवं भवितुमर्हति-ब्राह्मणार्थं पयः, ब्राह्मणार्थः सूपः, ब्राह्मणार्था यवागूः।

सूत्रार्थ-'चतुर्थी का तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित पद के साथ समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'चतुर्थी चाशिषि' २.३.७३ इस सूत्र से विहित चतुर्थी का समास से आशीः गम्य नहीं होने के कारण समास नहीं होता है। पाणिनीय लक्षण में अतिव्याप्ति तथा पुनरुक्ति मान कर एवं पूर्वाचार्यन्यास में अव्याप्ति मान कर विचार कर रहे हैं-**किं चतुर्थ्यन्तस्येति**। क्या चतुर्थ्यन्त का तदर्थमात्र के साथ समास होता है? यहाँ विशेष का ग्रहण नहीं होने तथा दोष देखे जाने से प्रश्न है। 'रन्धनाय स्थाली' इत्यादि में अतिव्याप्ति हो रही है तथा 'बलिरक्षित' ग्रहण की पुनरुक्ति हो रही है। यहाँ प्राश्निक आचार्य अपने प्रश्न में ही दोष दिखा रहे हैं-**एवमिति**। यदि चतुर्थ्यन्त का तदर्थमात्र के साथ समास कहेंगे तो 'ब्राह्मणायेदं ब्राह्मणार्थं पयः' 'ब्राह्मणायायं ब्राह्मणार्थः सूपः' ब्राह्मणायेयं ब्राह्मणार्था यवागूः' में इष्ट समास हो जायेगा।

* चतुर्थी तदर्थमात्रेण चेत्सर्वप्रसङ्गोऽविशेषात् * **'चतुर्थी तदर्थमात्रेण चेत्सर्वप्रसङ्गः'। सर्वस्य चतुर्थ्यन्तस्य तदर्थमात्रेण सह समासः प्राप्नोति। अनेनापि समासः प्राप्नोति-रन्धनाय स्थाली, अवहननायोलूखलमिति। किं कारणम्? 'अविशेषात्'। नहि कश्चिद्विशेष उपादीयतेएवंजातीयकस्य चतुर्थ्यन्तस्य तदर्थेन सह समासो भवती'ति। अनुपादीयमाने विशेषे सर्वप्रसङ्गः।**

तदर्थमात्रग्रहण की अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**सर्वप्रसङ्ग इति**। तदर्थमात्र का ग्रहण करने से सर्वप्रसङ्ग होने पर 'रन्धनाय स्थाली, अवहननायोलूखलम्' में भी तदर्थ होने से चतुर्थीसमास की अतिव्याप्ति हो रही है। इसका कारण बताते हैं-**अविशेषादिति**। आचार्य प्रकृतसूत्र में तदर्थ का ग्रहण में कोई विशेष निर्देश नहीं कर रहे हैं कि 'इसी तरह का विशेष लिया जाये'। इस तरह सर्वप्रसङ्ग होने पर 'रन्धनाय स्थाली' इत्यादि में भी चतुर्थीसमास की अतिव्याप्ति हो रही है।

* बलिरक्षिताभ्यां चानर्थकं वचनम् * **बलिरक्षिताभ्यां च समासवचनमनर्थकम्। यो हि महाराजाय बलिः स महाराजार्थो भवति, तत्र 'तदर्थ' इत्येव सिद्धम्। यदि पुन'र्विकृतिश्चतुर्थ्यन्ता प्रकृत्या सह समस्यते' इत्येतल्लक्षणं क्रियेत?** * विकृतिः प्रकृत्येति चेदश्वघसादीनामुपसंख्यानम् * **'विकृतिः प्रकृत्ये'ति चेदश्वघासादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्। अश्वघासः, श्वश्रूसुरं, हस्तिविधेति।**

अतिव्याप्ति स्पष्ट कर अब पुनरुक्ति स्पष्ट करते हैं—**बलिरक्षिताभ्यामिति**। महाराज को दी गयी बलि भी महाराजार्थ होती है तथा महाराज के लिए रक्षित भी महाराजार्थ होता है; अतः वहाँ तदर्थमात्र से ही समास हो जाने से बलि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और रक्षितग्रहण से पुनरुक्ति हो रही है। अव्याप्तिदोष स्पष्ट करने के लिए पूर्वाचार्य के सूत्र पर विचार करते हैं-**यदि पुनरिति**। यदि प्रकृत में तदर्थग्रहण से प्रकृतिविकृतिभाव का ग्रहण कर चतुर्थ्यन्त का समास कहेंगे तो 'रन्धनाय स्थाली' इत्यादि में समास की आपत्ति निरस्त हो जाने तथा 'महाराजबलिः' इत्यादि में तदर्थमात्र में भी समास प्राप्त नहीं होने से बलि और रक्षितग्रहण की पुनरुक्ति नही होने पर भी प्रकृति के साथ विकृति का समास होने से 'अश्वघासः, श्वश्रूसुरम्, हस्तिविधा' में प्रकृतिविकृतिभाव नही होने से समास सिद्ध नही हो सकेगा; अतः अव्याप्तिदोष स्पष्ट है। 'श्वश्र्वे सुरा श्वश्रूसुरा' में 'विभाषा सेना-सुराच्छायाशालानिशानाम्' २.४.२५ से नपुंसकत्व है। **हस्तिविधा**=हस्ति का अन्न माष आदि।

* अर्थेन नित्यसमासवचनम् * **अर्थशब्देन नित्यसमासो वक्तव्यः। ब्राह्मणार्थं क्षत्रियार्थम्। 'किं विकृतिश्चतुर्थ्यन्ता प्रकृत्या सह समस्यत' इत्यतोऽर्थेन नित्यसमासो वक्तव्यः? 'ने'त्याह। सर्वथाऽर्थेन नित्यसमासो वक्तव्यः। किं कारणम्? विग्रहो मा भूदिति** * सर्व-लिङ्गता च * **सर्वलिङ्गता च वक्तव्या। ब्राह्मणार्थं पयः, ब्राह्मणार्थः सूपः, ब्राह्मणार्था यवागूरिति। किमर्थेन नित्यसमास उच्यते इत्यतः सर्वलिङ्गता वक्तव्या? 'ने'त्याह। सर्वथा सर्वलिङ्गता वक्तव्या। किं कारणम्?**

वार्तिक—**अर्थेनेति**। अर्थशब्द के साथ नित्यसमास कहना चाहिये। महा-विभाषा २.१.११ अधिकार में विकल्प प्राप्त होने पर वचन का आरम्भ है।

प्रश्नभाष्य—**किं विकृतिरिति**। क्या यहाँ 'चतुर्थ्यन्त निर्दिष्ट विकृति का प्रकृति के साथ समास हो' ऐसा अर्थ किया जाये?

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। यहाँ अर्थपद के साथ समास में उक्त अर्थ न लेकर सर्वथा अर्थ के साथ समास कहना चाहिये। यहाँ दोषवादी ने अनन्तर अभिधान होने से 'अर्थेन नित्यसमासवचनम्' इसी लक्षण का अन्य दोष मान कर प्रश्न किया है तथा 'सामर्थ्य का अभाव होने पर आनन्तर्य कारण नही है' ऐसा मान कर उत्तरपक्ष में समाधान है। अर्थ के साथ नित्यसमास का स्वरूप स्पष्ट करते हैं-**विग्रहो मा भूदिति**। 'ब्राह्मणार्थम्' 'क्षत्रियार्थम्' में विग्रह नही होगा। प्रायः अविग्रह तथा अस्वपदविग्रह ही नित्यसमास होता है। **सर्वलिङ्गता चेति**। अर्थपद के साथ नित्य समास में सर्वलिङ्गता भी कहनी चाहिये। इससे 'ब्राह्मणार्थं पयः, 'ब्राह्मणार्थः सूपः, 'ब्राह्मणार्था यवागूः' में क्रमशः विशेष्य के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नपुंसकलिङ्ग, पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में होने से नपुंसकलिङ्ग पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में हो गया।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थेनेति**। क्या अर्थ पद के साथ नित्य समास कह रहे हैं, इसी लिए सर्वलिङ्गता कहनी चाहिये, अथवा जहाँ अर्थ पद के साथ नित्य समास नहीं होगा वहाँ भी सर्वलिङ्गता होगी?

समाधानभाष्य—**नेत्याहेति**। अर्थ शब्द के साथ समास होने पर सर्वथा सर्वलिङ्गता कहनी चाहिये।

यावताऽर्थशब्दोऽयं पुल्लिंङ्गः, उत्तरपदार्थप्रधानश्च तत्पुरुषः, तेन पुल्लिंङ्गस्यैव समासस्याऽभिधानं स्यात्, स्त्रीनपुंसकलिङ्गस्य न स्यात्। तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम्। 'विकृतिः प्रकृत्येति वक्तव्यम्'। 'अश्वघासादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्'। 'अर्थेन नित्यसमासो वक्तव्यः'। 'सर्वलिङ्गता च वक्तव्या'। न वक्तव्यम्। यत्तावदुच्यते'विकृतिः प्रकृत्येति वक्तव्य'मिति। न वक्तव्यम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति'विकृतिश्चतुर्थ्यन्ता प्रकृत्या सह समस्यते' इति,-यदयं बलिरक्षितग्रहणं करोति। तत्कथं कृत्वा ज्ञापकम्? यथाजातीयकानां समासे बलिरक्षितग्रहणेनाऽर्थस्तथाजातीयकानां समासः। यदि च विकृतिश्चतुर्थ्यन्ता प्रकृत्या सह समस्यते न तदर्थमात्रेण, ततो बलिरक्षितग्रहणमर्थवद् भवति। यदप्युच्यते-'अश्वघासादीनामुपसंख्यानं कर्तव्य'मिति। न कर्तव्यम्। अश्वघासादयः षष्ठीसमासा भविष्यन्ति।

यहाँ सर्वथा सर्वलिङ्गता नही कहने पर जो दोष आयेगा, उसे कहते हैं- **यावतेति**। अर्थशब्द नित्य पुंल्लिङ्ग है। प्रकृत में तत्पुरुष समास किया जा रहा है। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' २.४.२६ के द्वारा तत्पुरुष में पर का ही लिङ्ग होने से 'ब्राह्मणार्थं पयः, 'ब्राह्मणार्था यवागूः' में भी पुंल्लिङ्गत्व की आपत्ति होगी; अतः उसे दूर करने के लिए **सर्वत्र**=सभी लिङ्ग में **सर्वलिङ्गता**=विशेष्य का लिङ्ग कहना चाहिये। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीदमिति**। वार्तिककार ने इस सूत्र पर प्राप्त दोषों का वारण के लिए अनेक=चार वचन कह दिये हैं। पहला–'विकृति का प्रकृति के साथ समास हो'। दूसरा–'अश्वघास आदि का समास हो'। तीसरा–'अर्थ के साथ नित्यसमास हो'। एवं चौथा–'उसकी सर्वलिङ्गता हो'। क्या यहाँ यह चारों वचन पढा जाना आवश्यक है?

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। आचार्य ने प्रकृतसूत्र में बलि और रक्षित पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का ग्रहण कर स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ तदर्थ पद से 'विकृति का प्रकृति चतुर्थ्यन्त के ही साथ समास करना चाहिये'। इससे पुनरुक्ति का वारण हो गया। वह इस तरह ज्ञापक होगा कि जिस प्रकार का समास में बलिरक्षितग्रहण का प्रयोजन है उसी प्रकार का समास कहना चाहिये। यदि इस सूत्र में तदर्थपद से प्रकृतिविकृतिभाव लिया जाये तभी बलि और रक्षितग्रहण अर्थवान् होता है; अन्यथा नहीं। 'अश्वघासः' आदि में 'अश्वस्य घासोऽश्वघासः' ऐसा षष्ठीसमास होने से अव्याप्ति भी नहीं है।

यद्धि यदर्थं भवत्ययमपि तत्राभिसम्बन्धो भवति-'अस्येद'मिति। तद्यथा-गुरोरिदं गुर्वर्थमिति। ननु च स्वरभेदो भवति-चतुर्थीसमासे सति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन भवितव्यं, षष्ठीसमासे सति पुनरन्तो-दात्तत्वेन। नास्ति भेदः। चतुर्थीसमासेऽपि सत्यन्तोदात्तत्वेनैव भवि-तव्यम्। कथम्? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति'विकृतिश्चतुर्थ्यन्ता प्रकृतिस्वरा भवति, न चतुर्थीमात्र'मिति, यदयं 'चतुर्थी तदर्थे' 'अर्थे' 'क्ते चे'त्यर्थ-ग्रहणं क्तग्रहणं च करोति।

आक्षेपक—**यद्धि यदर्थमिति**। जो जिसके लिए होता है वह तदर्थ कहा जाता है। जैसे गुरु के लिए कोई वस्तु है तो उसे गुर्वर्थ भी कहेंगे; अतः अश्व के लिए घास है तो वहाँ भी तदर्थ होने से चतुर्थी की आपत्ति होगी। आप यहाँ षष्ठीसमास कर रहे हैं, मैं उसे भी मान लेता हूँ। परन्तु यहाँ षष्ठी तथा चतुर्थी दोनों समास होगा। दोनों समासों का पृथक्-पृथक् प्रयोजन भी है। यदि चतुर्थीसमास करते हैं तब पूर्वपदप्रकृतिस्वर होगा। परन्तु जब षष्ठीसमास करते हैं तब 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्तस्वर होगा। अन्य आचार्य-**नास्ति भेद इति**। चतुर्थीसमास होने पर भी अन्तोदात्त ही होगा, पूर्वपदप्रकृतिस्वर नहीं। आचार्य 'चतुर्थी तदर्थे' ६.२.४३, 'अर्थे' ६.२.४४ 'क्ते च' ६.२.४५ सूत्र का आरम्भ कर ज्ञापन करते हैं कि चतुर्थ्यन्त विकृति को ही पूर्वपद-प्रकृतिस्वर होता है; चतुर्थीमात्र को नहीं। इस तरह 'अश्वघासः' में चतुर्थी-समासपक्ष में जो पूर्वपद को प्रकृतिस्वर की आपत्ति दी थी वह निरस्त हो गयी।

कथं कृत्वा ज्ञापकम्? यथाजातीयकानां प्रकृतिस्वरत्वेऽर्थग्रहणेन क्तग्रहणेन चाऽर्थस्तथाजातीयकानां प्रकृतिस्वरत्वम्। यदि च विकृति-श्चतुर्थ्यन्ता प्रकृत्या भवति न चतुर्थीमात्रन्ततोऽर्थग्रहणं क्तग्रहणं चाऽर्थवद् भवति। यदप्युच्यते-'अर्थेन नित्यसमासो वक्तव्य' इति। न वक्तव्यः। सर्थप्रत्ययः करिष्यते। किं कृतं भवति? न चैव हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कदाचित् प्रत्ययेन विग्रहो भवति। अपि च सर्वलिङ्गता सिद्धा भवति।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—चतुर्थी तदर्थे' ६.२.४३, 'अर्थे' ६.२.४४ 'क्ते च' ६.२.४५ सूत्र 'विकृतिश्चतुर्थ्यन्ता प्रकृतिस्वरा भवति, न चतुर्थीमात्रम्' का ज्ञापक कैसे है? ज्ञापनवादी आचार्य-**यथेति**। प्रकृतिस्वर में अर्थग्रहण और क्तग्रहण से जिसप्रकार का प्रयोजन है उसी प्रकार का प्रकृतिस्वर होगा। यदि चतुर्थ्यन्त विकृति का समास प्रकृति से करते हैं, चतुर्थमात्र से नही, तब 'चतुर्थी तदर्थे' ६.२.४३ में अर्थग्रहण का प्रयोजन है, अन्यथा नही। इस तरह स्वरभेद नही होने से 'अश्वघासः' इत्यादि में षष्ठीसमास ही करना चाहिये। चतुर्थीसमास करने पर भी यहाँ अन्तोदात्त ही प्राप्त होगा, पूर्वपदप्रकृतिस्वर नहीं। नित्यसमासवचन का भी खण्डन करते हैं-**यदप्युच्यत इति**। 'अर्थेन नित्यसमासो वक्तव्यः' यह भी कहने की आवश्यकता नही है। 'तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ' ५.१.१२ इस सूत्र के स्थान पर 'तदर्थे विकृतेः प्रकृतौ' ऐसा सूत्रपाठ करेंगे। तादर्थ्य में चतुर्थी विभक्ति का आक्षेप होगा; अथ वा 'तस्मै हितम्' ५.१.१५ से 'तस्मै' पद की अनुवृत्ति कर चतुर्थी का लाभ होगा। इससे 'चतुर्थ्यन्त से तादर्थ्य वाच्य होने पर सर्थप् प्रत्यय हो' यह 'तदर्थे सर्थप् प्रकृतौ' का अर्थ होगा। 'सिति च' १.४.१६ से पदत्वलाभ के लिए प्रत्यय में सकारनिर्देश है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ अनुदात्तार्थ पकारग्रहण है। इससे प्रकृति को यथाप्राप्तस्वर हो जाने से स्वरविधान के लिए 'अर्थे' ६.२.४४ यह सूत्रनिर्देश नही करना होता है। सर्थप् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तत्वनिमित्तक प्रातिपदिकसंज्ञा होने से सुप् का लुक् हो जाने से विग्रह नही होगा। एवम् उससे सर्वलिङ्गता भी सिद्ध हो जायेगी।

यदि सर्थप्रत्ययः क्रियते, इत्संज्ञा न प्राप्नोति। अथापि कथञ्चिदित्संज्ञा स्यादेवमपि श्र्यर्थं भ्र्वर्थम्-'अङ्गस्ये'तीयङुवङौ स्याताम्। एवं तर्हि बहुव्रीहिर्भविष्यति। किं कृतं भवति? भवति वै कश्चिदस्वपदविग्रहो बहुव्रीहिः। तद्यथा-शोभनं मुखमस्याः सुमुखीति। नैवं शक्यम्। इह हि महदर्थमित्यात्त्वकपौ प्रसज्येयाताम्। एवं तर्हि तदर्थस्योत्तर-पदस्यार्थशब्द आदेशः करिष्यते। किं कृतं भवति? न चैव हि कदाचिदादेशेन विग्रहो भवति। अपि च सर्वलिङ्गता सिद्धा भवति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। योगविभागः करिष्यते- 'चतुर्थी'। चतुर्थी सुबन्तेन सह समस्यते। ततः-'तदर्थार्थ'। तदर्थस्य चोत्तरपदस्याऽर्थशब्द आदेशो भवति।

आक्षेपक—**यदीति**। यदि सर्थप् प्रत्यय करेंगे तो प्रत्यय का आदि अवयव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'स' की इत्संज्ञा प्राप्त नहीं होगी। अथ च यदि 'आदिञ्टुडवष्ष्यः प्रत्ययस्य' इस तरह संहिता के द्वारा सूत्रपाठ में सकार को भी ष्टुत्व कर निर्देश मान लिया जाये तथा उससे सर्थप् प्रत्ययघटक सकार की इत्संज्ञा कर ली जाये तो इससे सर्वलिङ्गता सिद्ध होने पर भी अन्यत्र 'श्री+अर्थम्' 'भ्रु+अर्थम्' में 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' ६.४.७७ से क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश की आपत्ति होगी। समाधानवादी-**एवं तर्हीति**। यदि सर्थप् प्रत्यय करने में दोष है तो सर्वलिङ्गता की सिद्धि के लिए 'सुमुखी' की तरह बहुव्रीहि करेंगे। कुछ अस्वपदविग्रह बहुव्रीहि भी होता है। जैसे 'शोभनं मुखमस्याः सा सुमुखी'। यहाँ सु शब्द का पर्याय शोभन शब्द के साथ विग्रह है। अव्ययपद होने से सु पद के साथ विग्रह सम्भव नहीं है। यहाँ 'ब्राह्मणायार्थोऽस्य' इसका विग्रह विवक्षित नहीं है; अपि तु 'ब्राह्मणार्थोऽस्य' ऐसा विग्रह विवक्षित है; एवम् यहाँ अर्थ पद प्रयोजनवाची है।

खण्डनभाष्य—**नैवं शक्यमिति**। यदि यहाँ सर्वलिङ्गतासिद्धि के लिए बहुव्रीहि करेंगे तो 'महदर्थम्' में भी आप को बहुव्रीहि ही मानना पडेगा। इससे समानाधिकरण उत्तरपद पर रहते 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' ६.३.४६ से महत् शब्द को आत्त्व तथा 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से समासान्त कप् की आपत्ति होगी।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'ब्राह्मणाय पयः' इस विग्रह में समास करने पर उत्तरपद पयस् के स्थान में अर्थशब्द आदेश करेंगे। इससे तादर्थ्य में 'ब्राह्मणपयः' इस पद के प्रयोग की आपत्ति भी नहीं होगी। समास में चतुर्थी की निवृत्ति होने से अर्थ पद के साथ विग्रह होगा। एवम् अर्थविशेष की अभिव्यक्ति के लिए पयस् शब्द का प्रयोग कर 'ब्राह्मणार्थं पयः' ऐसा कहा जायेगा। इससे आदेश हुआ अर्थ शब्द के साथ विग्रह नहीं होगा तथा सर्वलिङ्गता सिद्ध हो जायेगी; अतः सर्वलिङ्गता के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या यहाँ सर्वलिङ्गतासिद्धि के लिए उत्तरपद के स्थान में अर्थ शब्द का आदेश के लिए अतिरिक्तवचन पढा जाना आवश्यक हैं।

खण्डनभाष्य—**नेति**। उत्तरपद को अर्थ शब्द आदेश के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए प्रकृतसूत्र का योगविभाग कर 'चतुर्थी' यह प्रथम योग होगा तथा 'तदर्थार्थ' यह द्वितीय योग होगा। 'समर्थ सुबन्त के साथ चतुर्थ्यन्त का समास हो' यह प्रथम योग का अर्थ होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'तदर्थ उत्तरपद को अर्थ शब्द आदेश हो' यह द्वितीय योग का अर्थ होगा। इस तरह संहितापाठ से ही उत्तरपद को अर्थ शब्द आदेश होने पर अतिरिक्त पाठ करने की आवश्यकता नहीं है।

इहापि तर्हि समासः प्राप्नोति-च्छात्राय रुचितं, छात्राय स्वदितमिति। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'तादर्थ्ये या चतुर्थी सा समस्यते, न चतुर्थीमात्र'मिति यदयं हितसुखग्रहणं करोति। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? यथाजातीयकानां समासे हितसुखग्रहणेनाऽर्थस्तथाजातीयकानां समासः। यदि च तादर्थ्ये या चतुर्थी सा समस्यते, न चतुर्थीमात्रन्ततो हितसुखग्रहणमर्थवद् भवति। इहापि तर्हि तदर्थस्योत्तपदस्यार्थशब्द आदेशः प्राप्नोति-यूपाय दारु यूपदारु रथाय दारु रथदारु।

आक्षेपक—**इहापीति**। उक्त योगविभाग के द्वारा 'छात्राय रुचितम्' 'छात्राय स्वदितम्' में चतुर्थ्यन्त पद 'रुचितम्' और 'स्वदितम्' के साथ समर्थ है; अतः उसके समास की आपत्ति होगी। ज्ञापनवादी आचार्य-**आचार्यप्रवृत्तिरिति**। 'गवे हितम्' 'गवे सुखम्' में चतुर्थ्यन्त पद 'हितम्' और 'सुखम्' के साथ समर्थ है; अतः मात्र 'चतुर्थी' इस योगविभाग से ही यहाँ समास सिद्ध होने पर प्रकृतसूत्र में आचार्य जो हित और सुखग्रहण करते हैं, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापक होगा-'जो तादर्थ्य में चतुर्थी होती है, उसी का समास होता है, अन्य का नहीं'। इससे छात्राय रुचितम्' 'छात्राय स्वदितम्' में चतुर्थीसमास की आपत्ति निरस्त हो गयी।

प्रश्नभाष्य—**कथं कृत्वेति**। प्रकृतसूत्र में हित और सुखग्रहण 'तादर्थ्ये या चतुर्थी सा समस्यते, न चतुर्थीमात्रम्' का ज्ञापक कैसे होगा? ज्ञापनवादी आचार्य-**यथाजातीयकानामिति**। जिस प्रकार के समास में हित और सुखग्रहण से प्रयोजन है उसी प्रकार का समास होगा। यदि 'तादर्थ्य में जो चतुर्थी वह समस्त हो, चतुर्थीमात्र नहीं' यह अर्थ माना जाये, तभी हित और सुखग्रहण अर्थवान् होगा; अन्यथा नहीं। आक्षेपक-**इहापि तर्हीति**। यदि तादर्थ्य में विहित चतुर्थी का समास कह रहे हैं, तथा उत्तरपद को अर्थ पद आदेश कह रहे हैं, तो 'यूपाय दारु यूपदारु, रथाय दारु रथदारु' में भी प्रकृति-विकृतिभाव होने से तादर्थ्य में चतुर्थी है; अतः यहाँ भी उत्तर पद दारु को अर्थ पद आदेश होना चाहिये।

*** वावचनम् * वा च विधास्यते। इहापि तर्हि विभाषा प्राप्नोति-ब्राह्मणार्थं क्षत्रियार्थमिति। एवं तर्ह्याचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति'प्रकृतिविकृत्योर्यः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासस्तत्र तदर्थस्योत्तरपदस्य वाऽर्थशब्द आदेशो भवति, अन्यत्र नित्य इति,-यदयं बलिरक्षितग्रहणं करोति। एवं तर्हि-'उदकार्थो वीवधः',-स्थानिवद्भावादुदभावः प्राप्नोति। तस्मान्नैवं शक्यम्। न चेदेवम्, 'अर्थेन नित्यसमासो वक्तव्यः' 'सर्वलिङ्गता च'। नैष दोषः। इदं तावदयं प्रष्टव्यः-अथेह 'ब्राह्मणेभ्य' इति कैषा चतुर्थी? तादर्थ्य इत्याह। यदि तादर्थ्ये चतुर्थी, अर्थशब्दस्य प्रयोगेण न भवितव्यम्-'उक्तार्थानामप्रयोग' इति। समासोऽपि तर्हि न प्राप्नोति। वचनात् समासो भविष्यति। यदप्युच्यते-'सर्वलिङ्गता वक्तव्ये'ति। न वक्तव्या। 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य'।।

वार्तिक—**वावचनमिति**। तादर्थ्य में विहित चतुर्थी का समास में उत्तरपद को महाविभाषा के द्वारा अर्थादेश भी विकल्प है; अतः आदेश का अभावपक्ष में 'यूपदारु, रथदारु' पद भी होगा। आक्षेपक-**इहापि तर्हीति**। आदेश को महा-विभाषा से विकल्प करने पर 'ब्राह्मणार्थम्' 'क्षत्रियार्थम्' में भी उत्तरपद को विकल्प से अर्थ पद आदेश होने पर पक्ष में 'ब्राह्मणपयः' 'क्षत्रियपयः' की भी आपत्ति होगी। ज्ञापनवादी-**एवं तर्हीति**। प्रकृतसूत्र में बलिरक्षितग्रहण का निर्देश कर आचार्य अपने आचरण से बताते हैं कि 'प्रकृतिविकृतिभाव का जो समास, उसी में तदर्थ उत्तरपद को विकल्प से अर्थ पद आदेश होता है'। इससे 'यूपार्थं दारु, यूपदारु, रथार्थं दारु, रथदारु' यह दोनों रूप सिद्ध हो जाता है। 'कुबेरार्थो बलिः, कुबेरबलिः' यह दो रूप सिद्ध होने पर बलिरक्षितग्रंहण ज्ञापन करता है-'प्रकृतिविकृति से अन्यत्र तदर्थ को नित्य अर्थ आदेश होता है'। आक्षेपक-**एवं तर्हीति**। यदि उत्तरपद को अर्थ पद आदेश कहेंगे तो 'उदकाय वीवधः उदकार्थो वीवधः' में में वीवध पद को अर्थ आदेश है। यहाँ स्थानि-वद्भाव होने पर 'आदेशो न जातः, स्थानी न निवृत्तः' पक्ष में अर्थ को वीवध-बुद्धि होने पर वीवध पर रहते 'मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च' ६.३.६० के द्वारा उदक पद को उद आदेश की आपत्ति होगी; अतः उत्तरपद को अर्थ पद आदेश भी नही कहना चाहिये। 'उदकार्थो वीवधः' यह प्रयोग नही होता है; अतः अर्थ पद के साथ समास तथा सर्वलिङ्गता अवश्य कहनी चाहिये।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। अर्थ शब्द के साथ समास के लिए अतिरिक्त वचन भी पढने की आवश्यकता नहीं है। वह इस तरह कि जहाँ 'ब्राह्मणेभ्यः' इत्यादि में तादर्थ्य में चतुर्थी है वहाँ 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से अर्थ शब्द का प्रयोग नहीं होता है। परन्तु लौकिकप्रयोग में तादर्थ्यचतुर्थी और अर्थ पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का एक साथ प्रयोग नहीं होने पर भी 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' इस वचनसामर्थ्य से वृत्ति में अर्थ पद का प्रयोग युगपत् प्राप्त होने से इसी के लिए किया गया 'अर्थेन नित्यसमासः' वचन व्यर्थ है। लिङ्ग भी **लोकाश्रय**=पाणिनि प्रभति आचार्यो के अधीन होता है; अतः उसी से सर्वलिङ्गता सिद्ध हो जाने से 'सर्वलिङ्गता च वक्तव्या' यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है।{चतुर्थी तद-}।

पञ्चमी भयेन २.१.३७

अत्यल्पमिदमुच्यते 'पञ्चमी भयेने'ति * भयभीतभीतिभीभिः * **भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम्। वृकाद् भयं वृकभयम्। वृकाद् भीतो वृकभीतः। वृकाद् भीतिर्वृकभीतिः। वृकाद् भीर्वृकभीरिति** * भयनिर्गतजुगुप्सुभीतभीतिभीभिः * **भयनिर्गतजुगुप्सुभिरिति वक्तव्यम्। वृकभयं, ग्रामनिर्गतः, अर्धमजुगुप्सुः।**

सूत्रार्थ—'पञ्चम्यन्त का भय पद के साथ समास हो'।

भाष्यकार—**अत्यल्पमिति**। पञ्चम्यन्त का भय पद के साथ जो समास कहा है, वह अल्प है। यहाँ 'पञ्चमी भयभीतभीतिभीभिः' ऐसा सूत्र पाठ कर पञ्चम्यन्त का 'भय, भीत, भीति' और 'भी' पद के साथ समास तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा कहनी चाहिये। इससे 'वृकभयम्' की तरह 'वृकभीः' इत्यादि की भी सिद्धि हो जायेगी। अन्य वार्तिककार-**भयनिर्गतेति**। निर्गत और जुगुप्सु पद के साथ भी पञ्चम्यन्त का समास कहना चाहिये। इससे 'ग्रामान्निर्गतो ग्रामनिर्गतः, अधर्माज्जुगुप्सुरधर्मजुगुप्सुः' भी सिद्ध हो जाता है। {पञ्चमी-}।

सप्तमी शौण्डैः २.१.३९

* शौण्डादिभिः * **शौण्डादिभिरिति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-अक्षधूर्तः स्त्रीधूर्तः। अक्षकितवः स्त्रीकितवः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। बहुवचननिर्देशाच्छौण्डादिभिरिति विज्ञास्यते।** {सप्तमी}।

वार्तिक—**शौण्डादिभिरिति**। 'सप्तमी शौण्डैः' के स्थान पर 'सप्तमी शौण्डादिभिः' ऐसा सूत्र पाठ करना चाहिये। इससे 'अक्षेषु **शौण्डः**=धूर्तः अक्षशौण्डः, अक्षकितवः, स्त्रीकितवः' इत्यादि की भी सिद्धि हो जायेगी।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या प्रकृतसूत्र में 'शौण्डादिभिः' ऐसा आदि पद का निर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। यहाँ आदि पद का निर्देश आवश्यक नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। आचार्य प्रकृतसूत्र में 'शौण्डे' ऐसा एकवचन का निर्देश नहीं करके 'शौण्डैः' ऐसा बहुवचन का निर्देश करते हैं। इससे 'शौण्डादिभिः' इस अर्थ का लाभ हो जायेगा। {सप्तमी शौण्डैः}।

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे २.१.४२

* ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थग्रहणम् * **ध्वाङ्क्षेण क्षेपेऽर्थग्रहणं कर्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-तीर्थकाक इति। क्षेप इत्युच्यते, क इह क्षेपो नाम? यथा तीर्थे काका न चिरं स्थातारो भवन्त्येवं यो गुरुकुलं गत्वा न चिरं तिष्ठति स उच्यते 'तीर्थकाक' इति। {ध्वाङ्क्षेण}।**

'सप्तमी शौण्डैः' २.१.३६ से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'क्षेप=निन्दा गम्य होने पर सप्तम्यन्त का ध्वाङ्क्ष पद के साथ समास हो'। तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव तीर्थध्वाङ्क्षः।

भाष्यकार—**ध्वाङ्क्षेणेति**। ध्वाङ्क्ष पद से स्वरूप का ग्रहण नही करके अर्थ का ग्रहण करना चाहिये। इससे ध्वाङ्क्ष के साथ भी समास होगा तथा ध्वाङ्क्ष पद का अर्थ काक पद के साथ भी समास होकर 'तीर्थे काक इव तीर्थकाकः' भी सिद्ध होगा।

जिज्ञासु—**क इहेति**। **क्षेप**=निन्दा अर्थ गम्य होने पर यहाँ समास कहा जा रहा है। यहाँ किस तरह की निन्दा है?

उत्तरभाष्य—**यथेति**। जैसे तीर्थ में काक चिर काल तक एकत्र नहीं ठहरता है वैसे जो गुरुकुल में जा कर वेदाध्ययन के लिए चिर काल तक नहीं ठहरता है, उसे तीर्थकाक कहते हैं। {ध्वाङ्क्षेण-}।

कृत्यैर्ऋणे २.१.४३

* कृत्यैर्नियोगे यद्ग्रहणञ्च * **कृत्यैर्नियोगे, यत्प्रत्यये चेति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-पूर्वाह्णेगेयं साम, प्रातरध्येयोऽनुवाक इति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। ऋण इत्येव सिद्धम्। इह यद् यस्य नियोगतः कार्यमृणं तस्य तद् भवति, तत्र ऋण इत्येव सिद्धम्। यद्ग्रहणं च कर्तव्यम्। इह मा भूत्-पूर्वाह्णे दातव्या भिक्षेति। {कृत्यैः}।**

'सप्तमी शौण्डैः' २.१.३६ से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'ऋण अर्थ गम्य होने पर सप्तम्यन्त का कृत्यप्रत्ययान्त के साथ समास हो तथा वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्पुरुषसंज्ञ हो' मासेदेयमृणम् ।

वार्तिक—**कृत्यैर्नियोग इति**। **नियोग**=आवश्यक धर्म गम्य होने पर सप्तम्यन्त का यत्प्रत्ययान्त के साथ समास कहना चाहिये। 'पूर्वाह्णेगेयं साम, प्रातरध्येयोऽनुवाक' यहाँ सर्वत्र 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' ६.३.१४ से सप्तमी का अलुक् है। प्रातर् यह अव्यय पद है; अतः इसके उत्तर में विभक्ति का श्रवण नहीं होगा।

अन्य प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या यहाँ 'पूर्वाह्णेगेयं साम, प्रातरध्येयोऽनुवाकः' की सिद्धि के लिए 'कृत्यैर्ऋणे' सूत्र के अनन्तर 'नियोगे यत्' ऐसा सूत्र पाठ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। आचार्य यहाँ ऋणग्रहण करते हैं। ऋण वही होता है जो अवश्य देय हो; अतः ऋणग्रहण से ही नियोग अर्थ का लाभ हो जाने से अतिरिक्त नियोगग्रहण नहीं करना चाहिये। परन्तु 'पूर्वाह्णे दातव्या भिक्षा' इत्यादि में तव्यत्-प्रत्ययान्त के साथ समास न हो, इसके लिए 'यद्'ग्रहण अवश्य करना चाहिये। ''पूर्वाह्णे दातव्या' में समास होने पर एकस्वर की आपत्ति होगी; जब कि समास नहीं होने पर पृथक्-पृथक् स्वर होता है। {कृत्यैः-}।

क्षेपे २.१.४७

किमुदाहरणम्? अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्। क्षेप इत्युच्यते, क इह क्षेपो नाम? यथा अवतप्ते नकुला न चिरं स्थातारो भवन्ति, एवं कर्माण्यारभ्य यो न चिरं तिष्ठति स उच्यते-'अवतप्तेनकुलस्थितं त एतदिति। 'क्षेपे सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह समस्यत इत्युच्यते' तत्र ते सगतिकेन सनकुलेन च समासो न प्राप्नोति * क्षेपे सगतिकसकारकसमासे उक्तम् * **क्षेपे सगतिकसकारकसमासे उक्तम्। किमुक्तम्? 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापी'ति।**

'सप्तमी शौण्डैः' २.१.३९ से 'सप्तमी' तथा 'क्तेनाहोरात्रावयवाः' २.१.४५ से 'क्तेन' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'निन्दा गम्य होने पर क्तान्त के साथ सप्तम्यन्त का समास हो तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। इस सूत्र का क्या उदाहरण है?

उत्तरभाष्य—**अवतप्तेति**। 'अवतप्तेनकुलस्थितम्' यह इसका उदाहरण है। कार्य का आरम्भ कर जो चञ्चलतावश स्थिर न रह सके, उसके लिए यह उदाहरण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**क्षेप इतीति**। निन्दा अर्थ गम्य होने पर यहाँ समास कहा जा रहा है, यहाँ निन्दा क्या है?

उत्तरभाष्य—**यथेति**। जैसे तप्त बालुका आदि में नेवला एकत्र स्थिर नहीं रहता है, वैंसे जो कार्य का आरम्भ कर दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रह सके, साधर्म्य होने से वह 'अवतप्तेनकुलस्थितम्' कहा जाता है, यही यहाँ निन्दा है। आक्षेपक-**क्षेपे सप्तम्यन्तमिति**। निन्दा अर्थ गम्य होने पर क्तान्त के साथ सप्तम्यन्त का समास कहा जा रहा है। ष्ठा गतिनिवृत्तौ धा.पा.९२८ धातु से क्त प्रत्यय होकर स्थित पद क्तान्त है, नकुलस्थित पद नहीं; फिर नकुलस्थित पद के साथ तथा गतिसंज्ञक सहित क्तान्त के साथ यह समास प्राप्त नहीं होगा।

समाधानभाष्य—**क्षेपे सगतिकेति**। 'कृद्ग्रहण में गतिपूर्व एवं कारकपूर्व का भी ग्रहण होता है' यह पहले भी कहा जा चुका है; अतः कारकसहित के साथ समास होने से 'अवतप्तेनकुलस्थितम्' में भी समास हो जायेगा। {क्षेपे}।

पात्रेसमितादयश्च २.१.४८

किमर्थश्चकारः? * चकार एवकारार्थः * पात्रेसमितादय एव। क्व मा भूत्? परमं पात्रे समिता इति। {पात्रेसमिता}।

'क्षेपे' २.१.४७ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'निन्दा गम्य होने पर पात्रेसमित आदि का निपातन हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। प्रकृतसूत्र में चकारग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**एवकारार्थ इति**। यहाँ निर्धारण के लिए 'च' पद का निर्देश है। इससे 'पात्रेसमितः' इत्यादि ही प्रयोग होंगे। 'परम्' आदि क्रियाविशेषण होने पर समास नहीं होगा; वहाँ वाक्य ही रहेगा। जो भोजनकाल में ही उपस्थित हो, कार्यकाल में नहीं; उसे 'पात्रेसमितः' कहते हैं। {पात्रेसमिता-}।

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन २.१.४९

इह कस्मादव्ययीभावो न भवति?-एका नदी एकनदी। 'नदीभिः संख्ये'ति प्राप्नोति। नैष दोषः। इह कश्चित् समासः पूर्वपदार्थ-प्रधानः, कश्चिदुत्तरपदार्थप्रधानः, कश्चिदन्यपदार्थप्रधानः, कश्चिदु-भयपदार्थप्रधानः। पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः। उत्तरपदार्थप्रधान-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्तत्पुरुषः। अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः। उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः। न चाऽपूर्वपदार्थप्राधान्यं गम्यते। अथ वाऽव्ययीभावः क्रियतां, तत्पुरुषो वेति, तत्पुरुषो भविष्यति विप्रतिषेधेन। भवेदेकसंज्ञाऽधिकारे सिद्धं, परंकार्यत्वे च न सिद्ध्यति। आरम्भसामर्थ्याच्चाऽव्ययीभावः प्राप्नोति, परंकार्यत्वाच्च तत्पुरुषः प्राप्नोति। परं कार्यत्वे न दोषः। कथम्? * नदीभिः समाहारेऽव्ययीभावः * नदीभिः समाहारेऽव्ययीभावो वक्तव्यः। सर्वमेकनदीतरे।

इति श्रीमद्‌भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम्

सूत्रार्थ—'पूर्वकाल, एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव तथा केवल सुबन्त का समानाधिकरण के साथ समास हो तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। पूर्वकाल-पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः स्नातानुलिप्तः इत्यादि।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मादिति**। 'एकनदी' में 'नदीभिश्च' २.१.२० से अव्ययीभावसमास प्राप्त है, वह क्यों नही होता है?

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। इस समासप्रकरण में कोई समास पूर्वपदार्थप्रधान है। कोई समास उत्तरपदार्थप्रधान है। कोई समास अन्यपदार्थप्रधान है। कोई समास उभयपदार्थप्रधान है। पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव होता है। उत्तरपपदार्थप्रधान तत्पुरुष होता है। अन्यपदार्थप्रधान बहुव्रीहि होता है, तथा उभयपदार्थप्रधान द्वन्द्व होता है। यहाँ यह समासलक्षण प्रायेण दिया गया है। मैं इसे 'अव्ययं विभक्तिसमीप-' २.१.६ सूत्र पर स्पष्ट कर आया हूँ। 'एकनदी' में पूर्वपदार्थ का प्राधान्य नहीं होने से अव्ययीभाव नहीं होता है। अथ वा यहाँ 'नदीभिश्च' २.१.२० के द्वारा अव्ययीभाव और तत्पुरुष यह दोनों प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध से तत्पुरुष के द्वारा अव्ययीभाव का बाध हो जायेगा। आक्षेपक आचार्य-**भवेदिति**। 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ इस एकसंज्ञाधिकार के द्वारा पर होने से 'एकनदी' में तत्पुरुष सिद्ध होकर भी परकार्य के द्वारा यहाँ तत्पुरुष नहीं कहा जा सकता है। 'एकनदी' में पर होने से तत्पुरुष प्राप्त होने पर भी 'नदीभिश्च' २.१.२० इस सूत्रारम्भसामर्थ्य से अव्ययीभाव से तत्पुरुष का बाध हो जायेगा। परकार्यत्वपक्ष में यहाँ तत्पुरुष प्राप्त होने में हेतु देते हैं-**परमिति**। समाहार में 'नदीभिश्च' २.१.२० की प्रवृत्ति कहनी चाहिये; यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'नदीभिश्च' २.१.२० सूत्र पर स्पष्ट किया जा चुका है। अन्यथा समाहार से भिन्न में 'नदीभिश्च' २.१.२० की प्रवृत्ति होने पर 'एकनदीतरे' में 'नदीभिश्च' २.१.२० के द्वारा 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' का बाध की आपत्ति होगी। परन्तु समाहार होने पर पर होने से द्विगु की आपत्ति होगी। इस तरह 'एकनदी' में अव्ययीभाव करने पर 'नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः' ५.४.११० से पक्ष में टच् तथा नपुंसक की आपत्ति होगी। {पूर्वकालैक-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय प्रथम पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम् ❁

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २.१.५१

समाहार इति कोऽयं शब्दः? समाङ्पूर्वाद्धरतेः कर्मसाधनो घञ्- समाह्रियते समाहार इति। यदि कर्मसाधनः, पञ्च कुमार्यः समाहृताः पञ्चकुमारि दशकुमारि, 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये'ति ह्रस्वत्वं न प्राप्नोति। 'द्विगुरेकवचन'मित्येतच्च वक्तव्यम्। एवं तर्हि भावसाधनो भविष्यति- समाहरणं समाहारः।

'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' २.१.५० से 'दिक्संख्ये' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ- 'तद्धितार्थविषय होने पर उत्तरपद पर रहते तथा समाहार गम्य होने पर दिग्वाची और संख्यावाची का समर्थसुबन्त के साथ समास हो'।

प्रश्नभाष्य—**समाहार इति**। समाहार शब्द कर्मसाधन है, अथ वा भाव- साधन है? यदि इसे भावसाधन माना जाये तो द्रव्य का आनयन आदि प्राप्त नही हो सकेगा; एवं समाहार के समूहरूप होने से तद्धितार्थग्रहण के द्वारा समास की सिद्धि होगी; अतः भिन्न समाहारग्रहण की अनर्थकता हो रही है। यदि कर्मसाधनपक्ष माना जाये तो उपसर्जनह्रस्वत्व प्राप्त नही है तथा 'द्विगुरेक- वचनम्' यह अतिरिक्तवचन कहना पड रहा है; अतः पूर्वपक्ष है।

उत्तरभाष्य—**समाङ्पूर्वादिति**। सम् आङ् पूर्वक हृञ् हरणे धा.पा. ८९९ धातु से 'समाह्रियते' इस विग्रह में कर्म में घञ् प्रत्यय होकर द्रव्य का ही कार्यसम्बन्ध देखे जाने से समाहारशब्द कर्मसाधन है। घञ्विधि में संज्ञाग्रहण प्रत्या- ख्यात है; अतः असंज्ञा में भी घञ् होता है, यह ग्रन्थ का भाव है। आक्षेपक- **यदि कर्मेति**। यदि समाहारशब्द को कर्मसाधन मानेंगे तो 'पञ्च कुमार्यः समाहृताः पञ्चकुमारि, दश कुमार्यः समाहृताः दशकुमारि' में कुमारीरूप अर्थ प्रधान है तथा समासशास्त्र में प्रथमानिर्देश नही होने से 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ से ह्रस्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ क्लीब होने से 'ह्रस्वो नपुंसके प्राति- पदिकस्य' १.२.४७ से ह्रस्व सिद्ध मान भी लिया जाये तो 'पञ्चखट्वी' में 'वाऽऽबन्तः' इस पक्ष में विकल्प से स्त्रीत्व है तथा पक्ष में क्लीब है; अतः ह्रस्व सिद्ध नहीं हो सकेगा। यहाँ क्लीब में ह्रस्व होने पर 'पञ्चखट्वम्' यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप होगा। परन्तु स्त्रीत्व में उपसर्जन नहीं होने से ह्रस्वत्व नहीं होने पर अदन्त नहीं होने से ङीप् प्रत्यय नहीं हो सकेगा। इससे 'पञ्चखट्वा' इस रूप की आपत्ति होगी। एवं कर्मसाधनपक्ष में समास के अनेकार्थक होने से 'पञ्च-कुमारि' में एकवचन प्राप्त नहीं होगा; अतः एकवचनविधान के लिए 'द्विगुरेक-वचनम्' यह अतिरिक्त वचन कहना पडेगा। परन्तु भावसाधनपक्ष में उपर्युक्त दोष नहीं आते हैं; अतः 'समाहरणं समाहारः' ऐसा भाव में घञ् प्रत्यय है।

अथ भावसाधने सति किमभिधीयते? यत्तदौत्तराधर्यम्। कः पुनर्गवां समाहारः? यत्तदर्जनं क्रयणं भिक्षणमपहरणं वा। यद्येवं विक्षिप्तेषु पूलेषु, गोषु चरन्तीषु न सिद्ध्यति।

प्रश्नभाष्य—**अथ भावसाधन इति**। भावसाधन होने पर समाहारपद से कैसा अर्थ उपस्थित होगा? लोक में एकत्र प्रदेश में संघटन समाहार कहलाता है तथा वह 'पञ्चग्रामी' आदि में असम्भव है; अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**यत्तदौत्तराधर्यमिति**। भावसाधन समाहार पद के **औत्तराधर्यम्**=वस्तु का एकत्र प्रदेश में संघटन-अर्थ वाच्य है।

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। भावसाधनपक्ष में समाहार पद का एकत्र प्रदेश में संघटन वाच्य होने पर 'पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगु' में गो पदार्थ का एकत्र प्रदेश में किस तरह समाहार होगा? गो पदार्थ का प्रदेशभेद ही रहेगा, यह मान कर प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**यत्तदर्जनमिति**। भावसाधनपक्ष में 'भिक्षण तथा अपहरण के द्वारा गो पदार्थ का अर्जन' यह समाहार होगा। एक क्रिया अथ वा गुण में बुद्धि के द्वारा समीपीकरण समाहार है, ऐसा अर्थ विवक्षित है। यहाँ अर्जननिमित्त होने से अर्जन समाहार है, ऐसा कहा गया है। क्रय आदि के द्वारा ही अर्जन होता है; अतः उसका निर्देश किया गया है। उत्तरभाष्य का पूरी तरह आशय नही समझ कर प्रश्न करते हैं-**यद्येवमिति**। यदि क्रयण आदि के द्वारा एकत्र स्थान में अर्जनरूप समाहार मान रहे हैं तब वह **विक्षिप्त**=विक्रय के लिए फैलाया हुआ **पूल**=पुआल का लूँड़ा, एवं विचरण करती हुई गायों में नही है; अतः यहाँ अर्जनरूप अर्थ की गतार्थता नही होने से दोष है। पूल तथा गायों का स्वामी नाना है; अतः उनका एकत्र अर्जन असम्भव है, यह ग्रन्थ का भाव है।

एवं तर्हि समभ्याशीकरणं समाहारः। एवमपि पञ्चग्रामी षण्ण-गरी त्रिपुरीति न सिद्ध्यति। किं कारणम्? समेकत्ववाची, आङभि-मुख्ये वर्तते, हरतिर्देशान्तरप्रापणे। नाऽवश्यं हरतिर्देशान्तरप्रापण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एव वर्तते। किं तर्हि? सादृश्येऽपि वर्तते। तद्यथा-मातुरनुहरति, पितुरनुहरतीति। अथ वा पञ्चग्रामी षण्णगरी त्रिपुरीति,-नैवेदमियत्येवावतिष्ठते। अवश्यमसौ ततः किञ्चिदाकाङ्क्षतिक्रियां गुणं वा। यदाकाङ्क्षति तदेकं, स च समाहारः। अयं तर्हि भावसाधने सति दोषः-'पञ्चपूल्यानीयता'मिति भावानयने चोदिते द्रव्यानयनं न प्राप्नोति।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। भावसाधनपक्ष में समाहार पद से **समभ्याशीकरण**=समीपीकरण अर्थ वाच्य होगा। वह विक्षिप्त पूल तथा विचरण करती हुई गायों में भी है।

आक्षेपभाष्य—**एवमपीति**। समीपीकरण अर्थ में भी दोष है। 'पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः पञ्चग्रामी, षण्णां नगराणां समाहारः षण्णगरी, तिसृणां पुरां समाहारस्त्रिपुरी' में ग्राम, नगर और पुर् का समीपीकरण असम्भव होने से यहाँ द्विगु प्राप्त नही हो सकेगा। यहाँ ग्राम शब्द के देशविशेषवाची होने पर ही यह दोष होगा। परन्तु यदि यह पुरुषवाची होगा तब उसका समीपीकरण सम्भव होने से उक्त दोष नही रहेगा। इसकी असिद्धि में कारण बताते हैं-**समेकत्ववाचीति**। समाहार में सम् आङ् यह दो उपसर्ग हैं तथा हृञ् हरणे धा.पा.८९९ धातु है। सम् उपसर्ग एकत्व अर्थ का वाचक है। आङ् उपसर्ग का आभिमुख्य अर्थ है। अन्य देश की प्राप्ति अर्थ में हृञ् धातु का प्रयोग है। ग्राम आदि का अन्य देशप्राप्ति सम्भव नही होने से समीपीकरण असम्भव है। अन्य आचार्य-**नावश्यमिति**। हृञ् धातु का मात्र देशान्तरप्राप्ति ही अर्थ नहीं है; अपि तु सादृश्य भी अर्थ है। जैसे **'मातरमनुहरति'**= माता के समान है। **'पितरमनुहरति'**=पिता के समान है; अतः लाभ आदि सदृशधर्मो का अनुगम होने से ग्राम आदि का भी समाहार सम्भव है। अन्य प्रकार से भी ग्राम आदि का समभ्याशीकरण स्पष्ट करते हैं-**अथ वेति**। केवल पदार्थ से ही व्यवहार सम्भव नही है; अतः वहाँ गुण अथ वा क्रिया की अवश्य ही अपेक्षा करनी होगी। गुण अथ वा क्रिया की अपेक्षा करने पर भिन्नदेशस्थ ग्राम आदि का भी समीपीकरण हो सकेगा। आक्षेपक-**अयं तर्हीति**। समाहार शब्द को भावसाधनपक्ष में 'पञ्चपूली आनीयताम्' ऐसा कहने से भाव का ही आनयन होगा, द्रव्य का नहीं। 'पञ्चपूली' यह समाहारद्विगु है; जब कि कार्य द्रव्य में होता है, भाव में नही; अतः भावसाधनपक्ष में यह दोष है।

नैष दोषः। इदं तावदयं प्रष्टव्यः-'अथेह 'गौरनुबध्योऽजो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऽग्नीषोमीयः' इति कथमाकृतौ चोदितायां द्रव्ये आरम्भणाऽऽलम्भनप्रोक्षणविशसनानि क्रियन्ते' इति। 'असम्भवात्'। आकृतौ आरम्भणादीनां सम्भवो नास्तीति कृत्वा आकृतिसहचरिते द्रव्ये आरम्भणादीनि क्रियन्ते। इदमप्येवंजातीयकमेव। असम्भवाद् भावानयनस्य द्रव्यानयनं भविष्यति। अथ वा 'अव्यतिरेकाद् द्रव्याकृत्योः'।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। भावसाधनपक्ष में उपर्युक्त दोष नहीं है। वह इस तरह कि जैसे मीमांसक 'गौरनुबध्योऽजोऽग्नीषोमीयः' ऐसा कहते हैं। यहाँ **गौः**=यह **आकृति**=जाति का निर्देश है। यहाँ जाति में कहा गया कार्य द्रव्य में इस लिए होता है कि जाति में अनुबन्ध आदि कार्य असम्भव है; अतः आकृतिसहचरित द्रव्यव्यक्ति में ही कार्य होता है। वैसे 'पञ्चपूली आनीयताम्' ऐसा कहने से भाव में आनयनक्रिया असम्भव होने से द्रव्य का आनयन होगा। अथ वा द्रव्य अथ वा जाति एक दूसरे से पृथक् नहीं होते हैं; अतः 'गौरनुबध्योऽजोऽग्नीषोमीयः' में जातिसहचरित द्रव्य में ही कार्य होता है।

किं पुनर्द्विगुसंज्ञा प्रत्ययोत्तरपदयोर्भवति? एवं भवितुमर्हति * द्विगुसंज्ञा प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेदितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः * **द्विगुसंज्ञा प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेदितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः। केतरेतराश्रयता? द्विगुसंज्ञानिमित्ते प्रत्ययोत्तरपदे। प्रत्ययोत्तरपदनिमित्ता च द्विगुसंज्ञा। तदेतदितरेतराश्रयं भवति। इतरेतराश्रयाणि च कार्याणि न प्रकल्पन्ते।**

काशकृत्स्नाचार्य का 'प्रत्ययोत्तरपदयोः' यह सूत्र है; उस पर विचार करते हैं-**किं पुनरिति**। पाणिनीयशास्त्र का विचार बाद में करेंगे। क्या प्रत्यय और उत्तरपद की द्विगुसंज्ञा करते हैं, यदि हाँ, तो अन्योऽन्याऽऽश्रय होने से इसकी द्विगुसंज्ञा नहीं हो सकेगी। 'पञ्चसु कपालुषु संस्कृतः' यहाँ समास होने पर प्रत्ययोत्पत्ति होनी चाहिये। एवं प्रत्यय होने पर द्विगुसंज्ञा होनी चाहिये, इस तरह परस्पर अपेक्षा होने से यहाँ अन्योऽन्याऽऽश्रय हो रहा है। 'पञ्च गावो धनमस्य' यहाँ पर भी 'पूर्व के दो पदों का तत्पुरुष करने पर ही बहुव्रीहि होता है' यह पक्ष मानने पर अन्योऽन्याऽऽश्रय दोष आ रहा है। धनशब्द के उत्तरपद होने पर ही पूर्व के दोनों पदों का तत्पुरुष होना चाहिये, एवं पूर्व के दोनों पदों का समास होने पर बहुव्रीहि होना चाहिये। इस तरह यहाँ भी परस्पर बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष की अपेक्षा होने से अन्योऽन्याऽऽश्रय दोष आ रहा है। 'सुप्सुपा' में एकत्वसंख्या के विवक्षित होने से तीन पदों का बहुव्रीहि नहीं होता है, ऐसा मान रहे हैं। परन्तु यहाँ संख्या की अविवक्षा कर अनेक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदों का समास करने पर अन्योऽन्याऽऽश्रय नहीं होता है। अथ वा मूलग्रन्थ का यह भी भाव है-'समसनं समासः=सङ्क्षेपः' ऐसा अर्थ लब्ध होने से समास यह अन्वर्थसंज्ञा है। वह असंक्षिप्तों का ही होता है। यदि यहाँ पहले बहुव्रीहि कर लेंगे तब संक्षिप्त एकार्थीभाव होने से अन्य संक्षेप तत्पुरुष नहीं हो सकेगा; अतः पहले तत्पुरुष करना चाहिये तथा बाद में तत्पुरुषगर्भ बहुव्रीहि करना चाहिये। इससे अन्योऽन्याऽऽश्रय दोष आ रहा है। अन्योऽन्याऽऽश्रय कार्य कभी भी सम्भव नहीं होते हैं।

एवं तर्हि 'अर्थे' इति वक्ष्यामि * अर्थे चेत्तद्धितानुत्पत्तिर्बहुव्रीहिवत् * **अर्थे चेत्तद्धितोत्पत्तिर्न प्राप्नोति। द्वैमातुरः। त्रैमातुरः। पाञ्चनापितिः। किं कारणम्? द्विगुनोक्तत्वात्। 'बहुव्रीहिवत्'। तद्यथा चित्रगुः शबलगुरिति,-बहुव्रीहिणोक्तत्वान्मत्वर्थस्य मत्वर्थीयो न भवति।**

अब पाणिनीयलक्षण का निरूपण करते हैं—**एवं तर्हि 'अर्थे' इतीति। अर्थे**=तद्धितार्थ अभिधेय होने पर तद्धितोत्पत्ति से पूर्व ही द्विगु होने से अन्यो-न्याश्रय नही रहेगा। आक्षेपक-**अर्थे चेदिति**। यदि तद्धितार्थ वाच्य होने पर समास करेंगे तो द्विगु के द्वारा तद्धितार्थ के उक्त होने से प्रकृत्यर्थ से भिन्न कोई प्रत्ययार्थ नही होगा, इससे 'पाञ्चनापितिः, द्वैमातुरः, त्रैमातुरः' में तद्धित प्रत्यय प्राप्त नही हो सकेगा। इसे उदाहरण से पुष्ट करते हैं-**बहुव्रीहिवदिति**। जैसे 'चित्रगुः, शबलगुः' में बहुव्रीहि से ही मत्वर्थ उक्त होने से तद्धित प्रत्यय मतुप् नही होता है, वैसे 'पाञ्चनापितिः, द्वैमातुरः, त्रैमातुरः' में भी द्विगु से ही तद्धितार्थ उक्त होने से इञ् आदि तद्धित की प्राप्ति नही हो सकेंगी, यह दोष होगा।

एवं तर्हि 'समासतद्धितविधा'विति वक्ष्यामि * समासतद्धितविधाविति चेदन्यत्र समाससंज्ञाऽभावः * **समासतद्धितविधाविति चेदन्यत्र समाससंज्ञा न प्राप्नोति। क्वान्यत्र? स्वरे। पञ्चा॑रत्निः। दशा॑रत्निः। 'इगन्ते द्विगा'वित्येष स्वरो न प्राप्नोति** * सिद्धं तु प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति वचनात्'। 'प्रत्ययोत्तरपदयोर्द्विगुसंज्ञा भवती'ति वक्तव्यम्। ननु चोक्तम्-'द्विगुसंज्ञा प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेदितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धि'-रिति।**

पूर्वोक्त दोनों न्यासों में दोष देखे जाने से अन्य न्यास का आश्रयण करते हैं-**एवं तर्हीति**। 'समास और तद्धित विधीयमान होने पर दिग्वाची और संख्या-वाची का समर्थ सुबन्त के साथ समास हो' ऐसा अन्य लक्षण मानेंगे। इससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परनिमित्त की अपेक्षा नही करने से समास और तद्धित के विषय में समास-विधान से पूर्व ही तद्धित होता है; इससे इतरेताश्रयदोष नहीं होता है। आक्षेपक-**चेदन्यत्रेति**। यदि समास और विधीयमान तद्धित के विषय में दिग्वाची और संख्यावाची का समर्थसुबन्त के साथ समास कहेंगे तो अन्यत्र स्वर की कर्तव्यता में 'पञ्चारत्निः, दशारत्निः' में जहाँ द्विगु और तद्धित यह दोनों विधि नहीं है वहाँ समाससंज्ञा नही हो पायेगी। जैसे 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' २.१.१ से स्वर की कर्तव्यता में विधीयमान पराङ्गवद्भाव षत्व और णत्व की कर्तव्यता में नहीं होता है वैसे स्वर की कर्तव्यता में 'पञ्चारत्निः, दशारत्निः' में द्विगुसंज्ञा भी नहीं हो सकेगी। 'इगन्तकालकपालभगाल-शरावेषु द्विगौ' ६.२.२९ यह लक्षण समाहारद्विगु में चरितार्थ है। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ इत्यादि में वचनसामर्थ्य से द्विगुसंज्ञा हो जाती है; अतः इस अभिप्राय से अन्यत्र सावकाश होने पर स्वर में दोष कहा है। 'पञ्चारत्नयः प्रमाणमस्य, दशारत्नयः प्रमाणमस्य' इस विग्रह में 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नमात्रचः' ५.२.३७ से विहित मात्रच् का 'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्' वा.५.२.३७ से लुक् है।

उत्तरभाष्य—**सिद्धं त्विति**। **प्रत्यय**=तद्धितप्रत्यय पर रहते द्विगुसंज्ञा होती है, एवम् उत्तरपद पर रहते द्विगुसंज्ञा होती है, ऐसा बताने के लिए 'द्विगुसंज्ञा प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' यह अतिरिक्त पाठ करेंगे। इससे प्रत्यय पर रहते 'पाञ्च-नापितिः, द्वैमातुरः, षाण्मातुरः' में तथा उत्तरपद पर रहते 'पञ्चगवधनः' में द्विगुसंज्ञा हो जायेगी। 'पाञ्चनापितिः, पञ्चगवधनः' इत्यादि व्यवस्थित शब्दों का ही अनु-शासन होता है।

नैष दोषः। इतरेश्रयामात्रमेतच्चोदितम्। सर्वाणि चेतरेतरा-श्रयाण्येकत्वेन परिहृतानि-'सिद्धं तु नित्यशब्दत्वा'-दिति। नेदं तुल्यमन्यैरितरेतराश्रयैः। नहि संज्ञा नित्या। एवं तर्हि भाविनी संज्ञा विज्ञास्यते। तद्यथा-कश्चित् कञ्चित्तन्तुवायमाह-'अस्य सूत्रस्य शाटकं वये'ति। स पश्यति-'यदि शाटको न वातव्योऽथ वातव्यो, न शाटकः, शाटको वातव्यश्चेति विप्रतिषिद्धं भवति। भाविनी खल्वस्य संज्ञाऽभिप्रेता। स मन्ये वातव्यो यस्मिन्नुते 'शाटक' इत्येतद् भवती'ति। एवमिहापि तस्मिन् द्विगुर्भवति यस्याऽभिनिर्वृत्तस्य 'प्रत्यय' 'उत्तरपद'मिति चैते संज्ञे भविष्यतः।

प्रत्यय और उत्तरपद पर रहते ही उसकी द्विगुसंज्ञा कहने से कोई दोष नहीं है। प्रत्यय तथा उत्तरपद पर रहते अन्योन्याश्रयदोष दिया था, वह भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं रहेगा। इस व्याकरणशास्त्र में प्राप्त सम्पूर्ण अन्योन्याश्रयदोषों का परिहार नित्यशब्द मान कर कर दिया है। उसी से यहाँ भी अन्योन्याश्रयदोष का परिहार हो जायेगा। आक्षेपक-**नेदं तुल्यमिति**। अन्य अन्योन्याश्रय के तुल्य यह अन्योन्याश्रय नहीं है, अपि तु उससे भिन्न है। प्रत्ययसंज्ञासम्बद्ध तथा समाससंज्ञाप्रतिबद्ध उत्तरपदत्व मान कर प्रकृत में द्विगुसंज्ञा की जा रही है, जब कि प्रत्ययसंज्ञा तथा समाससंज्ञा लोक में नहीं है; अतः अन्य अन्योन्याश्रय से भिन्न इस अन्योन्याश्रय को मान कर आक्षेप है।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'प्रत्ययोत्तरपदयोः' में विषयसप्तमी है, परसप्तमी नहीं; अतः 'प्रत्ययोत्तरपदयोः' में भाविनीसंज्ञा समझनी चाहिये। जैसे कोई वस्त्रार्थी सूत्र लेकर जुलाहा के घर जाता है तथा उससे कहता है-'तुम इस सूत्र से साटी बना दो'। वह जुलाहा देखता है-'यदि यह साटी है तो बुनने की आवश्यकता नहीं है। यदि अभी बुना जाना है तो यह साटी नहीं है; अतः वहाँ भाविनीसंज्ञा होती है'। वैसे प्रकृत में भी भाविनीसंज्ञा ही माननी चाहिये-'उसके पर रहते द्विगुसंज्ञा होती है जिसके उत्पन्न होने पर उसकी प्रत्ययसंज्ञा तथा उत्तरपदसंज्ञा होती है। उत्तरपदशब्द भी समाससंज्ञा का निमित्तक होने से संज्ञा ही है, ऐसा ग्रन्थ का भाव है।

अथ वा पुनरस्तु-'अर्थे' इति। ननु चोक्तम्-'अर्थे चेत्तद्धितानुत्पत्तिर्बहुव्रीहिव'दिति। नैष दोषः। नावश्यमर्थशब्दोऽभिधेय एव वर्त्तते। किं तर्हि? स्यादर्थेऽपि वर्तते। तद्यथा-'दारार्थं घटामहे' 'धनार्थं भिक्षामहे'। दारा नः स्युर्धनानि नः स्युरिति। एवमिहापि तद्धितार्थे द्विगुर्भवति। तद्धितः स्यादिति * द्विगोर्वा लुग्वचनं ज्ञापकं तद्धितोत्पत्तेः * **अथ वा यदयं 'द्विगोर्लुगनपत्ये' इति द्विगोरुत्तरस्य तद्धितस्य लुकं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यः-'उत्पद्यते द्विगोस्तद्धित' इति।**

अब पाणिनीयपक्ष का भी समर्थन करते हैं—**अथ वेति**। 'अर्थ वाच्य होने पर द्विगु हो' ऐसा कहा गया था। इसमें बहुव्रीहि से उक्त होने पर मतुप् प्रत्यय की अनुत्पत्ति की तरह द्विगु से उक्त होने पर 'पाञ्चनापितिः' इत्यादि में तद्धित की अनुत्पत्ति का दोष बताया था, वह नहीं रहेगा। वह इस तरह कि यहाँ अर्थशब्द **अभिधेय**=वाच्य अर्थमात्र में ही नहीं है, अपि तु **स्यात्**= प्रार्थना अर्थ में भी है। यहाँ 'स्यात्' यह प्रार्थना में लिङ् का प्रयोग है। **'दारार्थं घटामहे'**=पत्नि के लिए चेष्टा करते हैं, **'धनार्थं भिक्षामहे'**= धन के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

याच्ञा करते हैं। इन स्थलों में अर्थ पद का अर्थ प्रार्थना है; अतः 'अर्थे' कहने पर 'तद्धितार्थे द्विगुर्भवति' ऐसा अर्थ होने से 'तद्धित हो' ऐसा अर्थ आयेगा। इससे द्विगुसंज्ञा के लिए तद्धित होने से 'पाञ्चनापितिः, द्वैमातुरः, षाण्मातुरः' में तद्धितान्त की द्विगुसंज्ञा हो जायेगी। परन्तु यहाँ पर भी पक्ष में स्वर की कर्तव्यता में द्विगुसंज्ञा प्राप्त नही है। इस आशय से कहते हैं-**द्विगोर्वेति**। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ इस सूत्र का आरम्भ कर आचार्य द्विगु से पर में लुक् का आरम्भ करते हैं। इससे स्पष्ट करते हैं कि द्विगु से पर में तद्धितप्रत्यय उत्पन्न होता है।

* समाहारसमूहयोरविशेषात् समाहारग्रहणानर्थक्यं, तद्धितार्थेन कृतत्वात् *

समाहारः समूह इत्यविशिष्टावेतावर्थौ। समाहारसमूहयोरविशेषात् समाहारग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'तद्धितार्थेन कृतत्वात्'। 'तद्धितार्थे द्विगु'रित्येवमत्र द्विगुर्भविष्यति। यदि 'तद्धितार्थे द्विगु'-रित्येवमत्र द्विगु'र्भवति, तद्धितोत्पत्तिः प्राप्नोति। उत्पद्यतां, लुग्भवि-ष्यति। लुक्कृतानि प्राप्नुवन्ति। कानि? पञ्चपूली, दशपूली'अपरि-माणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकी'ति प्रतिषेधः प्राप्नोति। पञ्चगवं दशगवम्,-'गोरद्धितलुकी'ति टज्न प्राप्नोति। नैष दोषः। अविशेषेण 'द्विगोर्ङीब्भवती'त्युक्त्वा 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्ब-ल्येभ्यः समाहारे' इति वक्ष्यामि। तन्नियमार्थं भविष्यति-'समाहार एव, नान्यत्रे'ति।

वार्तिककार प्रकृतसूत्र में समाहारग्रहण का खण्डन करते हैं-**समाहारसमूह-योरिति**। समाहार और समूह यह दोनों पद **अविशेष**=एकार्थक हैं; अतः तद्धितार्थ में द्विगु कहने से समाहार अर्थ में भी द्विगु हो जायेगा। इस लिए प्रकृतसूत्र में समाहारग्रहण नहीं करना चाहिये। आक्षेपक-**यदि तद्धितार्थे द्विगुरिति**। यदि यहाँ समाहार में द्विगु का विधान नहीं करके तद्धितार्थ में द्विगु का विधान करेंगे तो द्विगुसंज्ञा का निमित्त होने से तद्धितप्रत्यय की उत्पत्ति प्राप्त होगी। वार्तिकमतानुयायी-**उत्पद्यतामिति**। इस पक्ष में तद्धित उत्पन्न होगा तथा उसका 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से लुक् हो जायेगा; इस तरह तद्धितश्रवण की अपत्ति नहीं होगी। आक्षेपक-**लुक्कृतानीति**। 'पञ्चानां पूलानां समाहारः पञ्चपूली' में भी द्विगुसंज्ञा के लिए तद्धितोत्पत्ति होने पर उसके लुक् का 'अपरिमाणबिस्ता-चितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि' ४.१.२२ से निषेध हो जायेगा। इस तरह 'पञ्चपूली, दशपूली' इस द्विगु के उत्तर में तद्धितश्रवण की आपत्ति होगी; एवं व्यवहित होने से ङीप् नही हो सकेगा। एवं 'पञ्चगवम्, दशगवम्' में 'गोरद्धितलुकि'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५.४.९२ से विहित समासान्त टच् का लुक् होने से इष्ट टच् का श्रवण नही होगा। वार्तिकमतानुयायी-**नैष दोष इति**। 'अतद्धितलुकि' ५.४.९२ तथा 'न तद्धितलुकि' ४.१.२२ इन दोनों का परित्याग कर उक्त दोनों सूत्रों में समाहारग्रहण करेंगे। इससे अर्थ होगा-'समाहार में तद्धितलुक् होने पर ही ङीप् और समासान्त होगा, अन्यत्र नहीं'। इस तरह इस नियमविधान से उक्तस्थलों में दोष नहीं रहेगा।

* गोरकारो द्विगोः समाहारे * **अविशेषेण 'गोष्टज्भवती'त्युक्त्वा 'द्विगोः समाहारे' इति वक्ष्यामि,-तन्नियमार्थं भविष्यति-'समाहार एव, नान्यत्रे'ति** * अभिधानार्थन्तु * **अभिधानार्थन्तु समाहारग्रहणं कर्तव्यम्। समाहारेणाऽभिधानं यथा स्यात्, तद्धितार्थेन मा भूदिति। किं च स्यात्? तद्धितोत्पत्तिः प्रसज्येत। उत्पद्यतां, लुग्भविष्यति। लुक्कृतानि प्राप्नुवन्ति। सर्वाणि परिहृतानि,-पञ्चकुमारि दशकुमारि। 'लुक्तद्धितलुकी'ति ङीपो लुक्प्रसज्येत।**

गोरकारो द्विगोरिति। 'गोरद्धितलुकि' ५.४.९२ सूत्र का न्यास कर 'गोः' यह प्रथमयोग करेंगे। अर्थ होगा-'गोशब्दान्त तत्पुरुष को टच् हो'। इससे 'ब्राह्मणगवः' इत्यादि में टच् श्रवण होगा। इसके बाद द्वितीययोग 'द्विगोः समाहारे' ऐसा करेंगे। इसमें पूर्व सूत्र 'गोः' की अनुवृत्ति होगी। यह द्वितीययोग नियमार्थक होगा। अर्थ होगा-'समाहार गम्य होने पर ही गोशब्दान्त द्विगु से टच् हो, अन्यत्र नहीं। 'पञ्चगवम्, दशगवम्' में समाहार वाच्य है; अतः गोशब्दान्त से टच् हो जायेगा।

उत्तरभाष्य—**अभिधानार्थं त्विति**। समास के द्वारा समाहार वाच्य हो, तद्धित के द्वारा न हो, इसके लिए प्रकृतसूत्र में समाहारग्रहण करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**किं चेति**। यदि समास से समाहार वाच्य नहीं होकर तद्धित से वाच्य होगा तो क्या दोष होगा? सूत्रमतानुयायी-**तद्धितोत्पत्तिरिति**। तद्धित से समाहार वाच्य होने पर तद्धित की उत्पत्ति की आपत्ति होगी। आक्षेपक-**उत्पद्यतामिति**। तद्धित के द्वारा समाहार वाच्य होने पर द्विगुसंज्ञापक्ष में तद्धितोत्पत्ति होने पर 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से उसका लुक् हो जायेगा; अतः तद्धितश्रवण की आपत्ति नहीं होगी। समाहारग्रहणमतानुयायी-**लुक्कृतानीति**। तद्धितलुक् प्राप्त होने पर उसके अन्य दोष भी है जो अभी-अभी 'पञ्चपूली, दशपूली' में व्यवधान होने से ङीप् की अप्राप्ति एवम् 'पञ्चगवम्' इत्यादि में टच् का अश्रवणरूप दोष बता आये हैं। आक्षेपक आचार्य-**सर्वाणीति**। तद्धित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से समाहार वाच्य होने पर उससे प्राप्त सभी दोषों का नियम के द्वारा मार्जन किया जा चुका है। समाहारग्रहणमतानुयायी-**न सर्वाणीति**। तद्धित से समाहार वाच्य होने पर उससे प्राप्त सभी दोषों का मार्जन नहीं हुआ है। अन्यत्र 'पञ्चकुमारि, दशकुमारि' में तद्धितलुक् होने पर 'लुक् तद्धितलुकि' १.२.४९ के द्वारा ङीप् का लुक् प्राप्त होगा, यह दोष तद्धित से समाहारवाच्यपक्ष में बना हुआ है; अतः प्रकृत में समाहारग्रहण सार्थक है।

* द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् * **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासो वक्तव्यः। वाग्दृषदप्रियः। छत्त्रोपानहप्रियः। पञ्चगवप्रियः। दशगवप्रियः। किं प्रयोजनम्? समुदायवृत्ताववयवानां मा कदाचिदवृत्तिर्भूदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। इह द्वौ पक्षौ,-वृत्तिपक्षश्चाऽवृत्तिपक्षश्च। यदा वृत्तिपक्षस्तदा सर्वेषामेव वृत्तिः। यदाऽवृत्तिपक्षस्तदा सर्वेषामवृत्तिः।**

उत्तरपदप्रसङ्ग से प्रसङ्गसङ्गति के द्वारा अन्य विचार भी करते हैं-**द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति**। उत्तरपद पर रहते द्वन्द्व और तत्पुरुष को नित्यसमास कहना चाहिये। 'वाक् च दृषच्च प्रिये अस्य, छत्रञ्च उपानच्च प्रिये अस्य, पञ्च गावः प्रिया अस्य, दश गावः प्रिया अस्य' इन तीन पदों का बहुव्रीहि करने पर उत्तरपद पर रहते महाविभाषाधिकार के द्वारा विकल्प से 'वाग्दृषद, छत्रोपानह' में द्वन्द्व तथा 'पञ्चगव, दशगव' में तत्पुरुष प्राप्त है, उसको नित्य कहना चाहिये। अन्यथा समास का अभावपक्ष में द्वन्द्व में 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' ५.४.१०६ से होने वाला समासान्त प्रत्यय, एवं तत्पुरुष में 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से होने वाला समासान्तप्रत्यय नहीं हो सकेगा। यहाँ 'जातिरप्राणिनाम्' २.४.६ से समाहारद्वन्द्व है। यदि यहाँ इतरेतरयोगद्वन्द्व भी होता तो भी कार्य में कोई भेद नही होता। यहाँ **समुदायवृत्ति**=बहुव्रीहि में द्वन्द्वविषय-अवयवों और तत्पुरुषविषय-अवयवों की कभी **अवृत्ति**=समासाभाव न हो, इसके लिए नित्यसमासवचन है। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। तो क्या यहाँ समुदायवृत्तिबहुव्रीहि में अवयवों की कभी अवृत्ति न हो, इसके लिए 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त प्रयोजन के लिए उक्त वार्तिक नही पढना चाहिये। इस व्याकरणशास्त्र में दो पक्ष हैं, एक **वृत्तिपक्ष**=एकार्थीभाव तथा दूसरा **अवृत्तिपक्ष**=व्यपेक्षालक्षण विग्रहवाक्य। जब **वृत्तिपक्ष**= एकार्थीभावपक्ष रहेगा तब **सर्वेषाम्**=द्वन्द्व और तत्पुरुषविषय-अवयवों तथा समुदायबहुव्रीहि यह सभी समास होंगे। परन्तु जब **अवृत्तिपक्ष**=द्वन्द्वभावी तथा तत्पुरुषभाविपदों का व्यपेक्षालक्षण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामर्थ्य होगा तब बहुव्रीहि नहीं हो सकेगा।

* उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः समासवचनम् * **उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः समासो वक्तव्यः। द्वौ मासौ जातस्य यस्य स द्विमासजातः त्रिमासजातः। किं पुनः कारणं न सिद्ध्यति। सुप्सुपेति वर्तते। एवं तर्हीदं स्यात्-द्वौ मासौ द्विमासं, द्विमासं जातस्येति। नैवं शक्यम्। स्वरे हि दोषः स्यात्। द्विमासजात इति प्राप्नोति। द्विमासजात इति चेष्यते। द्व्यह्नजातश्च न सिध्यति। द्व्यहजात इति प्राप्नोति। न चैवं भवितव्यम्? भवितव्यं च यदा समाहारे द्विगुः। द्व्यह्नजातस्तु न सिध्यति। किमुच्यते 'परिमाणिने'ति, न पुनरन्यत्रापि पञ्चगवप्रियः दशगवप्रियः?** * अन्यत्र समुदायबहुव्रीहित्वादुत्तरपदप्रसिद्धिः * **अन्यत्र समुदायो बहुव्रीहिसंज्ञः। समुदायबहुव्रीहित्वादुत्तरपदं प्रसिद्धम्। उत्तरपदे प्रसिद्धे 'उत्तरपदे' इति द्विगुर्भविष्यति।**

उत्तरपदेनेति। द्विगु की निष्पत्ति के लिए उत्तरपद परिणामी के साथ समास कहना चाहिये। 'द्वौ मासौ जातस्य यस्य स द्विमासजातः, त्रयो मासा जातस्य यस्य स त्रिमासजातः' में 'कालाः परिमाणिना' २.२.५ के द्वारा तीन पदों का समास इष्ट है। परन्तु 'सुप्सुपा' में एकत्वसंख्या के विवक्षित होने से वह सम्भव नहीं हो पा रहा है। यहाँ तीन पदों का बहुव्रीहि करने पर उत्तरपद पर रहते 'द्विमास' इन दोनों शब्दों का तथा 'त्रिमास' इन दोनों शब्दों का द्वन्द्व किया जाता है। इससे 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' के द्वारा कालान्त उत्तरपद पर रहते प्रकृतिस्वर होता है। एवं 'द्व्यह्नजातः' में समासान्त भी सिद्ध हो जाता है। आक्षेपक-**एवं तर्हीदमिति**। 'द्वौ मासौ इति द्विमासम्, त्रयो मासा इति त्रिमासम्' में समाहार में द्विगु करेंगे। 'पात्राद्यन्तस्य न' भा.वा.२.४.१७ इस प्रतिषेध के द्वारा 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' भा.वा.२.४.१७ की प्राप्ति नहीं होगी। 'द्विमासं जातस्य अस्य, त्रिमासं जातस्य अस्य' इस विग्रह में दो पदों का ही समास होता है। इस तरह 'सुप्सुपा' में संख्या विवक्षित होने पर भी 'द्विमासजातः' इत्यादि में दोष नहीं है।

खण्डनभाष्य—**नैवं शक्यमिति**। समाहार में द्विगु करके दो पदों का बहुव्रीहि करने पर 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा समासान्त उदात्त होने से जातपदघटक अकार को कालान्तद्विगुस्वर ६.२.२६ होने से उदात्त इष्ट है; अतः इसके लिए तीन पदों का ही बहुव्रीहि करना चाहिये तथा इसके लिए 'उत्तरपदेन परिमाणिना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विगोः समासवचनम्' यह वार्तिक करना चाहिये। दो पदों का बहुव्रीहि करने में प्रकृत में अन्यत्र भी दोष है। इस पक्ष में 'द्वे अहनी इति द्व्यहम्, द्व्यहं जातस्यास्येति द्व्यहजातः' इस रूप की आपत्ति होगी। यहाँ पूर्व के दो पदों का समाहार में द्विगु होने पर 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से टच् की आपत्ति हो रही है। परन्तु जब तीन पदों का बहुव्रीहि कर पूर्व के दो पदों का द्विगु करते हैं तब 'न संख्यादेः समाहारे' ५.४.८९ से अह्न आदेश का निषेध होने से 'द्व्यह्नजातः' यह रूप सिद्ध नहीं होता है।

प्रश्नभाष्य—**न चैवमिति**। तो क्या 'द्व्यहजातः' यह रूप नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**भवितव्यमिति**। 'द्वे अहनी द्व्यहम्, द्व्यहं जातस्य अस्य' ऐसा समाहार में द्विगु करके समासान्त टच् होकर टजन्त का जात पद के साथ बहुव्रीहि करने पर 'द्व्यहजातः' यह पद भी होता है। परन्तु समाहार में द्विगु करने पर 'द्व्यह्नजातः' यह पद सिद्ध नहीं हो सकेगा। आक्षेपक-**किमुच्यत इति**। द्विगु की निष्पत्ति के लिए उत्तरपद परिमाणी के साथ ही समास क्यों कहते हैं; इससे अन्यत्र 'पञ्चगवप्रियः, दशगवप्रियः' में उत्तरपद प्रिय के साथ भी बहुव्रीहि करना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**अन्यत्रेति**। 'पञ्चगवधनः' इत्यादि में बहुव्रीहि कर लेने पर पूर्व के दोनों पदों का समासान्त आदि कार्य की सिद्धि के लिए बहुव्रीहिकृत एकार्थीभाव होने पर भी तत्पुरुषभावी दो पदमात्र का पृथक् एकार्थीभाव नहीं होने पर भी समास किया जायेगा। इससे पूर्व में कहा गया इतरेतराश्रयदोष भी निरस्त हो गया।

* सर्वत्र मत्वर्थे प्रतिषेधः * **सर्वेषु पक्षेषु द्विगुसंज्ञाया मत्वर्थे प्रतिषेधो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? पञ्चखट्वा दशखट्वा। 'द्विगो'-रितीकारो मा भूत्। पञ्चगुः दशगुः,-'गोरतद्धितलुकी'ति टज्मा भूदिति। {तद्धितार्थो}।**

सर्वत्र मत्वर्थ इति। यदि अर्थ शब्द 'स्यात्' इस अर्थ में होगा, अथ वा यदि अभिधेयवचन होगा, एवं ज्ञापक से तद्धितोत्पत्ति होगी, तब मतुप् के तद्धित प्रत्यय होने से तदर्थ में यही समास होगा; अशेष होने से अनुक्त समास बहुव्रीहि नहीं। बहुव्रीहि का 'चित्रगुः, शबलगुः' यह अवकाश होगा; अतः मत्वर्थ में सर्वत्र प्रतिषेध कहना चाहिये। इससे 'पञ्चखट्वा' इत्यादि में 'द्विगोः' ४.१.२१ से ङीप् नहीं होता है। 'पञ्च खट्वा यस्यां विद्यन्ते, दश खट्वा यस्यां विद्यन्ते' इस विग्रह में यदि द्विगु होगा तो 'वाऽऽबन्तः स्त्रियां भाष्यन्ते' भा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पा.२.४.१७ इस भाष्य से 'पञ्चखट्वा, दशखट्वा' में पक्ष में 'द्विगोः' २.४.१७ से ङीप् प्राप्त होगा तथा पक्ष में नपुंसक होगा। 'पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः, दश गावो यस्य स दशगुः' में तत्पुरुष होने पर 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से टच् की आपत्ति होगी; यह न हो; अतः सर्वत्र मत्वर्थ में द्विगुसंज्ञा का निषेध कहना चाहिये। {तद्धितार्थोत्तर-}।

संख्यापूर्वो द्विगुः २.१.५२

किमनन्तरे योगे यः सङ्ख्यापूर्वः स द्विगुसंज्ञः, आहोस्वित् पूर्वमात्रे? किं चातः? यद्यनन्तरे योगे। एकशाटी,-'द्विगो'रितीकारो न प्राप्नोति।

यह संज्ञासूत्र है। 'संख्यापूर्वः' यह संज्ञिदल है तथा 'द्विगुः' यह संज्ञादल है। 'संख्या पूर्वोऽवयवो यस्य' ऐसा बहुव्रीहिसमास है।

इस व्याकरणशास्त्र में कही पर अवयव अपेक्षित है जहाँ 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा' ऐसा कहा जाता है। कही पर समुदाय अपेक्षित है जहाँ 'प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे' ६.१.११५ ऐसा कह कर संहिताधिकार में विहित सभी कार्यों का निषेध किया जा रहा है; अतः सन्देहवश प्रश्न करते हैं-**किमनन्तर इति**। क्या यहाँ अनन्तरयोग में जो संख्यापूर्व उसकी द्विगुसंज्ञा की जा रही है, अथ वा पूर्वमात्र में संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा की जा रही है? यदि अनन्तरयोग में जो पूर्व, उसकी द्विगुसंज्ञा करेंगे तो 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९; 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' २.१.५०; 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५५ इस त्रिसूत्री से विहित तत्पुरुष की ही द्विगुसंज्ञा होगी। यदि पूर्वमात्र का ग्रहण कर संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा करेंगे तो 'संख्या वंश्येन' २.१.१९ से विहित 'द्विमुनि व्याकरणम्' इस अव्ययीभाव की भी द्विगुसंज्ञा होने पर 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' ६.२.२९ के द्वारा इगन्त द्विगुलक्षण पूर्वपद प्रकृतिस्वर की आपत्ति होगी। एवम् 'एकश्चाऽसौ शाटः एकशाटी' में 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ इस व्यवहित से विहित संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा नहीं होने से 'द्विगोः' ४.१.२१ के द्वारा ङीप् प्रत्यय नहीं होने से 'एकशाटी' ऐसा ङीबन्तरूप नही हो सकेगा। परन्तु पूर्वमात्र में संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा करने पर 'एकशाटी' में ङीप् हो जायेगा।

अथ पूर्वमात्रे-एकभिक्षा-अत्रापि प्राप्नोति। अस्त्वनन्तरे। कथमेकशाटी? ईकारान्तेन समासो भविष्यति-एका शाटी एकशाटी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इह तर्हिएकापूपी, 'द्विगो'रितीकारो न प्राप्नोति। अस्तु तर्हि पूर्वमात्रे। कथमेकभिक्षेति। टाबन्तेन सह समासो भविष्यति-एका भिक्षा एकभिक्षा। इह तर्हि- सप्तर्षयः,-'इगन्ते द्विगा'वित्येष स्वरः प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्यनन्तरे। कथमेकापूपी? समाहार इत्येव सिद्धम्।

परन्तु इस पक्ष में भिक्ष याच्ञायाम् धा.पा.६०६ धातु से घञ् प्रत्यय होने पर अदन्त भिक्ष शब्द के साथ संख्यावाची एक पद का 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४६ से समास करने पर 'एकभिक्ष' की भी द्विगुसंज्ञा होने से 'द्विगोः' ४.१.२१ से ङीप् होकर 'एकभिक्षी' इस रूप की आपत्ति हो रही है तथा इष्ट रूप 'एकभिक्षा' सिद्ध नहीं हो पा रहा है। परन्तु अनन्तरयोग में द्विगुसंज्ञापक्ष में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ के द्वारा विहित संख्यापूर्व की ही द्विगुसंज्ञा होने से 'एकभिक्षा' में द्विगु का अभाव होने पर ङीप् नहीं होकर टाप् प्रत्यय हो जाता है। जैसे 'जनानां पदं जनपदः' में समासार्थ पुंस्त्व है, वैसे 'एकभिक्षा' में भी समासार्थ स्त्रीत्व मान रहे हैं। यदि आप पूछें कि एक पद का अदन्त शाट शब्द के साथ समास होने पर ङीप् होकर 'एकशाटी' यह ईकारान्त रूप कैसे है, तो मैं उत्तर दूँगा कि शाट शब्द अदन्त है तथा उससे 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' ४.१.६३ से ङीष् होकर ईकारान्त शाटी शब्द है, उसी के साथ समास होकर 'एकशाटी' पद हो जायेगा। परन्तु अपूप शब्द के पुल्लिङ्ग में ही होने से जातिलक्षण ङीष् प्राप्त नहीं हो सकेगा; अतः 'एकश्चाऽसावपूपश्च' इस विग्रह में 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४६ से समास होने पर उसकी द्विगुसंज्ञा नहीं होने पर 'एकापूपी' में ङीप् नहीं हो सकेगा। परन्तु पूर्वमात्रयोग में द्विगुसंज्ञा करने पर 'एकापूपी' में भी द्विगुलक्षण ङीप् सिद्ध हो जाता है। परन्तु 'एकश्चाऽसौ भिक्षश्चैकभिक्षः' में ङीप् की आपत्ति हो रही है।

समाधानभाष्य—**टाबन्तेन सहेति**। टाबन्त भिक्षा शब्द के साथ समास करने पर 'अतः' ४.१.४ के अधिकार में विहित ङीप् आबन्त से नहीं हो सकेगा। 'गुरोश्च हलः' ३.३.१०३ के द्वारा भिक्षा शब्द स्त्रीलिङ्ग में व्युत्पादित है। 'वाऽऽबन्तः स्त्रियां भाष्यन्ते' भा.वा.२.४.१७ के व्यवस्थितविभाषा होने से पक्ष में नपुंसकलिङ्ग नहीं होगा। जहाँ आप् को ह्रस्व किया जा रहा है वहीं पर 'पञ्चखट्वम्, पञ्चखटवी' इत्यादि में विकल्प से स्त्रीत्व का विधान होता है। 'अनभिधान होने से भिक्ष शब्द के साथ समास नहीं होता है' ऐसा मान रहे हैं। अन्यथा उस पक्ष में 'एकभिक्षी' यह भी रूप होता। आक्षेपक-**इदं तर्हीति**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः' में 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' २.१.५० के द्वारा समास होने पर इसकी द्विगुसंज्ञा होगी। इस तरह यहाँ 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' ६.२.२९ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर की आपत्ति होगी। इस तरह पूर्वमात्रयोग में संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा करने पर यह दोष है। समाधानवादी-अस्तु तर्हीति। यदि पूर्वयोगमात्र ग्रहण में दोष है तो अनन्तरमात्रयोग में ही संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा कीजिये। इस पक्ष में 'एकापूपी' में ङीप् नही हो पा रहा है' ऐसा कहा था' परन्तु यहाँ समाहार में द्विगु करने पर द्विगुलक्षण ङीप् हो जायेगा।

कः पुनरत्र समाहारः? यत्तद्दानं सम्भ्रमो वा। इह तर्हि-पञ्चंहोतारः दशंहोतारः,-'इगन्ते द्विगा'वित्येष स्वरो न प्राप्नोति। अस्तु तर्हि पूर्वमात्रे। कथं सप्तर्षयः? 'अन्तोदात्तप्रकरणे त्रिचक्रादीनां छन्दसी'त्येवमेतत् सिद्धम्। अथ वा पुनरस्त्वनन्तरे। कथं पञ्चंहोतारः दशंहोतारः? 'आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दसी'-त्येव सिद्धम्। {सङ्ख्यापूर्वो}।

प्रश्नभाष्य—कः पुनरत्रेति। समाहार अनेकविषयक है; अतः एक का समाहार कैसे सम्भव है?

उत्तरभाष्य—यत्तद्दानमिति। यहाँ एक का दान अथ वा सम्भ्रम ही समाहार है। कोई कृपण एक ही अपूप को देता हुआ अनेक मान रहा है। अथ वा दान में श्रद्धातिशय होने से अथ वा महत्त्व होने से अनेक में जो सम्भ्रम है वह एक में भी किया जा सकता है। आक्षेपक-इह तर्हीति। यदि अनन्तर पूर्वयोग में संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा करेंगे तो 'पञ्चंहोतारः, दशंहोतारः' में 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' २.१.५० से समास करने पर व्यवहित पूर्व में द्विगुसंज्ञा नही हो सकेगी; अतः यहाँ 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' ६.२.२९ से होने वाला पूर्वपदप्रकृतिस्वर नही हो सकेगा। परन्तु पूर्वमात्रयोग में संख्यापूर्व की द्विगुसंज्ञा करने पर 'पञ्चंहोतारः, दशंहोतारः' में इगन्त द्विगुलक्षण स्वर भी हो जाता है। इस पक्ष में 'सप्तर्षयः' में अन्तोदात्तसिद्धि के लिए त्रिचक्रादिगण में 'सप्तर्षि' पद का पाठ करेंगे। इससे वेद में सप्तर्षि पद अन्तोदात्त हो जायेगा। एवम् आद्युदात्त-प्रकरण में दिवोदासादिगण में 'पञ्चंहोतारः, दशंहोतारः' का पाठ करेंगे। इससे 'पञ्चंहोतारः, दशंहोतारः' आद्युदात्त हो जायेंगे। भाषा में भी सप्तर्षि पद अन्तोदात्त ही इष्ट है। {संख्यापूर्वो-}।

कुत्सितानि कुत्सनैः २.१.५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पापाणके कुत्सितैः २.१.५४

किमुदाहरणम्? वैयाकरणखसूचिः। किं व्याकरणं कुत्सित-माहोस्विद्वैयाकरणः? वैयाकरणः कुत्सितस्तस्मिन् कुत्सिते तत्स्थमपि कुत्सितं भवति। {कुत्सितानि}।

कुत्सित पद में वर्तमान अर्थ में क्त प्रत्यय है, एवं कुत्सन पद में करण में ल्युट् है। सूत्रार्थ-'कुत्स्यमान का समानाधिकरण के साथ समास हो, एवं वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। २.१.५३.। पापनापितः।

'पाप और अणक पद कुत्सितवाचक के साथ समस्त हों तथा उसकी तत्पुरुष-संज्ञा हो'। अणककुलालः।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। प्रकृतसूत्र का क्या उदाहरण है? यह प्रश्न 'कुत्सितानि कुत्सनै' के विषय में ही है।

उत्तरभाष्य—**वैयाकरण इति**। प्रकृत सूत्र का 'वैयाकरणखसूचिः' यह उदाहरण है। प्रतिभाविहिन होने से जो प्रश्न का विस्मरण कराने के लिए **खम्**= आकाश दिखाता है-'अहो गगनं निर्मलम्' ऐसा; निष्फल व्याकरण अध्ययन होने से उस अल्पज्ञ की निन्दा की गयी है।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**किं व्याकरणमिति**। यहाँ व्याकरणशास्त्र की कुत्सा है, अथ वा व्याकरण पढने वालों की कुत्सा है? वेदाङ्ग होने से व्याकरणशास्त्र कुत्स्य नहीं है तथा उसका अध्येता भी कुत्स्य नहीं है, अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**वैयाकरण कुत्सित इति**। अल्पज्ञ होने से प्रश्न विस्मरण के लिए आकाश की सूचना करने से वैयाकरण कुत्स्य है, एवं वैयाकरण के कुत्स्य होने पर उस आश्रय में रहने वाला अधूरा व्याकरणज्ञान भी कुत्स्य है। {कुत्सितानि-}।

उपमानानि सामान्यवचनैः २.१.५५

'उपमानानी'त्युच्यते कानि पुनरुपमानानि? किं यदेवोपमानं तदेवोपमेयम्, आहोस्विदन्यदेवोपमानमन्य-दुपमेयम्? किं चातः? यदि यदेवोपमानं तदेवोपमेयं, क इहोपमार्थः-'गौरिव गौ'रिति? अथाऽन्यदेवोपमानम्, अन्यदुपमेयं क इहोपमार्थः-'गौरिवाश्व' इति। एवं तर्हि यत्र किञ्चित् सामान्यं कश्चिच्च विशेषस्तत्रोपमानोपमेये भवतः। किं वक्तव्यमेतत्? नहि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? मानं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि नामाऽनिर्ज्ञातज्ञानार्थमुपादीयते-'अनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामी'ति। तत्समीपे यन्नात्यन्ताय मिमीते तदुपमानं-'गौरिव गवय' इति। गौर्निर्ज्ञातो गवयोऽनिर्ज्ञातः।

सूत्रार्थ—'उपमानवाची शब्द का सामान्यवचन के साथ समास हो तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। घन इव श्यामो घनश्यामः।

प्रश्नभाष्य—**उपमानानीति**। यहाँ उपमान का समास कहा जा रहा है, उपमान क्या है? सूत्रानुरोध से 'कानि' यह बहुवचननिर्देश है। क्या जो उपमान है वही उपमेय है, अथ वा उपमान और उपमेय भिन्न-भिन्न होते हैं? यदि उपमान और उपमेय में अभेद मानें, अथ वा भेद मानें, दोनों ही पक्षों में सन्देह है। पहले अभेदपक्ष में सन्देह देते हैं-**यदीति**। 'यदि जो उपमान है वही उपमेय है'पक्ष लेते हैं तब 'गौरिव गौः' में सादृश्यबोधक इव शब्द का प्रयोग होने से उपमानोपमेयभाव है, यहाँ उपमार्थ क्या होगा? यहाँ उपमानोपमेय का बोधक इव पद का प्रयोग का क्या फल है? कर्मत्व अथ वा करणत्वरूप उपमानोपमेय बोध सम्भव नही है। यहाँ इव पद का प्रयोग है। उपमानभाव और उपमेयभाव की प्रतीति में ही उपमा होती है, उसका अभाव होने पर उक्त दो पदों का परस्पर अन्वय नहीं हो सकेगा। यहाँ व्यक्तिगतभेद का शब्द से स्पर्श नहीं है, एवं द्रव्य का भेद सामान्यबुद्धि से ही हो जाता है। यदि उपमान और उपमेय में भेद मानेंगे; उपमान अन्य होगा तथा उपमेय अन्य होगा तो 'गौरिवाश्वः' में 'गो' और 'अश्व' इन दोनों का भेद सर्वजनीन है; फिर यहाँ उपमार्थ क्या होगा? अत्यन्तभेदविवक्षा में 'गौरिवाश्वः' ऐसा कहा गया है। परन्तु जब गो-गत जाड्य, मान्द्य आदि धर्म का अश्व में आरोप करेंगे तब 'गौरिवाश्वः' यह उपमानोपमेयभाव हो जायेगा।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। जहाँ कुछ **सामान्य**=अभेद तथा कुछ **विशेष**=का आश्रयण लिया जाता है वहीं उपमान और उपमेयभाव होता है। जैसे 'घनश्यामः' में आधारभेद से श्यामत्व का यद्यपि भेद लिया जाता है, तथापि गुणजाति के एकत्व होने से अभेद भी है; अतः यहाँ उपमानोपमेयभाव है।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**किमिति**। क्या उपमानोपमेयभाव स्पष्ट करने के लिए 'यत्र किञ्चिच्च सामान्यं कश्चिच्च विशेषस्तत्रोपमानोपमेये भवतः' यह लक्षण कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नहीति**। उपमानोपमेयभावबोध के लिए उक्त लक्षण कहने की आवश्यकता नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। यदि उक्त लक्षण नहीं कहेंगे तो उपमानोपमेयभाव का बोध कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**मानं हीति**। अनिर्ज्ञात अर्थ धान्यराशि आदि का ज्ञान किया जा सके इसके लिए **मान**=प्रस्थ, किलोग्राम आदि का प्रयोग किया जाता है। मान प्रस्थ आदि से मेय धान्यराशि आदि का साकल्यरूप से ज्ञान होता है। परन्तु **तत्समीपे**=मान के समीप में जो होता है उसे उपमान कहते हैं। उपमान से परिच्छेद्य वस्तु का ज्ञान पूर्णरूप से नहीं होता है। जैसे 'गौरिव गवयः' ऐसा कहने से गो निर्ज्ञात है तथा गवय पदार्थ अनिर्ज्ञात है। यहाँ गो से गवय का ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं होता है, अपि तु सादृश्य रूप से होता है।

कामं तर्ह्यनेनैव हेतुना यस्य गवयो निर्ज्ञातः स्याद् गौरनिर्ज्ञातः, तेन कर्तव्यं स्याद् गवय इव गौरिति। बाढं कर्तव्यम्।

अन्य आचार्य—**कामं तर्हीति**। जो मान के समीप हो उसे उपमान कहेंगे। वह अनिर्ज्ञात वस्तु का पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं करा सकेगा, अपि तु सादृश्य रूप से ज्ञान करायेगा। जिसको गो पदार्थ निर्ज्ञात है उसके लिए 'गौरिव गवयः' में निर्ज्ञात गो पदार्थ उपमान तथा अनिर्ज्ञात गवय पदार्थ जिस हेतु से उपमेय हो रहा है, उसी हेतु से जिसको गवय पदार्थ निर्ज्ञात है उसके लिए गवय उपमान तथा गो उपमेय भी होना चाहिये।

समाधानभाष्य—**बाढमिति**। जिसको गवय पदार्थ निर्ज्ञात है तथा गो पदार्थ अनिर्ज्ञात है उसको गवय उपमान तथा गो उपमेय ही होगा।

किं पुनरिहोदाहरणम्? शस्त्रीश्यामा। क्व पुनरयं श्यामाशब्दो वर्त्तते? शस्त्र्यामित्याह। केन तर्हीदानीं देवदत्ताऽभिधीयते? समासेन। यद्येवं 'शस्त्रीश्यामो देवदत्त' इति न सिध्यति। 'उपसर्जनस्ये'ति ह्रस्वत्वं भविष्यति। यदि तर्ह्युपसर्जनान्यप्येवंजातीयकानि भवन्ति, 'तित्तिरि-कल्माषी' 'कुम्भकपाललोहिनी',-अनुपसर्जनलक्षण ईकारो न प्राप्नोति।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिहेति**। 'उपमानानि सामान्यवचनैः' सूत्र का क्या उदाहरण है? आगे इसका उदाहरण 'शस्त्रीश्यामा' दिया जाना है। जब शस्त्रीशब्द शस्त्री अर्थ में है तथा श्यामा पद भी शस्त्री अर्थ में ही है, तब समास के द्वारा उपमेय देवदत्ता का अभिधान प्राप्त नहीं हो रहा है। जब देवदत्ता अर्थ में श्यामा शब्द है तब वैयधिकरण्य होने से समास प्राप्त नहीं है। यदि वचनसामर्थ्य से समास कर भी लेंगे तो समानाधिकरण में विहित पुंवद्भाव 'मृगीव चपला मृगचपला' इस व्यधिकरण में नहीं हो सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**शस्त्रीश्यामेति**। 'शस्त्रीव श्यामा शस्त्रीश्यामा' यह उदाहरण है। 'सामान्यवचन' इस शब्द में वचनग्रहणसामर्थ्य से साधारणधर्म- विशिष्ट उपमेयार्थ वृत्तिशब्द लिया जाता है।

प्रश्नभाष्य—**क्व पुनरिति**। उक्त उदाहरण में श्यामा शब्द किस अर्थ में शक्त है? यदि शस्त्री अर्थ में शक्त है तो उपमेय देवदत्ता का वाचक नही हो सकेगा। यदि उपमेय देवदत्ता का वाचक है तो वैयधिकरण्य होने से समास प्राप्त नही होगा। इस तरह दोनों तरह से दोष देखे जाने से प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**शस्त्र्यामिति**। यहाँ श्यामा शब्द शस्त्री अर्थ में शक्त है।

प्रश्नभाष्य—**केनेति**। यदि समासघटक श्यामा पद शस्त्री अर्थ में शक्त है तो उपमेय देवदत्ता रूप अर्थ का वाचक कौन शब्द होगा? पूर्वपद अथ वा उत्तरपद यहाँ उपमान में शक्त है; एवम् उपमेयवाची कोई अन्य पद नहीं है; अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**समासेनेति**। शब्दशक्तिस्वभाववश समस्त 'शस्त्रीश्यामा' पद एकार्थीभावमहिम्ना उपमेय देवदत्ता रूप अर्थ का वाचक हो जायेगा। आक्षेपक- **यद्येवमिति**। यदि 'शस्त्रीश्यामा' इस समास में विशिष्टशक्ति के द्वारा उपमेय स्त्रीलिङ्गविशिष्ट देवदत्ता रूप अर्थ वाच्य है। स्त्रीलिङ्ग श्यामा पद के साथ समास तथा 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' के द्वारा श्यामा शब्द के ह्रस्वादेश होने पर 'शस्त्री- श्याम' पद उपमेय पुल्लिङ्गविशिष्ट देवदत्त अर्थ का वाचक नहीं होगा। आचार्य यहाँ समासवाच्यता होने से उपमेय अर्थ को प्रधान तथा उपमेय के प्रति अप्रधान होने से श्यामा शब्द को उपसर्जन मान रहे हैं; अतः उसे ह्रस्वादेश किया है। अथ च यदि 'कृत्रिमाऽकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः' परि.शे. ०९ इस परिभाषा के द्वारा ह्रस्वविधि में कृत्रिम उपसर्जन ही लेंगे; दोषप्रसङ्ग होने से लौकिक नहीं, तो 'तित्तिरिकल्माषी' में मात्र समास से पूर्व पुल्लिङ्ग तथा कुम्भकपाललोहिनी में समास से पूर्व मात्र नपुंसकलिङ्ग ही है; अतः इन दोनों स्थलों में समास से पूर्व स्त्रीप्रत्यय नही है वहाँ 'तित्तिरिकल्माषी' आदि में समास करने पर अनुप- सर्जनाधिकार में विहित होने से उपसर्जन पद से पर में ङीष् और ङीप् का प्रतिषेध प्राप्त हो रहा है। अथ वा यदि ङीष् करेंगे तब भी सतिशिष्ट होने से उपमान पद का बाध कर ङीषृस्वर अन्तोदात्त की आपत्ति होगी।

एवं तर्हि शस्त्र्यामेव शस्त्रीशब्दो वर्तते, देवदत्तायां श्यामा- शब्दः। एवमपि गुणोऽनिर्दिष्टो भवति। बहवः शस्त्र्यां गुणाः-तीक्ष्णा सूक्ष्मा पृथुरिति। अनिर्दिश्यमानस्यापि गुणस्य भवति लोके सम्प्रत्ययः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्यथा-'चन्द्रमुखी देवदत्ते'ति। बहवश्चन्द्रे गुणाः, या चासौ प्रियदर्शनता सा गम्यते। एवमपि 'समानाधिकरणेने'ति वर्त्तते। व्यधिकरणत्वात् समासो न प्राप्नोति।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। यदि पूर्वोक्त रीति से शस्त्री अर्थ में श्यामा शब्द को मानने में दोष है तो श्यामा शब्द को उपमेय देवदत्ता अर्थ का वाचक मानिये। इससे पूर्वोक्त दोष नहीं रहेगा। 'शस्त्रीश्यामो देवदत्तः' में श्याम शब्द को उपमेय देवदत्त अर्थ का वाचक मानेंगे तथा उसी के साथ समास करेंगे। एवं 'तित्तिरिकल्माषी, कुम्भकपाललोहिनी' में स्त्रीप्रत्यय के साथ ही विग्रह करके समास करेंगे। आक्षेपक-**एवमपि गुण इति**। यदि शस्त्री शब्द को शस्त्री अर्थ में ही शक्त मान कर श्यामा शब्द को देवदत्ता अर्थ में शक्त मानेंगे तब भी श्यामा शब्द के देवदत्ताऽभिधान में चरितार्थ होने से शस्त्रीगत गुण का निर्देश नहीं हो सकेगा। इससे अनियत गुणनिमित्तसादृश्य का बोध की आपत्ति होगी। शस्त्री में बहुत से गुण हैं; जैसे 'तीक्ष्ण, सूक्ष्म, पृथु'। अनियत होने से अनियत गुणनिमित्त-सादृश्य की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**अनिर्दिश्यमानेति**। जिस गुण का निर्देश नहीं होता है लोक में उसका भी बोध होता है। चन्द्र में बहुत सारे गुण है; जैसे—अन्धकारनिवर्तकत्व, स्वप्रकाशकत्व, चित्त-आह्लादकत्व, प्रियदर्शनत्व आदि। 'चन्द्रमुखी देवदत्ता' ऐसा कहने पर प्रियदर्शनता गुण ही लिया जाये, ऐसा शब्द से उपस्थित नही होता है। परन्तु वृद्धव्यवहारवश अनिर्दिष्ट गुण प्रियदर्शनता का ही बोध होता है। जहाँ अनिर्दिष्ट भी गुण वृद्धव्यवहारवश उपमाननिमित्तत्व रूप से प्रतीत होता है वहाँ सन्निधान वश उपमेय में श्रुत उपमान का स्पर्श क्यों नही है, यह ग्रन्थ का भाव है। आक्षेपक-**एवमपीति**। वृद्धव्यवहारवश अनिर्दिष्ट गुण का भी बोध मान कर श्यामा शब्द को देवदत्ता अर्थ का वाचक मानने पर शस्त्री में श्यामत्वविशिष्ट अर्थ का बोध मान भी लिया जाये, तब भी समानाधिकरण में कहा हुआ समास व्यधिकरण में नही हो सकेगा। यहाँ शस्त्री और श्यामा दोनों भिन्नार्थक होने से व्यधिकरण हो गये।

किं हि वचनान्न भवति? यद्यपि तावद्वचनात् समासः स्यादिह तु खलु मृगीव चपला मृगचपला,-समानाधिकरणलक्षणः पुंवद्भावो न प्राप्नोति। एवं तर्हि तस्यामेवोभयं वर्तते। एतच्चात्र युक्तं यत्तस्यामेवोभयं वर्त्तत इति। इतरथा हि बह्वपेक्षं स्यात्। यदि तावदेवं विग्रहः क्रियते-शस्त्रीव श्यामा देवदत्तेति,-शस्त्र्यां श्यामेत्येतदपेक्ष्यं स्यात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**किं हीति**। 'श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्' मी.३.३.१४ ऐसा मीमांसक मानते हैं। श्रुति आदि की अपेक्षा सम आदि उत्तरोत्तर दुर्बल होते हैं तथा लिङ्ग आदि उत्तर-उत्तर की अपेक्षा प्रकरणस्थान आदि दुर्बल होते हैं। बलवान् से दुर्बल का बाध होता है। आचार्य 'उपमानानि सामान्यवचनै' इस सूत्र का आरम्भ करते हैं। इस श्रुति के बलवान् होने से समानाधिकरणप्रकरण का बाध मान कर आप समास क्यों नहीं कर रहे हैं? वचनप्रामाण्य से समास होने में अन्य दोष देते हैं-**यद्यपीति**। यदि वचनप्रमाण से 'शस्त्रीश्यामा' में व्यधिकरण होने पर समास मान भी लिया जाये तब भी समानाधिकरण में कहा हुआ 'पुंवद् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' ६.३.४२ से 'मृगीव चपला मृगचपला' में पुंवद्भाव प्राप्त नहीं हो सकेगा। यहाँ अस्त्री पूर्वपद को विवक्षित होने से 'मृग्याः क्षीरं मृगक्षीरम्' की तरह 'मृगचपला' में भी पुंवद्भाव हो जायेगा। यद्यपि स्त्री का चापल्य अन्य है तथा पुरुष का चापल्य अन्य है, फिर भी पुंवद्भाव के द्वारा स्त्रीप्रत्यय की निवृत्ति होने पर स्त्रीत्वलक्षणविशेष का बोध नहीं हो सकेगा। परन्तु प्रकरण आदि वश स्त्रीत्वबोध होने पर जातिमात्र का ग्रहण में भी स्त्रीत्व का बोध होगा। वह स्त्रीत्वप्रतिपत्ति बहिरङ्ग होने से स्त्रीप्रत्यय की उत्पत्ति में निमित्त नहीं होता है। इस तरह बोधगौरवप्रसङ्ग होने तथा अन्य गति सम्भव होने से भाष्यकार ने इस पक्ष का यहाँ आश्रयण नहीं किया है, तो इसे दिखाते हैं-**एवं तर्हीति**। 'गौर्बाहीकः' की तरह सादृश्यनिमित्त अभेदव्यवहार के द्वारा शस्त्री के सदृश होने से यहाँ शस्त्री शब्द के द्वारा देवदत्ता वाच्य है। यहाँ पूर्व अवस्था का आश्रयण कर शस्त्रीशब्द को उपमानवाचित्व मानना चाहिये। इसी तरह शस्त्री पद का वाच्य शस्त्री और देवदत्ता यह दोनों अर्थ नहीं मानेंगे तो शस्त्री पद में तीक्ष्ण आदि बहुत से गुणों के होने से बहुतों की अपेक्षा होगी। 'शस्त्रीव श्यामा देवदत्ता' इस विग्रह में श्यामा शब्द देवदत्ता अर्थ में तथा शस्त्रीशब्द शस्त्री अर्थ में ही होगा। इस पक्ष में शस्त्री में अनेक गुण सम्भव होने पर अन्य गुणव्यवच्छेद के लिए शस्त्रीगत श्यामत्व को सादृश्य का निमित्तप्रतिपादन के लिए 'श्यामा' इस पद की अपेक्षा होगी।

अथाप्येवं विग्रहः क्रियते-यथा शस्त्री श्यामा तद्वदियं देवदत्तेति,-एवमपि देवदत्तायां 'श्यामे'त्येतदपेक्ष्यं स्यात्। एवमपि गुणोऽनिर्दिष्टो भवति। बहवश्च शस्त्र्यां गुणाः-तीक्ष्णा सूक्ष्मा पृथुरिति। अनिर्दिश्यमानस्यापि गुणस्य भवति लोके सम्प्रत्ययः। तद्यथा-'चन्द्रमुखी देवदत्ते'ति बहवश्चन्द्रे गुणाः,-या चासौ प्रियदर्शनता सा गम्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं जब 'शस्त्री श्यामा तद्वदियं देवदत्ता' ऐसा विग्रह करेंगे तब शस्त्री शब्द शस्त्री अर्थ में ही होगा। इस परिस्थिति में देवदत्तागत श्यामत्वप्रतिपादन के लिए 'श्यामा' इस पद की अपेक्षा होगी। यदि यहाँ कहा जाये कि श्यामा पद शस्त्री और देवदत्ता इत्येतद् उभयगत श्यामत्व का प्रतिपादक है तो इस पक्ष में भी दोष देते हैं-**एवमपीति**। जब शस्त्रीसादृश्य होने से देवदत्ता में शस्त्रीत्व का आरोप कर शस्त्री और देवदत्ता का सादृश्य लिया जाये तो शस्त्री में तीक्ष्ण, सूक्ष्म, पृथु बहुत गुण सम्भव होने से किसी गुण का निर्देश नहीं होने पर किस गुण का सादृश्य लिया जाये, यह निश्चय नहीं हो पा रहा है? इसका उत्तर पूर्व की तरह ही देते हैं-**अनिर्दिश्यमानेति**। 'चन्द्रमुखी' कहने पर चन्द्र में विद्यमान बहुत सारे गुण में से किसी का निर्देश नहीं होने पर भी वृद्ध-व्यवहारवश चन्द्र में जो प्रियदर्शनता है, उसी का मुख में आरोप किया जाता है। इस तरह अनिर्दिष्ट गुण का भी सादृश्य लिया जाता है। वैसे 'शस्त्री श्यामा' में भी संसर्गविधया प्रतीयमान सादृश्य का बोध हो जायेगा। जहाँ बहुत गुणों वाला वस्तु में तात्पर्यवश जो कोई भी गुण प्रतीत होता है वहाँ उपमेय में श्रुत तन्त्र आदि के द्वारा उपमान अवश्य हो सकेगा। यहाँ जो परिहार दिया है वही परिहार पूर्व के दोनों पक्षों का भी है, फिर भी ह्रस्व, स्त्रीप्रत्यय, स्वर और पुंवद्भाव के असिद्ध होने से पूर्व के दोनों पक्षों का परिहार कर यह पक्ष कहा गया है।

* उपमानसमासे गुणवचनस्य विशेषभाक्त्वात् सामान्यवचनाऽप्रसिद्धिः *

उपमानसमासे गुणवचनस्य विशेषभाक्त्वात् सामान्यवचनाऽप्रसिद्धिः। उपमानसमासे गुणवचनस्य विशेषभाक्त्वात् सामान्यवचनस्याऽप्रसिद्धिः स्यात्। शस्त्रीश्यामा। श्यामाशब्दोऽयं शस्त्रीशब्देनाऽभिसम्बध्यमानो विशेषवचनः सम्पद्यते। तत्र 'सामान्यवचनै'रिति समासो न प्राप्नोति।

आक्षेपक—**उपमानसमासे इति**। सामान्यवचन के साथ उपमान का समास कहा जा रहा है। 'शस्त्रीश्यामा' में शस्त्रीशब्द से सम्बद्ध होकर श्यामाशब्द शस्त्रीगत श्यामत्व गुण का प्रतिपादक है। शस्त्रीस्थ गुण अन्य आश्रय में नही है; अतः यहाँ श्यामा शब्द सामान्यवचन नही होकर विशेषवचन हो गया। इस तरह सामान्यवचन के साथ कहा गया समास विशेषवचन में नही हो सकेगा।

* न वा श्यामत्वस्योभयत्र भावात्तद्वाचकत्वाच्च् शब्दस्य सामान्यवचनप्रसिद्धिः * **न वैष दोषः। किं कारणम्? 'श्यामत्वस्योभयत्र भावात्'।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ से 'समानाधिकरणेन' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'विशेषण=भेदक समानाधिकरण विशेष्य=भेद्य के साथ बाहुलक समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। नीलमुत्पलु नीलोत्पलम्।

आक्षेपक—**विशेषणविशेष्ययोरिति**। समासशास्त्र में प्रथमानिर्दिष्ट की उपसर्जनसंज्ञा तथा पूर्वनिपात नियम है। विशेषणविशेष्यसमास में दोनों ही विशेषण भी होते हैं तथा विशेष्य भी होते हैं; अतः पक्ष में विशेष्यवाचक पद के विशेषण होने से उसको भी पूर्वनिपात की आपत्ति होगी। जैसे 'कृष्णाश्च ते तिलाः कृष्णतिलाः' में उच्चरित कृष्ण पद तिल का कृष्णत्व बतानें के अलावा भ्रमर, कोकिल, काक आदि का भी कृष्णत्व का बोधक है। परन्तु तिल शब्द तिलों में ही सम्बद्ध होता हुआ कृष्ण रूप अर्थ का भेदक होगा। 'कृष्ण कौन सा लिया जाये, जो तिलगत हो' ऐसा कहने से कृष्णशब्द भी विशेष्य होता है तथा तिलशब्द उसका विशेषण हो रहा है; अतः जैसे तिलशब्द को विशेष्य तथा कृष्णशब्द को विशेषण मान कर 'कृष्णतिलाः' यह प्रयोग है, वैसे तिलशब्द को विशेषण तथा कृष्णशब्द को विशेष्य मान कर 'तिलकृष्णाः' इस पद के प्रयोग की भी आपत्ति हो रही है। इस स्थिति में यहाँ किसी एक के उपसर्जन होने का नियम नहीं हो पा रहा है।

* न वान्यतरस्य प्रधानभावात् तद्विशेषकत्वाच्चाऽपरस्योपसर्जनप्रसिद्धिः *

न वैष दोषः। किं कारणम्? 'अन्यतरस्य प्रधानभावात्'। अन्यतरदत्र प्रधानम्। 'तद्विशेषकत्वाच्चाऽपरस्य'। तद्विशेषकं चाऽपरम्। अन्यतरस्य प्रधानभावात् तद्विशेषकत्वाच्चापरस्योपसर्जनसंज्ञा भविष्यति। यदाऽस्य तिलाः प्राधान्येन विवक्षिता भवन्ति, कृष्णो विशेषकत्वेन, तदा तिलाः प्रधानं, कृष्णो विशेषणम्। कामं तर्ह्यनेनैव हेतुना यस्य कृष्णाः प्राधान्येन विवक्षिता भवन्ति तिला विशेषणत्वेन, तेन कर्तव्यं 'तिलकृष्णा' इति। न कर्तव्यम्। न ह्ययं द्वन्द्वः- तिलाश्च कृष्णाश्चेति।

समाधानभाष्य—**न वाऽन्यतरस्येति**। विशेषणविशेष्यभाव में **अन्यतरस्य**=द्रव्यवाचक पद को विशेष्य तथा **अपरस्य**=गुणवाचक को विशेषण मानेंगे। इससे उपसर्जन का अप्रसिद्धिरूप दोष नही रहेगा। क्रिया की सिद्धि में साक्षात् उपयोग नहीं होने से द्रव्यरूप तिल प्रधान होने से विशेष्य है तथा क्रिया की सिद्धि में साक्षात् उपयोग नहीं होने से गुणरूप अप्रधान कृष्ण विशेषण है; अतः उपसर्जन की अप्रसिद्धि नहीं होगी। अन्य आचार्य यथोक्तन्याय नहीं समझ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उभयत्रैवाऽत्र श्यामत्वमस्ति,-शस्त्र्यां देवदत्तायां च। 'तद्वाचकत्वाच्च शब्दस्य'। तद्वाचकश्चात्र श्यामाशब्दः प्रयुज्यते। किं वाचकः? उभयवाचकः। श्यामत्वस्योभयत्र भावात् तद्वाचकत्वाच्च शब्दस्य सामान्यवचनं प्रसिद्धम्। सामान्यवचने प्रसिद्धे 'सामान्यवचनै'रिति समासो भविष्यति। न चाऽवश्यं स एव सामान्यवचनो यो बहूनां सामान्यमाह, द्वयोरपि यः सामान्यमाह सोऽपि सामान्यवचन एव। अथ वा 'सामान्यवचनै'रित्युच्यते। सर्वश्च शब्दोऽन्येन शब्देनाऽभिसम्बध्यमानो विशेषवचनः सम्पद्यते। त एवं विज्ञास्यामः-'प्रागभिसम्बन्धाद् यः सामान्यवचन' इति।

खण्डनभाष्य—**न वैष दोष इति**। 'शस्त्रीश्यामा' में शस्त्री पद से सम्बद्ध श्यामा पद शस्त्री और देवदत्ता दोनों के श्यामत्व का वाचक है। शस्त्री और देवदत्ता दोनों ही श्यामत्व हैं तथा दोनों के श्यामत्व का वाचक श्यामा पद शस्त्री से सम्बद्ध होकर देवदत्तागत श्यामत्व का भी वाचक होने से सामान्यवचन हो गया; अतः सामान्यवचन के साथ कहा हुआ समास 'शस्त्रीश्यामा' में हो जायेगा। अन्य पक्ष में भी इसे स्पष्ट करते हैं-**अथ वेति**। यहाँ सामान्यवचन के साथ समास कहा जा रहा है। विशेष के साथ सम्बद्ध होने से सभी सामान्य भी विशेष हो जाते हैं; अतः प्रकृत में हम मात्र वही सामान्यवचन लेंगे जो विशेष से सम्बद्ध न हुआ हो। अर्थात् 'विशेष से सम्बद्ध होने से पूर्व जो सामान्यवचन, उसी के साथ उपमान का समास हो' ऐसा अर्थ करेंगे। 'शस्त्रीश्यामा' में शस्त्री से सम्बद्ध होने से पूर्व श्यामा पद सामान्यवचन है, उसके साथ उपमानवाची का समास हो जायेगा। समास के अनन्तर शस्त्रीपद से सम्बद्ध श्यामापद यदि अपने सामान्यवचनत्व का परित्याग करता है तो कोई हानि नही है। {उपमानानि-}।

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे २.१.५६

सामान्याऽप्रयोग इति किमर्थम्? इह मा भूत्-'पुरुषोऽयं व्याघ्र इव शूरः', 'पुरुषोऽयं व्याघ्र इव बलवान्' * सामान्याऽप्रयोग इति शक्यमवक्तुम् * इह कस्मान्न भवति-'पुरुषोऽयं व्याघ्र इव शूरः', 'पुरुषोऽयं व्याघ्र इव बलवान्'? 'असामर्थ्यात्'। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। एवं तर्हि सिद्धे सति यत् 'सामान्याऽप्रयोग' इति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो-'भवति वै प्रधानस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सापेक्षस्यापि समासः' इति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'राजपुरुषोऽभिरूपः' 'राजपुरुषो दर्शनीयः'-अत्र वृत्तिः सिद्धा भवति। {उपमितं व्याघ्रा}।

सूत्रार्थ—'सामान्य का प्रयोग नहीं होने पर उपमित का व्याघादि के साथ समास हो' तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'।

प्रश्नभाष्य—**सामान्याऽप्रयोग इति**। 'उपमितं व्याघ्रदिभिः' इतना ही सूत्र रखिये; इससे 'पुरुषसिंहः, पुरुषव्याघ्रः' इत्यादि की सिद्धि हो जायेगी; फिर 'सामान्याऽप्रयोगे' यह निषेधवचन क्यो पढते हैं?

उत्तरभाष्य—**इह मा भूदिति**। 'पुरुषो व्याघ्र इव शूरः' इत्यादि में सामान्य प्रयोग होने पर समासवारण के लिए निषेधवचन है। आक्षेपक-**सामान्येति**। 'पुरुषो व्याघ्र इव शूरः' इत्यादि में पुरुष पद शूर पद के साथ सापेक्ष है। सापेक्ष असमर्थ होता है। असमर्थों का समास नहीं होने से ही यहाँ समास का वारण हो जायेगा; फिर इसी के लिए किया गया 'सामान्याऽप्रयोगे' वचन व्यर्थ है। ज्ञापनवादी-**एवं तर्हीति**। सापेक्ष के असमर्थ होने पर 'पुरुषः व्याघ्र इव शूरः' इत्यादि में समासवारण सम्भव होने पर भी आचार्य ने जो 'सामान्याऽप्रयोगे' ऐसा निषेधवचन का आरम्भ किया है वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा- 'सापेक्ष होने पर भी प्रधान का समास होता है'। 'पुरुषव्याघ्रः' में प्रधान पुरुष के शूर पद सापेक्ष होने पर भी समास की आपत्ति होने से निषेध है। इस ज्ञापन का फल देते हैं-**राजपुरुषोऽभिरूप इति**। यहाँ प्रधान पद पुरुष अभिरूप तथा दर्शनीय में सापेक्ष होने पर भी राज पद के साथ समस्त है। {उपमितं–}।

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २.१.५७

* विशेषणविशेष्ययोरुभयविशेषणत्वादुभयोश्च विशेष्यत्वादुपसर्जनाऽप्रसिद्धिः * **विशेषणविशेष्ययोरुभयविशेषणत्वादुभयोश्च विशेष्यत्वादुपसर्जनस्याऽप्रसिद्धिः। कृष्णतिला इति,-कृष्णशब्दोऽयं तिलशब्देनाऽभिसम्बध्यमानो विशेषणवचनः सम्पद्यते, तथा तिलशब्दोऽयं कृष्णशब्देनाऽभिसम्बध्यमानो विशेषणवचनः सम्पद्यते, एतदुभयं विशेषणं भवत्युभयं च विशेष्यम्। विशेषणविशेष्ययोरुभयविशेषणत्वादुभयोश्च विशेष्यत्वादुपसर्जनस्याऽप्रसिद्धिः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ से 'समानाधिकरणेन' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'विशेषण=भेदक समानाधिकरण विशेष्य=भेद्य के साथ बाहुलक समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। नीलमुत्पलु नीलोत्पलम्।

आक्षेपक—**विशेषणविशेष्ययोरेति**। समासशास्त्र में प्रथमानिर्दिष्ट की उपसर्जनसंज्ञा तथा पूर्वनिपात नियम है। विशेषणविशेष्यसमास में दोनों ही विशेषण भी होते हैं तथा विशेष्य भी होते हैं; अतः पक्ष में विशेष्यवाचक पद के विशेषण होने से उसको भी पूर्वनिपात की आपत्ति होगी। जैसे 'कृष्णाश्च ते तिलाः कृष्णतिलाः' में उच्चरित कृष्ण पद तिल का कृष्णत्व बतानें के अलावा भ्रमर, कोकिल, काक आदि का भी कृष्णत्व का बोधक है। परन्तु तिल शब्द तिलों में ही सम्बद्ध होता हुआ कृष्ण रूप अर्थ का भेदक होगा। 'कृष्ण कौन सा लिया जाये, जो तिलगत हो' ऐसा कहने से कृष्णशब्द भी विशेष्य होता है तथा तिलशब्द उसका विशेषण हो रहा है; अतः जैसे तिलशब्द को विशेष्य तथा कृष्णशब्द को विशेषण मान कर 'कृष्णतिलाः' यह प्रयोग है, वैसे तिलशब्द को विशेषण तथा कृष्णशब्द को विशेष्य मान कर 'तिलकृष्णाः' इस पद के प्रयोग की भी आपत्ति हो रही है। इस स्थिति में यहाँ किसी एक के उपसर्जन होने का नियम नहीं हो पा रहा है।

* न वान्यतरस्य प्रधानभावात् तद्विशेषकत्वाच्चाऽपरस्योपसर्जनप्रसिद्धिः *

न वैष दोषः। किं कारणम्? 'अन्यतरस्य प्रधानभावात्'। अन्यतरदत्र प्रधानम्। 'तद्विशेषकत्वाच्चाऽपरस्य'। तद्विशेषकं चाऽपरम्। अन्यतरस्य प्रधानभावात् तद्विशेषकत्वाच्चापरस्योपसर्जनसंज्ञा भविष्यति। यदाऽस्य तिलाः प्राधान्येन विवक्षिता भवन्ति, कृष्णो विशेषकत्वेन, तदा तिलाः प्रधानं, कृष्णो विशेषणम्। कामं तर्ह्यनेनैव हेतुना यस्य कृष्णाः प्राधान्येन विवक्षिता भवन्ति तिला विशेषणत्वेन, तेन कर्तव्यं 'तिलकृष्णा' इति। न कर्तव्यम्। न ह्ययं द्वन्द्वः-तिलाश्च कृष्णाश्चेति।

समाधानभाष्य—**न वाऽन्यतरस्येति**। विशेषणविशेष्यभाव में **अन्यतरस्य**=द्रव्यवाचक पद को विशेष्य तथा **अपरस्य**=गुणवाचक को विशेषण मानेंगे। इससे उपसर्जन का अप्रसिद्धिरूप दोष नही रहेगा। क्रिया की सिद्धि में साक्षात् उपयोग नहीं होने से द्रव्यरूप तिल प्रधान होने से विशेष्य है तथा क्रिया की सिद्धि में साक्षात् उपयोग नहीं होने से गुणरूप अप्रधान कृष्ण विशेषण है; अतः उपसर्जन की अप्रसिद्धि नहीं होगी। अन्य आचार्य यथोक्तन्याय नहीं समझ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर उक्त भाष्य के द्वारा 'विवक्षामात्रनिबन्धन विशेषणविशेष्यभाव का प्रतिपादन किया गया है' ऐसा मान रहे हैं। विवक्षा का नियम स्वतन्त्र होता है; अतः जब कृष्ण पद की विवक्षा विशेष्यरूप से होगी तब 'तिलकृष्णा:' इस पद की आपत्ति हो रही है, ऐसा मान कर आक्षेप करते हैं-**काममिति**।

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। 'तिलकृष्णा:' इस तरह का प्रयोग के लिए तिल शब्द की विशेषणत्व से विवक्षा नहीं की जाती है। अन्य प्रकार से भी इस तरह का प्रयोग का खण्डन करते हैं-**नह्ययमिति**। गुणवाची और द्रव्यवाची का एक साथ द्वन्द्व भी नहीं होता है; अतः 'तिलाश्च कृष्णाश्च' इस विग्रह में 'तिलकृष्णा:' ऐसा प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यदि गुणवाची और द्रव्यवाची का द्वन्द्व सम्भव होता तो 'तिलकृष्णा:' ऐसा प्रयोग सम्भव हो सकता था, परन्तु ऐसा नहीं होता है।

न खल्वपि षष्ठीसमासः-तिलानां कृष्णास्तिलकृष्णा इति। किं तर्हि? द्वाविमौ प्रधानशब्दावेकस्मिन्नर्थे युगपदवरुध्येते, न च द्वयोः प्रधानशब्दयोरेकस्मिन्नर्थे युगपदवरुध्यमानयोः किञ्चिदपि प्रयोजनमस्ति, तत्र प्रयोगादेतदवगन्तव्यं-'नूनमत्रान्यतरत् प्रधानं, तद्विशेषकं चाऽपरमिति। तत्र त्वेतावान् सन्देहः-किं प्रधानं, किं विशेषणमिति? स चाऽपि क्व सन्देहो, यत्रोभौ गुणशब्दौ। तद्यथा-खञ्जः कुब्जः 'खञ्जकुब्जः' इति। यत्र ह्यन्यतरद् द्रव्यमन्यतरो गुणस्तत्र यद् द्रव्यं तत्प्रधानम्। तद्यथा-'शुक्लमालभेत' 'कृष्णमालभेते'ति। न पिष्टपिण्डीमालभ्य कृती भवति, अवश्यं तद्गुणं द्रव्यमाकाङ्क्षति।

गुण के साथ द्रव्य का षष्ठीसमास भी नहीं होता है; अतः 'तिलानां कृष्णा:' इस विग्रह में भी 'तिलकृष्णा:' यह प्रयोग नहीं होगा। 'तिलाः कृष्णा:' इस विग्रह में दोनों ही **प्रधानशब्दौ**=प्रथमान्त होने से प्रधान हैं। षष्ठीसमास वहीं होता है जहाँ एक प्रधान तथा दूसरा अप्रधान हो; अतः यहाँ षष्ठीसमास भी नहीं होगा। यहाँ उक्त प्रथमान्त दोनों पदों का एक ही क्रिया में एक साथ विनियोग होता है; जब कि द्वन्द्व में सभी पदार्थों का प्राधान्य होता है; अतः एक क्रिया में युगपत् सभी पदार्थो का विनियोग सम्भव नहीं होता है। जब कृष्णतिल का युगपद् एक क्रिया में विनियोग होता है; अतः कृष्ण और तिल पदों का द्वन्द्व भी सम्भव नही है; इसे बताते हैं-**एकस्मिन्निति**। वस्तुतः यह भाष्य अवयवार्थ की अपेक्ष से है। परन्तु समुदायार्थ की अपेक्षा होने पर सभी पदार्थों की समुदायलक्षण एक ही वृत्ति है। **प्रधानशब्दयोः**=परस्पर विशेषणत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप से अनुपकार स्वतन्त्र दोनों पदों का एक अर्थ में एक ही साथ कोई प्रयोजन नहीं है जहाँ प्रयोग से निश्चय हो सके कि घट और पट इन दोनों में अमुक पद **विशेषक**=भेदक=विशेषण है तथा अमुक पद **प्रधान**=भेद्य=विशेष्य है। अन्य आचार्य-**तत्रेति**। दो पदों का एक साथ प्रयोग करने पर सन्देह होता है-**प्रधान**= विशेष्य पद कौन है तथा विशेषण पद कौन है? इतर आचार्य-**स चापीति**। जहाँ दोनों गुणशब्द होते हैं, जैसे 'कुब्जः खञ्जः' वही पर सन्देह होता है कि किसे विशेष्य माना जाये तथा किसे विशेषण माना जाये? परन्तु जब एक साथ द्रव्यवचन तथा गुणवचन इन दोनों का प्रयोग करने पर जो द्रव्यवचन होता है वह क्रिया में साक्षात् उपयोग होने से **प्रधान**=विशेष्य होता है तथा गुणवचन अप्रधान होने से विशेषण होता है। जैसे 'शुक्लमालभेत, कृष्णमालभेत' इस मीमांसावाक्य में शुक्ल और कृष्ण गुण का आलम्भन का विधान है। परन्तु आलम्भन करने वाला मात्र गुण का आलम्भन कर कृतार्थ नहीं होता है; परन्तु गुणविशिष्ट द्रव्य का आलिङ्गन करता है।

कथं तर्हीमौ द्वौ प्रधानशब्दावेकस्मिन्नर्थे युगपदवरुध्येतेवृक्षः शिंशपेति। नैतयोरावश्यकः समावेशः। न ह्यवृक्षः शिंशपाऽस्ति।

प्रश्नभाष्य—**कथं तर्हीति**। **'वृक्षः शिंशपा'**='शिशम का वृक्ष' यह प्रयोग कैसे होता है? ये दोनों ही जातिशब्द द्रव्यवाची होने से विशेष्य हैं, अतः इसमें से किसी का भी विशेषण सम्भव नहीं है।

समाधानभाष्य—**नैतयोरिति**। 'आवश्यकमस्ति अस्मिन्निति आवश्यकः' में 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ से मत्वर्थीय अच् प्रत्यय है। जब पहले ही विशेष का ग्रहण कर 'शिंशपा' यह शब्दप्रयोग होगा तब वृक्षविशेष का ही बोध होगा; एवं सामान्य व्यभिचार नहीं होने से वृक्षशब्द का प्रयोग नहीं होगा। परन्तु जब सामान्य का ग्रहण कर 'वृक्ष' ऐसा शब्द प्रयोग करेंगे, तब उसका विशेषबोध कराने के लिए 'शिंशपा' यह विशेषण पद दिया जायेगा, एवं 'शिंशपावृक्षः' ऐसा प्रयोग होगा। 'वृक्षः शिंशपा' ऐसा प्रयोग नहीं होने में कारण देते हैं-**न ह्यवृक्ष इति**। शिंशपा वृक्ष ही होता है, अवृक्ष शिंशपा नहीं है। सम्भव और व्यभिचार होने पर ही व्यावर्तन के लिए विशेषण का प्रयोग किया जाता है। जैसे 'नीलमुत्पलमानय'। नील, पीत आदि अनेक प्रकार का उत्पल सम्भव होने पर नील पद की विशेषणता सम्भव है। परन्तु वह्नि उष्ण ही होता है, शीत नहीं; अतः व्यभिचार नहीं होने से 'उष्णं वह्निमानय' ऐसा विशेषणविशिष्ट प्रयोग नहीं होता है। इस तरह कोई व्यभिचार नहीं होने से शिंशपा शब्द के साथ वृक्ष यह विशेषण व्यर्थ है। {विशेषणं-}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमान-मध्यमध्यमवीराश्च २.१.५८

अथ किमर्थमुत्तरत्रैवमाद्यनुक्रमणं क्रियते, न 'विशेषणं विशेष्येण बहुल'मित्येव सिद्धम्? * बहुलवचनस्याऽकृत्स्नत्वादुत्तरत्रानुक्रमण-सामर्थ्यम् * अकृत्स्नं बहुलवचनमित्युत्तरत्रानुक्रमणं क्रियते। यद्यकृत्स्नं, यदनेन कृतमकृतं तत्।

'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४६ से 'समानाधिकरणेन' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम और वीर पद का समानाधिकरण पद के साथ समास हो'।

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। **उत्तरत्र**='विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ के अनन्तर **एवमादि**='पूर्वापरप्रथमचरमजघन्य–' यह सूत्र क्यों पढते हैं? इस सूत्र का 'पूर्ववैयाकरणः, अपराध्यापकः' इत्यादि उदाहरण हैं, उनका समास 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ से ही सिद्ध हो जाता है।

उत्तरभाष्य—**बहुलेति**। मात्र बहुलग्रहण कर देने से मन्दबुद्धि वालों को समास और असमास का ज्ञान नही हो पाता है; अतः मन्दों को भी स्पष्टप्रतिपत्तिपूर्वक पूर्व आदि का पूर्वनिपात के लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ है। अन्य आचार्य बहुल पद का यथोक्त अभिप्राय नहीं समझ कर बहुलवचन को अव्यापकत्व, अकृत्स्नत्व अर्थ मान कर आक्षेप करते हैं-**यद्यकृत्स्नमिति**। यदि पूर्वसूत्र में निर्दिष्ट बहुलग्रहण का अकृत्स्न अर्थ है तब उससे पूर्व आदि का ग्रहण नही हो सकेगा; अतः पूर्व आदि का समासविधान के लिए 'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्य–' इत्यादि का निर्देश करना पड रहा है। इस तरह बहुलवचन निष्प्रयोजन है।

एवं तर्हि न ब्रूमोऽकृत्स्नमिति, कृत्स्नं च कारकं च साधकं च निर्वर्त्तकं च। यच्चाऽनेन कृतं सुकृतं तत्। किमर्थं तर्ह्येव-माद्यनुक्रमणं क्रियते? उदाहरणभूस्त्वात्। ते खल्वपि विधयः सुपरि-गृहीता भवन्ति येषु लक्षणं प्रपञ्चश्च। केवलं लक्षणं केवलः प्रपञ्चो वा न तथा कारकं भवति। अवश्यं खल्वप्यस्माभिरिदं वक्तव्यम्-'बहुलम्' 'अन्यतरस्याम्' 'उभयथा' 'वा' 'एकेषा'मिति। सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्। तत्र नैकः पन्थाः शक्य आस्थातुम्। {पूर्वापर}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। अच्छा तो अब हम बहुलग्रहण को अकृत्स्न अर्थ का वाचक नहीं मान रहे हैं; अपि तु कृत्स्न अर्थ का वाचक मान रहे हैं। शङ्का करने वाले के सन्तोष के लिए कृत्स्न पद का पर्याय देते हैं–**कारकं चेति**। लौकिकशब्दों की युक्ति के द्वारा बहुलग्रहणघटित वचन की प्रशंसा के लिए कृत्स्न, कारक, साधक तथा निर्वर्तक इन चार पर्यायशब्दों का ग्रहण है। इन चार शब्दों से बहुल पद का चार अर्थ भी स्पष्ट है, ऐसा श्रीकैयट जी मानते हैं। वे चार अर्थ हैं—

'क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव'

अतः 'कृष्णसर्पः' में नित्यसमास, 'रामो जामदग्न्यः' में असमास, 'नीलमुत्पलं नीलोत्पल्' इत्यादि में विकल्पसमास, एवम्, 'सुसुक्ष्मजटकेशेन' इत्यादि में असमास का अभाव है। यहाँ श्रीकैयट जी सभी इष्टों का संग्राहक होने से कृत्स्न पद का अर्थ व्यापक बताते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं-**कारकमिति**। प्रवृत्ति आदि कारकता के द्वारा व्यापक है। प्रवर्त्तक होता हुआ भी विपर्यय के द्वारा नही करता है, इसे बताते हैं-**साधकमिति**। **साधक**=यथायोग्य कारक है। वर्जन के द्वारा किसी का प्रवर्त्तक 'नहीं है, इसे बताते हैं-**निर्वर्त्तकमिति**। अथ वा प्रत्याहर के द्वारा लक्ष्यसंस्कार का वर्णोपदेश की तरह परम्परा से साधक है, इस आशय से कहते हैं-**निर्वर्त्तकमिति**। **निर्वर्त्तक**=सर्वविषय का त्याग नही होने से साक्षात् प्रयोग का साधक है। **यच्चाऽनेनेति**। प्रकृतसूत्र से जो समास-विधान किया गया है, वह **सुकृतम्**=पूर्वनिपातनियम के लिए है।

आक्षेपभाष्य—**किमर्थमिति**। विशेषण का परिष्कार कर दिया जाये तो पूर्व आदि को पूर्वनिपातनियम हो जायेगा, फिर 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ के उत्तर में 'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्य–' सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**उदाहरणेति**। यहाँ 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' २.३.२५ से पञ्चमी है। 'पूर्वापर- प्रथमचरमजघन्य–' इस लक्षण का ही बहुत सारा उदाहरण है, इसे बताने के लिए 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ के उत्तर में प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। इस सूत्र के उपदेश से उन विधि का भी ग्रहण हो जाता है जिन विधियों में लक्षण भी है तथा परिगणनपूर्वक प्रपञ्च भी है। केवल लक्षण के द्वारा मन्दबुद्धि वाला विषय का विभाग करने में सक्षम नहीं होता है। एवं सामान्य-लक्षणरहित केवल प्रतिपद पाठ कर प्रपञ्चमात्र से शास्त्र का गौरवप्रसङ्ग होता है। 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ में बहुलग्रहण के द्वारा व्यवस्थितविभाषा का आश्रयण क्यों नहीं किया जाता है, इस पर कहते हैं-**अवश्यमिति**। इस व्याकरण-शास्त्र में वैदिकशब्दों का अनुसरण करने के लिए 'बहुलम्, अन्यतरस्याम्, उभयथा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वा, एकेषाम्' इन सभी शब्दों का निर्देश करना पडेगा। इसमें कारण देते हैं- **सर्ववेदेति**। 'परिषद इदं **पारिषदम्**'=साधारण, यहाँ 'पत्राध्वर्युपरिषदश्च' ४.३.१२३ से अञ् प्रत्यय है। यह पाणिनीयव्याकरण सर्ववेदसाधारण है; अत यहाँ मात्र कोई एक मार्ग 'बहुलम्, अथ वा अन्यतरस्याम्, ऐसा कह कर सभी शब्दों का साधुत्व नही बताया जा सकता है; अतः 'बहुलम्, अन्यतरस्याम्, उभयथा, वा, एकेषाम्' इन सभी शब्दों का निर्देश करना पडेगा। लौकिकशब्दों का संस्कार आनुसङ्गिक है; अतः वेदग्रहण किया है। {पूर्वापर}।

श्रेण्यादयः कृतादिभिः २.१.५९

श्रेण्यादयः पठ्यन्ते, कृतादिराकृतिगणः *श्रेण्यादिषु च्व्यर्थ-वचनम्* श्रेण्यादिषु च्व्यर्थग्रहणं कर्त्तव्यम्। अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृताः। यदा हि श्रेणय एव किञ्चित् क्रियन्ते तदा मा भूदिति।

'कृतैः' ऐसा बहुवचननिर्देश से ही गणपाठ अर्थ लब्ध होने पर आचार्य ने आदि पद का निर्देश किया है, उसका फल बताते हैं-**कृतादिराकृतिगण इति**। श्रेणि आदि गणपाठ किया है। कृत आदि को आकृतिगण मानना चाहिये। वार्तिक-**श्रेण्यादिष्विति**। श्रेणि आदि में च्विप्रत्ययार्थ का ग्रहण करना चाहिये। एकशिल्प का आश्रयण के द्वारा जीवों के सङ्घ को श्रेणि कहते हैं। उसमें जब एक शिल्प को पृथक् संस्थितों का श्रेणिकरण अर्थ होगा, तब समास होगा। जैसे 'अश्रेणयः श्रेणयः कृता इति श्रेणिकृताः'। परन्तु जब श्रेणिस्थों का ही तद्योगरूप करण अवरोध आदि अर्थ गम्य होगा तब समास नहीं होगा।

अन्यत्राऽयं च्व्यर्थग्रहणेषु च्व्यन्तस्य प्रतिषेधं शास्ति, तदिह न तथा। किं कारणम्? अन्यत्र पूर्वं च्व्यन्तकार्यं परं च्व्यर्थकार्यम्, इह पुनः पूर्वं च्व्यर्थकार्यं परं च्व्यन्तकार्यमिति। {श्रेणादयः}।

अन्य आचार्य-**अन्यत्राऽयमिति**। **अन्यत्र**='साक्षात्प्रभृतीनि च' १.४.७४ सूत्र में 'च्व्यर्थवचनम्' ऐसा कह कर च्व्यन्त का प्रतिषेध कहा है; प्रकृतसूत्र में च्व्यन्तवचन कहने के बाद वार्तिककार निषेधवचन क्यों पढते हैं?

समाधानभाष्य—**अन्यत्र पूर्वमिति**। 'साक्षत्कृत्य' में च्व्यन्तत्व होने पर नित्य-विकल्पित गतिसंज्ञाप्रसङ्ग में पर होने से विकल्प हो, इसके लिए 'साक्षात्प्रभृतीनि च' १.४.७४ सूत्र पर आचार्य च्व्यर्थवचन कह कर च्व्यन्तप्रतिषेध कह रहे हैं। इससे वहाँ पहले गतिसंज्ञा होती है। परन्तु श्रेणिकृताः' में पर होने से नित्य गति-समास होता है; अतः यहाँ च्व्यन्तप्रतिषेध की आवश्यकता नही है। {श्रेण्यादयः–}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्तेन नञ्विशिष्टेनाऽनञ् २.१.६०

*** नञ्विशिष्टे समानप्रकृतिग्रहणम् * नञ्विशिष्टे समानप्रकृतिग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूत्-सिद्धं चाऽभुक्तं चेति * अनञिति च * अनञिति च प्रतिषेधो वक्तव्यः। इह मा भूत्-कर्तव्यमकृतमिति * नुडिडधिकेन च * नुडिडधिकेन च समासो वक्तव्यः। इहापि यथा स्याद्अशिताऽनशितेन जिवति। क्लिष्टाऽक्लिशितेनेति।**

सूत्रार्थ—'नञ्विशिष्ट क्तान्त के साथ अनञ्क्तान्त का समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। कृतं च तदकृतं कृताऽकृतम्।

जब विशिष्टशब्द अवधारणरहित आधिक्य अर्थ में होगा तब अतिव्याप्ति प्राप्त होगी; अतः उसका परिहार के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं- **नञ्विशिष्ट इति**। नञ्विशिष्ट में समानप्रकृति का ग्रहण करना चाहिये। इससे जहाँ समानप्रकृतिक क्तान्त है वहाँ 'कृताऽकृतम्' में ही समास होगा। भिन्न-प्रकृतिक क्तान्त सिद्ध और अभुक्त का परस्पर समास नहीं होगा। यहाँ अर्थ और रूप इन दोनों के द्वारा समानत्व गृहीत है। इस पक्ष में गौरव भी है, इसे बताते हैं-**अनञिति चेति**। सूत्र में जो अनञ् पद पढा है, उसको निषेध-घटित बहुव्रीहिरूप क्तान्त विशेषण मानना चाहिये। इससे 'न विद्यते नञ् यस्मिन् पूर्वपदे तदनञ्' ऐसा अर्थ होगा। वह उपस्थितत्वमहिम्ना यहाँ क्तान्त ही लिया जायेगा। इससे 'कर्तव्यम् अकृतम्' इन दोनों पदों में प्रत्यय की प्रकृति कृ धातु के होने पर भी पूर्वपद अनञ् क्तान्त नहीं है; अतः यहाँ समानप्रकृतिक होने पर भी समास नहीं होता है। इस तरह क्तान्त पूर्वपदनिर्देश के लिए अनञ्ग्रहण अवश्य करना चाहिये। अवधारणसहित आधिक्यवचन में भी अव्याप्ति है, उसका परिहार के लिए कहते हैं-**नुडिडधिकेन चेति**। नुट् और इट् अधिक होने पर भी क्तान्तप्रृतिक का नञ्विशिष्ट क्तान्त के साथ भी समास कहना चाहिये। अश भोजने धा.पा.१५२४ धातु से क्त होने पर इडागम है। 'न अशितेन अनशितेन' में नञ्समास होने पर 'तस्मान्नुडचि' ६.३.७४ से नुडागम है। यहाँ इट् अधिक तथा नुट् अधिक होने पर उक्त समास अप्राप्त है। 'क्षिष्टाक्लिशितेन' में मात्र नञ्विशिष्ट क्तान्त में इट् अधिक है। इस तरह यहाँ उक्त सूत्र से समास प्राप्त नहीं होने पर प्रकृत वार्तिक का अवतार है। इससे 'अशितानशितेन' 'क्षिष्टाक्लिशितेन' में इट् और नुट् अधिक होने पर भी समास हो जाता है।

किमुच्यते-'समानप्रकृतिग्रहणं कर्तव्य'मिति, यदा नञ्विशिष्टेने-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्युच्यते, न चाऽत्र नञ्कृत एव विशेषः? किं तर्हि? प्रकृतिकृतोऽपि। अयं विशिष्टशब्दोऽस्त्येवाऽवधरणे वर्त्तते। तद्यथा-'देवदत्तयज्ञदत्तावाढ्यावभिरूपौ दर्शनीयौ पक्षवन्तौ। देवदत्तस्तु यज्ञदत्तात् स्वाध्यायेन विशिष्टः'। स्वाध्यायेनैवेति गम्यते। अन्ये गुणाः समा भवन्ति। अस्त्याधिक्ये वर्त्तते। तद्यथा-'देवदत्तयदत्तावाढ्यावभिरूपौ दर्शनीयौ पक्षवन्तौ। देवदत्तस्तु यज्ञदत्तात् स्वाध्यायेन विशिष्टः'। स्वाध्यायेनाऽधिकः। अन्ये गुणाः अविवक्षिता भवन्ति। तद्यथा तावदवधारणे विशिष्टशब्दस्तदा नैवाऽर्थः समानप्रकृतिग्रहणेन, नेह भविष्यति-सिद्धं चाऽभुक्तं चेति। नाऽप्यनञिति प्रतिषेधेन, नेह भविष्यति-कर्तव्यमकृतमिति। नुडिडधिकेनाऽपि तु समासो न प्राप्नोति। यदाधिक्ये विशिष्टशब्दस्तदा समानप्रकृतिग्रहणं कर्तव्यमिह मा भूत्-सिद्धं चाऽभुक्तं चेति। अनञिति च प्रतिषेधो वक्तव्यः। इह मा भूत्-कर्तव्यमकृतमिति। नुडिडधिकेनाऽपि तु समासः सिद्धो भवति। तत्राधिक्ये विशिष्टशब्दं मत्वा समानप्रकृतिग्रहणं कर्तव्यं चोद्यते।

अब भाष्यकार पूर्वोक्त तीनों वार्तिकों का खण्डन के लिए पक्ष उठाते हैं-**किमुच्यत इति**। 'सिद्धं चाभुक्तं च' इस विग्रह में समासनिषेध के लिए समानप्रकृति का ग्रहण किया है। एवम् 'कर्तव्यम् अकृतम्' में समासवारण के लिए नञ्रहित क्तान्त पूर्वपद कहा है; वस्तुतः यह दोनों अतिरिक्त वार्तिक नहीं पढा जाना चाहिये था। सूत्र से ही उक्त दोनों स्थलों में समास का वारण हो जायेगा। वह इस तरह कि आचार्य सूत्र में 'विशिष्ट' इस पद का निर्देश करते हैं। विशिष्टशब्द का अर्थ **अवधारण**=निश्चय भी होता है। जैसे किसी ने कहा–'देवदत्त और यज्ञदत्त दोनों सुन्दर, दर्शनीय और पक्षवान् हैं। परन्तु यज्ञदत्त की अपेक्षा देवदत्त स्वाध्याय से विशिष्ट है'। यहाँ स्वाध्याय से विशिष्ट कहने पर अन्य गुण अविवक्षित होने से 'स्वाध्याय से ही विशिष्ट है' ऐसा अर्थ होता है। इससे विशिष्ट पद का अवधारण अर्थ सिद्ध है। विशिष्ट शब्द का आधिक्य अर्थ भी होता है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। 'देवदत्त और यज्ञदत्त दोनों सुन्दर, दर्शनीय और पक्षवान् हैं'। परन्तु यज्ञदत्त की अपेक्षा देवदत्त स्वाध्याय से विशिष्ट है', ऐसा कहने पर अन्य सभी गुणों के समान होने पर भी 'यज्ञदत्त की अपेक्षा देवदत्त स्वाध्याय से अधिक है' ऐसा अर्थ होने पर विशिष्टशब्द का अर्थ अधिक भी है। इस तरह प्रकृत में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि विशिष्टशब्द को अवधारणार्थक माना जाये तब समानप्रकृतिग्रहण की आवश्यकता नहीं होगी। अवधारणार्थक विशिष्ट शब्द से ही समानप्रकृति का लाभ होने से भिन्नप्रकृतिक 'सिद्धं चाऽभुक्तं च' में समास नहीं होगा। एवम् अवधारणार्थक विशिष्टशब्द का ग्रहण होने से नञ्रहित क्तान्त में ही पूर्वपद का समास होगा, ऐसा अर्थ होगा। इससे नञ्रहित तव्यत्प्रत्ययान्त 'कर्तव्यम्' का 'अकृतम्' के साथ समास नहीं होगा। अन्य आचार्य-**नुडिडधिकेनापीति**। सूत्रस्थ विशिष्टशब्द को अवधारणार्थक मानने पर समानप्रकृतिग्रहण तथा अनञ्ग्रहण का प्रत्याख्यान होने पर भी तृतीयवार्तिक 'नुडिडधिकेन च' मानना चाहिये। अथ च यदि सूत्रस्थ विशिष्टशब्द को आधिक्य अर्थ का वाचक माना जाये तो 'सिद्धं चाभुक्तं च' में समासवारण के लिए समानप्रकृतिक ग्रहण भी करना होगा तथा 'कर्तव्यम् अकृतम्' में समासवारण के लिए अनञ्ग्रहण भी करना होगा। सूत्रस्थ विशिष्टशब्द को आधिक्य अर्थ का वाचक मानने पर नुट् और इट् के अधिक होने पर भी 'अशितानशितेन, क्लिष्टाक्लिशितेन' में भी सूत्र से ही समास सिद्ध हो जाने से अतिरिक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। वार्तिककार आधिक्य अर्थ में विशिष्टशब्द को मान रहे हैं; अतः 'नञ्विशिष्टे समानप्रकृतिग्रहणम्' तथा 'अनञिति च' यह दो वार्तिक पढते हैं। इसी अर्थ को श्लोकवार्तिक के रूप में संग्रह करते हैं—

अवधारणं नञा चेन्नुडिडविशिष्टेन न प्रकल्पेत।
अथ चेदधिकविवक्षा, कार्यं तुल्यप्रकृतिकेनेति।।

अवधारणं नञेति। यदि सूत्रस्थ विशिष्ट शब्द को अवधारणार्थक मानेंगे तो समानप्रकृति और अनञ् के गतार्थ होने पर भी नुट् और इट् अधिक होने से समास प्राप्त नहीं होगा। यदि विशिष्ट शब्द का आधिक्य अर्थ मानेंगे तो नुट् और इट् अधिक होने पर सूत्र के द्वारा समास सिद्ध होने पर भी समानप्रकृति और अनञ् में समास प्राप्त नहीं हो पा रहा है; अतः इसके लिए पूर्वोक्त दोनों वार्तिक अवश्य पढना होगा।

* कृताऽपकृतादीनां चोपसंख्यानम् * **कृताऽपकृतादीनां चोपसंख्यानं कर्तव्यम्। कृताऽपकृतम्। भुक्तविभुक्तम्। पीतविपीतम्** * सिद्धं तु क्तेन विसमाप्तावनञ् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'क्तेन विसमाप्तावनञ्'। क्तान्तेन क्रियाविसमाप्तावनञ्क्तान्तं समस्यत इति वक्तव्यम्** * गतप्रत्यागतादीनां चोपसंख्यानम् * **गतप्रत्यागतादीनां चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। गतप्रत्यागतम्। यातानुयातम्। पुटापुटिका। क्रयाक्रयिका।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फलाफलिका। मानोन्मानिका। {क्तेन नञ्}।

वार्तिक—**कृताऽपकृतादीनामिति**। कृताऽपकृत आदि का भी समास कहना चाहिये। 'कृतं चापकृतं चेति कृतापकृतम्। भुक्तं च विभुक्तं च भुक्तविभुक्तम्। पीतं च विपीतं चेति पीतविपीतम्'। भाष्यकार अव्याप्ति और अतिव्याप्तिपरिहार के लिए अन्य न्यास कहते हैं-**सिद्धं त्विति**। 'कृताकृतम्' यहाँ पर एकदेश में करण और अकरण के द्वारा करण की **विसमाप्ति**=असमाप्ति गम्य है, अतः समास होता है। वही अर्थ 'कृतापकृतम्' में 'जो किया गया वही विरूप किया गया' यह अर्थबोध होने से सूत्र से ही समास सिद्ध हो जायेगा। इसी तरह 'भुक्तविभुक्तम्' इस पद से 'जो खाया गया वह विरूप ही खाया गया, अथ वा अभुक्त' ऐसा अर्थबोध होने से सूत्र से ही समास हो जायेगा। एवं 'पीतविपीतम्' में भी इसी तरह अर्थ करना चाहिये। यहाँ उभयत्र 'वि'शब्द निषेधवाची है। 'सिद्धमभुक्तम्, कर्तव्यमकृतम्' में निषेधमात्र का बोध है। यहाँ 'वि' पद के द्वारा समाप्ति अर्थ का बोध नहीं है; अतः समास नहीं है। वार्तिक-**गतप्रत्यागतादीनामिति**। गतप्रत्यागत आदि का भी समास कहना चाहिये। 'गतं प्रत्यागतं चेति गतप्रत्यागतम्। यातं चानुयातं चेति यातानुयातम्। पुटा च पुटिका चेति पुटापुटिका। क्रयश्च क्रयिका चेति क्रयाक्रयिका। फलञ्च फलिका चेति फलाफलिका। मानं चोन्मानिका च मानोन्मानिका'। 'क्रयिका' में अल्पार्थक 'क'प्रत्यय है। स्वभाववश तदन्त स्त्रीलिङ्ग है। 'क्रयाक्रयिका' में 'अन्येषामपि दृश्यते' ६.३. १३७ से दीर्घ है। {क्तेन}।

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः २.१.६७

*** अयुक्तोऽयं निर्देशः * समानाधिकरणेनेति वर्त्तते, कः प्रसङ्गो यद् व्यधिकरणानां समासः स्यात्? एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यो- 'यथाजातीयकमुत्तरपदं तथाजातीयकेन पूर्वपदेन समासो भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवती'त्येषा परिभाषा न कर्तव्या भवति।** {युवा खलति}।

'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ से 'समानाधिकरणेन' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'समानाधिकरण खलति, पलित, वलिन और जरती शब्द के साथ युवन् शब्द का समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ से समास सिद्ध होने पर पूर्वनिपात-नियमार्थ सूत्र का आरम्भ है। युवा खलतिर्युवखलतिः। युवपलितः। युववलिनः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक—**अयुक्तोऽमिति**। समानाधिकरण का अनुवर्त्तन हो रहा है। प्रकृतसूत्र में युवा यह पुल्लिङ्गनिर्देश है तथा जरती यह स्त्रीलिङ्गनिर्देश है। पुल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग का सामानाधिकरण्य सम्भव नहीं होने से युवा पुल्लिङ्ग और जरती स्त्रीलिङ्ग का समास असम्भव है। व्यधिकरणों का समास यहाँ किसी से भी प्राप्त नहीं है; अत प्रकृतसूत्र में पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग का निर्देश कर समासविधान व्यर्थ है। ज्ञापनवादी-**एवं तर्हीति**। पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग का एक साथ निर्देश कर आचार्य ज्ञापन करते हैं कि 'उत्तरपद जिस तरह का होगा पूर्वपद भी उसी तरह का होगा। उत्तरपद 'जरती' स्त्रीलिङ्ग में होगा तो पूर्वपद को भी 'युवतिः' ऐसा स्त्रीलिङ्ग में निर्देश कर विग्रह करना चाहिये। इससे 'युवतिः जरती युवजरती' ऐसा भी समास होगा। उत्तरपद 'खलतिः' को 'खलती' ऐसा स्त्रीलिङ्गनिर्देश करने पर पूर्वपद भी 'युवतिः' ऐसा निर्दिष्ट होकर समस्त होगा।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**किमेतस्येति**। 'यथाजातीयकमुत्तरपदं तथाजातीयकेन पूर्वपदेन समासो भवति' इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरभाष्य—**प्रातिपदिकग्रहण इति**। 'प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गबोधक-प्रत्ययविशिष्ट का भी ग्रहण होता है' यह अतिरिक्त परिभाषा नहीं करनी पडती है। यह अर्थ सूत्र से ही गतार्थ हो जाता है। {युवा–}।

वर्णो वर्णेन २.१.६८

इदं विचार्यते-वर्णेन तृतीयासमासो वा स्यात्-कृष्णेन सारङ्गः कृष्णसारङ्ग इति, समानाधिकरणेन वा,-कृष्णः सारङ्गः कृष्णसारङ्ग इति? कश्चात्र विशेषः? * वर्णेन तृतीयासमास एतप्रतिषेधे वर्णग्रहणम् * **वर्णेन तृतीयासमासे एतप्रतिषेधे वर्णग्रहणं कर्तव्यम्। तृतीयापूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। 'अनेते वर्णः' इति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-हिमेन एतः हिमैतः।**

'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' २.१.४९ से 'समानाधिकरणेन' पद की अनुवृत्ति है। यहाँ उभयत्र वर्ण पद से अर्थ विवक्षित है, स्वरूप नहीं। सूत्रार्थ-'समानाधिकरण वर्णवाची के साथ वर्णवाची का समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। कृष्णश्चासौ सारङ्गः कृष्णसारङ्गः। **सारङ्ग**=चित्रवर्णवान्। कृष्णशब्द कृष्णावयवक में लाक्षणिक है; अतः यहाँ सामानाधिकरण्य है।

विचारभाष्य—**इदमिति**। यहाँ यह विचार करना चाहिये कि 'कृष्णेन सारङ्गः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृष्णसारङ्गः' ऐसा तृतीयासमास है, अथ वा 'कृष्णश्चासौ सारङ्गः कृष्णसारङ्गः' यह समानाधिकरणों का समास है? यहाँ 'कृष्णेन' में हेतुतृतीया है। 'वर्णेन तृतीयासमासो वा स्यात्' इस भाष्य से यह विचार किया जा रहा है कि 'वर्णो वर्णेन' यह सूत्र 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० के अनन्तर करके 'कृष्णसारङ्गः' में तृतीयासमास किया जाये, अथ वा इसी प्रदेश में यथास्थिति रख कर 'कृष्णसारङ्गः' में समानाधिकरणसमास किया जाये? 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० इस प्रकरण में 'कृष्णेन सारङ्गः कृष्णसारङ्गः' में तत्कृतत्व-रूप से ही 'शङ्कुलाखण्डः' की तरह समास न हो इसके लिए 'कृष्णेन' में हेतुतृतीया माननी चाहिये। हेतुतृतीयान्त में 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० की प्रवृत्ति नहीं होती है। प्रत्यक्षवाची सर्वनाम के द्वारा बौद्धपदार्थ का परामर्श होता है। इस प्रदेश में सूत्र का प्रत्याख्यान नहीं होता है। बाद में प्रत्याख्यान हो जायेगा। यहाँ 'कृष्णसारङ्गः' में सारङ्गशब्द शबलपर्याय है तथा वह गुणोपसर्जनद्रव्यवाचक होने से गुणवचन होता है। सारङ्गत्व का अभाव होने पर कृष्णकृतत्व भी नहीं रहेगा; अतः 'सारङ्गत्व का कृष्णकृतत्व है' ऐसा मानना चाहिये। इस स्थिति में 'शङ्कुलाखण्डः' की तरह तत्कृतार्थ होने से ही समास सिद्ध है। यदि कृष्णावयव होने से सारङ्गवृत्ति कृष्णशब्द है तब समानाधिकरणसमास होगा। वह बहुलवचनसामर्थ्य से गौणसामानाधिकरण्य में भी 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ से समास हो जायेगा। जिज्ञासु आचार्य-**कश्चात्रेति**। यहाँ किस पक्ष में लाघव है?, 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० के अनन्तर प्रकृतसूत्र का पाठ करने के पक्ष में, अथ वा सूत्र का यथाप्रदेश में रहने देने के पक्ष में लाघव है? अन्य आचार्य- **वर्णेनेति**। 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० सूत्र के अनन्तर 'वर्णो वर्णेन' का पाठ करने पर 'वर्णो वर्णेष्वनेते' ६.२.३ इस एतप्रतिषेधपूर्वक स्वर विधीयमान होने पर 'कृष्णसारङ्गः' इत्यादि में 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ से पूर्वपदप्रकृतिस्वर सिद्ध होने पर अतिव्याप्तिवारण के लिए 'अनेते वर्णः' ऐसा सूत्र करना चाहिये। इसका 'एत उत्तरपद रहते वर्णवाची पूर्वपद प्रकृतिस्वर नहीं होता है' यह अर्थ होगा। इससे 'कृष्णैतः' में 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा समासान्तोदात्त स्वर ही होता है। 'कृष्णेन' में सह के योग में तृतीया है, अथ वा 'इत्थंभूतलक्षणे' २.३.२१ की तृतीया है तथा 'वर्णो वर्णेन' से समास है। वर्णग्रहणसामर्थ्य से 'हिमेन एतः हिमैतः' में पूर्वपद हिम के वर्णवाची नहीं होने से निषेध प्राप्त नहीं हो सकेगा; अतः पूर्वपदप्रकृतिस्वर ही होगा। 'हिमेन' यह हेतु अर्थ में तृतीया है तथा 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० सूत्र से समास है। उणादि के अव्युत्पन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से अथ वा हिम शब्द के कारकभिन्न होने से 'गतिकारकोपदात् कृत्' ६.२.१३९ के द्वारा यहाँ कृत्स्वर भी नहीं होगा।

अथ द्वितीयेन वर्णग्रहणेनैतविशेषणेनार्थः? बाढमर्थो यद्यवर्ण एतशब्दोऽस्ति। ननु चाऽमस्ति-आ इतः एतः, कृष्णेन एतः कृष्णेतो लोहितेत इति। नाऽर्थ एवमर्थेन वर्णग्रहणेन। यदि तावदयं कर्मणि क्तः, 'तृतीया कर्मणी'त्यनेन स्वरेण भवितव्यम्। अथापि कर्तरि, परत्वात् कृत्स्वरेण भवितव्यम्। अथ समानाधिकरणः * समानाधिकरणे द्विर्वर्णग्रहणम् * समानाधिकरणे द्विर्वर्णग्रहणं कर्तव्यम्। 'वर्णो वर्णेष्वनेत' इति वक्तव्यम्। एकं वर्णग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूत्-परमशुक्लः परमकृष्ण इति। द्वितीयं वर्णग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूत्-कृष्णतिला इति।

इतर आचार्य—**अथ द्वितीयेनेति**। यहाँ द्वितीय पद के द्वारा 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ सूत्रघटक तृतीया पद की अपेक्षा द्वितीय सप्तमी पद विवक्षित है; अतः यदि **द्वितीये**=सप्तम्यन्त का निर्देश कर 'नैते वर्णो वर्णे' ऐसा सूत्रपाठ करेंगे तो 'एत' इस विशेषण का कोई प्रयोजन नहीं है। अथ वा 'अनेते' ६.२.३ इस पद को असमर्थसमास होने से कोई क्षति नहीं है। अन्य आचार्य-**बाढमर्थ इति**। यदि **अवर्ण**=वर्णवाचक से भिन्न 'एत' पद है तब 'अनेते' ६.२.३ इस प्रतिषेधवचन की कोई आवश्यकता नहीं है। इतर आचार्य दूसरे का अभिप्राय नहीं समझ कर सत्ताप्रतिपादन के लिए कहते हैं-**ननु चेति**। इण् गतौ धा.पा.१०४५ धातु से कर्म अथ वा कर्ता में क्त प्रत्यय हो कर 'इतः' रूप है। आङ् के साथ पूर्व-पर के स्थान में गुण-एकादेश होकर 'एतः' रूप है। इस तरह इस विग्रह में एत शब्द वर्णवाची नहीं है। 'कृष्णेन एतः, लोहितेन एतः' इस विग्रह में समास करके 'अन्तादिवच्च' ६.१.८५ इससे परादिवद्भाव के द्वारा 'ओमाङोश्च' ६.१.९६ से पूर्वपर के स्थान में पररूप-एकादेश होकर 'कृष्णेतः, लोहितेतः' रूप है। यहाँ 'एत' पद वर्णवाची नहीं है; अतः 'वर्णो वर्णेष्वनेते' ६.२.३ सूत्र के अनन्तर वर्णग्रहण कर 'अनेते वर्णः' ऐसा सूत्र में वर्णग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ इण् गतौ धा.पा.१०४५ धातु से कर्म में क्त प्रत्यय करेंगे तो 'कृष्णेतः, लोहितेतः' में 'तृतीया कर्मणि' ६.२.४८ के द्वारा कर्मवाचक क्तान्त पर रहते तृतीयान्त को पूर्वपदप्रकृतिस्वर होगा। अथ च यदि गत्यर्थक इण् धातु से पर में 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ के द्वारा कर्ता में क्त प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करेंगे तब पर होने से 'गतिकारकोपपदात् कृत्' ६.२.१३९ से कृत्स्वर होना चाहिये। कर्म में प्रत्यय करने पर 'अनेते' यह प्रतिषेध व्यवधानशून्य होने से अथ वा मध्येऽपवादन्याय से 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ का ही बाधक होगा। कर्ता में प्रत्यय करने पर '**कृष्णेन**=अश्वादिना करणेन **एतः**=आगतः इति कृष्णेतः' {इसी तरह 'लोहितेतः' में भी} यहाँ पर 'अनेते' ६.२.३ यह निषेध पूर्वपदप्रकृतिस्वर का ही बाधक होगा; अथ वा कृत्स्वर बाधक होगा, यह विचार करने पर पर होने से कृत्स्वर ही बाधक होगा, पूर्वपदप्रकृतिस्वर नहीं। इस तरह यहाँ एतविशेषण के लिए प्रयुक्त वर्णग्रहण नहीं करना चाहिये। वस्तुतः यहाँ पर कृत्स्वर का भी बाध कर थाथादि स्वर होना चाहिये था, परन्तु कोई भेद नहीं होने से भाष्यकार ने इसे नहीं कहा है। यदि 'कृष्णाश्च ते तिलाः कृष्णतिलाः' ऐसा समानाधिकरण में विग्रह करेंगे तब यहाँ स्वरविधान के लिए 'वर्णो वर्णेष्वनेते' ६.२.३ ऐसा दो वर्णग्रहण करना होगा। प्रथम वर्णग्रहण करने से 'परमशुक्लः, परमकृष्णः' में वर्णवाची शुक्ल अथ वा कृष्ण पर रहते गुणवचन नहीं होने से परम पद को प्रकृतिस्वर नहीं होता है; अतः प्रथम वर्णग्रहण करना चाहिये। द्वितीय वर्णग्रहण करने से द्रव्यवाचक तिल शब्द पर रहते पूर्वपद गुणवचन कृष्ण पद को पूर्वपदप्रकृतिस्वर की आपत्ति नहीं होती है।

एकं वर्णग्रहणमनर्थकम्। अवर्णस्य वर्णे वर्णस्य वाऽवर्णे। अन्यतरत्र कस्मान्न भवति? 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवे'ति। एवं सति तान्येतानि त्रीणि वर्णग्रहणानि भवन्ति-समासविधौ द्वे, स्वरविधौ चैकम्। यस्यापि तृतीयासमासस्तस्यापि तान्येव त्रीणि वर्णग्रहणानि भवन्ति। समासविधौ द्वे, स्वरविधौ चैकम्। सामान्येन मम तृतीयासमासो भविष्यति 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेने'ति। अवश्यं वर्णेन प्रतिपदं समासो वक्तव्यो यत्र तेन न सिध्यति तदर्थम्। क्व च तेन न सिध्यति? शुकबभ्रुः हरितबभ्रुरिति। तथा च सति तान्येतानि त्रीणि वर्णग्रहणानि भवन्ति-समासविधौ द्वे, स्वरविधौ चैकम्। अथेदानीं समानाधिकरणः सामान्येन सिद्धः स्यात्? बाढं सिद्धम्। कथम्? 'विशेष्यं विशेष्येण बहुल'मिति। एवमपि द्वे वर्णग्रहणे कर्तव्ये, स्वरविधावेव, प्रतिपदोक्तस्याऽभावात्। तस्मात् समानाधिकरण इत्येव पक्षो ज्यायान्।

अब एकदेशी आचार्य प्रकृतसूत्र का सत्ता-आश्रयण से प्रतिपदोक्त परिभाषा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के द्वारा सिद्धि मान कर एक वर्णग्रहण के नहीं करने पर भी दोनों पक्षों का साम्य दिखाते हैं-**एकं वर्णग्रहणमिति**। 'वर्णो वर्णेष्वनेते' ६.२.३ सूत्र में एक वर्णग्रहण अनर्थक है।

अन्य आचार्य का प्रश्नभाष्य—**अन्यतरत्रेति**। यदि एक ही वर्णग्रहण करेंगे तो 'परमशुक्लः, परमकृष्णः' में वर्ण पर रहते अवर्ण परम पद को तथा 'कृष्णतिलाः' में अवर्णवाची तिलशब्द पर रहते वर्णवाची कृष्ण पद को पूर्वपदप्रकृतिस्वर क्यों नहीं होता है? एकदेशी आचार्य अपना पक्ष स्पष्ट करे हैं-**लक्षणेति**। लक्षण और प्रतिपदोक्त में प्रतिपदोक्त का ही ग्रहण होता है। 'परमशुक्लः, परमकृष्णः, कृष्णतिलाः' में गुणवाची शुक्ल, कृष्ण पद से पर में विहित मतुप् प्रत्यय का 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः' वा.१.४.३९ से मतुप् का लुक् है; अतः यहाँ शुक्ल और कृष्ण पद लाक्षणिक हो गया। इस तरह यहाँ वर्ण पर रहते अवर्ण को 'परमशुक्लः, परमकृष्णः' में अवर्ण पर रहते वर्ण को 'कृष्णतिलाः' में पूर्वपदप्रकृतिस्वर नही होगा। इस तरह 'वर्णो वर्णेन' इस सूत्र से विहित जो समास, वही स्वरविधि में लिया जायेगा। इससे द्वितीय वर्णग्रहण नहीं होने पर भी कही पर कोई अतिव्याप्ति नहीं हो रही है। इस तरह समासविधि में दो तथा स्वरविधि में एक वर्ण पद का निर्देश करने से कुल तीन वर्णग्रहण करने पडते हैं। यह प्रकृत देश में 'वर्णो वर्णेन' इस सूत्र से आता है। जिनके मत में 'वर्णो वर्णेन' सूत्र को 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० सूत्र के अनन्तर पढा जायेगा उनके मत में भी तीन ही वर्णग्रहण करने पडते हैं। समासविधि में मात्र 'वर्णेन' इस एक पद का ही निर्देश होगा। पूर्वसूत्र से तृतीया पद की अनुवृत्ति होगी। अर्थ होगा-'वर्णवाची के साथ तृतीयान्त का समास हो'। स्वरविधि में दो वर्णग्रहण करने से उन के मत में भी तीन वर्णग्रहण करना पडता है। इस तरह 'वर्णो वर्णेन' सूत्र का 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० के उत्तर में पाठ करने पर भी तीन वर्ण पद का तथा प्रकृतप्रदेश पाठ करने पर भी तीन वर्ण पद का निर्देश होने से गौरवलाघवचर्चा समान है। एकदेशी आचार्य स्वमत का पोषण करने के लिए कहते हैं-**अवश्यमिति**। जहाँ 'शुक्लबभ्रुः, हरितबभ्रुः' में 'शुक्लश्चासौ बभ्रुः, हरितश्चासौ बभ्रुः' ऐसा दोनों प्रथमान्त विग्रह ही होगा, वहाँ तृतीयान्त नहीं होने से वर्णवाची पद के साथ समासविधि में मात्र एक ही वर्णपदनिर्देशपक्ष में समास प्राप्त नहीं हो सकेगा। परन्तु समासविधि में दो वर्णग्रहणपक्ष में 'शुक्लबभ्रुः, हरितबभ्रुः' में भी समास हो जाता है। इस तरह समासविधि में दो तथा स्वरविधि में एक ही वर्णग्रहण होता है। **बभ्रु**=चितकबरा रङ्ग।

प्रश्नभाष्य—**अथेदानीमिति**। यदि वर्णवाची दोनों पदों का सामानाधिकरण्यरूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से विग्रह करते है तब क्या सामान्यसूत्र से 'कृष्णसारङ्गः' इत्यादि में समास हो जाता है?

उत्तरभाष्य—**बाढमिति**। समानाधिकरणरूप से विग्रह करने पर सामान्यशास्त्र 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ से समास हो जायेगा। वर्णवाची का प्रतिपदोक्त समास नहीं होने से स्वरविधि में दो वर्ण शब्द का निर्देश कर 'वर्णो वर्णेष्वनेते' ६.२.३ ऐसा सूत्र करना चाहिये। इससे स्वर में भी कोई दोष नहीं आयेगा; अतः समानाधिकरणसमास मानना चाहिये, यही पक्ष उचित है तथा 'वर्णो वर्णेन' यह सूत्र पढने की आवश्यकता नही है। इससे लाघव होता है।

* समानाधिकरणाधिकारे प्रधानोपसर्जनानां परं परं विप्रतिषेधेन *

समानाधिकरणाधिकारे प्रधानोपसर्जनानां परं परं भवति विप्रतिषेधेन। प्रधानानां प्रधानम्। उपसर्जनानामुपसर्जनम्। प्रधानानां तावत्प्रधानं-'वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमान'मित्यस्याऽवकाशः- गोवृन्दारकः, अश्ववृन्दारकः। पोटायुवतीनामवकाशः-इभ्ययुवतिः आढ्ययुवतिः। इहोभयं प्राप्नोतिनागयुवतिः वृन्दारकयुवतिः। प्रधानानां प्रधानं भवति विप्रतिषेधेन। उपसर्जनानां परमुपसर्जनम्। 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टा' इत्यस्याऽवकाशः-सद्गवः सदश्वः। 'कृत्यतुल्याख्या अजात्या' इत्यस्याऽवकाशः-तुल्यश्वेतः तुल्यकृष्णः। इहोभयं प्राप्नोति-तुल्यसन्, तुल्यमहान्। उपसर्जनानां परमुपसर्जनं भवति विप्रतिषेधेन।

विप्रतिषेधवादी आचार्य—**समानेति**। 'समानाधिकरणे' २.१.३० के अधिकार में दो प्रधानों की एकत्र प्राप्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा पर को विधि कहना चाहिये। एवं दो उपसर्जनों की एकत्र प्राप्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा पर को विधि कहना चाहिये। यहाँ प्रधानग्रहण से समासशास्त्र में तृतीयान्त पद गृहीत है तथा उपसर्जन पद से समासशास्त्र में प्रथमानिर्दिष्ट पद कहा जा रहा है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**गोवृन्दारक इति**। 'गोवृन्दारकः, अश्ववृन्दारकः' में 'वृन्दारकनागुञ्जरैः पूज्यमानम्' २.१.६२ चरितार्थ है तथा 'इभ्ययुवतिः, आढ्ययुवतिः' में 'पोटायुवति- स्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूतैर्जातिः' २.१.६५ चरितार्थ है। 'नागयुवतिः, वृन्दारकयुवतिः' में उक्त दोनों सूत्रों की एक साथ प्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'पोटायुवति–' २.१.६५ की प्रवृत्ति होती है। 'सद्गवः, सदश्वः' में 'सन्मतपरमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' २.१.६१ चरितार्थ है तथा 'तुल्यश्वेतः, तुल्यकृष्णः' में 'कृत्यतुल्याख्या अजात्या' २.१.६८ का उपसर्जन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संज्ञाप्रयुक्त प्रथमानिर्दिष्ट का पूर्वनिपात चरितार्थ है। 'तुल्यसन्, तुल्यमहान्' में उक्त दोनों सूत्रों की सह प्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'कृत्यतुल्याख्या अजात्या' २.१.६८ की प्रवृत्ति होती है तथा तुल्य पद की उपसर्जनसंज्ञा एवं पूर्वनिपात होता है।

* समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहिः * **समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहिर्भवति विप्रतिषेधेन। समानाधिकरणसमासस्याऽवकाशः-वीरः पुरुषो वीरपुरुषः। बहुव्रीहेरवकाशः-कण्ठेकालः। इहोभयं प्राप्नोति-वीरपुरुषको ग्रामः। बहुव्रीहिर्भवति विप्रतिषेधेन** * कदाचित् कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थः * **कदाचित् कर्मधारयो भवति बहुव्रीहेः। किं प्रयोजनम्? 'सर्वधनाद्यर्थः'। सर्वधनी। सर्वबीजी। सर्वकेशी नटः। गौरखरवदरण्यम्। कृष्णसर्पवान् वल्मीकः। लोहितशालिमान् ग्रामः। किं प्रयोजनम्? कर्मधारयप्रकृतिभिर्मत्वर्थीयैरभिधानं यथा स्यात्। किं च कारणं न स्यात्? 'बहुव्रीहिणोक्तत्वान् मत्वर्थस्य'। यद्युक्तत्वं हेतुः कर्मधारयेणाऽप्युक्तत्वान् न प्राप्नोति। न खल्वपि संज्ञाश्रयो मत्वर्थीयः। किं तर्हि? अर्थाश्रयः। स यथैव बहुव्रीहिणोक्तत्वान्न भवत्येवं कर्मधारयेणोक्तत्वान्न भविष्यति।**

समानाधिकरणसमासादिति। परविप्रतिषेध के द्वारा बहुव्रीहि से समानाधिकरणसमास का बाध कहना चाहिये। 'वीरः पुरुषः वीरपुरुषः' में 'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च' २.१.५८ से समानाधिकरणसमास चरितार्थ है। 'कण्ठे कालो यस्य स कण्ठेकालः' में 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ से बहुव्रीहि चरितार्थ है। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' २.२.३५ से बहुव्रीहि में सप्तम्यन्तों का पूर्वनिपातविधान होने से ज्ञापन के द्वारा व्यधिकरणों का भी बहुव्रीहि होता है; अतः 'कण्ठेकालः' ऐसा उदाहरण दिया है। 'वीरः पुरुषो यस्मिन् ग्रामे' इस विग्रह में समानाधिकरण तथा बहुव्रीहि यह दोनों समास प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा बहुव्रीहि ही होता है। यहाँ बहुव्रीहिसंज्ञा होने पर 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर तथा 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से पक्ष में समासान्त कप् प्रत्यय होता है। बहुव्रीहिसंज्ञा में शेषग्रहण का प्रत्याख्यान कर देने पर विप्रतिषेध चिन्त्य होगा। **कदाचित् कर्मधारय इति**। सर्वधन आदि की सिद्धि के लिए कभी पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा कर्मधारय से बहुव्रीहि का भी बाध कहना चाहिये। 'सर्वाणि धनानि अस्य, सर्वाणि बीजानि अस्य, सर्वे केशा अस्य' इस अर्थविवक्षा में कर्मधारय करने पर 'अत इनिठनौ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५.१.११५ से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय है। 'गौरः खरो यस्मिन्, गौरो मृगो यस्मिन्, कृष्णः सर्पो यस्मिन्, लोहितः शलिर्यस्मिन्' इस अर्थविवक्ष में कर्मधारय करने पर 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ से मतुप् प्रत्यय है।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। यहाँ कर्मधारय से बहुव्रीहि का बाध करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**कर्मधारयेति**। कर्मधारयप्रकृति से विहित मत्वर्थीय से अर्थ उक्त हो, एतदर्थ कर्मधारय से बहुव्रीहि का बाध कहा जा रहा है।

प्रश्नभाष्य—**किं चेति**। यदि सर्वधन आदि में बहुव्रीहि करेंगे तो बहुव्रीहिप्रकृति से मत्वर्थीयप्रत्यय क्यों नहीं होगा?

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहिणेति**। बहुव्रीहि से मत्वर्थीय उक्त होने पर बहुव्रीहिप्रकृति से मत्वर्थीयप्रत्यय उत्पन्न नहीं हो सकेगा। आक्षेपक-**यद्युक्तत्वमिति**। यदि बहुव्रीहि से मत्वर्थीय उक्त होने पर बहुव्रीहि से 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय के द्वारा मत्वर्थीय प्रत्यय का अभाव कहेंगे तो उक्त विग्रह में कर्मधारय से भी मत्वर्थीय उक्त होगा; अतः कर्मधारयप्रकृति से मत्वर्थीयप्रत्यय भी 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से ही नहीं होना चाहिये। 'अन्यपदार्थ- प्रधानो बहुव्रीहिः' इस लक्षण में अव्याप्ति तथा अतिव्याप्तिवारण के लिए 'प्रायेण' पद का निर्देश है; अतः अन्यपदार्थ प्रधान होने पर भी कर्मधारय प्राप्त होगा, यह आक्षेपक का अभिप्राय है। आक्षेपक अपने पक्ष की पुष्टि में अन्य भी हेतु देते हैं-**न खल्वपीति**। यहाँ सर्वधनी आदि में मत्वर्थीयप्रत्यय होने में बहुव्रीहि आदि संज्ञा कारण नहीं है, अपि तु मत्वर्थीय-प्रत्यय अर्थाश्रय है। उक्त विग्रह में चाहे कर्मधारय करें, अथ वा बहुव्रीहि करें, दोनों ही से मत्वर्थीय उक्त हो रहा है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से कर्मधारय होने पर भी मत्वर्थीय नहीं हो सकेगा।

एवं तर्हीदं स्यात्-सर्वाणि धनानि-सर्वधनानि, सर्वधनान्यस्य सन्ति-सर्वधनीति। नैवं शक्यम्। नित्यमेवं सति कर्मधारयः स्यात्तत्र यदुक्तं-'कदाचित् कर्मधारय' इति, एतदयुक्तम्। एवं तर्हि भवति वै किञ्चिदाचार्याः कार्यवद् बुद्धिं कृत्वा पठन्ति-'कार्याः शब्दा' इति, तद्वदिदं पठितं-'समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहिः कर्तव्यः, कदाचित् कर्मधारयः, सर्वधनाद्यर्थ' इति। यदुच्यते'समाना-धिकरणसमासाद् बहुव्रीहिर्भवति विप्रतिषेधेने'ति। नैष युक्तो विप्रतिषेधः। अन्तरङ्गः कर्मधारयः। काऽन्तरङ्गता? स्वपदार्थे कर्म-धारयोऽन्यपदार्थे बहुव्रीहिः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीदमिति**। यदि 'सर्वाणि धनानि अस्य' इस तरह का विग्रह कर कर्मधारय करने में दोष है तो 'सर्वाणि धनानि' ऐसा विग्रह कर 'सर्वधनानि' ऐसा समास करेंगे। पुनः 'सर्वधनानि अस्य सन्ति' इस विग्रह में सर्वधन प्रातिपदिक से मत्वर्थीय इनि आदि प्रत्यय होंगे।

खण्डनभाष्य—**नैवं शक्यमिति**। 'सर्वाणि धनानि' ऐसा विग्रह करने पर ही यदि **नित्यम्**=सर्वत्र कर्मधारय होता तो वार्तिककार 'कदाचित् कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थः' में 'कदाचित्' पद का निर्देश नही करते। आचार्य यहाँ 'कदाचित्' पद का प्रयोग करते हैं; इसका अर्थ यह है कि 'कभी अन्यपदार्थ प्रधान होने पर भी कर्मधारय होता है'; अतः अन्यपदार्थ प्रधान होने की दशा में ही बहुव्रीहि और कर्मधारय दोनों प्राप्त होने की दशा में ही कर्मधारय से बहुव्रीहि का बाध होगा। यदि 'सर्वाणि धनानि' ऐसा विग्रह किया जाये तो इसमें बहुव्रीहि के प्राप्त नही होने से कर्मधारय के साथ उसका बाध्यबाधकभाव नही हो सकेगा। अब मत्वर्थीयोत्पत्ति को अन्य प्रकार से बताते हैं-**एवं तर्हि भवतीति**। यहाँ इस वाक्य में 'पठि' क्रिया 'भवति' क्रिया की कर्त्री है; अतः 'पठितं भवति' ऐसा अन्वय करना चाहिये। '**शब्द कार्य**'=अनित्य है' इस पक्ष में लक्षण से ही शब्दों की अर्थव्यवस्था होगी। इसके बाद अन्यपदार्थ में बहुव्रीहि का विधान होने पर उसी का बोध होगा, कर्मधारय का नहीं। 'सर्वाणि धनानि अस्य' इस अर्थविवक्षा में पूर्वप्रतिषेध के द्वारा बहुव्रीहि का बाध कर कर्मधारय करने पर अन्यपदार्थरूप अर्थ का बोध नही होने से अन्यपदार्थरूप मत्वर्थीय का बोध कराने के लिए मत्वर्थीय प्रत्यय होता है; अतः यहाँ वार्तिक का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये-कभी परविप्रतिषेध के द्वारा **समानाधिकरणसमासाद्**=कर्मधारय का बाध कर बहुव्रीहि करना चाहिये। परन्तु सर्वधनी आदि की सिद्धि के लिए कभी पूर्वविप्रतिषेध का आश्रयण कर कर्मधारय से बहुव्रीहि का भी बाध कहना चाहिये। इस तरह इस भाष्य से यह आया कि 'सर्वाणि धनानि अस्य' इस विग्रह में कर्मधारय करने पर भी कर्मधारय से मत्वर्थीयरूप अर्थ का बोध नहीं होता है। आक्षेपक-**यदुच्यत इति**। परविप्रतिषेध के द्वारा बहुव्रीहि से कर्मधारय का जो बाध किया है, वह उचित नहीं है। स्वपदार्थ में कर्मधारय विहित है तथा परपदार्थ में बहुव्रीहि विहित है; अतः बहुव्रीहि की अपेक्षा कर्मधारय अन्तरङ्ग है। पर की अपेक्षा अन्तरङ्ग बलवान् होता है-'पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः' परि.शे.३८।

अस्तु, विभाषा कर्मधारयो, यदा न कर्मधारयस्तदा बहुव्रीहिर्भविष्यति। एवमपि यद्यत्र कदाचित् कर्मधारयो भवति कर्मधारयप्रकृतिभिर्मत्वर्थीयैरभिधानं प्राप्नोति। सर्वश्चाऽमेवमर्थो यत्नः- 'कर्मधारयप्रकृति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भिर्मत्वर्थीयैरभिधानं मा भू'दिति। एवं तर्हि नेदं तस्य योगस्ये ..रणं 'विप्रतिषेधे पर'मिति। किं तर्हि?

यदि अन्तरङ्ग कर्मधारय से बहिरङ्ग बहुव्रीहि का बाध कहा जाये तो 'वीरः पुरुषः' इत्यादि में कर्मधारय होने पर बहुव्रीहि को आश्रय मान कर होने वाला 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होने से 'वीरपुरुषकः' रूप नहीं हो सकेगा, इस आशय से कहते हैं-**अस्तु विभाषेति**। 'विभाषा २. १.११ के अधिकार में विहित होने से कर्मधारय विकल्प से होगा। इसके अभावपक्ष में बहुव्रीहि करने पर समासान्त कप् आदि प्रत्यय भी हो जायेंगे। आक्षेपक-**एवमपीति**। कर्मधारय के विकल्प होने पर भी 'सर्वाणि धनानि अस्य' इस विग्रह में पक्ष में भी यदि कर्मधारय करेंगे तो कर्मधारय की प्रकृति से मत्वर्थीय वाच्य होगा। जब कि यहाँ सभी उपाय इसी लिए किया जा रहा है कि कर्मधारय की प्रकृति से मत्वर्थीय वाच्य नहीं हो। पहले अनपेक्षित अन्यपदार्थ में यदि कर्मधारय करेंगे तब बाद में अन्यपदार्थ की विवक्षा होने पर 'वीर-पुरुषवान् ग्रामः' की भी आपत्ति होगी, यह आक्षेपक का अभिप्राय है। अन्य आचार्य-**एवं तर्हीति**। 'समानाधिकरणाद् बहुव्रीहिः कर्तव्यः, कदाचित् कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थः' यह उदाहरण 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ का नहीं है, अपि तु स्वतन्त्ररूप से यह भाष्यकार की इष्टि है। 'वीरपुरुषः' आदि में पहले ही अन्यदपार्थ की विवक्षा करनी चाहिये, परन्तु सर्वधनी इत्यादि में बाद में अन्य-पदार्थ की विवक्षा करनी चाहिये। इसका विवक्षानियम ही इस इष्टि के द्वारा बताया जा रहा है।

इष्टिरियं पठिता 'समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहिरिष्टः। कदाचित् कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थ' इति। यदीष्टिः पठिता, नार्थोऽनेन। इह हि सर्वे मनुष्या अल्पेनाऽल्पेन महतो महतोऽर्थानाकाङ्क्षन्ति। एकेन माषेण शतसहस्रम्। एकेन कुद्दालपादेन खारीसहस्रम्। तत्र कर्मधारयप्रकृतिभिर्मत्वर्थीयैरभिधानमस्तु, बहुव्रीहिणेति बहुव्रीहिणा भविष्यति, लघुत्वात्।

खण्डनभाष्य—**यदीष्टिरिति**। उक्त स्थलों में न्यायसिद्ध होने से ही बहुव्रीहि से मत्वर्थीय नही होगा, अपि तु कर्मधारय से ही होगा। यदि कर्मधारय से मत्वर्थीय करते हैं तब स्वपदार्थप्राधान्य लेकर कर्मधारय करना चाहिये, उन्हीं पदार्थों का अन्यत्र गुणभाव लेकर मत्वर्थीय उत्पन्न किया जाने से प्रतिपत्तिगौरव होता है। परन्तु जब पहले ही अन्यपदार्थ की विवक्षा करते हैं तब समासपदार्थों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का गुणभाव ही लिया जाता है; अतः ज्ञानलाघव है। यहाँ श्रीकैयट जी शब्दलाघव मानते हैं। अन्य की अपेक्षा नहीं करके ही बहुव्रीहि अन्यपदार्थ का प्रतिपादन करता है; परन्तु कर्मधारय मत्वर्थीयसहित अन्यपदार्थ का बोध कराता है; अतः कर्मधारय से मत्वर्थीयपक्ष में शब्दगौरव है। वस्तुतः यहाँ प्रयोगदर्शन के द्वारा यह शब्दलाघव लिया जाता है, अन्यत्र नही। अन्यथा लाघवानुरोध से वृक्ष शब्द का ही सर्वत्र प्रयोग प्राप्त होगा, गौरवानुरोध से वनस्पति इत्यादि का नही। यहाँ शब्दलाघव के लिए उदाहरण देते हैं-**इह हि सर्व इति**। इस लोक में सभी मनुष्य अल्प शब्द से बहुत अर्थ कहना चाहते हैं, एवं कम व्यय से अधिक आय चाहते हैं। एक **माष**=उरद से सैकड़ो, हजारों माष एवम् एक **कुद्दालपाद**=एक छेव में कोड़ी जाने वाली भूमि से सहस्रों खारी सस्य आदि की इच्छा रखते हैं। कर्मधारय कर मत्वर्थीय करने पर शब्दगौरव हो रहा है; अतः लाघवानुरोध से बहुव्रीहि ही करना चाहिये। उसी से मत्वर्थीय भी उक्त हो जायेगा।

कथं सर्वधनी सर्वबीजी सर्वकेशी नट इति? इनिप्रकरणे सर्वादेरिनिं वक्ष्यामि। तच्चाऽवश्यं वक्तव्यं ठनो बाधनार्थम्। कथं-गौरखरवदरण्यम्, गौरमृगवदरण्यम्, कृष्णसर्पवान् वल्मीकः, लोहितशालिमान् ग्रामः? अस्त्यत्र विशेषः। जात्याऽत्राऽभिसम्बन्धः क्रियते, कृष्णसर्पो नाम सर्पजातिः, साऽस्मिन् वल्मीकेऽस्ति। यदा ह्यन्तरेण जातिं तद्वताऽभिसम्बन्धः क्रियते, 'कृष्णसर्पो वल्मीक' इत्येवं तदा भवति।

प्रश्नभाष्य—**कथं सर्वधनीति**। सर्वधनी इत्यादि में कर्मधारय से मत्वर्थीय इनि क्यों करते हैं, ऐसा करने से यहाँ शब्दगौरव हो रहा है। यहाँ पर भी शब्दलाघवानुरोध से बहुव्रीहि ही कीजिये।

समाधानभाष्य—**इनिप्रकरण इति**। अदन्त से जैसे मत्वर्थीय इनि होता है वैसे मत्वर्थीय ठन् भी होता है। सर्वधनी इत्यादि में ठन् न हो, इनि प्रत्यय ही हो, इसके लिए इनि-प्रकरण में सर्वधन इत्यादि से अवश्य इनि प्रत्यय का विधान करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। लाघदानुरोध से 'गौरः खरो यस्मिँस्तद् गौरखरवदरण्यम्' ऐसा बहुव्रीहि ही कर लीजिये। यहाँ शब्दगौरव के लिए कर्मधारय से मत्वर्थीय क्यों कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**अस्त्यत्रेति**। 'सर्वधनी' इत्यादि की अपेक्षा 'गौरखरवदरण्यम्' इत्यादि में भेद यह है कि 'गौरखरवदरण्यम्, गौरमृगवदरण्यम्' में नित्यार्थक मतुप्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, जब कि बहुव्रीहि से प्रशंसामात्र वाच्य है। 'कृष्णसर्पवान् वल्मीकः' में जाति वाच्य है जो बहुव्रीहि से गम्य नहीं है। **यदा ह्यन्तरेणेति**। जब विशिष्टगुणद्रव्य के साथ द्रव्यत्व की विवक्षा करेंगे तब 'कृष्णसर्पवान् वल्मीकः' ऐसा पद नहीं होकर 'कृष्णसर्पो वल्मीकः' यही पद होगा। 'लोहितशालिमान् ग्रामः' इत्यादि में भी नित्यार्थक मतुप् प्रत्यय है जो समास के द्वारा वाच्य नहीं है।

* पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहिः सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थः * **पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहिर्भवति विप्रतिषेधेन। किं प्रयोजनम्? 'सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थः'। आतिशायिकस्याऽवकाशः-पटुतरः पटुतमः। बहुव्रीहेरवकाशः-चित्रगुः शबलगुः। इहोभयं प्राप्नोति-सूक्ष्मवस्त्रतरः तीक्ष्णशृङ्गतरः। बहुव्रीहिर्भवति विप्रतिषेधेन। नैष यक्तो विप्रतिषेधः। 'विप्रतिषेधे पर'मित्युच्यते पूर्वश्च बहुव्रीहिः पर आतिशायिकः। इष्टवाची परशब्दः-विप्रतिषेधे परं यदिष्टं तद् भवतीति। एवमप्ययुक्तः। अन्तरङ्ग आतिशायिकः। काऽन्तरङ्गता? ङ्याप्प्रातिपदिकादातिशायिकः सुबन्तानां बहुव्रीहिः।**

पूर्वपदातिशय इति। पूर्वपद की अतिशयविवक्षा होने पर 'सूक्ष्मवस्त्रतर' आदि की सिद्धि के लिए पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा बहुव्रीहि से आतिशायिक प्रत्यय का बाध कहना चाहिये। 'अयमनयोरतिशयेन पटुरिति पटुतरः' मे 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ से आतिशायिक प्रत्यय तरप् चरितार्थ है। 'अयमनयोरतिशयेन पटुरिति पटुतमः' में 'अतिशायने पमबिष्ठनौ' ५.३.५५ आतिशायिक प्रत्यय तमप् चरितार्थ है। 'चित्रा गावो यस्यासौ चित्रगुः, शबला गावो यस्यासौ शबलगुः' में 'अनेकमन्यपदार्थे २.२.२४ चरितार्थ है। 'अतिशयेन सूक्ष्माणि वस्त्राणि अस्य, अतिशयेन तीक्ष्णाः शृङ्गा अस्य' इस विग्रह में आतिशायिक प्रत्यय तथा बहुव्रीहि दोनों प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा बहुव्रीहि होगा तथा बहुव्रीहि से आतिशायिक प्रत्यय का बाध होगा। आक्षेपक-**नैष युक्त इति**। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ ऐसा कहा जा रहा है। यहाँ आतिशायिक प्रत्यय पर है तथा बहुव्रीहि पूर्व है; अतः बहुव्रीहि से आतिशायिक प्रत्यय का बाध नही हो सकता है।

समाधानभाष्य—**इष्टवाचीति**। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ सूत्रघटक 'पर' शब्द इष्टवाची है; अतः 'पूर्व' अथ वा 'पर' जो भी इष्ट होगा, वही होगा। यहाँ उक्त स्थल में बहुव्रीहि इष्ट है; अतः आतिशायिक प्रत्यय का बाध कर बहुव्रीहि ही होगा। आक्षेपक- **एवमप्ययुक्त इति**। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ सूत्रघटक 'पर'शब्द के इष्टवाची होने पर भी उक्त स्थल में मात्र प्रातिपदिक से विहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने के कारण आतिशायिक प्रत्यय अन्तरङ्ग है तथा सुबन्त की अपेक्षा करने वाला बहुव्रीहि आतिशायिक प्रत्यय की अपेक्षा बहिरङ्ग है। अन्तरङ्ग की कर्तव्यता में बहिरङ्ग असिद्ध होता है; अतः उक्त स्थल में अन्तरङ्ग होने से पहले आतिशायिक प्रत्यय ही होगा।

आतिशायिकोऽपि नाऽन्तरङ्गः। कथम्? समर्थात्तद्धित उत्पद्यते, सामर्थ्यं च सुबन्तेन। एवमप्यन्तरङ्गः। कथम्? स्वपदार्थ आतिशायिकोऽन्यपदार्थे बहुव्रीहिः। एवमपि नान्तरङ्गः। कथम्? स्पर्धायामातिशायिको भवति, न चाऽन्तरेण प्रतियोगिनं स्पर्द्धा भवति। नैवाऽत्राऽऽतिशायिकः प्राप्नोति। किं कारणम्? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। यावता वस्त्राणि तद्वन्तमपेक्षन्ते, तद्वन्तं चाऽपेक्ष्य वस्त्राणां वस्त्रैर्युगपत्स्पर्द्धा भवति। ननु चाऽयमातिशायिक एवमात्मकः सत्यां व्यपेक्षायां विधीयते। सत्यमेवमात्मको, यां च नान्तरेण व्यपेक्षामातिशायिकस्य प्रवृत्तिस्तस्यां सत्यां भवितव्यम्।

अन्य आचार्य—**आतिशायिकोऽपीति**। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ सूत्र का अधिकार कर समर्थ से तद्धितोत्पत्ति कही गयी है। सुबन्त के साथ ही सामर्थ्य होता है; अतः सुबन्त से तद्धितोत्पत्ति होने से उसकी भी अन्तरङ्गता नहीं है। आक्षेपक-**एवमपीति**। सुबन्त से तद्धितोत्पत्तिपक्ष में भी स्व-पदार्थ आतिशायिक तथा अन्यपदार्थ बहुव्रीहि होने से तद्धित अन्तरङ्ग है। अन्य आचार्य-**एवमपि नेति**। स्वपदार्थ आतिशायिक होने पर भी यहाँ तद्धित अन्तरङ्ग नहीं होगा। वह इस तरह कि स्पर्धा होने पर ही आतिशायिक प्रत्यय होते हैं; जब तक कोई प्रतियोगी नहीं होगा तब तक स्पर्धा सम्भव नहीं है। उक्त विग्रह स्थल में जहाँ पूर्वपदार्थ का अतिशय विवक्षित है वहाँ पूर्वपद उत्तरपद में सापेक्ष है। सापेक्ष असमर्थ होता है; अतः सामर्थ्य नहीं होने से आतिशायिक प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। यहाँ सापेक्ष कैसे है, इसे स्पष्ट करते हैं-**यावतेति**। 'अस्यातिशयेन सूक्ष्माणि वस्त्राणि' इसमें वस्त्र **तद्वन्तम्**= वस्त्रस्वामी की अपेक्षा करते हैं। वस्त्रस्वामी की अपेक्षा कर वस्त्रों का वस्त्रों के साथ स्पर्द्धा होती है। इतर आचार्य-**ननु चायमिति**। व्यपेक्षा होने पर ही आतिशायिक प्रत्ययों का विधान होता है, यह आतिशायिक का स्वभावसिद्ध नियम है। इस तरह जैसे प्रतियोगी की अपेक्षा होने पर प्रत्यय होता है, वैसे प्रकृत में वस्त्रस्वामी की अपेक्षा कर प्रत्यय क्यों नहीं होता है?, यह ग्रन्थ का भाव है। अन्य आचार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका समर्थनपूर्वक समाधान करते हैं-**सत्यमिति**। प्रतियोगी की अपेक्षा होने पर ही प्रत्यय होता है। परन्तु जिस व्यपेक्षा के विना आतिशायिक प्रत्यय की प्रवृत्ति नही होती है उसी व्यपेक्षा के होने पर प्रत्यय होना चाहिये।

कां च नान्तरेण व्यपेक्षामातिशायिकस्य प्रवृत्तिः? या हि प्रतियोगिनं प्रति व्यपेक्षा। या हि तद्वन्तं प्रति, न तस्यां भवितव्यम्। बहुव्रीहिरपि तर्हि न प्राप्नोति। किं कारणम्? असामर्थ्यादेव। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। यावता वस्त्राणि वस्त्रान्तराण्यपेक्षन्ते तद्वता चाऽभिसम्बन्धः। एवं तर्हि नेदं तस्य योगस्योदाहरणं 'विप्रतिषेधे पर'मिति। किं तर्हि? इष्टिरियं पठिता 'पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहिरिष्टः सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थ' इति।

इतर आचार्य—**कां चेति**। किस व्यपेक्षा के विना आतिशायिक प्रत्यय की प्रवृत्ति नहीं होती है? अन्य आचार्य-**या हीति**। प्रतियोगी के प्रति जो व्यपेक्षा है उसके होने पर आतिशायिक प्रत्यय होगा। परन्तु उक्त विग्रह में जो **तद्वन्तम्**= वस्त्रस्वामी के प्रति व्यपेक्षा है उसके होने पर प्रत्यय नहीं होगा। इतर आचार्य-**बहुव्रीहिरपीति**। यदि वस्त्रनिष्ठ व्यपेक्षा के होने पर तद्धितोत्पत्ति तथा वस्त्रस्वामिनिष्ठ व्यपेक्षा के होने पर तद्धित का अभाव कहेंगे तो इसी पक्ष में असामर्थ्य होने से बहुव्रीहि भी नहीं होगा। सापेक्ष असमर्थ होता है। 'अस्यातिशयेन सूक्ष्माणि वस्त्राणि' यहाँ पर वस्त्र अन्य 'वस्त्र की अपेक्षा कर रहा है तथा वस्त्र का वस्त्रस्वामी से भी सम्बन्ध है; अतः वस्त्र स्ववस्त्रस्वामी की भी अपेक्षा कर रहा है; अतः सापेक्ष है। इस तरह सापेक्ष होने से असमर्थ होने पर तद्धित और बहुव्रीहि इन दोनों के अप्राप्त होने पर अन्य अर्थ बताते हैं-**एवं तर्हीति**। यदि सापेक्ष होने से उक्त स्थल में तद्धित और बहुव्रीहि दोनों अप्राप्त है तब आप 'पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहिः सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थः' को 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ का उदाहरण नही मानिये, अपि तु 'भाष्यकार की यह स्वतन्त्र इष्टि है' ऐसा मानिये।

यदीष्टिरियं पठिता, नाऽर्थोऽनेन। कथं यैषा युक्तिरुक्ता- 'वस्त्रान्तराणां वस्त्रैर्युगपत् स्पर्द्धा तद्वता चाऽभिसम्बन्ध' इति। यदा ह्यन्तरेण वस्त्राणां वस्त्रान्तरैर्युगपत् स्पर्द्धा तद्वताऽभिसम्बन्धः क्रियते निष्प्रतिद्वन्द्वस्तदा बहुव्रीहिर्बहुव्रीहेरातिशायिकः। न तर्हीदानीमिदं भवति-'सूक्ष्मवस्त्रतर' इति? भवति, यदाऽन्तरेण तद्वन्तं वस्त्राणां वस्त्रान्तरैर्युगपत् स्पर्द्धा भवति निष्प्रतिद्वन्द्वस्तदाऽऽतिशायिकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**यदीष्टिरियमिति**। यदि उक्तवचन भाष्य की इष्टि है तब इष्टि के विना भी इस अर्थ का लाभ सम्भव होने से इसे नहीं पढना चाहिये। यह इष्टि व्यर्थ कैसे है, इसे बताते हैं-**यैषेति**। जब अतिशायन वस्त्र अतिशय्यमान अन्य वस्त्र की अपेक्षा करता है तब दोनों वस्त्रों की युगपत् स्पर्द्धा होती है, एवं वस्त्रस्वामी के साथ सम्बन्ध होता है। परन्तु जब वस्त्र का अन्य वस्त्र के साथ स्पर्द्धा नहीं होती है तथा वस्त्रस्वामी के साथ वस्त्र का सम्बन्ध करते हैं तब स्पर्द्धा नहीं होने पर बहुव्रीहि प्राप्त होगा। अन्यपदार्थमात्र की विवक्षा होने पर बहुव्रीहि करने के बाद आतिशायिक प्रत्यय होगा। परन्तु अतिशयमात्र की विवक्षा होने पर प्रत्यय करने के बाद में बहुव्रीहि होगा। इस तरह 'सूक्ष्मतरवस्त्रः' यह भी रूप सिद्ध हो जाता है। परन्तु इष्टि रखने पर 'सूक्ष्मतरवस्त्रः' यह पद सिद्ध नहीं हो सकेगा।

कथं पुनरन्यस्य प्रकर्षेणाऽन्यस्य प्रकर्षः स्यात्? नैवाऽन्यस्य प्रकर्षेणाऽन्यस्य प्रकर्षेण भवितव्यम्। यथैवाऽयं द्रव्येषु यतते-'वस्त्राणि मे स्यु'रिति, एवं गुणेष्वपि यतते-'सूक्ष्मतराणि मे स्यु'रिति। नाऽत्रातिशायिकः प्राप्नोति। किं कारणम्? 'गुणवचना'-दित्युच्यते, न च समासो गुणवचनः। समासोऽपि गुणवचनः। कथम्? 'अजहत्स्वार्था वृत्ति'रिति। अथ जहत्स्वार्थायां तु दोष एव। जहत्स्वार्थायां च न दोषः। भवति बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि। तद्यथा-'शुक्लवाससमानय' 'लोहितोष्णीषाः प्रचरन्ती'ति, तद्गुण आनीयते तद्गुणाश्च प्रचरन्ति।

'बहुव्रीहौ कृते पश्चादातिशायिकः क्रियते' ऐसा जो कहा है उस पर प्रश्न करते हैं-**कथं पुनरिति**। 'अतिशयेन सूक्ष्मवस्त्रः' ऐसा बहुव्रीहि कर लेने पर जब बहुव्रीहि से तरप् प्रत्यय करेंगे तब वह सूक्ष्मवस्त्रगत प्रकर्ष को कहेगा। जिससे तरप् प्रत्यय होगा, उसी का प्रकर्षबोध करायेगा। सूक्ष्मप्रकर्ष में प्रत्यय करने पर अन्यपदार्थ का प्रकर्ष नहीं हो सकेगा; फिर बहुव्रीहि में अन्यपदार्थ का प्रतिपादक समुदाय से तरप् प्रत्यय कैसे सम्भव है? दो पदार्थो का एक साथ प्रकर्षप्रतिपादन होने पर प्रत्यय से एक का प्रकर्षबोध सम्भव नहीं है। अन्यदीय का अन्यदीत्व के साथ योग नहीं होने से यहाँ सूक्ष्मप्रकर्ष अन्यपदार्थप्रकर्ष नहीं हो सकता है।

इसका उत्तरपक्ष बताते हैं-**नैवान्यस्येति**। सर्वत्र ही जिससे आतिशायिक प्रत्यय का विधान किया जा रहा है उसका प्रकर्ष नहीं होने पर अन्य का प्रकर्ष लिया जाता है। कहीं पर यदि गुणवाची से आतिशायिक प्रत्यय किया गया है, परन्तु वहाँ गुण का प्रकर्ष गम्य नहीं हो पा रहा है तो वहाँ द्रव्य का प्रकर्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गम्य होगा। वह कहीं पर प्रवृत्तिनिमित्तगुणप्रकर्ष होगा, जैसे 'शुक्लतरः'। कहीं पर सहचरितगुणप्रकर्ष होगा, जैसे 'गोतरः'। कहीं पर विशेषणघटक गुणप्रकर्ष होगा, जैसे 'सूक्ष्मतरवस्त्रः'। 'नैवाऽन्यस्य' इस भाष्य से भी पृथक् द्रव्यप्रकर्षाभाव का ही बोध कराया जा रहा है। 'वस्त्राणि मे स्युः' यहाँ पर वस्त्र द्रव्य है; अतः उसमें प्रकर्ष नहीं होने से तरप् प्रत्यय नहीं किया गया है। 'सूक्ष्मतरवस्त्र' में सूक्ष्मत्व गुण है; अतः उसका प्रकर्ष सम्भव होने से बहुव्रीहि से उत्पन्न आतिशायिक प्रत्यय से परम्परासम्बद्ध गुण का ही प्रकर्षबोध होगा; इसे बताते हैं-'**सूक्ष्मतराणि मे स्युरिति**'।

आक्षेपक-**नाऽत्राऽऽतिशायिक इति**। 'अजादी गुणवचनादेव' ५.३.५८ से 'गुणवचनात्' का अपकर्षण कर तमप् ५.३.५५ तथा तरप् ५.३.५७ आदि प्रत्ययों का गुणवचन से पर में विधान है। प्रकृत में समास गुणवचन नहीं है, अपि तु द्रव्यवचन है, अतः उससे पर में आतिशायिक प्रत्यय प्राप्त नहीं होंगे।

उत्तरभाष्य—**समासोऽपीति**। अजहत्स्वार्था वृत्ति में सूक्ष्म पद समासकुक्षि में प्रविष्ट होकर स्वार्थ का परित्याग नहीं कर सकेगा; अतः द्रव्यवचन होकर भी अजहत्स्वार्था वृत्तिपक्ष में गुणवचन भी रहने से सूक्ष्म पद से आतिशायिक प्रत्यय हो जायेगा। आक्षेपक- **अथ जहदिति**। समास में जहत्स्वार्था वृत्ति भी है; अतः सूक्ष्मवस्त्रगत सूक्ष्म पद का स्वार्थपरित्याग करने पर सूक्ष्म पद गुणवचन नहीं रहा; अतः प्रकृत में जहत्स्वार्था वृत्तिपक्ष में आतिशायिक प्रत्यय नहीं होने से दोष ही रहेगा।

उत्तरभाष्य—**जहत्स्वार्थायामिति**। तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान यह दो प्रकार का बहुव्रीहि होता है। तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि में गुणसहित ग्रहण होता है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। जैसे 'शुक्लानि वासांसि अस्यासौ शुक्लवासास्तमानय, लोहिता उष्णीषा एषामेते लोहितोष्णीषाः प्रचरन्ति' में तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि होने से आनयनक्रिया का कर्म शुक्लवस्त्रसहित होता है तथा प्रचरणक्रिया का कर्म लोहित-उष्णीषसहित होता है। वैसे सूक्ष्मवस्त्र में भी तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि होने से सूक्ष्म गुण का भी ग्रहण होने से आतिशायिक प्रत्यय भी हो जायेगा।

* उत्तरपदातिशये आतिशायिको बहुव्रीहिर्बह्वाढ्यतराद्यर्थः * **उत्तरपदातिशये आतिशायिको बहुव्रीहिर्भवति विप्रतिषेधेन। किं प्रयोजनम्? 'बह्वाढ्यतराद्यर्थः'। बह्वाढ्यतरः। बहुसुकुमारतरः।**

उत्तरपदातिशय इति। उत्तरपद का अतिशयत्व गम्य होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा आतिशायिक प्रत्यय से बहुव्रीहि का बाध कहना चाहिये। इसका प्रयोजन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बह्वाढ्यतर आदि है। 'बह्वाढ्यतरः, बहुसुकुमारतरः' में उत्तरपद का अतिशयत्व गम्य है। यहाँ समास से प्रत्यय होकर भी शब्दशक्तिस्वभाववश उत्तरपद का अतिशयत्वबोध ही करायेगा। अथ वा पहले आतिशायिक प्रत्यय करेंगे तथा बाद में बहुव्रीहि करेंगे। यही पक्ष उचित भी है। तभी समान लक्ष्य में दोनों की प्राप्ति होने पर तुल्यबलविरोध होने से विप्रतिषेध सम्भव होगा।

कः पुनरत्र विशेषो-बहुव्रीहेर्वाऽऽतिशायिकः स्यादाति-शायिकान्तेन वा बहुव्रीहिरिति? स्वरकपोर्विशेषः। यद्यत्राऽऽतिशायिकाद् बहुव्रीहिः स्याद्-बह्वाढ्यतर-एवं स्वरः प्रसज्येत, बह्वाढ्यतर इति चेष्यते। 'बह्वाढ्यकतर' इति च प्राप्नोति, 'बह्वाढ्यतरक' इति चेष्यते

* समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसङ्ख्यानमुत्तरपदलोपश्च *

समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। उत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः। शाकभोजी पार्थिवः शाकपार्थिवः। कुतपवासाः सौश्रुतः कुतपसौश्रुतः। अजापण्यस्तौल्वलिरजातौल्वलिः। यष्टिप्रधानो मौद्गल्यो यष्टिमौद्गल्यः। {वर्णो वर्णेन}।

प्रश्नभाष्य—**कः पनुरत्रेति**। बहुव्रीहि समास से आतिशायिक प्रत्यय की उत्पत्ति की जाये तथा वह शब्दशक्तिस्वभाववश उत्तरपद का अतिशयत्व बतावे, अथ वा प्रकृत में आढ्य और सुकुमार पद से आतिशायिक प्रत्यय किया जाये तथा तद्धितान्त के साथ बहुव्रीहि किया जाये, इसमें क्या भेद है?

उत्तरभाष्य—**स्वरकपोरिति**। स्वर और समासान्त कप् प्रत्यय ही उपर्युक्त में भेद है। यदि पहले बहुव्रीहि करके बाद में आतिशायिक प्रत्यय करेंगे तब 'बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि' ६.२.१७५ के द्वारा आढ्यशब्द का अकार अन्तोदात्त होगा, जब कि रेफ से उत्तर में अकार को अन्तोदात्त इष्ट है। यदि बहुव्रीहि से पर में आतिशायिक प्रत्यय करेंगे तो 'बह्वाढ्यतरः' इतना ही बहुव्रीहि है। 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ के द्वारा बहुव्रीहि से पर में समासान्त कप् होकर 'बह्वाढ्यकतरः' रूप की आपत्ति होगी। जब कि समासान्त कप् होने पर 'बह्वाढ्यतरकः' रूप ही इष्ट है। वह तभी होता है जब आतिशायिक प्रत्ययान्त के साथ बहुव्रीहि हो। वार्तिक-**समानेति**। समानाधिकरण २.१.३० के अधिकार में शाकपार्थिव आदि का भी समास तथा उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। 'शाकपार्थिवः' में उत्तरपद भोजी, 'कुतपसौश्रुतः' में उत्तरपद वासस्, 'अजातौल्वलिः' में उत्तरपद पण्य तथा 'यष्टिमौद्गल्यः' में उत्तरपद प्रधान का लोप है। विग्रह मूल से स्पष्ट है। {वर्णो वर्णेन}।

चतुष्पादो गर्भिण्या २.१.७१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** चतुष्पाज्जातिः *** **चतुष्पाज्जातिरिति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-कालाक्षी गर्भिर्णी। स्वस्तिमती गर्भिणी।** {चतुष्पादो गर्भिण्या}।

चतुष्पाज्जातिरिति। यहाँ चतुष्पाद् जाति का ग्रहण करना चाहिये। सूत्रार्थ-'चतुष्पाद् का गर्भिणी के साथ समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। जैसे 'गर्भिणी चासौ गौश्चेति गोगर्भिणी। इससे जो चतुष्पाद् नहीं है उसका समास नहीं होने से 'कालाक्षी गर्भिर्णी, स्वस्तिमती गर्भिणी' यह वाक्य ही रहेगा। {चतुष्पादो-}।

मयूरव्यंसकादयश्च २.१.७२

किमर्थश्चकारः? * चकार एवकारार्थः * **मयूरव्यंसकादय एव। क्व मा भूत्? परमो मयूरव्यंसकः।** {मयूरव्यंसकादयश्च}।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम्

पादश्च समाप्तः

मयूरव्यंसकादि का समास निपातन है तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा है। मयूरश्चेति व्यंसकश्चेति मयूरव्यंसकः। **व्यंसको**=धूर्तः।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'मयूरव्यंसकादयः' इतना ही सूत्र रखिये। इसी से निपातन सिद्ध हो जायेगा। आचार्य 'च' पद का निर्देश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**चकार इति**। मयूरव्यंसक इत्यादि यही समास हो, 'परमो मयूरव्यंसकः' इस तरह का विग्रह भी न हो तथा समास भी न हो, इसके लिए 'च' पद का निर्देश है। 'मयूर इव व्यंसकः, छात्र इव व्यंसकः, काम्बोज इव मुण्डः' इस विग्रह में उपमानसमास प्राप्त होने पर इसका अपवाद यह समास प्रतिपदविहित उपमानसमासविषय पूर्वपदप्रकृतिस्वरबाधनार्थ है। {मयूर-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय प्रथम पाद तृतीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

प्रथमपाद भी पूर्ण हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम् ❁

अर्द्धं नपुंसकम् २.२.२

इह कस्मान्न भवति-ग्रामार्द्धो नगरार्द्ध इति? अर्द्धशब्दस्य नपुंसकलिङ्गस्येदं ग्रहणं, पुल्लिङ्गश्चायमर्द्धशब्दः। क्व पुनरयं नपुंसकलिङ्गः, क्व पुल्लिङ्गः? समप्रविभागे नपुंसकलिङ्गः, अवयववाची पुल्लिङ्गः। इह कस्मान्न भवति-'अर्द्धं पिप्पलीना'मिति?

'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' २.२.१ से 'एकदेशिना' की अनुवृत्ति है। 'अर्द्धम्' इस नपुंसकलिङ्गनिर्देश से ही नपुंसकत्व का लाभ होने पर भी आचार्य ने जो पुनः नपुंसकग्रहण किया उससे प्रकृत में नित्यनपुंसक का ही ग्रहण होगा। सूत्रार्थ-'समांशवाची नित्यनपुंसकलिङ्ग अर्द्धशब्द का अवयववाची के साथ समास हो तथा उसकी तत्पुरुषसंज्ञा हो'। अर्द्धं पिप्पल्या अर्द्धपिप्पली।

नपुंसकलिङ्ग अव्यवस्थित है। एवं समास करने पर पूर्वपदार्थ का लिङ्गविशेष निश्चय नही हो सकेगा। इस तरह सूत्र में उच्चरित नपुंसकपद भी अनुच्चरित के जैसा ही है, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-**इह कस्मान्नेति**। 'ग्रामार्द्धः नगरार्द्धः' में प्रकृत सूत्र से समास होकर अर्द्धशब्द का पूर्वनिपात क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अर्द्धशब्दस्येति**। प्रकृतसूत्र में अर्द्धशब्द नपुंसकलिङ्ग में निर्दिष्ट है; अतः नपुंसकलिङ्ग में शक्त अर्द्धशब्द का ही प्रकृतसूत्र से समास होगा। 'ग्रामार्द्धः' इत्यादि में अर्द्धशब्द नपुंसकलिङ्ग में उच्चरित है; अतः यहाँ प्रकृतसूत्र से समास नहीं होता है।

प्रश्नभाष्य—**क्व पुनरिति**। अर्द्धशब्द को कहाँ पर नपुंसकलिङ्ग में समझेंगे तथा कहाँ पर पुल्लिङ्ग में समझेंगे?

उत्तरभाष्य—**समप्रविभाग इति**। **समप्रविभाग**=किसी एक वस्तु को बराबर दो भागों में बाँट कर प्रत्येक को पृथक्-पृथक् अर्द्ध कहते हैं। उसका वाचक होने पर अर्द्धशब्द नपुंसक होगा तथा अवयववाची अर्द्धशब्द पुल्लिङ्ग होगा। अवयववाची अर्द्धशब्द नियमतः नपुंसकलिङ्गपरक नहीं होता है, अपि तु अनियतलिङ्ग होने से वह सर्वलिङ्ग होता है; अतः अवयववाची का 'अपूपार्द्ध मया भक्षितम्' 'दन्तार्द्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मास्यात् पतितम्' इस तरह का नपुंसकप्रयोग भी देखा जाता है। इस तरह प्रकृतसूत्र में नपुंसकग्रहणसामर्थ्य से जिस अर्थविशेष में नियमतः नपुंसकत्व होगा, उसी अर्थ का वाचक यहाँ प्रकृत में अर्द्धशब्द लिया जायेगा, यह भाष्यकार का हृदय है।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। 'अर्द्धं पिप्पलीनाम्' इस विग्रह में समप्रविभाग अर्थ में अर्द्धशब्द शक्त है तथा नपुंसक भी है; फिर यहाँ समास क्यों नहीं होता है? यदि यहाँ समास करेंगे तो 'अर्द्धपिप्पल्यः' रूप होगा।

न वा भवति-अर्द्धपिप्पल्य इति? भवति। यदा खण्डसमुच्चयः-अर्द्धपिप्पली चाऽर्द्धपिप्पली चाऽर्द्धपिप्पली चाऽर्द्धपिप्पल्य इति। यदा त्वेतद्वाक्यं भवति-अर्द्धं पिप्पलीनामिति, तदा न भवितव्यम्। तदा कस्मान्न भवति? एकाधिकरण इति वर्त्तते। न तर्हीदानीमिदं भवति- 'अर्द्धराशि'रिति? भवति। एकमेवेदमधिकरणं भवति योऽसौ राशिर्नाम। {अर्द्धं नपुंसकम्}।

प्रश्नभाष्य—**न वेति**। क्या 'अर्द्धपिप्पल्यः' ऐसा बहुवचनान्त समस्त पद नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। 'अर्द्धं पिप्पलीनाम्' इस विग्रह में समास करने पर 'अर्द्धपिप्पली' यही रूप होगा। परन्तु जब 'अर्द्धपिप्पली' पद को बहुवचन में एकशेष करेंगे तो 'अर्द्धपिप्पल्यः' यह रूप भी होगा। यहाँ समास में पूर्व-पदार्थप्रधान है। बहुवचनान्त 'पिप्पलीनाम्' पद के साथ समास होने पर भी अर्द्धशब्द के एकत्व होने से 'अर्द्धपिप्पली' यही रूप होगा।

प्रश्नभाष्य—**तदा कस्मादिति**। जब 'अर्द्धं पिप्पलीनाम्' ऐसा विग्रह करते हैं तब 'अर्द्धपिप्पल्यः' यह रूप क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**एकाधिकरण इति**। पूर्वसूत्र 'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशि- नैकाधिकरणे' २.२.१ से 'एकाधिकरणे' पद की अनुवृत्ति 'अर्द्धं नपुंसकम्' सूत्र में होती है। 'अर्द्धं पिप्पलीनाम्' इस स्थल में 'अर्द्धम्' और 'पिप्पलीनाम्' इन दोनों का **एकाधिकरण**=समानाधिकरणत्व नहीं है; अतः यहाँ समास नही होगा। आक्षेपक-**न तर्हीति**। यदि पूर्वसूत्र से प्रकृतसूत्र में 'एकाधिकरणे' पद की अनुवृत्ति होगी तो 'अर्द्धं राशेरर्द्धराशिः' यह भी समस्तप्रयोग नहीं होना चाहिये; यहाँ अर्द्ध और राशि इन दोनों का एकाधिकरण नहीं है।

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। अर्द्ध और राशि इन दोनों की एकाधिकरणता है; अतः यहाँ समास होकर 'अर्द्धराशिः' यह प्रयोग होगा। राशि अवयवों से पृथक्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं रह सकता है। अवयवो का बहुत्व होने से एकत्व का अभाव है, ऐसा मान कर आक्षेप है। एवं शब्द के द्वारा एक ही तिरोहितभेद वाला अर्थ का बोध होने से दोनों का सामानाधिकरण्य है, ऐसा मान कर उत्तरभाष्य है।{अर्द्ध-}।

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् २.२.३

अन्यतरस्यां ग्रहणं किमर्थम्? अन्यतरस्यां समासो यथा स्यात्, समासेन मुक्ते वाक्यमपि यथा स्याद्-'द्वितीयं भिक्षाया' इति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृता महाविभाषा, तया वाक्यमपि भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-'एकदेशिसमासेन मुक्ते षष्ठीसमासोऽपि यथा स्यात्-'भिक्षाद्वितीय'मिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। अयमपि विभाषा, षष्ठीसमासोऽपि। तावुभौ वचनाद् भविष्यतः।

'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' २.२.१ से 'एकदेशिना' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य पद का अवयववाची के साथ विकल्प से समास हो एवं वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। द्वितीयं भिक्षाया द्वितीयभिक्षा।

प्रश्नभाष्य—**अन्यतरस्यामिति**। 'द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि' इतना ही सूत्र रखिये। 'अन्यतरस्याम्' पद का निर्देश क्यों करते हैं? एकदेशि-**अन्यतरस्यां समास इति**। विकल्प से समास होकर 'द्वितीयभिक्षा' यह रूप हो तथा पक्ष में 'द्वितीयं भिक्षायाः' यह वाक्य भी हो, इसके लिए 'अन्यतरस्याम्' पद का निर्देश है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। प्रकृतपद का यह प्रयोजन नहीं है। आचार्य ने 'विभाषा' २.१.११ यह अधिकारसूत्र पढा है। यह महाविभाषा है। इससे 'द्वितीयं भिक्षायाः' यह वाक्य भी हो जायेगा; अतः इसी के लिए किया गया 'अन्यतरस्याम्' पद का निर्देश व्यर्थ है। एकदेशि-**इदं तर्हीति**। अवयविवाची के साथ समास नहीं होने पर षष्ठीसमास होगा। षष्ठ्यन्त भिक्षा पद की उपसर्जनसंज्ञा होकर उसका पूर्वनिपात होता है, इससे 'भिक्षाद्वितीयम्' यह भी रूप होगा।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। **अयमपि**= 'द्वितीयतृतीयचतुर्थ-तुर्याणि' यह समास भी विकल्प है तथा षष्ठीसमास भी विकल्प है। इस तरह प्रकृतसूत्र के द्वारा विहित एकदेशिसमास नहीं होने पर विकल्पविधि के द्वारा षष्ठीसमास भी हो जायेगा; अतः इसी के लिए किया गया 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण व्यर्थ है।

अत उत्तरं पठति-* द्वितीयादीनां विभाषाप्रकरणे विभाषावचनं ज्ञापकमवयवविधाने सामान्यविधानाऽभावस्य * **द्वितीयादीनां विभाषाप्रकरणे विभाषावचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'ज्ञापकार्थम्'। किं ज्ञाप्यते?**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतज्ज्ञापयत्याचार्यः-'अवयवविधौ सामान्यविधिर्न भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? भिनत्ति। छिनत्तीति। श्नमि कृते शब्न भवतीति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। शबादेशाः श्यन्नादयः करिष्यन्ते। तत्तर्हि शपो ग्रहणं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'कर्तरि श'बिति। तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं, षष्ठीनिर्देन चेहाऽर्थः। 'रुधादिभ्य' इत्येषा पञ्चमी, 'श'बिति प्रथमायाः षष्ठीं प्रकल्पयिष्यति'तस्मादित्युत्तरस्ये'ति। प्रत्ययविधिरयं, न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः प्रकल्पिका भवन्ति। नाऽयं प्रत्ययविधिः। विहितः प्रत्ययः प्रकृतश्चानुवर्तते। एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यो-'यत्रोत्सर्गाऽपवादं विभाषा तत्राऽपवादेन मुक्ते उत्सर्गो न भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'दिक्पूर्वपदान्ङीप्'। प्राङ्मुखी प्राङ्मुखा। प्रत्यङ्मुखी प्रत्यङ्मुखा। ङीपा मुक्ते ङीष् न भवति।

एकदेशिभाष्य—**द्वितीयादीनामिति**। 'द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि' यह समास 'विभाषा' २.१.११ सूत्र के अधिकार में पढा गया है; अतः विभाषाऽधिकार के द्वारा विकल्पविधि सिद्ध होने पर आचार्य द्वारा किया गया 'अन्यतरस्याम्' पद का निर्देश व्यर्थ पड कर 'अवयवविधि की कर्तव्यता में सामान्यविधि नहीं होता है' इस अर्थ का ज्ञापक है। इस ज्ञापन का फल बताते हैं-**भिनत्तीति**। भिदिर् विदारणे धा.पा.१४४०, छिदिर् छेदने धा.पा.१४४१ धातु से पर में 'कर्तरि शप्' ३.१.६८ तथा 'रुधादिभ्यः श्नम्' ३.१.७८ इन दोनों की प्रवृत्ति होने पर अवयवविधि श्नम् के हो जाने पर सामान्यविधि शप् की प्रवृत्ति नहीं होती है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। उक्त 'अन्यतरस्याम्' पद के निर्देश का यह भी प्रयोजन नहीं है। 'कर्तरि शप्' ३.१.६८ से विहित शप् को श्यन् आदेश करेंगे; अतः श्यन् होने पर शप् की प्राप्ति का दोष नहीं रहेगा। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। यदि आप शप् को श्यन् आदेश कर रहे हैं तब स्थानी शप् को षष्ठीनिर्देश कर 'रुधादिभ्यः शपः श्यन्' ऐसा सूत्रपाठ करना चाहिये। आक्षेपक मतानुयायी अन्य आचार्य-**नेति**। 'कर्तरि शप्' ३.१.६८ में 'शप्' पद का निर्देश है। स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर उसकी अनुवृत्ति 'रुधादिभ्यः श्नम्' ३.१.७८ सूत्र में होगी। पञ्चमी अपने से उत्तर में षष्ठी की प्रकल्पना कराती है। इसे आचार्य ने 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ सूत्र के द्वारा स्पष्ट किया है। 'रुधादिभ्यः' ३.१.७८ यह पञ्चम्यन्तनिर्देश है; अतः अपने से उत्तर में अनुवृत्ति से लाया गया प्रथमान्त शप् पद को षष्ठ्यन्तविपरिणाम करा देगा। अन्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। 'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' २.२.११ सूत्र में निर्दिष्ट अर्थशब्द का प्रत्येक के साथ अन्वय है; अतः जो पूरणार्थक होगा, उसका षष्ठीसमास नहीं होगा।

समाधानभाष्य—एवं तर्हीति। 'अन्यतरस्याम्'ग्रहणसामर्थ्य से यहाँ पक्ष मे षष्ठीसमास होकर 'भिक्षाद्वितीयम्' आदि रूप होंगे। {द्वितीय-}।

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २.२.४

किमर्थश्चकारः? * चकारोऽनुकर्षणार्थः * किमनुकृष्यते? 'अन्यतरस्या'मित्येतदनुकृष्यते। किं प्रयोजनम्? अन्यतरस्यां समासो यथा स्यात्, समासेन मुक्ते वाक्यमपि यथा स्यात्-'जीविकां प्राप्त' इति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृता महाविभाषा, तया वाक्यमपि भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनं-द्वितीयासमासोऽपि यथा स्यात्-'जीविकाप्राप्त' इति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्, अयमप्युच्यते, द्वितीयासमासोऽपि, तदुभयं वचनाद् भविष्यति। एवं तर्हि नाऽयमनुकर्षणार्थश्चकारः। किं तर्हि? अत्त्वमनेन विधीयते-'प्राप्तापन्ने द्वितीयान्तेन सह समस्येते, अत्त्वं च भवति प्राप्तापन्नयो'रिति। प्राप्ता जीविकां प्राप्तजीविका। आपन्ना जीविकामापन्नजीविका।

'प्राप्तापन्ने' यह प्रथमाद्विवचनान्त पद है। सूत्रार्थ-'प्राप्त और आपन्न पद का द्वितीयान्त के साथ समास हो एवं वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। प्राप्तजीविकः आपन्नजीविकः।

प्रश्नभाष्य—किमर्थमिति। 'प्राप्तापन्ने द्वितीयया' इतना ही सूत्र रखिये। 'च' पद का निर्देश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—चकार इति। 'द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्' २.२.३ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति के लिए चकारग्रहण किया है। इससे विकल्प से समास होने पर समास से मुक्त अवस्था में 'जीविकां प्राप्तः' यह वाक्य भी होगा।

खण्डनभाष्य—नैतदस्तीति। आचार्य 'विभाषा' २.१.११ का अधिकार कर रहे हैं। प्रकृतसूत्र में इसका अधिकार होने से समास से मुक्त अवस्था में वाक्य भी होगा; अतः इसी के लिए किया गया 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण व्यर्थ है। प्रयोजनवादी-इदं तर्हीति। प्रकृतसूत्र में समास नहीं होने पर पक्ष में 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ के द्वारा द्वितीयासमास होकर 'जीविका-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्तः' यह भी रूप हो इसके लिए चकार का निर्देश है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। 'प्राप्तापन्ने च द्वितीयया' और 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २.१.२४ इन दोनों सूत्रों का आरम्भ है; अतः वचनसामर्थ्य से दोनों समास हो जायेगा; अतः इसी के लिए किया गया चकार का निर्देश व्यर्थ है।

समाधानभाष्य—**एवं तर्हीति**। अच्छा तो हम चकारग्रहण को अनुकर्षणार्थ नहीं बता कर अत्त्वविधान के लिए कहेंगे। प्राप्ता और आपन्ना इस स्त्रीलिङ्ग के साथ विग्रह होने पर लिङ्गविशिष्टपरिभाषा के द्वारा समास होगा। टाप् को अत्त्व आदेश हो इसके लिए चकारनिर्देश है। {प्राप्तापन्ने-}।

कालाः परिमाणिना २.२.५

किंप्रधानोऽयं समासः? उत्तरपदार्थप्रधानः। यद्युत्तरपदार्थप्रधानः सधर्मणाऽनेनाऽन्यैरुत्तरपदार्थप्रधानैर्भवितव्यम्। अन्येषु चोत्तरपदार्थ-प्रधानेषु यैवासावन्तर्वर्तिनी विभक्तिस्तस्याः समासेऽपि श्रवणं भवति। तद्यथा-राज्ञः पुरुषो राजपुरुष इति। इह पुनर्वाक्ये षष्ठी, समासे प्रथमा, केनैतदेवं भवति? योऽसौ मासजातयोरभिसम्बन्धः समासे स निवर्तते। अभिहितः सोऽर्थोऽन्तर्भूतः प्रातिपदिकार्थः सम्पन्नः। तत्र 'प्रातिपदिार्थे प्रथमे'ति प्रथमा भविष्यति। न तर्हीदानीमिदं भवति-मासजातस्येति? भवति बाह्यमर्थमभिसमीक्ष्य षष्ठी।

सूत्रार्थ—'परिच्छेद्यवाची सुबन्त के साथ कालवाची का समास हो एवं वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। मासो जातस्य यस्य स मासजातः।

वृत्ति और वाक्य का समानार्थत्व इष्ट है। 'मासो जातस्य' इस विग्रह में विशेषण होने से 'जातस्य' यह अप्रधान है। परन्तु समास होने पर 'मासजातो दृश्यताम्' इत्यादि में जात का ही कार्य से सम्बन्ध होने से अप्राधान्य है; अतः 'उत्तरपदार्थ का प्राधान्यवैधर्म्य लक्षित है' ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-**किंप्रधान इति**। प्रकृतसूत्र से समास होने पर यहाँ शाब्दबोध में क्या प्रधान होगा, पूर्वपदार्थ, उत्तरपदार्थ, उभयपदार्थ, अथ वा अन्यपदार्थ?

उत्तरभाष्य—**उत्तरपदार्थेति**। 'राजपुरुषरु' की तरह यहाँ 'मासजातः' यह उत्तरपदार्थप्रधान समास है।

आक्षेपभाष्य—**यद्युत्तरेति**। यदि यहाँ प्रकृतसूत्र से विहित समास उत्तरपदार्थ-प्रधान है तो उसे उत्तरपदार्थप्रधान समास का समानधर्मा होना चाहिये। जैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपदार्थप्रधान 'राजपुरुषः' में 'राज्ञः पुरुषः' इस विग्रह में 'पुरुषः' प्रधान है तथा उससे प्रथमाविभक्ति है। समास होने पर भी 'राजपुरुषः' में प्रथमाविभक्त्यन्त ही पुरुष है। वैसे 'मासजातः' में भी समानविभक्त्यन्त होना चाहिये था। परन्तु वहाँ वाक्य में षष्ठी तथा समास में प्रथमाविभक्ति हो रही है। इस तरह यहाँ उत्तरपदार्थप्रधान का समानधर्मा यह समास नहीं हो रहा है; फिर यहाँ जो भेद हो रहा है, वह कैसे है?

समाधानभाष्य—**योऽसाविति**। मास और जात का जो परिच्छेद्यपरिच्छेदकत्वरूप सम्बन्ध है वह समास में षष्ठी का प्रयोजक नहीं होता है; अतः समास होने पर उत्तरपद की प्रधानतादशा में भी षष्ठी नहीं होती है, अपि तु समास के द्वारा उक्त होने से प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। इसे स्पष्ट करते हैं-**अभिहित इति**। किसी के द्वारा अभिहित होकर अर्थ अन्तर्भूत हो जाता है तथा वह प्रातिपदिकार्थसम्पन्न हो जाता है। प्रकृत में समास के द्वारा परिच्छेद्यपरिच्छेदकत्वरूप सम्बन्ध उक्त होकर अन्तर्भूत है; अतः वह षष्ठी की उत्पत्ति में निमित्त नहीं हो सकता है। अनभिहित सम्बन्ध ही षष्ठी की उत्पत्ति में कारण है। यहाँ सम्बन्ध अभिहित है; अतः प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमाविभक्ति ही होगी, षष्ठी नहीं।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**न तर्हीति**। यदि 'मासजातः' में समास के द्वारा परिच्छेद्यपरिच्छेदकत्वरूप सम्बन्ध उक्त है तब उससे पर में कभी भी षष्ठी नहीं होगी; फिर तो 'मासजातस्य' इस प्रयोग में इष्ट षष्ठी सिद्ध नहीं हो पा रही है।

समाधानभाष्य—**भवतीति**। समास के द्वारा परिच्छेद्यपरिच्छेदकत्वरूप सम्बन्ध ही अन्तर्भूत होगा, बाह्य सम्बन्ध नहीं; अतः बाह्य सम्बन्ध को लेकर मासजात पद से षष्ठी होगी तथा 'मासजातस्य वस्त्रम्' इस तरह का षष्ठ्यन्त प्रयोग भी होगा।

* कालस्य येन समासस्तस्याऽपरिमाणित्वादनिर्देशः * **कालस्य येन समासः सोऽपरिमाणी। तस्याऽपरिमाणित्वादनिर्देशः। अगमको निर्देशोऽनिर्देशः। नहि जातस्य मासः परिमाणम्। कस्य तर्हि? त्रिंशद्रात्रस्य। तद्यथा-'द्रोणो बदराणां देवदत्तस्ये'ति,-न देवदत्तस्य द्रोणः परिमाणम्। कस्य तर्हि? बदराणाम्** * सिद्धं तु कालपरिमाणं यस्य स कालस्तेन * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'कालपरिमाणं यस्य स कालस्तेन'। कालपरिमाणं यस्य स कालस्तेन सह समस्यत इति वक्तव्यम्। सिद्ध**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं-'कालस्य येन समासस्तस्याऽपरिमाणित्वादनिर्देशः' इति। कं पुनर्भवान् कालं मत्वाह-'कालस्य येन समासस्तस्याऽपरिमाणित्वादनिर्देशः' इति? येन मूर्तीनामुपचयाश्चाऽपचयाश्च लक्ष्यन्ते तं कालमित्याहुः। तस्यैव कया चित् क्रियया युक्तस्याऽहरिति च भवति, रात्रिरिति च। कया क्रियया? आदित्यगत्या। तयैवाऽसकृदावृत्तया 'मास' भवति, 'संवत्सर' इति च भवति।

अब सम्पूर्ण सूत्र पर आक्षेप करते हैं—**कालस्येति**। **येन**=चुँकि तीस रात्रियों का समाहार मास है; अतः मास को काल का परिच्छेदक माना जायेगा, जात का नहीं;. अतः यहाँ मास के साथ जात का परिच्छेद्यपरिच्छेकभाव नहीं होने से 'मासजातः' में प्रकृतसूत्र से समास नहीं हो सकेगा। यहाँ जात और मास का परिणामपरिणमिसम्बन्ध अनुपपन्न होने में दृष्टान्त देते हैं-**तद्यथेति**। 'द्रोणो बदराणां देवदत्तस्य' ऐसा कहने पर देवदत्त का बदर के साथ अन्वय है, द्रोण के साथ नहीं। 'देवदत्त के बदरों का द्रोण' ऐसा अर्थ है। यहाँ देवदत्त का बदर के साथ अन्वय है तथा बदर का द्रोण के साथ अन्वय है; अतः द्रोण देवदत्त का परिणाम नहीं हो सकता है, अपि तु बदरों का ही द्रोण परिमापक है। वैसे प्रकृत में मास त्रिंशद्रात्र का परिमापक है, जात का नहीं।

उत्तरभाष्य—**सिद्धं त्विति**। यहाँ कालशब्द से कालसामान्य कहा जा रहा है। जिस जातादि सम्बन्धी कालसामान्य का परिमाण मास आदि है उसके साथ वह काल मास आदि का समास होता है।. अथ वा यहाँ कालशब्द से मास आदि कालविशेष कहा जा रहा है, वह काल है परिमाण जिस कालसामान्य का, वह है सम्बन्धी जिसका, उसके साथ वह काल मास आदि समस्त होते हैं, यह कहना चाहिये। आक्षेपक-**सूत्रं तर्हीति**। 'कालपरिमाणं यस्य स कालस्तेन' ऐसा कहने पर उक्तस्थल में समास सिद्ध हो जा रहा है; परन्तु सूत्रभेदरूप दोष स्पष्ट है। भाष्यकार सूत्र के यथान्यासपक्ष में दोष हटाते हैं-**यथान्यासमिति**। सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। इसके यथान्यासपक्ष में 'कालस्य येन समासस्तस्यापरिमाणित्वाद् अनिर्देशः' यह दोष दिया था। यहाँ आप किसको काल मान कर यह दोष दे रहे हैं? दोषवादी आचार्य-**येनेति**। जिसके द्वारा तरु, तृण, लता, गुल्म प्रभृति मूर्ति का **उपचय**=विकाश तथा **अपचय**=ह्रास होता है उस काल को मान कर दोष दिया गया है। यहाँ काल का उक्त स्वरूप मानने पर वह काल एक ही होता है; फिर उसमें दिवा आदि का विभाग कैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है?, इसे स्पष्ट करते हैं-**तस्यैवेति**। अखण्ड वस्तुओं में उपाधिकृतभेद ही होता है। किसी क्रिया से युक्त होकर काल का दिवा व्यवहार होता है, तथा किसी क्रिया से युक्त होकर काल का रात्रिव्यवहार होता है।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**कयेति**। किस क्रिया से युक्त होकर काल का औपाधिक भेद होता है। क्रिया एक है; उसका कोई भेदक नही है, अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**आदित्यगत्येति**। सूर्य की गति से क्रिया में भेद होता है तथा उसी क्रिया के भिन्न होने से अखण्ड काल में दिवा और रात्रि का भेद होता है। उसी दिवा और रात्रि के तीस वार आवृत्त होने पर मास तथा मास के बारह वार आवृत्त होने पर संवत्सर यह भेद होता है।

यद्येवं, भवति मासस्य जातः परिमाणम् * एकवचनद्विगोश्चोपसङ्ख्यानम् * **एकवचनद्विगोश्चोपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। 'एकवचनान्ताना'मिति वक्तव्यम्। इह मा भूत्,-मासौ जातस्य मासजातस्ये'ति। द्विगोश्चेति वक्तव्यम्। इहापि च यथा स्यात्-द्विमासजातः, त्रिमासजातः।** * उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्? एकवचने तावदुक्तम्-'अनभिधाना'दिति। द्विगोः किमुक्तम्? 'उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः समासवचन'मिति।**

अब यथान्यासपक्ष में भी उक्त स्थल में समास सिद्ध करते हैं-**यद्येवमिति**। यदि आदित्य आदि की गति से काल में औपाधिकभेद मान रहे हैं तब जात का परिच्छेदक मास भी हो जायेगा। मास के व्यतिरिक्त कोई भी त्रिंशद्रात्र नही है जिसका मास परिमाण हो सके। कालसामान्य परिच्छेद्य नहीं होता है; अतः काल ही जात का परिच्छेदक होगा। वार्तिककार-**एकवचनद्विगोश्चेति**। एकवचन और द्विगु को ही 'कालाः परिमाणिना' से समास कहना चाहिये। भाष्यकार 'एकवचनद्विगोः' का अर्थ स्पष्ट करते हैं-**एकवचनान्तानामिति**। एकवचनान्त को 'कालाः परिमाणिना' से समास कहना चाहिये। इससे 'मासो जातस्य' इस एकवचनान्त विग्रह में समास होगा। परन्तु 'मासौ जातस्य' ऐसा द्विवचनान्त तथा 'मासा जातस्य' ऐसा बहुवचनान्त विग्रह होने पर प्रकृत सूत्र से समास नही होगा। एवं द्विगु को भी 'कालाः परिमाणिना' से समास कहना चाहिये इससे 'द्वयोः मासयोः समाहारो द्विमासम्, त्रयाणां मासानां समाहारस्त्रिमासम्' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगु होने पर 'द्विमासं जातस्य, त्रिमासं जातस्य' इस विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास होगा। अब 'एकवचनद्विगोश्चोपसंख्यानम्' का खण्डन करते हैं-**उक्तं वेति**। समास होने पर द्वित्व आदि का बोध सम्भव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है। परन्तु प्रातिपदिकार्थ के तथाभूत होने से समास में एकत्व का बोध होता है। अन्य वस्तु की अपेक्षा करने से द्वित्व आदि संख्या बहिरङ्ग है; अतः एकवचनान्त से विग्रह में ही शब्दशक्तिस्वभाववश समास होगा, अनभिधान होने से द्विवचनान्त अथ वा बहुवचनान्त के विग्रह में नहीं। 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ सूत्र पर 'उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः समासवचनम्' ऐसा कहा है; अतः इससे द्विगु का भी समास हो जायेगा। {कालाः-}।

नञ् २.२.६

किंप्रधानोऽयं समासः? उत्तरपदार्थप्रधानः। यद्युत्तरपदार्थप्रधानः, 'अब्राह्मणमानये'त्युक्ते ब्राह्मणमात्रस्याऽऽनयनं प्राप्नोति। अन्यपदार्थप्रधानस्तर्हि भविष्यति। यद्यन्यपदार्थप्रधानः 'अवर्षा हेमन्तः' इति हेमन्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तत्समासस्याऽपि प्राप्नोति। पूर्वपदार्थप्रधानस्तर्हि भविष्यति। यदि पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययसंज्ञा प्राप्नोति। अव्ययं ह्यस्य पूर्वपदमिति।

'सह सुपा' २.१.४ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'सुबन्त के साथ नञ् का समास हो एवं वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। न ब्राह्मणोऽब्राह्मणः।

'अब्राह्मणः' ऐसा कहने पर लोक में ब्राह्मणभिन्न ब्राह्मणसदृश क्षत्रिय आदि अर्थ का बोध होता है। यहाँ प्रक्रियागत गुणदोषनिरूपण के लिए पूर्वपक्ष करते हैं-**किमिति**। यहाँ प्रकृतसूत्र के द्वारा जो समास हो रहा है उसमें किस पदार्थ की प्रधानता है? यहाँ अन्यपदार्थ, पूर्वपदार्थ, उत्तरपदार्थ इन तीन अर्थो के मध्य में अन्यतम का प्राधान्य सम्भव है, अतः पूर्वपक्ष है। जब जाति अर्थ में ब्राह्मणशब्द शक्त होगा तब 'अविद्यमानं ब्राह्मण्यं यस्य सः अब्राह्मणः' इस विग्रह में अन्य पदार्थ क्षत्रिय आदि का प्राधान्य होगा। जब भेदसामान्य का वाचक नञ्पद होगा एवं ब्राह्मण आदि के द्वारा विशेषित करेंगे तब पूर्वपदार्थ प्रधान होगा। जब दुरुपदेश अथ वा मिथ्याज्ञान के द्वारा ब्राह्मणशब्द क्षत्रिय आदि में प्रयुक्त होगा एवं नञ् के द्वारा शब्दशक्तिस्वभाववश ब्राह्मणपदार्थ की निवृत्ति होगी तब उत्तरपदार्थ प्रधान होगा। यद्यपि यहाँ पर अर्थ का निर्देश नही है, तथापि शब्दशक्तिस्वभाववश उक्त तीनों अर्थो का प्राधान्य सम्भव है, अतः पूर्वपक्ष है। द्वन्द्व की तरह स्वतन्त्ररूप से दो पदार्थो का प्राधान्यबोध नहीं हो पा रहा है, अतः उभयपदार्थप्राधान्य की शङ्का नहीं की गयी है। इस तरह तीन पक्ष सम्भव होने पर अल्पप्रतिविधेयपक्ष का आश्रयण कर उत्तरपक्ष देते हैं-**उत्तरेति**। 'अब्राह्मणः' इस समास में उत्तरपदार्थ का प्राधान्य है। आक्षेपक-**यद्युत्तरेति**। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृत समास में उत्तरपदार्थ का प्राधान्य मानेंगे तो 'अब्राह्मणमानय' ऐसा कहने से 'आनयन' आदि क्रिया उत्तरपदार्थ ब्राह्मण में ही होगी तथा उसी का आनयन प्राप्त होगा; जब कि यहाँ ब्राह्मणभिन्न सदृश क्षत्रिय आदि का आनयन इष्ट है।

उत्तरभाष्य—**अन्यपदार्थेति**। हम यहाँ अन्यपदार्थ का प्राधान्य मानेंगे। इस पक्ष में 'अविद्यमानं ब्राह्मण्यं यस्य सः अब्राह्मणः' ऐसा विग्रह होने से अन्यपदार्थ क्षत्रिय आदि का ही आनयन होने से दोष नहीं रहेगा। आक्षेपक-**यद्यन्येति**। यदि नञ्समास में अन्यपदार्थ का प्राधान्य मानेंगे तो 'अवर्षा हेमन्तः' में दोष होगा। 'अविद्यमाना वर्षा यस्मिन् सः' इस विग्रह में समास होने पर अन्यपदार्थ हेमन्त प्रधान हो रहा है; अतः समस्त 'अवर्षा' पद भी हेमन्त का लिङ्गभजन करने से पुल्लिङ्ग होने लगेगा।

उत्तरभाष्य—**पूर्वपदार्थेति**। ब्राह्मण आदि के द्वारा नञ् को विशेषित कर 'अब्राह्मणः' को पूर्वपदार्थप्रधान कहेंगे तो इसका पूर्वपद नञ् अव्यय है; अतः समस्त पद 'अब्राह्मणः' की भी अव्ययसंज्ञा होने से विभक्ति का लुक् तथा अलिङ्गत्वरूप दोष की आपत्ति होगी।

नैष दोषः। पाठेनाऽव्ययसंज्ञा क्रियते, न च नञ्समासस्तत्र पठ्यते। यद्यपि नञ्समासो न तत्र पठ्यते, नञ् तु पठ्यते। पाठेनाऽव्ययसंज्ञायां सत्यामभिधेयवल्लिङ्गवचनानि भवन्ति। यश्चेहाऽर्थोऽभिधीयते न तस्य लिङ्गसंख्याभ्यां योगोऽस्ति। नेदं वाचनिकमलिङ्गता, असंख्यता वा। किं तर्हि? स्वाभाविकमेतत्। तद्यथा-समानमीहमानानां चाऽधीयानानां च केचिदर्थैर्युज्यन्तेऽपरे न। न चेदानीं कश्चिदर्थवानिति कृत्वा सर्वैरर्थवद्भिः शक्यं भवितुं, कश्चिद् वाऽनर्थक इति सर्वैरनर्थकैः। तत्र किमस्माभिः शक्यं कर्तुं यन्नञः प्राक्समासाल्लिङ्गसंख्याभ्यां योगो नास्ति, समासे च भवति। स्वाभाविकमेतत्।

उत्तरपक्षी आचार्य पूर्वपदार्थप्रधानपक्ष में प्राप्त दोष का वारण करते हैं-**नैष दोष इति**। पूर्वपदार्थप्रधानपक्ष में अव्ययसंज्ञा की आपत्ति नहीं रहेगी। वह इस तरह कि 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' १.१.३७ इस गणपाठ के द्वारा अव्ययसंज्ञा की जा रही है। स्वारादि गण में नञ्शब्द पठित है; अतः उसी की अव्ययसंज्ञा होगी। 'अब्राह्मणः' का गण में पाठ नहीं होने से अव्ययंसज्ञा की आपत्ति नहीं रही। आक्षेपक-**यद्यपीति**। नञ्समास का स्वारादिगण में पाठ नही होने से अव्ययसंज्ञा भले ही न हो, परन्तु 'अब्राह्मणः' में पूर्वपद अव्यय नञ् का अर्थ की प्रधानता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। चुँकि नञ् में लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं होता है, अतः नञ्समास में भी लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं हो सकेंगा। स्वरादिगण में पाठ के द्वारा नञ्पद की अव्ययसंज्ञा की गयी है, अतः उसमें लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं होगा। इस तरह जहाँ नञ्समास में पूर्वपद नञर्थ की प्रधानता हो रही है वहाँ पर भी लिङ्ग और संख्या का अन्वय नही होना चाहिये। अन्य आचार्य-**नेदमिति**। यहाँ लिङ्ग और संख्या का अन्वय नही होना वचनप्रयोज्य नही है, अपि तु शब्दशक्तिस्वभाववश पद वाक्य में असत्त्वरूप अर्थ का बोधक होगा तथा समास में सत्त्वरूप अर्थ का बोधक होगा। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। जैसे समान काल में एक ही कक्षा में एक गुरु द्वारा अनेक शिष्यों का एक ही विषय में उपदेश होता है। उसमें जो तीक्ष्णबुद्धि का विद्यार्थी होता है, उसे विषय का बोध हो जाता है तथा अन्यों को विषय का बोध नही होता है। यहाँ एक को विषय का बोध हो जाने पर सभी को विषय का बोध नहीं होता है, एवम् एक को विषय का अबोध हो जाने पर सभी को विषय का अबोध नहीं होता है। समास से पूर्व नञ्पद में लिङ्ग और संख्या का योग नही है तथा समास के बाद नञ् में लिङ्ग और संख्या का योग हो रहा है। इसमें हम सभी कुछ भी नहीं कर सकते हैं। ऐसा शब्दशक्तिस्वभाववश होता है।

आश्रयतो वा लिङ्गवचनानि **अथ वाऽऽश्रयतो लिङ्गवचनानि भविष्यन्ति। गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति। तद्यथा-'शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बला इति,-यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तद् गुणस्याऽपि भवति। एवमिहापि यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति समासस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तत्समासस्याऽपि भविष्यति। अथ वा पुनरस्तु-उत्तरपदार्थप्रधानः। ननु चोक्तम् 'अब्राह्मणमानये'त्युक्ते ब्राह्मणमात्रस्यानयनं प्राप्नोती'ति।**

अन्य प्रकार से भी नञ्समास में लिङ्ग और संख्या का अन्वय स्पष्ट करते हैं-**आश्रयतो वेति**। गुणवाचकशब्दों का लिङ्ग तथा वचन **आश्रय**=द्रव्य के द्वारा होता है। जैसे नपुंसक और एकवचन में शक्त वस्त्र पद के साथ गुणवचन शुक्ल पद भी नपुंसक तथा एकवचन होता है-शुक्लं वस्त्रम्। स्त्रीवाची शाटी के साथ अन्वित होकर स्त्रीवाची ही होता है। जैसे-शुक्ला शाटी। पुल्लिँङ्ग तथा एकवचनान्त, द्विवचनान्त एवं बहुवचनान्त के साथ अन्वित होकर पुल्लिँङ्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा एकवचनान्त आदि होता है। जैसे-'शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बलाः। यहाँ गुणवाचिपद द्रव्यवाचि का आश्रयण कर रहा है, एवम् उस द्रव्यवाचिपद का जो लिङ्ग और वचन है वही लिङ्ग और वचन गुणवाचिपद का भी हो रहा है। वैसे प्रकृत में भी नञ्समास जिस द्रव्य का आश्रयण कर रहा है, तथा उस द्रव्य का जो लिङ्ग और वचन है वही लिङ्ग और वचन नञ् का भी होगा। 'अब्राह्मणः' इस समास में नञ्पद ब्राह्मणपद का आश्रयण कर रहा है; अतः ब्राह्मणपद का जो लिङ्ग और वचन, वही नञ्पद का भी होगा। आश्रयद्वारा लिङ्ग और संख्या का बोध मानने पर भी 'अवर्षा हेमन्तः' 'अनर्थः स्त्री' इत्यादि में हेमन्त आदि आश्रयगत लिङ्ग और संख्या की आपत्ति होगी, इसे वारण करने के लिए अन्य पक्ष भी देते हैं-**अथ वेति**। अथ वा नञ्समास को उत्तरपदार्थप्रधान ही मानिये। इस पक्ष में आक्षेपक ने दोष दिया था-'अब्राह्मणः' इस समस्तस्थल में उत्तरपद ब्राह्मण है; अतः उसकी प्रधानता होने पर 'अब्राह्मणमानय' ऐसा कहने पर ब्राह्मणमात्र के आनयन की आपत्ति होगी; जब कि यहाँ ब्राह्मणभिन्न ब्राह्मणसदृश क्षत्रिय आदि का आनयन इष्ट है'।

नैष दोषः। इदं तावदयं प्रष्टव्यः-अथेह 'राजपुरुषमानये'त्युक्ते पुरुषमात्रस्यानयनं कस्मान्न भवति? अस्त्यत्र विशेषः-राजा विशेषकः प्रयुज्यते, तेन-विशिष्टस्याऽऽनयनं भवति। इहापि तर्हि नञ्विशेषकः प्रयुज्यते, तेन-विशिष्टस्याऽऽनयनं भविष्यति। कः पुनरसौ? निवृत्तपदार्थकः। यदा पुनरस्य पदाऽर्थो निवर्तते किं स्वाभाविकी निवृत्तिः, आहोस्विद्वाचनिकी? किं चातः? यदि स्वाभाविकी, किं नञ्प्रयुज्यमानः करोति? अथ वाचनिकी, तद्वक्तव्यं'नञ्प्रयुज्यमानः पदार्थान्निवर्त्तयती'ति।

वस्तुतः यहाँ यह दोष नहीं रहेगा। यहाँ आक्षेपक से पूछना चाहिये-'उत्तरपदार्थप्रधानस्थल में 'राजपुरुषमानय' ऐसा कहने से पुरुषमात्र का आनयन क्यों नहीं होता है? इसका कारण है-यहाँ पुरुष में राजपद विशेषण है; अतः राजविशेषणविशिष्ट पुरुष का ही आनयन होता है। उसी तरह 'अब्राह्मणः' इस नञ्समासस्थल में उत्तरपदार्थप्रधान होने पर भी उत्तरपदार्थ में नञ्पदार्थ भेदक है; अतः नञ्विशिष्ट उत्तरपदार्थ का ही आनयन होगा, केवल उत्तरपदार्थ का नहीं।

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। नञ्विशिष्ट उत्तरपदार्थ क्या है, जिसका आनयन प्राप्त हो रहा है?

उत्तरभाष्य—**निवृत्तेति**। 'निवृत्तः पदार्थो मुख्यं ब्राह्मण्यं यस्मिन् स निवृत्तपदार्थकः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिसमें मुख्य पदार्थ ब्राह्मण्यजाति की निवृत्ति हो उसे निवृत्तपदार्थक कहते हैं। वह क्षत्रिय आदि होगा। ब्राह्मणभिन्न ब्राह्मणसदृश होने से नञ्पद के द्वारा अध्यारोपित ब्राह्मण्य द्योत्य है। अब नञ्पद का वाचकत्वद्योतकत्वपरीक्षण के लिए कहते हैं-**यदा पुनरिति**। क्या 'अब्राह्मणः' में पूर्वपद नञ् के द्वारा उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति का द्योतन होता है, अथ वा जैसे स्थित विष की निवृत्ति मन्त्र के द्वारा होती है वैसे पूर्वपद नञ् के द्वारा स्थित उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति की जा रही है? स्वाभाविकीनिवृत्तिपक्ष में दोष देते हैं-**यदीति**। यदि उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति स्वाभाविकी है तब समास में स्वयमू उसकी निवृत्ति हो जायेगी, उसके लिए नञ्पद का प्रयोग व्यर्थ है। अथ वा यदि वाचनिकी निवृत्ति है तो उसके लिए 'प्रयुज्यमान नञ् पदार्थो को निवृत्त करा देता है' ऐसा वचन कहना चाहिये।

एवं तर्हि * स्वाभाविकी निवृत्तिः * **ननु चोक्तं-'किं नञ्प्रयुज्यमानः करोती'ति। नञ्प्रयुज्यमानः पदार्थं निवर्त्तयति। कथम्?**

अन्य आचार्य-**एवं तर्हीति**। यदि वाचनिकीनिवृत्तिपक्ष में अतिरिक्त वचन पढने का गौरव हो रहा है तो आप उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति स्वाभाविकी ही मानिये। स्वाभाविकीनिवृत्तिपक्ष में आप ने आक्षेप किया था कि 'समास के द्वारा ही उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति हो जाने पर भी जो नञ् का प्रयोग किया है, वह किस लिए है'? तो इसका उत्तर होगा-प्रयुज्यमान नञ् भी उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति कराता है'। वह कैसे कराता है—

* कीलप्रतिकीलकवत् * **तद्यथा-कील आहन्यमानः प्रतिकीलं निर्हन्ति। यद्येतन्नञो माहात्म्यं स्यात्-न जातु चिद्राजानो हस्त्यश्वं बिभृयुर्नेत्येव राजानो ब्रूयुः। एवं तर्हि स्वाभाविकी निवृत्तिः। ननु चोक्तं-'किं नञ्प्रयुज्यमानः करोती'ति** * नञ्निमित्ता तूपलब्धिः * **तद्यथा-समन्धकारे द्रव्याणां समवस्थितानां प्रदीपनिमित्तं दर्शनम्। न च तेषां प्रदीपो निर्वर्तको भवति।**

इसे उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हैं-**कीलप्रतिकीलकवदिति**। जैसे बड़े **कील**=काँटी आदि के द्वारा **प्रतिकील**=छोटे कील आदि उखाड़ा जाता है वैसे क्षत्रिय में सादृश्य आदि के द्वारा उत्पन्न ब्राह्मणज्ञान की निवृत्ति नञ्पद के प्रयोग के द्वारा होती है। अन्य आचार्य उत्तरपक्षी का यथोक्त अभिप्राय नहीं समझ कर नञ्पद के द्वारा पदार्थ की ही निवृत्ति मान कर अपना पक्ष रखते हैं-**तद्यथेति**। आप कह रहे हैं कि जैसे बड़ा कील छोटे कील को **निवृत्त**=उखाड़ देता है, वैसे प्रयुज्यमान नञ् भी उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की निवृत्ति करा देगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि नञ्पद का इतना माहात्म्य है तो 'नञ्' ऐसा उच्चारण करके ही राजा को शत्रुओं की निवृत्ति करा देनी चाहिये। इसके लिए हाथी, घोडा का पालन कर सेना सजाने की आवश्यकता नही है। अब उत्तरपक्षी आचार्य अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हैं-**एवं तर्हीति**। नञ्समासस्थल 'अब्राह्मणः' में उत्तरपदार्थ ब्राह्मण की स्वाभाविकी निवृत्ति मानिये। स्वाभाविकीनिवृत्तिपक्ष में ब्राह्मण की स्वाभाविकीनिवृत्ति होने पर फिर नञ्पद का प्रयोग किस लिए है? इसका उत्तर देते हैं-**नञ्निमित्तेति**। जैसे प्रगाढ अन्धकार में स्थित वस्तु की उपलब्धि दीपक आदि के द्वारा होती है। दीपक उन वस्तुओं का प्रकाशकमात्र होता है। दीपक से वे वस्तु उत्पन्न नही होते हैं। वैसे स्वाभाविक निवृत्त उत्तरपदार्थ ब्राह्मण का नञ्पद द्योतन करेगा।

यदि पुनरयं निवृत्तपदार्थको, ब्राह्मणशब्दः किमर्थं प्रयुज्यते? एवं यथा विज्ञायेत-'अस्य पदार्थो निवर्तते' इति। 'ने'त्युक्ते सन्देहः स्यात्-'कस्य पदार्थो निवर्त्तते' इति। तत्राऽसन्देहाऽर्थो ब्राह्मणशब्दः प्रयुज्यते। एवं चैतत्।

आक्षेपक—**यदि पुनरिति**। 'निवृत्तः पदार्थो यस्मादसौ निवृत्तपदार्थकः' 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से समासान्त कप् प्रत्यय है। यदि 'अब्राह्मणः' में ब्राह्मण-पदार्थ निवृत्त है तब उसका प्रयोग क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**एवं यथेति**। 'अमुक पद के पदार्थ की निवृत्ति हो गयी' इसका बोध कराने के लिए नञ्पद का प्रयोग है। 'अब्राह्मणः' में ब्राह्मणपद का प्रयोग होने से ब्राह्मणपदार्थ की निवृत्ति का बोध होता है। यदि ब्राह्मणपद का प्रयोग नहीं करके मात्र नञ्पद का प्रयोग करते तो सन्देह होता-'किस पदार्थ की निवृत्ति हुई? परन्तु नञ्पद के साथ ब्राह्मणपद का प्रयोग होने पर यह सन्देह नहीं होता है; अतः असन्देह के लिए ब्राह्मणपद का प्रयोग है।

अथ वा सर्व एते शब्दा गुणसमुदायेषु वर्तन्ते-ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति।

अब अन्य प्रकार से भी नञ् का द्योकत्व बताते हैं-**अथ वेति**। यहाँ भाष्य में गुणशब्द पराश्रय धर्ममात्र का वाचक है; अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह शब्द धर्ममात्र में शक्त है। जिसके धर्म की स्वाभाविकी निवृत्ति नञ्पद से होती है, उसका प्रयोग होता है।

तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारकम्।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मशास्त्र के अनुसार ब्राह्मण के गुणों को कहते हैं-**तपः श्रुतमिति**। **तपः**=चान्द्रायण आदि कर्म, **श्रुतम्**=वेद, वेदाङ्ग आदि का अध्ययन, **योनि**=ब्राह्मण से ब्राह्मणी में जन्म लेना, यह तीनो **ब्राह्मणकारकम्**=(यहाँ शेषषष्ठीसमास है) ब्राह्मणव्यवहार के कारण हैं। उक्त तीनों धर्मसमुदाय के नहीं होने पर भी एकदेश में भी ब्राह्मणव्यवहार दिखाते हैं-**तपःश्रुताभ्यामिति**। तपः एवं श्रुत से विहीन होने पर भी मात्र ब्राह्मण से ब्राह्मणी में उत्पन्न होने से ब्राह्मणव्यवहार होता है।

तथा-'गौरः शुच्याचारः पिङ्गलः कपिलकेशः' इत्येतानप्यभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्ति। सुमदायेषु च वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते। तद्यथा-पूर्वे पञ्चालाः। उत्तरे पञ्चालाः। तैलं भुक्तम्। घृतं भुक्तम्। शुक्लो नीलः कपिलः कृष्ण इति। एवमयं समुदाये प्रवृत्तो ब्राह्मणशब्दोऽवयवेष्वपि वर्तते जातिहीने गुणहीने च। गुणहीने तावद्-'अब्राह्मणोऽयं यस्तिष्ठन् मूत्रयति' 'अब्राह्मणोऽयं यस्तिष्ठन् भक्षयति'। जातिहीने सन्देहाद्दुरुपदेशाच्च ब्राह्मणशब्दो वर्तते। सन्देहात्तावद्-गौरं शुच्याचारं पिङ्गलं कपिलकेशं दृष्ट्वाऽध्यवस्यति-'अब्राह्मणोऽय'मिति। ततः पश्चादुपलभते नाऽयं ब्राह्मणः-'अब्राह्मणोऽय'मिति। तत्र सन्देहाद् ब्राह्मणशब्दो वर्तते। जातिकृता चाऽर्थस्य निवृत्तिः। दुरुपदेशाद्-दुरुपदिष्टमस्य भवति,-'अमुस्मिन्नवकाशे ब्राह्मणस्तमानये'ति। स तत्र गत्वा यं पश्यति तमध्यवस्यति-'ब्राह्मणोऽय'मिति। ततः पश्चादुपलभतेनाऽयं ब्राह्मणः, 'अब्राह्मणोऽय'मिति निर्ज्ञातं तस्य भवति। तत्र दुरुपदेशाच्च ब्राह्मणशब्दो वर्तते। जातिकृता चाऽर्थस्य निवृत्तिः। आतश्च सन्देहाद् दुरुपदेशाद्वा। न ह्ययं कालं माषराशिवर्णमापणे आसीनं दृष्ट्वाऽध्यवस्यति 'ब्राह्मणोऽय'मिति। निर्ज्ञातं तस्य भवति।

अब लोक में प्रसिद्ध बाहुल्येन तथादृष्ट ब्राह्मणधर्म बताते हैं-**गौर इति**। गौर, पवित्र आचरण, पिङ्गलवर्ण, कपिलकेश, इतना गुण जिसमें हो वह ब्राह्मण है, ऐसा कुछ लौकिक लोग मानते हैं। यहाँ गौरपद का अर्थ है—

अष्टवर्षा तु या दत्ता, श्रुतशीलसमन्विते।
सा गौरी तत्सुतो यस्तु, स गौरः परिकीर्तितः।।

धर्मसमुदाय नही होने पर धर्मैकदेश में भी समुदायवाचिशब्द का प्रयोग होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है; इसमें उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-**तद्यथेति**। पाञ्चाल, तैल, घृत, शुक्ल, नील, कपिल और कृष्णशब्द समुदायवाची हैं। परन्तु एकदेश में भी इनका प्रयोग देखा जाता है-'पूर्व पाञ्चाल, उत्तर पाञ्चाल'। घृत और तैल के एकदेश का भोग करने पर भी 'घृत खा लिया, तैल खा लिया' ऐसा प्रयोग होता है। एवं शुक्ल, नील, कपिल और कृष्ण का एकदेश होने पर भी शुक्ल, नील, कपिल और कृष्ण का प्रयोग होता है। इसी तरह तपः, श्रुत एवं योनि एतत्त्रितयसमुदाय में प्रवृत्त ब्राह्मणशब्द एकदेश योनि में भी है तथा जातिहीन एवं गुणहीन योनि में भी व्यवहृत होता है। गुणहीन का उदाहरण देते हैं-**गुणहीने तावदिति**। तपः और श्रुत के अभाव में निन्दा के लिए यहाँ अब्राह्मणशब्द का प्रयोग है। यहाँ जातिमात्र अवयव में समुदायरूप का आरोप होने से ब्राह्मणशब्द का प्रयोग है। यहाँ नञ्पद के द्वारा तपः और श्रुत की स्वाभाविकी निवृत्ति द्योत्य है। पूर्वपद और उत्तरपद की भिन्नविषयता की आशङ्का नहीं करनी चाहिये। उक्त दोनों ही पद समुदायपरक होने से एकदेशनिवृत्ति का प्रतिपादन करते हैं। सन्देह अथ वा दुष्ट उपदेश के द्वारा ब्राह्मणशब्द जातिहीन अर्थ में व्यवहृत होता है। सन्देहवश ब्राह्मणशब्द का जातिहीन में प्रयोग दिखाते हैं-**सन्देहादिति**। गौर, पवित्र आचरण तथा कपिलकेश देख कर कोई अब्राह्मण को सन्देहवश ब्राह्मण निश्चय कर लेता है। सन्देह में निमित्त होने से यहाँ गुणशब्द को सन्देहपद से कहा गया है। गुण में सन्देह होने पर गुणसमुदाय का सन्निधि प्राप्त नही करके जब अन्य प्रमाण के द्वारा जाति का अभावबोध होता है तब उसका द्योतन के लिए नञ्पद का प्रयोग होता है-**अब्राह्मणोऽयमिति**। यहाँ सन्देह के द्वारा अब्राह्मण में ब्राह्मणशब्द का प्रयोग होता है। यहाँ **अर्थस्य**=समुदायरूप अर्थ का निवृत्ति जातिकृत होती है। इसका भाव इस प्रकार है-'एकदेश नही होने पर समुदाय निवृत्त है' ऐसा कहा जाता है। एवम् एकदेश होने पर भी समुदायवाची का सद्भाव माना जाता है। एकदेश के रहने पर समुदाय का रहनारूप व्यापार तथा एकदेश के नही रहने पर समुदाय का नही-रहनारूप व्यवहार का प्रयोग लोक में देखा जाता है। दुरुपदेश से जातिहीन अर्थ में ब्राह्मणशब्द का प्रयोग दिखातें हैं-**दुरुपदेशादिति**। किसी ने किसी को उपदेश किया-'अमुक स्थान में ब्राह्मण है, उसे ले आवो'। आनेता उक्त स्थान पर जा कर जिस किसी को भी ब्राह्मण समझ लेता है तथा उसे ले आता है। बाद में धर्म के आधार पर निश्चय करता है-'यह ब्राह्मण नही है'। यहाँ दुरुपदेश द्वारा ब्राह्मणशब्द का प्रयोग जातिहीन अर्थ में है। यहाँ धर्मसमुदाय का अभाव ही अब्राह्मण से ब्राह्मण की निवृत्ति कराता है। इस तरह सन्देह तथा दुरुपदेश के द्वारा जातिहीन में भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणशब्द का प्रयोग होता है। कोई **माषराशिवर्ण**=कृष्णवर्ण का काल को बाजार में बैठा देख कर उसे ब्राह्मण नही मान लेता है। वहाँ भ्रान्ति का कोई कारण नही होने से ज्ञाता को यथाशक्ति वस्तुतत्त्व का ज्ञान होता है। ब्राह्मण्यारोप नहीं होने से वहाँ ब्राह्मणशब्द का प्रयोग नहीं होता है; अतः माषराशिवर्ण काल के लिए अब्राह्मणशब्द का प्रयोग भी नहीं होगा। इस तरह यहाँ भाष्यकार ने दोषपरिहार के द्वारा उत्तरपदार्थप्राधान्य की स्थापना कर दी।

इदं खल्वपि भूय उत्तरपदार्थप्राधान्ये सति संगृहीतं भवति। किम्? 'अनेक'मिति। किमत्र संगृहीतम्? एकवचनम्। कथं पुनरेकस्य प्रतिषेधेन द्विबहूनां सम्प्रत्ययः स्यात्? प्रसज्याऽयं क्रियागुणौ ततः पश्चान्निवृत्तिं करोति। तद्यथा-आसय शायय भोजय। अनेकमिति।

अब भाष्यकार उत्तरपदार्थप्रधान में भी भाष्य का उपचय करते हैं-**इदमिति**। नञ्समास को उत्तरपदार्थप्रधान मानने पर 'न एकमनेकम्' इस नञ्समासस्थल में उत्तरपदार्थ एकवचन का प्राधान्य भी संगृहीत होता है। उत्तरपदार्थ का प्राधान्य होने पर ही प्रधानगतसंख्याश्रय एकवचन सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। 'न एकमनेकम्' इस नञ्पद के द्वारा एक का निषेध हो रहा है। एक के निषेध होने से बहुत का बोध कैसे सम्भव है? यदि अनेकशब्द बहुवचन का वाचक है तो अनेकपदोत्तर बहुवचन प्राप्त होना चाहिये था। यदि अनेकपद के द्वारा एकत्वमात्र का निषेध होता है तो 'अनेको जन आगतः' इस वाक्य से बहुत्व अर्थ का बोध नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**प्रसज्यायमिति**। यह नञ्पद क्रिया और गुण का विधान कर बाद में द्रव्य की निवृत्ति कराता है। गुण और क्रिया निराश्रित नहीं रहते हैं; अतः उसका आश्रय अनियतसंख्यद्रव्य का आक्षेप होने पर एक के निषेध होने पर बहुत का बोध हो जायेगा; इसे प्रसज्यप्रतिषेध कहते हैं। परन्तु पर्युदासपक्ष में अनेकशब्द का अर्थ द्वित्व आदि संख्यायुक्त है; अतः जैसे क्षत्रिय आदि में ब्राह्मणत्व का आरोप कर निषेध किया जाता है, वैसे द्वित्व और बहुत्व में एकत्व का आरोप कर उसका निषेध किया जाता है। इस तरह जैसे 'अब्राह्मणः' शब्द से क्षत्रिय आदि वाच्य हैं, वैसे अनेकपद से एकत्वसंख्याभिन्न संख्यायुक्त का बोध होगा। क्रिया का उदाहरण देते हैं-**आसयेति**। 'अनेकमासय, अनेकं शायय, अनेकं भोजय' ऐसा कहने से दो अथ वा बहुत का बैठना, शयन करना एवं भोजन करना' ऐसा अर्थबोध होता है। 'अनेकमस्मिन् रूपं रसः' यह गुण का उदाहरण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि तावदत्रैतच्छक्यते वक्तुं यत्र क्रियागुणौ प्रसज्येते। यत्र तु खलु पुनर्न प्रसज्येते तत्र कथम्-'अनेकं तिष्ठती'ति? भवति चैवंजातीयकानामप्येकस्य प्रतिषेधेन द्विबहूनां सम्प्रत्ययः। तद्यथा-'न न एकं प्रियं' 'न न एकं सुख'मिति।

प्रश्नभाष्य—**यद्यपीति**। जहाँ क्रिया और गुण का विधान हो रहा है वहाँ बहुत्व का बोध हो सकता है, परन्तु जहाँ पहले निषेध है तथा बाद में क्रिया और गुण का विधान है वहाँ बहुत्व का बोध कैसे होगा? जैसे 'अनेकं तिष्ठति' यहाँ पर पहले निषेध है तथा बाद में गुण और क्रिया का विधान है।

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। पहले प्रतिषेध तथा बाद में विधान होने पर भी एक के निषेध होने से बहुत्व का बोध होता है। इसका भाव इस प्रकार है- आख्यात का बाद में प्रयोग हो, अथ वा पहले प्रयोग हो? धात्वर्थ के द्वारा कारक का अवश्य आक्षेप होता है। वहाँ एक के निषेध से ही द्वित्व आदि का अन्वयी साधन का आक्षेप होता है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**न न एकमिति**। यहाँ 'आबाधे च' ८.१.१० के द्वारा नञ्पद का निर्वचन है। 'एक प्रिय नही है, एक सुख नही है' ऐसा एक के निषेध होने से ही द्वित्व आदि का बोध होता है। एकप्रतिषेधसामर्थ्य से ही यहाँ संख्यान्तरयुक्त वस्तु की प्रतीति होती है; अन्यथा उक्त वाक्य के स्थान पर 'न प्रियम्' 'न सुखम्' इतना ही कहते। इस तरह जहाँ वाक्य में भी सामर्थ्यवश अन्यसंख्या की गति होती है वहाँ समास में वाक्य विलक्षणधर्मप्रादुर्भाव का हेतु क्यों नही होगा?

इहाऽब्राह्मणत्वमब्राह्मणता परत्वात् त्वतलौ प्राप्नुतः। तत्र को दोषः? स्वरे हि दोषः स्यात्। 'अब्राह्मणत्व'मित्येवं स्वरः प्रसज्येत। 'अब्राह्मणत्व'मिति चेष्यते * नञ्समासे भाववचने उक्तम् * किमुक्तम्? 'त्वतल्भ्यां नञ्समासः पूर्वविप्रतिषिद्धं त्वतलोः स्वरसिद्ध्यर्थ'मिति।

आक्षेपक—**इहेति**। 'न ब्राह्मणस्य भावः' इस वाक्य में एक साथ भाव में त्व और तल् प्रत्यय तथा निषेध इन दोनों की विवक्षा होने पर भावार्थक प्रत्यय तथा समास, इन दोनों की एक साथ प्रवृत्ति होने से परविप्रतिषेध के द्वारा भावार्थक प्रत्यय होगा। बाद में पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा नञ्समास होगा। इस तरह यहाँ 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर होने से पद आद्युदात्त होने लगेगा; जब कि यहाँ प्रत्ययस्वर इष्ट है; वह तभी सिद्ध होता है जब नञ्समास करने पर त्व और तल् प्रत्यय किया जाये।

उत्तरभाष्य—**नञ्समास इति**। 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ सूत्र पर त्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और तल् की स्वरसिद्धि के लिए यहाँ पूर्वविप्रतिषेध इष्ट है; अतः पहले समास होगा तथा बाद में प्रत्यय होंगे। इससे प्रत्ययस्वर हो जायेगा। {नञ्}।

ईषदकृता २.२.७

***ईषद् गुणवचनेन* ईषद् गुणवचनेनेति वक्तव्यम्। अकृतेति ह्युच्यमाने इह च प्रसज्येत-ईषद्गार्ग्य इति, इह च न स्याद्-ईषत्कडार इति।।**

वार्तिक—**ईषदिति**। गुणवचन के साथ ईषत् पद का समास कहना चाहिये। जैसे 'ईषद्रक्तम्। कृद्भिन्न के साथ समास कहने पर 'ईषद्गार्ग्यः' इस तद्धितान्त के साथ समास की आपत्ति होगी। एवम् 'ईषत्कडारः' इस इष्ट स्थल में समास नहीं हो सकेगा। {ईष-}।

षष्ठी २.२.८

***कृद्योगा च* कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम्। इध्मप्रव्रश्चनः। पलाशशातनः। किमर्थमिदमुच्यते? 'प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यते' इति वक्ष्यति। तस्याऽयं पुरस्तादपकर्षः क्रियते। का पुनः षष्ठी प्रतिपदविधाना, का च कृद्योगा? सर्वा षष्ठी प्रतिपदविधाना शेषलक्षणां वर्जयित्वा। 'कर्तृकर्मणोः कृती'ति तु या षष्ठी सा कृद्योगा।**

'सह सुपा' २.१.४ तथा 'तत्पुरुषः' २.१.२२ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'षष्ठ्यन्त का समर्थसुबन्त के साथ समास हो तथा वह तत्पुरुषंज्ञ हो'। राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः।

वार्तिक—**कृद्योगेति**। कृदन्त के योग में विहित षष्ठी का भी समास कहना चाहिये। 'इध्मस्य प्रव्रश्चनः इध्मप्रव्रश्चनः, पलाशस्य शातनः पलाशशातनः'। यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५ से कृद्योग में षष्ठी है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'इध्मप्रव्रश्चनः' 'पलाशशातनः' में 'षष्ठी' इस सूत्र से ही समास हो जायेगा; फिर इसी के लिए 'कृद्योगा च' वार्तिक का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**प्रतिपदविधानेति**। आचार्य 'न निर्धारणे' २.२.१० सूत्र पर 'प्रतिपदविधाना च' ऐसा प्रतिषेधवार्तिक पढेंगे। इससे प्रतिपदविधाना षष्ठी का समासनिषेध हो जायेगा। उसी का अपवादवार्तिक 'कृद्योगा च' यह पहले पढ दे रहे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**का पुनरिति**। प्रतिपदविधाना षष्ठी और कृद्योगा षष्ठी में क्या भेद है?

उत्तरभाष्य—**सर्वेति**। शेषलक्षणा षष्ठी को छोड़ कर साक्षात् धातुविशेष तथा कारकविशेष का निर्देश कर विधान होने से सभी षष्ठी प्रतिपदविधाना षष्ठी होती है। परन्तु कृत्शब्द का निर्देश कर जो षष्ठी विहित है, उसे कृद्योगा षष्ठी कहते हैं। जैसे 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५।

*** तत्स्थैश्च गुणैः * तत्स्थैश्च गुणैः षष्ठीगुणैः षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम्। ब्राह्मणवर्णः। चन्दनगन्धः। पटहशब्दः। नदीघोषः। * न तु तद्विशेषणैः * न तु तद्विशेषणैरिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-घृतस्य तीव्रो गन्धः। चन्दनस्य मृदुरिति। किमर्थमिदमुच्यते? 'गुणेन ने'ति प्रतिषेधं वक्ष्यति तस्याऽयं पुरस्तादपकर्षः। किं पुनः कारणं गुणेन नेत्युच्यते, न पुनर्गुणवचनेन नेत्युच्येत?**

वार्तिक—**तत्स्थैश्चेति**। षष्ठीस्थगुण के साथ षष्ठ्यन्त का समास कहना चाहिये। जैसे 'ब्राह्मणस्य वर्णो ब्राह्मणवर्णः, चन्दनस्य गन्धः चन्दनगन्धः, पटहस्य शब्दः पटहशब्दः, नद्या घोषो नदीघोषः। यहाँ ब्राह्मण, चन्दन, पटह और नदी पद के उत्तर में षष्ठी है तथा वर्ण, गन्ध, शब्द और घोष क्रमशः षष्ठ्यन्त ब्राह्मण आदि में स्थित हैं; इनका वार्तिक से समास कहा गया है। वार्तिक में तद्शब्दसन्निधान से गुण विवक्षित है; अतः स्वात्मा में जो गुण अवस्थित है, उनके साथ समास कहा है। वार्तिक-**न तु तद्विशेषणैरिति**। षष्ठीस्थ गुण का विशेषण के साथ षष्ठीसमास नहीं होता है, ऐसा कहना चाहिये। यहाँ तद् इस पद से गुण वाच्य है; अतः गुणों का जो विशेषण, उसके साथ समास नहीं होता है। जैसे 'घृतस्य तीव्रो गन्धः, चन्दनस्य मृदुः गन्धः। यहाँ षष्ठीस्थ गन्ध में तीव्र एवं मृदु विशेषण है; अतः इसके साथ षष्ठी का समास नहीं होगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'तत्स्थैश्च गुणैः' वार्तिक का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**गुणेन नेति**। सूत्रकार 'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' २.२.११ सूत्र में गुणवाची के साथ षष्ठीसमास का निषेध करेंगे। षष्ठीस्थ गुण के साथ षष्ठी का समास इष्ट है; वह गुण के साथ षष्ठी का निषेध होने से निषेध हो जा रहा है; अतः षष्ठीस्थ गुण के साथ षष्ठी का समासविधान के लिए वार्तिक का अवतरण किया गया है।

आक्षेपक का प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। आचार्य गुण के साथ षष्ठी का समासनिषेध क्यों कर रहे हैं? गुणवचन के साथ षष्ठीसमास का निषेध क्यों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं करते हैं; इससे गुणोपसर्जनद्रव्यवाची के साथ समास का निषेध होगा, अतः केवल गुणवाची रूप आदि के साथ समास का निषेध होगा?, यह आक्षेपक का अभिप्राय है।

नैवं शक्यम्। इह हि न स्यात्-'काकस्य कार्ष्ण्यं' 'कण्टकस्य तैक्ष्ण्यं' 'बलाकायाः शौक्ल्य'मिति। एतदेव खल्वपि तस्मिन् योगे उदाहरणम्। यद्धीदं ब्राह्मणस्य शुक्लाः वृषलस्य कृष्णा इति,- असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्रापेक्ष्यते दन्ताः। तस्माद् गुणेन नेति वक्तव्यम्। 'गुणेन ने'त्युच्यमाने 'तत्स्थैश्च गुणै'रिति वक्तव्यम्। 'तत्स्थैश्च गुणै'रित्युच्यमाने 'न तु तद्विशेषणै'रिति वक्तव्यम्।

खण्डनभाष्य—**नैवं शक्यमिति**। यदि गुणवचन के साथ षष्ठीसमास का निषेध करते हैं तो इससे गुणोपसर्जन द्रव्यवाची के साथ ही षष्ठीसमास का निषेध होगा, गुण के साथ नहीं; इससे 'काकस्य कार्ष्ण्यम्' इत्यादि में गुण के साथ षष्ठीसमास की आपत्ति होगी। गुण के साथ षष्ठीसमास का निषेध करने पर 'काकस्य कार्ष्ण्यम्' इत्यादि केवल गुणवाची ही उदाहरण होंगे। जो 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः, वृषलस्य कृष्णाः' इत्यादि उदाहरण हैं यहाँ शुक्ल और कृष्ण पद दन्त अर्थ में सापेक्ष हैं; अतः 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः दन्ताः, वृषलस्य कृष्णाः दन्ताः' यह अर्थ होगा। सापेक्ष असमर्थ होता है। दन्त की अपेक्षा से ब्राह्मणपदोत्तर षष्ठी है; अतः शुक्लार्थ के साथ सम्बन्ध नहीं है। इस तरह असमर्थ होने से 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः दन्ताः, वृषलस्य कृष्णाः दन्ताः' समास नहीं होगा। इस तरह गुण के साथ षष्ठीसमास का निषेध कहने पर 'ब्राह्मणवर्णः' इत्यादि में भी षष्ठीसमास का निषेध प्राप्त हो रहा है; जब कि यहाँ समास इष्ट है; अतः वहाँ समासविधान के लिए 'तत्स्थैश्च गुणैः' यह वार्तिक पढना चाहिये। इस वार्तिक के निर्देश करने पर 'न तु तद्विशेषणैः' यह भी वार्तिक पढना चाहिये। {षष्ठी}।

न निर्धारणे २.२.१०

* प्रतिपदविधाना च * **प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यत इति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-सर्पिषो ज्ञानम्, मधुनो ज्ञानमिति।**

सूत्रार्थ—'यतश्च निर्धारणम्' २.३.४१ सूत्र से निर्धारण में विहित षष्ठी का समास न हो'। जैसे मनुष्याणां बुद्धिमान्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिक—**प्रतिपदेति**। धातु अथ वा कारक का उच्चारण कर विहित षष्ठी प्रतिपदषष्ठी है; उसके समास का निषेध कहना चाहिये। जैसे 'सर्पिषो ज्ञानम्' 'मधुनो ज्ञानम्'। यहाँ 'ज्ञोऽविदर्थस्य करणे' २.३.५१ के द्वारा ज्ञा धातु के योग में षष्ठी है। {न-}।

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन २.२.११

गुणे किमुदाहरणम्? 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः' 'वृषलस्य कृष्णा' इति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्रापेक्ष्यते-दन्ताः। इदं तर्हि-'काकस्य कार्ष्ण्यं' 'कण्टकस्य तैक्ष्ण्यं' 'बलाकायाः शौक्ल्य'मिति। इदं चाऽप्युदारहणं-'ब्राह्मणस्य शुक्लाः' 'वृषलस्य कृष्णा' इति। ननु चोक्तम्-'असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्राऽपेक्ष्यते-दन्ताः' इति। नैष दोषः। भवति वै कस्यचिदर्थात् प्रकरणाद्वाऽपेक्ष्यं निर्ज्ञातं तदा वृत्तिः प्राप्नोति। सति किमुदाहरणम्? 'ब्राह्मणस्य पक्ष्यन्' 'ब्राह्मणस्य पक्ष्यमाणः'। नैतदस्ति। प्रतिषिध्यतेऽत्र षष्ठी 'लप्रयोगे ने'ति। या च श्रूयते, एषा बाह्यमर्थमपेक्ष्य भवति। तत्राऽसामर्थ्यान्न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्रापेक्ष्यते-ओदनः। इदं तर्हि-चोरस्य द्विषन्, वृषलस्य द्विषन्। ननु चाऽत्रापि प्रतिषिध्यते षष्ठी। वक्ष्यत्येतद्-'द्विषः शतुर्वावचन'-मिति।

'षष्ठी' २.२.८ तथा 'न निर्धारणे' २.२.१० से 'न' पद की अनुवृत्ति है। अर्थ इस पद का पूरण, गुण और सुहित इन तीनों के साथ अन्वय है। सूत्रार्थ-'पूरणार्थक, गुणार्थक, सुहितार्थक, सत्, अव्यय, तव्य और समानाधिकरण के साथ षष्ठी का समास न हो'।

Acc. 39800 / 314

प्रश्नभाष्य—**गुणे किमिति**। गुणार्थ के साथ षष्ठीसमास का निषेध का क्या उदाहरण है? उदाहरणवादी आचार्य-**ब्राह्मणस्येति**। 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः, वृषलस्य कृष्णाः' यह गुणार्थ का उदाहरण है। यहाँ षष्ठीसमास नही होगा।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः, वृषलस्य कृष्णाः' में सामर्थ्य नहीं होने से समास नही होगा। यहाँ उक्त दोनों वाक्यों में द्रव्य दन्त अपेक्षित है। इस तरह दन्त की अपेक्षा से ब्राह्मण एवं वृषलपदोत्तर षष्ठी है; अतः उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्ल और कृष्ण के साथ सम्बन्ध नही होने से षष्ठीसमास की प्राप्ति नही है; अतः निषेध व्यर्थ है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'काकस्य कार्ष्ण्यम्' 'कण्टकस्य तैक्ष्ण्यम्' 'बलाकायाः शौक्ल्यम्' यह गुणार्थ के साथ षष्ठीसमासप्रतिषेध का उदाहरण है। आक्षेपक द्वारा खण्डित प्रयोजन को भी सिद्ध करते हैं-**इदं चापीति**। 'ब्राह्मणस्य शुक्लाः, वृषलस्य कृष्णाः' यह भी गुणार्थ का उदाहरण है। आप ने यहाँ द्रव्य दन्त की अपेक्षा कर उसकी अपेक्षा से षष्ठी बतायी थी तथा 'सापेक्ष होने से असमर्थ है; अतः समास नहीं होगा' ऐसा कहा था; वह दोष नही रहेगा। किसी का प्रकरणवश अथ वा अर्थ वश अपेक्ष्य निर्ज्ञात होता है; उसकी वृत्ति भी होती है। अर्थात् प्रकरणवश अथ वा अर्थवश कभी-कभी सामान्यशब्द भी विशेषमात्र का वाचक होता है; अतः प्रकृत में शुक्ल और कृष्णपद दन्त अर्थ का वाचक हो जायेगा। इस तरह उसी के योग में षष्ठी प्राप्त होगी तथा प्रकृतसूत्र से उसका निषेध भी उपपन्न हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**सति किमिति**। सत्संज्ञक प्रत्यय शतृ और शानच् का क्या उदाहरण है? उदाहरणवादी आचार्य-**ब्राह्मणस्येति**। 'ब्राह्मणस्य पक्ष्यन्, ब्राह्मणस्य पक्ष्यमाणः' यह उदाहरण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदिति**। सत्संज्ञक प्रत्यय का यह उदाहरण नहीं हो सकता है। यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५ से प्राप्त षष्ठी का 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ निषेध करता है। इस तरह षष्ठी की अवस्थिति नही होने से स्वतः समास नहीं होगा; अतः निषेध व्यर्थ है। यहाँ जो षष्ठी सुनी जा रही है वह बाह्य अर्थ ओदन की अपेक्षा से है; अतः यहाँ सत्संज्ञ के योग में षष्ठी सम्भव नहीं होने से ही समास प्राप्त नहीं होगा; अतः निषेध व्यर्थ है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'चोरस्य द्विषन्, वृषलस्य द्विषन्' में सत्संज्ञ के योग में षष्ठी है; उसका समास प्राप्त होने पर निषेध है।

आक्षेपभाष्य—**ननु चेति**। यहाँ भी लादेश शतृ और शानच् के योग में षष्ठी का निषेध हो जायेगा। आचार्य द्विष धा.पा.१०१३ धातु से पर में विहित शतृ के योग में विकल्प ये षष्ठी कहेंगे; इससे यहाँ शतृ के योग में षष्ठी होने से समास प्राप्त है; अतः उसका निषेध कहा है।

अव्यये किमुदाहरणम्? 'ब्राह्मणस्योचैः' 'वृषलस्य नीचैः'रिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। असामर्थ्यादत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्रापेक्ष्यते-आसनम्। इदं तर्हि- 'ब्राह्मणस्य कृत्वा' 'वृषलस्य कृत्वे'ति। एतदपि नास्ति, प्रतिषिध्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यते तत्र षष्ठी 'अव्ययप्रयोगे ने'ति। या च श्रूयते एषा बाह्यमर्थमपेक्ष्य भवति, तत्राऽसामर्थ्यान्न भवति। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्रापेक्ष्यं कटः। इदं तर्हि-'पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः' 'पुरा वत्सानामपाकर्तोः'। ननु चाऽत्राऽपि प्रतिषिध्यते-'अव्यय'मिति कृत्वा। वक्ष्यत्येतद्-'अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः' इति।

प्रश्नभाष्य—**अव्यये किमिति**। अव्यय के साथ षष्ठीसमासनिषेध का क्या उदाहरण है? उदाहरणवादी आचार्य-**ब्राह्मणस्येति**। 'ब्राह्मणस्योच्चैः, ब्राह्मणस्य नीचैः' यह अव्यय के योग में षष्ठीसमासनिषेध का उदाहरण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। यहाँ द्रव्य आसन की अपेक्षा है। उसी के सम्बन्ध में षष्ठी है; अतः यहाँ षष्ठी सापेक्ष हो गयी। सापेक्ष असमर्थवान् होता है। असमर्थों का समास नहीं होता है; अतः 'ब्राह्मणस्योच्चैः, ब्राह्मणस्य नीचैः' में समास नहीं होगा।

उत्तरभाष्य—**इदं तर्हीति**। 'ब्राह्मणस्य कृत्वा, वृषलस्य कृत्वा' में अव्यय के योग में षष्ठीसमास का निषेध उक्त का उदाहरण है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ के द्वारा अव्यय के योग में षष्ठी का निषेध है। 'क्त्वातोसुन्कसुनः' १.१.४० के द्वारा क्त्वा प्रत्यय की अव्ययसंज्ञा विहित है। यहाँ जो षष्ठी सुनी जा रही है वह बाह्य अर्थ कट की अपेक्षा से है; अतः अर्थ होगा-'ब्राह्मणस्य कटं कृत्वा, वृषलस्य कटं कृत्वा'। अतः यह षष्ठी सापेक्ष है। सापेक्ष असमर्थवान् होता है। असमर्थों का समास नहीं होता है; अतः यहाँ स्वतः समासप्रतिषेध हो जायेगा। उदाहरणवादी-**इदं तर्हीति**। 'पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः' 'पुरा वत्सानामपाकर्तोः' यह अव्यय का उदाहरण है। आचार्य 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ सूत्र पर 'अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः' ऐसा कहेंगे। इससे तोसुन् और कसुन् इन अव्ययों के योग में षष्ठी हो जायेगी; अतः समास प्राप्त होने पर यहाँ अव्यय के योग में निषेध कहा है।

समानाधिकरणे किमुदाहरणम्? 'राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य' 'शुकस्य माराविकस्य' 'पाणिनेः सूत्रकारस्य'। नैतदस्ति। असामर्थ्यदत्र न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'समानाधिकरणमसमर्थवद् भवती'ति।

प्रश्नभाष्य—**समानेति**। समानाधिकरण में षष्ठीसमासनिषेध का क्या उदाहरण है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—राज्ञ इति। 'राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य, शुकस्य माराविकस्य, पाणिनेः सूत्रकारस्य' यहाँ समानाधिकरण में षष्ठीसमास का प्रतिषेध है।

खण्डनभाष्य—नैतदस्तीति। समानाधिकरण असमर्थवद् होता है। असमर्थो का समास नही होने से ही उक्त उदाहरण में समास नहीं होगा। यहाँ पर विशेषणसमास होता है तथा उसका पूर्वनिपात होता है। परन्तु यहाँ षष्ठीसमास होने पर पूर्वनिपात का नियम नहीं हो सकेगा; अतः उसी का प्रतिषेध किया जा रहा है। विशेषणसमास में वचनसामर्थ्य से 'समानाधिकरण असमर्थवान् होता है' इस पक्ष का आश्रयण नहीं है।

इदं तर्हि-'सर्पिषः पीयमानस्य' यजुषः क्रियमाणस्ये'ति। ननु चाऽत्राप्यसामर्थ्यादेव न भविष्यति। कथमसामर्थ्यम्? 'समानाधिकरणमसमर्थवद् भवती'ति। 'अधात्वभिहित'-मित्येवं तत्। {पुरणगुण}।

उत्तरभाष्य—इदं तर्हीति। 'सर्पिषः पीयमानस्य, यजुषः क्रियमाणस्य' यहाँ समानाधिकरण में षष्ठीसमास प्राप्त है, उसका निषेध किया जा रहा है।

आक्षेपभाष्य—ननु चेति। 'सर्पिषः पीयमानस्य' इत्यादि में भी समानाधिकरण है। समानाधिकरण असमर्थवद् होता है; अतः असामर्थ्य होने से ही 'सर्पिषः पीयमानस्य' इत्यादि में समास का प्रतिषेध हो जायेगा।

उत्तरभाष्य—अधात्विति। धातुभिन्न से अभिहित ही षष्ठीसमास के प्रतिषेध का उदाहरण बनेगा। जैसे 'कटस्य क्रियमाणस्य'। {पूरणगुण-}।

कर्मणि च २.२.१४

कथमिदं विज्ञायते-'कर्मणि या षष्ठी सा न समस्यते' इति, आहो स्वित्-'कर्मणि यः क्त' इति। कुतः सन्देहः? उभयं प्रकृतं, तत्रान्यतरच्छक्यं विशेषयितुम्। कश्चात्र विशेषः? * कर्मणीति षष्ठीनिर्देशश्चेदकर्तरि कृता समासवचनम् * कर्मणीति षष्ठीनिर्देशश्चेदकर्तरि कृता समासो वक्तव्यः। इध्मप्रव्रश्चनः। पलाशशातनः * तृजकाभ्यां चानर्थकः प्रतिषेधः * तृजकाभ्यां चानर्थकः कर्तरि प्रतिषेधो भवति। अपां स्रष्टा। पुरां भेत्ता, यवानां लावकः। 'कर्मणी'त्येव सिद्धम्। अस्तु तर्हि-कर्मणि यः क्त' इति। किमुदाहरणम्? 'ब्राह्मणस्य भुक्तः' 'वृषलस्य पीत' इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ-'उभयप्राप्तौ कर्मणि' २.३.६६ सूत्र से विहित षष्ठी का समास न हो' जैसे 'आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन'।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। 'क्तेन च पूजायाम्' २.२.१२, 'अधिकरणवाचिना च' २.२.१३ तथा 'कर्मणि च' २.२.१४ इस सूत्रक्रम में क्त भी प्राप्त हो रहा है तथा 'षष्ठी' २.२.८ सूत्र की अनुवृत्ति होने से षष्ठी भी प्राप्त है। इस तरह यहाँ दोनों प्राप्त होने पर सन्देह हो रहा है-'कर्म में जो षष्ठी, उसका समास न हो' यह अर्थ है; अथ वा 'कर्म में जो क्त, उसका समास न हो' यह अर्थ है? यहाँ किसी का भी विशेषण होने पर दोष देख कर प्रश्न करते हैं। यहाँ उक्त दोनों पक्षों में चाहे जो भी पक्ष माना जाये, दोनों में ही दोष है। 'कर्मणि या षष्ठी' इस पक्ष में दोष देते हैं-**कर्मणीति**। यदि 'कर्मणि या षष्ठी सा न समस्यते' यह पक्ष मानेंगे तो कर्तृभिन्न अर्थ में विहित षष्ठी का कृदन्त के साथ समास कहना होगा। जो कर्ता अर्थ में कृत्प्रत्यय विहित है वहाँ पर होने से 'कुम्भकारः' इत्यादि में उपपदसमास होगा। परन्तु कही पर कर्तृ अर्थ में विहित षष्ठी का तृजन्त और अक प्रत्ययान्त के साथ 'तृजकाभ्यां कर्तरि च' २.२.१५ से तथा कही पर कर्ता अर्थ में विहित षष्ठी का अक के साथ 'कर्तरि च' २.२.१६ के साथ समास का निषेध होगा, इस अभिप्राय से 'कर्तरि च' ऐसा वार्तिक में कहा है। अकर्ता में विहित षष्ठी का कृदन्त के साथ समास कहने से 'इध्मप्रव्रश्चनः, पलाशशातनः' में समास हो जायेगा। यहाँ करण में ल्युट् तथा कर्ता में षष्ठी है। 'तृजकाभ्यां कर्तरि' २.२.१५ सूत्र का खण्डन करते हैं-**तृजकाभ्यां चेति**। कर्ता में विहित षष्ठी का तृजन्त और अकप्रत्ययान्त के साथ निषेध व्यर्थ है। 'अपां स्रष्टा, पुरां भेत्ता, यवानां लावकः' इन वाक्यों का तिङ्न्तस्वरूप 'अपः सृजति, पुरो भिनत्ति, यवाँल्लुनाति' है। इसमें 'अपः' आदि कर्म हैं; अतः उसी में षष्ठी होने से उक्त वाक्य में 'कर्मणि च' से ही षष्ठीसमास का निषेध हो जायेगा। इस तरह 'कर्मणि या षष्ठी सा न समस्यते' इस पक्ष में दोष है। यदि दूसरा पक्ष 'कर्मणि यः क्तः स न समस्यते' यह पक्ष माना जाये तो इसका 'ब्राह्मणस्य भुक्तः, ब्राह्मणस्य पीतः' यह उदाहरण होगा। परन्तु इस पक्ष में दोष है।

* क्तनिर्देशेऽसमर्थत्वादप्रतिषेधः * **क्तनिर्देशेऽसमर्थत्वादप्रतिषेधः। अनर्थकः प्रतिषेधोऽप्रतिषेधः। समासः कस्मान्न भवति? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। द्रव्यमत्रापेक्ष्यते ओदनः** * प्रतिषेध्यमिति चेत्कर्तर्यपि प्रतिषेधः * **अथैवं सति प्रतिषेधः कर्तव्य इति मन्यसे, कर्तर्यपि प्रतिषेधो वक्तव्यः स्यात्-'ब्राह्मणस्य**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गतः' 'ब्राह्मणस्य यात' इति * पूजायां च प्रतिषेधाऽनर्थक्यम् * **पूजायां च प्रतिषेधोऽनर्थकः-राज्ञां पूजितः' 'राज्ञामर्चित' इति। कर्मणीत्येव सिद्धम्** * तस्मादुभयप्राप्तौ कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः * **तस्मादुभयप्राप्तौ कर्मणीत्येवं या षष्ठी तस्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः। स तर्हि वक्तव्यः? न वक्तव्यः। इत्यर्थेऽयं चः पठितः-'कर्मणि च'। कर्मणीत्येवं या षष्ठीति।** {कर्मणि च}।

इसे स्पष्ट करते हैं-**क्तनिर्देश इति**। 'कर्मणि यः क्तः' पक्ष में क्त के द्रव्य ओदन एवं रस सापेक्ष होने से असामर्थ्य है; अतः असमर्थों का समास नहीं होने से ही उक्त स्थल 'ब्राह्मणस्य भुक्तः, ब्राह्मणस्य पीतः' में समास का वारण हो जायेगा। यहाँ भुक्त और पीत की अपेक्षा से ब्राह्मणपदोत्तर षष्ठी नहीं है, अपि तु ओदन और रस की अपेक्षा से है। इस तरह उक्त दोनों वाक्यों का 'ब्राह्मणस्य य ओदनः सः अन्येन भुक्तः, ब्राह्मणस्य यो रसः सः अन्येन पीतः' ऐसा अर्थबोध होगा, अतः क्तान्त के साथ षष्ठी का सामर्थ्य नहीं है। **प्रतिषेध्यमिति चेदिति**। यदि परम्पराद्वारा सम्बन्ध सम्भव होने से अथ वा 'भवति वै कस्य चित्' इस न्याय से मूर्खों का समासशङ्कानिवारण के लिए यत्न करते हैं तो 'ब्राह्मणस्य गतः, ब्राह्मणस्य यातः' में भी यत्न की अतिव्याप्ति होगी जिससे उसका निषेध कहना होगा। **पूजायां चेति**। 'क्तेन च पूजायाम्' २.२.१५ सूत्र के द्वारा पूजार्थ में विहित षष्ठी का क्तान्त के साथ समासनिषेध भी व्यर्थ है। 'राज्ञां पूजितः, राज्ञामर्चितः' इस वाक्य में उभयत्र राजनूपदोत्तर षष्ठी कर्म में है; अतः 'कर्मणि च' के द्वारा ही समास का निषेध हो जाने से 'क्तेन च पूजायाम्' २.२.१५ सूत्र व्यर्थ है।

समाधानभाष्य—**तस्मादिति**। 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' २.३.६६ के द्वारा कर्म में विहित षष्ठी का समासनिषेध कहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। क्या 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' २.३.६६ के द्वारा कर्म में विहित षष्ठी का समासनिषेध हो इसके लिए 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' ऐसा सूत्रपाठ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। 'कर्मणि च' सूत्र में 'च'पद निपातनिर्दिष्ट है। निपात अनेकार्थक होते हैं; अतः इसके द्वारा प्रकृतसूत्र का 'कर्मणि सूत्र का उच्चारण कर जो षष्ठी विहित है उसका समास न हो' यह अर्थ होगा। इससे 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' २.३.६६ यही सूत्र लिया जायेगा; अतः प्रकृतसूत्र का 'आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन' यह उदाहरण होगा। {कर्मणि च}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्यं क्रीडाजीविकयोः २.२.१७

किमिह नित्यग्रहणेनाऽभिसम्बध्यते विधिराहोस्वित् प्रतिषेधः? 'विधि'रित्याह। कुत एतत्? विधिर्हि विभाषा, नित्यः प्रतिषेधः।

'षष्ठी' २.२.८, एवं 'तृजकाभ्यां कर्तरि' २.२.१५ से अक पद की अनुवृत्ति है। अर्थ आगे स्पष्ट होगा।

प्रश्नभाष्य—**किमिहेति**। यहाँ प्रकृतसूत्र में नित्यपद के साथ विधि का सम्बन्ध है, अथ वा निषेध का सम्बन्ध है?

उत्तरभाष्य—**विधिरित्याहेति**। विधि विभाषा है तथा प्रतिषेध नित्य है; अतः यहाँ नित्य कहने से विधि ही ग्राह्य है। महाविभाषाऽधिकार से जो विकल्प से समास था उसको नित्य कह दिया; अतः सूत्रार्थ-'क्रीडा और जीविका अर्थ में विहित षष्ठी का अक के साथ नित्य समास हो'। {नित्यं क्रीडाजीविकयोः}।

कुगतिप्रादयः २.२.१८

* प्रादिप्रसङ्गे कर्मप्रवचनीयप्रतिषेधः * **प्रादिप्रसङ्गे कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो वक्तव्यः। वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्। साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति** * व्यवेतप्रतिषेधश्च * **व्यवेतानां च प्रतिषेधो वक्तव्यः। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः** * सिद्धं तु क्वाङ्स्वतिदुर्गतिवचनात् * **सिद्धमेतत् कथम्? 'क्वाङ्स्वतिदुर्गतिवचनात्'। 'क्वाङ्स्वतिदुर्गतयः समस्यन्ते' इति वक्तव्यम्। कु-कुब्राह्मणः। कुवृषलः। कु। आङ्-आकडारः, आपिङ्गलः। आङ्। सु-सुब्राह्मणः। सुवृषलः। सु। अति-अतिब्राह्मणः। अतिवृषलः। अति। दुर्-दुर्ब्राह्मणः। दुर्वृषलः। दुर्। गति-प्रकारकः, प्रणायकः, प्रसेवकः, ऊरीकृत्य, उररीकृत्य। गति।**

'नित्यं क्रीडाजीविकयोः' २.२.१७ से 'नित्यम्' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'कु गति एवं प्रादि का समर्थसुबन्त के साथ नित्य समास हो'। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः' यहाँ सूत्र में कु यह पद कुत्सितपरक है, पृथ्वीपरक नहीं।

वार्तिक—**प्रादिप्रसङ्ग इति**। जिस प्रति आदि की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होगी, उसका समासनिषेध कहना चाहिये। 'लक्षणेत्थंभूताख्यान- भागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः' १.४.९० से 'प्रति' की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा है; अतः 'वृक्षं प्रति, मातरं प्रति' का समास नही होगा। वृक्ष और विद्युद्-द्योतन इन दोनों का प्राप्तिक्रियाजनित लक्ष्यलक्षण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्बन्ध का अवच्छेदक 'प्रति' यह पद है; अतः सामर्थ्य होने से समास प्राप्त है। अन्यथा सम्बन्ध नहीं होने पर यहाँ द्वितीया भी नहीं हो सकती थी। **व्यवेतप्रतिषेध इति**। अन्य पद से व्यवहित 'प्रति' आदि का भी समासनिषेध कहना चाहिये। 'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः' में 'आ' पद का 'या' पद के साथ अन्वय है। परन्तु अन्य पदों के द्वारा व्यवहित होने से यहाँ समास का निषेध कहा है। उक्त दोनों वार्तिकों का खण्डन करते हैं-**सिद्धं त्विति**। कु, आङ्, सु, अति, दुर् और गति इनका समास कहना चाहिये। 'कु' से आरम्भ कर गतिपर्यन्त सभी का उदाहरण मूल में स्पष्ट है। इससे 'प्रति' आदि का समास नहीं होता है। 'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः' यहाँ पर आङ्ग्रहण के द्वारा समास प्राप्त होने पर भी सामर्थ्य नहीं है, ऐसा कहना चाहिये।

* प्रादयः क्तार्थे * **'प्रादयः क्तार्थे समस्यन्त' इति वक्तव्यम्। प्रगत आचार्यः प्राचार्यः। प्रान्तेवासी प्रपितामहः। एतदेव च सौनागैः विस्तरतरकेण पठितम्-** * स्वती पूजायाम् * **स्वती पूजायामिति वक्तव्यम्। सुराजा, अतिराजा** * दुर्निन्दायाम् * **दुर्निन्दायामिति वक्तव्यम्। दुष्कुलं, दुर्गवः** * आङीषदर्थे * **आङीषदर्थ इति वक्तव्यम्। आकडारः, आपिङ्गलः** * कुः पापार्थे * **कुः पापार्थ इति वक्तव्यम्। कुब्राह्मणः। कुवृषलः।**

अगत्यर्थकसमासविधान के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**प्रादय इति**। क्त के अर्थ में शक्त प्र आदि का समर्थसुबन्त के साथ समास कहना चाहिये-'प्रगत आचार्यः प्राचार्यः'। यहाँ 'प्र' शब्द 'प्रगत' क्तान्त अर्थ में शक्त है। 'प्रगतोऽन्तेवासी प्रान्तेवासी, प्रगतः पितामहः प्रपितामहः'। **एतदेव**='प्रादयः क्तार्थे' इस वार्तिक का विस्तार कर इसी अर्थ में सौनागवार्तिककारों ने अनेक वार्तिक पढा है; इसे उद्धृत करते हैं-**स्वती इति**। पूजा अर्थ गम्य होने पर समर्थ सुबन्त के साथ सु और अति का समास कहना चाहिये। 'सुगतो राजा सुराजा, अतिगतो राजा अतिराजा'। यहाँ 'न पूजनात्' ५.४.६९ यह प्रतिषेध होने से 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५४.९१ से टच् नहीं होता है। **दुर्निन्दायामिति**। निन्दा अर्थ गम्य होने पर समर्थ सुबन्त के साथ दुर् का समास कहना चाहिये। 'दुर्गतं कुलं दुष्कुलम्, दुर्गता गौः दुर्गवः'। यहाँ 'गोरतद्धितलुकि' ५.४. ९२ से समासान्त टच् प्रत्यय तथा अवङ् आदेश है। **आङीषदर्थ इति**। ईषद् अर्थ में शक्त आङ् का समर्थ सुबन्त के साथ समास कहना चाहिये। 'ईषत् कडार आकडारः, ईषत् पिङ्गल आपिङ्गलः'। **कुः पापार्थ इति**। पाप=पाप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने वाला अर्थ में शक्त कु पद का समर्थ सुबन्त के साथ समास कहना चाहिये। 'कुत्सितो ब्राह्मणः कुब्राह्मणः, कुत्सितो वृषलः कुवृषलः'। यहाँ वार्तिक में पाप शब्द अर्शआद्यजन्त है।

*** प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया * 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया समस्यन्त' इति वक्तव्यम्। प्रगत आचार्यः-प्राचार्यः। प्रान्तेवासी प्रपितामहः * अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया * अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया समस्यन्त इति वक्तव्यम्। अतिक्रान्तः खट्वाम्-अतिखट्वः, अतिमालः * अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया * 'अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया समस्यन्त इति वक्तव्यम्। अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलो वसन्तः * पर्यादयो ग्नाद्यर्थे चतुर्थ्या * 'पर्यादयो ग्नाद्यर्थे चतुर्थ्या समस्यन्त' इति वक्तव्यम्। परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः * निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या * 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या समस्यन्त' इति वक्तव्यम्। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः। निर्वाराणसिः।**

प्रादय इति। गत आदि अर्थ में शक्त प्र आदि का प्रथमान्त के साथ समास कहना चाहिये। 'प्रगत आचार्यः प्राचार्यः' इत्यादि। **अत्यादय इति।** क्रान्त आदि अर्थो शक्त अति आदि का द्वितीयान्त के साथ समास कहना चाहिये। 'खट्वामतिक्रान्तोऽतिखट्वः, मालामतिक्रान्तोऽतिमालः'। **अवादय इति।** क्रुष्ट आदि अर्थो में शक्त अव आदि का तृतीयान्त के साथ समास हो। 'अवक्रुष्टः कोकिलयाऽवकोकिलो वसन्तः'। **पर्यादय इति।** ग्लानि आदि अर्थो में शक्त परि आदि का चतुर्थ्यन्त के साथ समास हो। जैसे 'परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः'। **निरादय इति।** क्रान्त आदि अर्थो में शक्त निर् आदि का पञ्चम्यन्त के साथ समास हो। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः, निष्क्रान्तो वाराणस्या निर्वाराणसिः'।

*** अव्ययं प्रवृद्धादिभिः * 'अव्ययं प्रवृद्धादिभिः समस्यन्त' इति वक्तव्यम्। पुनःप्रवृद्धं बहिर्भवति। पुनर्गवः। पुनःसुखम् * इवेन विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च * इवेन सह समासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम्। वाससीइव, कन्येइव * अव्ययमव्ययेन * 'अव्ययमव्ययेन समस्यत' इति वक्तव्यम्। प्रप्र यज्ञपतिम् * उदात्तवता गतिमता च तिङा * 'उदात्तवता गतिमता च तिङा**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अव्ययं समस्यत' इति वक्तव्यम्। अनुव्यचलत्, अनुप्राविशत्। अनुव्याकरोति। यत्परियन्ति। {कुगति}।

अव्ययमिति। प्रवृद्ध आदि के साथ अव्यय का समास कहना चाहिये- 'पुनःप्रवृद्धम्, पुनर्गवम्, पुनःसुखम्'। **इवेनेति।** इव पद के साथ समास तथा पूर्वपद को नित्य ही प्रकृतिस्वर कहना चाहिये। जैसे 'वाससीइव, कन्येइव'। यहाँ उभयत्र 'इदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' १.१.११ से प्रगृह्यसंज्ञा तथा प्रकृतिभाव है। **अव्ययमव्येनेति।** अव्यय का अव्यय के साथ समास कहना चाहिये। जैसे 'प्रप्र'। **उदात्तवतेति।** यहाँ पूर्व वार्तिक से 'अव्ययम्' की अनुवृत्ति है। उदात्तस्वर वाला तिङ् के साथ तथा गतिसंज्ञक से युक्त तिङ् के साथ अव्यय का समास कहना चाहिये। उदात्तवान् तिङ् के साथ अव्यय का समास दिखाते हैं-'अनुव्यचलत्, अनुप्राविशत्'। यहाँ 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ के द्वारा पहले निघात होने पर उदात्तत्व नही रहा, अतः 'गतिमता' यह पृथक् पद कहा है। वहाँ 'अनुव्याकरोति, यत्परियन्ति' इन तीन पदों का समास करने पर समासान्त उदात्त होता है। यहाँ 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीया- सप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर नहीं होता है। 'अनु' पद का 'गतिर्गतौ' ८.१.७० के द्वारा अनुदात्तत्व है। 'यत्परियन्ति' यह उदात्तवान् का उदाहरण है। 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम्' ८.१.३० के द्वारा निघात का निषेध होने से 'यन्ति' शब्द का प्रत्ययस्वर से आद्युदात्तत्व है; अतः 'परि' शब्द का 'यन्ति' शब्द के साथ समास है। गतिमान् का उदाहरण 'अनुव्याकरोति' है। {कुगति-}।

उपपदमतिङ् २.२.१९

'अतिङ्ङि'ति किमर्थम्? कारको व्रजति हारको व्रजति * अतिङ्-ङिति शक्यमवक्तुम् * **कस्मान्न भवति-'कारको व्रजति हारको व्रजती'ति? सुप्सुपेति वर्तते। अत उत्तरं पठति-** * उपपदमतिङ्ङिति तदर्थ-प्रतिषेधः * **उपपदमतिङ्ङिति तदर्थस्यायं प्रतिषेधो वक्तव्यः। कस्य? तिङ्ङर्थस्य। कः पुनस्तिङ्ङर्थः? क्रिया** * क्रियाप्रतिषेधो वा * **अथ वा व्यक्तमेवेदं पठितव्यम्-'उपपदमक्रिये'ति।**

'नित्यं क्रीडाजीविकयोः' २.२.१७ से 'नित्यम्' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'समर्थसुबन्त के साथ उपपद का नित्य समास हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञ हो'। 'सुप्' २.१.२ और 'सुपा' २.१.४ की अनुवृत्ति होने से सुबन्त का सुबन्त के साथ ही समास विहित है। तिङ्न्त के साथ समास प्राप्त नही है; फिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अतिङ्' यह निषेध क्यों पढते हैं?, इसे उठाते हैं-**अतिङ्ङिति**। एकदेशी-**कारक इति**। 'कारको व्रजति, हारको व्रजति' में सुबन्त का तिङ्ङन्त के साथ समास न हो, इसके लिए अतिङ्प्रतिषेध है। भाष्यकार अतिङ्प्रतिषेध का खण्डन करते हैं-**अतिङ्ङिति**। 'सुप्सुपा' की अनुवृत्ति होने से सुबन्त का सुबन्त के साथी समास होगा, तिङ्ङन्त के साथ प्राप्त नही होने से निषेध व्यर्थ है। वार्तिककार- **उपपदेति**। तिङ्ङन्त स्थलों में क्रियाविशेष्यकशाब्दबोध वैयाकरण-सिद्धान्त है; अतः तिङ्ङार्थ क्रिया के साथ सुबन्त का समास प्राप्त हो रहा था जिसका अतिङ्पद से निषेध किया गया है। **क्रियाप्रतिषेध इति**। अथ वा आचार्य को 'उपपदमतिङ्' सूत्र के स्थान पर 'उपपदमक्रिया' ऐसा स्पष्ट पाठ करना चाहिये था। इससे कहीं पर भी सन्देह नही होता।

अथाऽक्रियेति किं प्रत्युदाह्रियते? कारको गतः। हारको गतः। नैतत् क्रियावाची। किन्तर्हि? द्रव्यवाची। इदं तर्हि-कारकस्य गतिः, हारकस्य गतिः। एतदपि द्रव्यवाची। कथम्? 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवती'ति। एवं तर्हि सिद्धे सति यदतिङ्ङिति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो-'ऽनयोर्योगयोर्निवृत्तं सुप्सुपे'ति।

प्रश्नभाष्य—**अथाऽक्रियेति**। यदि अतिङ्प्रतिषेध नहीं करके 'अक्रिया' प्रतिषेध करते तो उसका क्या प्रत्युदाहरण होता? एकदेशी-**कारको गत इति**। अक्रियाप्रतिषेध करने पर 'कारको गतः, हारको गतः' यह प्रत्युदाहरण होता।

खण्डनभाष्य—**नैतदिति**। यहाँ प्रत्युदाहरण में गत पद क्रियावाची नहीं है, अपि तु क्त प्रत्यय के कर्त्रर्थक होने से द्रव्यवाची है। प्रत्युदाहरणवादी-**इदं तर्हीति**। 'कारकस्य गतिः, हारकस्य गतिः' यह प्रत्युदाहरण है। यहाँ गति और व्रज्या पद से क्रिया वाच्य है। इसके साथ सुबन्त का समास प्राप्त हो रहा था जिसका प्रतिषेध के लिए अतिङ् पद है।

आक्षेपभाष्य—**एतदपीति**। 'कारकस्य गतिः' इत्यादि में गति और व्रज्या पद भी द्रव्यवाची है, क्रियावाची नहीं; इसे स्पष्ट करते हैं-**कृदभिहित इति**। कृत्प्रत्यय के द्वारा वाच्य भाव द्रव्यवत् होता है; अतः जैसे घट आदि द्रव्य में लिङ्ग और संख्या का योग होता है, वैसे कृत्प्रत्यय से वाच्य भाव के साथ भी लिङ्ग और संख्या का अन्वय होता है; अतः कृत्प्रत्ययवाच्य भाव द्रव्यवत् होने से क्रिया नही कहलायेगा। ज्ञापनवादी-**एवं तर्हीति**। अतिङ्प्रतिषेध के अभाव में जब सभी इष्ट लक्ष्य की सिद्धि हो जा रही है तथा कहीं पर भी द्रोष नहीं आ रहा है, फिर भी कोई प्रयोजन नहीं होने पर भी आचार्य ने जो अतिङ्प्रतिषेध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'उपपदम्, तथा अतिङ् इन दोनों योगों में 'सुप्सुपा' की निवृत्ति होती है'। अतिङ्ग्रहण के द्वारा योगद्वय से विहित समास विशेषित है-'अतिङ्न्त समास होता है'। अतः 'सुपा' की ही निवृत्ति समझनी चाहिये। पूर्वपद का पदकार्य के लिए सुब्ग्रहण की अनुवृत्ति रहेगी। यहाँ भाष्य में 'अनयोर्योगयोर्निवृत्तं सुप्सुपा' इस द्विवचननिर्देश से पूर्वसूत्र 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ में भी 'सुपा' की निवृत्ति होने से गति एवम् उपपदों का सुबुत्पत्ति से पूर्व ही समास होगा। परन्तु कारकों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से समास होगा। इस सूत्र में कृद्ग्रहण सामर्थ्य से सुबुत्पत्ति से पूर्व ही समास होगा। 'सुपा' २.१.४ के अनुवर्त्तन से तृतीयान्त का तिङ्न्त के साथ समास प्राप्त नहीं होने से कृदन्त के साथ स्वतः समास होने पर भी आचार्य ने जो कृद्ग्रहण किया वह व्यर्थ पड कर सुबुत्पत्ति से पूर्व कृदन्तावस्था में ही समास बतायेगा।

किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासो भवती'त्येषा परिभाषा न कर्तव्या भवति। यद्येतज्ज्ञाप्यते, केनेदानीं समासो भविष्यति? समर्थेन। यद्येवं धातूपसर्गयोरपि समासः प्राप्नोति-पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते, पश्चात् साधनेनेति। नैतदस्ति। 'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते, पश्चादुपसर्गेण'। साधनं हि क्रियां निर्वर्त्तयति तामुपसर्गो विशिनष्टि। अभिनिर्वृत्तस्य चार्थस्योपसर्गेण विशेषः शक्यो विज्ञातुम्।

प्रश्नभाष्य—**किमेतस्येति**। उक्त ज्ञापन का क्या प्रयोजन है? प्रयोजनवादी-**गतिकारकेति**। उक्त ज्ञापन के द्वारा गति, कारक और उपपद का कृदन्त के साथ स्वतः समास हो जाता है; अतः उसी के लिए 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्' यह पृथक् परिभाषा नहीं करनी पडती है। उक्त ज्ञापन का जो भी प्रयोजन है वह उक्त ज्ञापन के द्वारा ही गतार्थ हो जाता है। वस्तुतः इस परिभाषा का जो भी प्रयोजन है उसे 'पुंयोगादाख्यायाम्' ४.१.४८ सूत्र पर भाष्यकार कहेंगे। प्राश्निक आचार्य-**यद्येतदिति**। यदि 'अतिङ्'ग्रहण के द्वारा 'अनयोर्योगयोर्निवृत्तं सुप्सुपा' यह ज्ञापन करते हैं तो यहाँ किससे समास होगा? यहाँ शब्द के द्वारा उत्तरपद का ग्रहण नही हो पा रहा है, अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**समर्थेनेति**। 'सुपा' की निवृत्ति होने पर भी 'सुप्' इस प्रथमान्त पद की अनुवृत्ति होती है। इससे यहाँ समास पदविधि होगा; अतः समर्थ-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिभाषा की उपस्थिति होगी। वाक्य और वृत्ति के समानार्थक होने से यहाँ समर्थता है; अतः समास हो जायेगा। आक्षेपक- **यद्येवमिति**। यदि समर्थ होने से सुबुत्पत्ति से पूर्व समास कहेंगे तो धातु तथा उपसर्ग का भी समास प्राप्त होगा। धातु का पहले उपसर्ग के साथ योग होता है तथा बाद में **साधन**=कारक के साथ योग होता है। इससे धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होने से धातु तथा उपसर्ग का समास प्राप्त होगा। धातु और उपसर्ग इन दोनों का सामर्थ्य है। उपसर्गार्थविशिष्ट क्रिया का साधन के साथ योग होगा। इन दोनों का समास होने पर एकस्वर तथा शाकलप्रतिषेध की आपत्ति होगी।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। **साधन**=कारक क्रिया का जनक होता है; अतः साधन के विना क्रिया उत्पन्न नहीं हो सकेगी। इस तरह क्रिया और साधन का ही अन्तरङ्ग कार्य होने से पहले साधन अर्थ का वाचक प्रत्यय उत्पन्न होगा। तत्पश्चात् साधनसंसृष्टधातु का उपसर्ग के साथ योग होगा, केवल धातु का नहीं; अतः धातु तथा उपसर्ग का समास नहीं हो सकेगा। कृदन्त के साथ समास होता है, परन्तु अतिङ् इस निषेध से तिङन्त के साथ समास नहीं होता है। जहाँ तिङन्त के साथ समास इष्ट है उस विषय को 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ सूत्र पर 'उदात्तवता गतिमता च तिङा' के द्वारा भाष्यकार ने स्पष्ट कर दिया है। साधन से युक्त धातु के द्वारा **अभिनिर्वृत्त**=उत्पन्न विशेष अर्थ का उपसर्ग के साथ योग होता है; अत एव 'अनुभूयते सुखम्, उपास्यते गुरुः' इत्यादि में धातु ही सकर्मकक्रिया का वाचक होता है, एवम् उपसर्ग द्योतक होता है। इस तरह इस पक्ष में कोई दोष नहीं है।

* षष्ठीसमासादुपपदसमासो विप्रतिषेधेन * **षष्ठीसमासादुपपदसमासो भवति विप्रतिषेधेन। षष्ठीसमासस्याऽवकाशः-राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः। उपपदसमासस्याऽवकाशः-स्तम्बेरमः कर्णेजपः। इहोभयं प्राप्नोति-कुम्भकारो नगरकारः। उपपदसमासो भवति विप्रतिषेधेन**
* न वा षष्ठीसमासाऽभावाद् उपपदसमासः * **न वाऽर्थो विप्रतिषेधेन। किं कारणम्? 'षष्ठीसमासाऽभावाद् उपपदसमासः'। षष्ठीसमासस्याऽभावादुपपदसमासो भविष्यति। कथम्? 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्ते'रिति समासवचनात्।**

विप्रतिषेधवादी आचार्य—**षष्ठीसमासादिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'उपपदमतिङ्' से 'षष्ठी' २.२.८ सूत्र का बाध कहना चाहिये। 'राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः' में 'षष्ठी' २.२.८ सूत्र सावकाश है तथा 'स्तम्बेरमः कर्णेजपः' में 'उपपदमतिङ्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चरितार्थ है। 'कुम्भस्य कार कुम्भकारः, नगरस्य कार नगरकारः' में 'षष्ठी' २.२.८ एवम् 'उपपदमतिङ्' इन दोनों की एकसाथ प्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा उपपदसमास से षष्ठीसमास का बाध होता है। भाष्यकार उक्त विप्रतिषेध का खण्डन करते हैं-**न वेति**। सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास होता है; जब कि सुबुत्पत्ति से पूर्व ही सुबन्त का मात्र कृदन्त के साथ समास होता है। 'कुम्भकारः, नगरकारः' में अण्णन्त कृदन्तमात्र सुबन्त नहीं है; अतः उसके साथ षष्ठीसमास की प्राप्ति नहीं होने से 'कुम्भकारः, नगरकारः' में प्रतिषेध सम्भव नहीं हो सकेगा।

अथ वा विभाषा षष्ठीसमासो यदा न षष्ठीसमासस्तदोपपदसमासो भविष्यति। अनेनैव यथा स्यात्तेन मा भूदिति। कश्चात्र विशेषः-तेन वा स्यादनेन वा? अयमस्ति विशेषः-उपपदसमासो नित्यसमासः, षष्ठीसमासः पुनर्विभाषा। ननु च नित्यं यः समासः स नित्यसमासो यस्य विग्रहो नास्ति। 'ने'त्याह। नित्याधिकारे यः समासः स नित्यसमासः। नैवं शक्यम्। अव्ययीभावस्य ह्यनित्यसमासता प्रसज्येत। तस्मान्नित्यः समासो नित्यसमासो यस्य विग्रहो नास्ति। {उपपद}।

अन्य प्रकार से भी यहाँ विप्रतिषेध का खण्डन करते हैं-**अथ वेति**। 'विभाषा' २.१.११ सूत्र का अधिकार कर 'षष्ठी' २.२.८ से समास विहित है; अतः षष्ठीसमास विकल्प से है। जब षष्ठीसमास नहीं होगा तब उपपदसमास होगा। इस तरह षष्ठी और उपपदसमास में परस्पर बाध्यबाधकभाव नहीं है। कहीं कार्य में दोष देखे जाने पर कहते हैं-**अनेनैवेति**। 'कुम्भकारः, नगरकारः' इत्यादि में 'उपपदमतिङ्' के द्वारा नित्यसमास होगा। **तेन**='षष्ठी' २.२.८ के द्वारा समास नहीं होगा। अन्य आचार्य-**कश्चात्रेति**। 'कुम्भकारः, नगरकारः' में **तेन**='षष्ठी' २.२.८ सूत्र से समास हो, अथ वा **अनेन**='उपपदमतिङ्' के द्वारा समास हो, इन दोनों में क्या भेद है? इतर आचार्य-**अयमस्तीति**। 'नित्यं क्रीडाजीविकयोः' २.२.१७ सूत्रस्थ नित्याधिकार में विहित होने से 'उपपदमतिङ्' नित्य समास है, जब कि 'विभाषा' २.१.११ के अधिकार में होने से 'षष्ठी' २.२.८ विकल्प है। अन्य आचार्य-**ननु चेति**। जिसका विग्रह न हो, अथ वा अस्वपदविग्रह हो उसे नित्यसमास कहते हैं। 'कुम्भकारः, नगरकारः' में स्वपदविग्रह हो रहा है; फिर आप इसे नित्यसमास कैसे कहेंगे? इतर आचार्य-**नेत्याहेति**। यह कोई आवश्यक नहीं है कि अविग्रह अथ वा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्वपदविग्रह ही नित्यसमास हो, अपि तु 'नित्य' २.२.१७ के अधिकार में विहित भी नित्यसमास होता है। आक्षेपक-**नैवमिति**। यदि नित्याधिकार में पठित को नित्यसमास मानेंगे तो अव्ययीभाव अनित्यसमास होने लगेगा; अतः दोष होने से नित्यशब्द में स्वरितत्वप्रतिज्ञा नहीं की जा सकती है; अतः ज़िसका विग्रह नहीं है, उसे ही नित्यसमास समझना चाहिये। इस तरह अब तक के भाष्य से यह सिद्ध हुआ कि कोई प्रयोजन नहीं होने से षष्ठीसमास तथा उपपदसमास का प्रतिषेधवचन नहीं पढना चाहिये। {उपपदमतिङ्}।

अमैवाव्ययेन २.२.२०

एवकारः किमर्थः? * एवकारो नियमार्थः *** नैतदस्ति प्रयोजनम्। सिद्धे विधिरारभ्यमाणोऽन्तरेणाप्येवकारं नियमार्थो भविष्यति। इष्टतोऽवधारणार्थ-स्तर्हि भविष्यति। यथैवं विज्ञायेत-'अमैवाव्ययेने'ति। मैवं विज्ञायि-'अमाऽव्ययेनैवे'ति। अस्ति चेदानीं कश्चिदन-व्ययम् अम्शब्दो यदर्थो विधिः स्यात्? अस्तीत्याह-खशयं ब्राह्मण-कुलमिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। अन्तरङ्गत्वादत्र समासो भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-'अमैव तर्हि यत्तुल्यविधानमुपपदं तत्र यथा स्यादमा चाऽन्येन च यत्तुल्यविधानं तत्र मा भू'दिति। अग्रे भोजम्। अग्रे भुक्त्वा। अग्रादिष्वप्राप्तविधेः समासप्रतिषेधं चोदयिष्यति, स न वक्तव्यो भवति।** {अमैवाव्ययेन}।

'अमा' तृतीयान्त, 'एव' अव्ययपद तथा 'अव्ययेन' तृतीयान्त होने से यह तीन पदों का सूत्र है। 'स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते, सम्पन्नकारं भुङ्क्ते, लवणङ्कारं भुक्ते' इत्यादि में पूर्वसूत्र 'उपपदमतिङ्' २.२.१९ से ही समास सिद्ध था; फिर उत्तरसूत्र का आरम्भ व्यर्थ पड कर नियम करेगा-'अव्यय के साथ उपपद का समास हो तो अमान्त के ही साथ हो, अन्य के साथ नहीं'। इससे 'कालो भोक्तुम्' में उपपदसमास का व्यावर्तन हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**एवकार इति**। 'अमाव्ययेन' इतना ही सूत्र रखिये, 'एव'पद का निर्देश किस लिए है? एकदेशी-**नियमार्थ इति**। यह सूत्र नियमार्थक हो सके, एतदर्थ 'एव' शब्द का निर्देश है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। उक्त 'एव' पद का नियमार्थ प्रयोजन नहीं हो सकता है। यहाँ पूर्वसूत्र से समास सिद्ध होने पर उत्तरसूत्र का आरम्भ व्यर्थ पड कर नियम कर देगा। एकदेशी-**इष्टत इति**। 'अव्यय के साथ समास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो तो अमान्त के ही साथ हो, अन्य अव्यय के साथ न हो' इस इष्टनिश्चय के लिए 'एव' पद का निर्देश है। अन्यथा यदि 'अमाऽव्ययेन' इतना मात्र सूत्रनिर्देश करते तो 'अम् के साथ समास हो तो अव्यय के ही साथ हो, अन्य के साथ न हो' ऐसा भी अर्थ होने लगेगा। आक्षेपक-**अस्तीति**। क्या कोई अव्ययभिन्न अम् शब्द भी है जिसकी निवृत्ति के लिए नियम होगा? एकदेशी-**अस्तीति**। 'खशयम्' में 'शयम्' यह अनव्यय अम्शब्द है। 'शीयतेऽस्मिन्निति शयम्' में 'अधिकरणे शेतेः' ३.२.१५ से अच्प्रत्यय है। 'अतोऽम्' ७.१.२४ से 'सु' को अमादेश है। इस अनव्यय अम् के साथ समास न हो, एतदर्थ यह नियम माना गया है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। अन्तरङ्ग होने से 'खशयम्' में समास हो जायेगा। 'सु' प्रत्यय उत्पन्न होने से पूर्व उपपदसमास होना चाहिये। उपपदसमासविधानकाल में सुबन्त के साथ समास नहीं होगा; अतः अनव्यय अम् असम्भव है। आगे कहा जाने वाला नियम में एवकार चरितार्थ है, अतः उससे विपरीतनियम नहीं हो सकता है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। अम् के प्रति जो उपपद होगा उसी का समास होगा, अम् से भिन्न अव्यय के प्रति जो उपपद होगा, उसका समासं नहीं होगा; एतदर्थ अम्पद का निर्देश है। जैसे 'अग्रे भोजम्, अग्रे भुक्त्वा'। 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' ३.१.९२ की उपपदसंज्ञा है। 'विभाषाऽग्रे- प्रथमपूर्वेषु' ३.४.२४ से सप्तम्यन्त 'अग्रे' उपपद रहते धातु से पर में क्त्वा और णमुल् का विधान है। आचार्य अग्र आदि उपपद रहते अप्राप्तविधि का समासप्रतिषेध कहेंगे, वह एवकारग्रहण से नहीं करना पडता है। चुँकि अप्राप्तविभाषा है, अतः प्रत्यय की उत्पत्ति में अग्र आदि पद निमित्त का ग्रहण होने से समास प्राप्त हो रहा है। परन्तु प्राप्तविभाषापक्ष में प्रत्ययोत्पत्ति के प्रति अग्र आदि निमित्त नहीं होंगे, अपि तु प्रत्यय की निवृत्ति में ही निमित्त होंगे, अतः अग्र आदि की प्रत्यय-अनुत्पादकता होगी। {अमैवा-}।

शेषो बहुव्रीहिः २.२.२३

'शेष' इत्युच्यते, कश्च शेषो नाम? येषां पदानामनुक्तः समासः स शेषः * शेषवचनं पदतश्चेन्नाऽभावात् * **शेषवचनं पदतश्चेत्तन्न। किं कारणम्? 'अभावात्'। न हि सन्ति तानि पदानि येषां पदानामनुक्तः समासः** * अर्थतस्तर्हि * **अर्थस्तर्हि शेषग्रहणं-येष्वर्थेषु अनुक्तः समासः स शेषः** * अर्थतश्चेदविशिष्टम् * **अर्थतश्चेदविशिष्टमेतद् भवति। कुतः? पदतः। नहि सन्ति तेऽर्था येष्वर्थेषु**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुक्तः समासः * त्रिकतस्तर्हि * **त्रिकतस्तर्हि शेषग्रहणम्। यस्य त्रिकस्याऽनुक्तः समासः स शेषः। कस्य चाऽनुक्तः? प्रथमायाः।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये द्वितीयाऽध्यायस्य द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम्

●

प्रश्नभाष्य—**शेष इति**। शेष की बहुव्रीहिसंज्ञा कर रहे हैं, शेष क्या है? मध्यम एकदेशी-**येषामिति**। जिन पदों का समास नहीं कहा है वे शेष हैं। उक्त से अन्य शेष होता है। आक्षेपक-**शेषवचनमिति**। यदि पद से शेषवचन लेंगे तो वह असम्भव होगा। कोई भी ऐसा पद नहीं है जिसका समास नही कहा गया है। यदि अर्थतः शेषग्रहण करेंगे तो जिन अर्थों में समास नहीं कहा गया है शेष होने से उन्हीं अर्थो में समास होगा। 'पदतः, अर्थतः' में 'आद्यादिभ्यस्तसिः' ५.४.४४ से तसि प्रत्यय है। अर्थतः शेषपक्ष का खण्डन करते हैं-**अर्थतश्चेति**। अर्थतः शेषपक्ष भी उचित नहीं है। शब्द से अर्थ अभिन्न होता है। सभी शब्दों का समास उक्त है, अतः इसी से सभी अर्थो का समास भी उक्त हो जायेगा। इस तरह पद और अर्थ इन सभी का समास उक्त होने पर प्रश्न है-'यहाँ शेषपद से किसका ग्रहण है'?

उत्तरभाष्य—**त्रिकतस्तर्हीति**। 'त्रयाणां सङ्घस्त्रिकः' 'संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८ से 'क' प्रत्यय है। द्वितीया आदि का प्रतिपदसमासविधान होने से प्रथमा का शेषत्व है। इस तरह 'प्रथमान्तपदों का बहुव्रीहि हो' ऐसा कहने से अर्थतः समानाधिकरणों का बहुव्रीहि अप्रथमाविभक्त्यर्थ के साथ सिद्ध होता है। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' २.२.३५ इस पूर्वनिपातज्ञापन से 'कण्ठेकालः' इत्यादि में समास हो जायेगा। {शेषो-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य द्वितीय अध्याय द्वितीय पाद प्रथम आह्निक पर डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित 'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

R. 83

❁ द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

अनेकमन्यपदार्थे २.२.२४

पदग्रहणं किमर्थम्? इह 'अनेकमन्यार्थे' इतीयत्युच्यमाने वाक्यार्थेऽपि बहुव्रीहिः स्यात्-'यथा मे माता तथा मे पिता सुस्नातं भो' इति। पदग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति।

सूत्रार्थ—'अन्यपदार्थ में वर्तमान अनेकप्रथमान्त का विकल्प से समास हो तथा वह बहुव्रीहिसंज्ञ हो'।

वार्तिककार अनेकग्रहण का प्रयोजन कहेंगे। भाष्यकार पदग्रहण तथा अन्यग्रहण का प्रयोजन बता रहे हैं। अन्यपदग्रहण का प्रयोजन बताने के लिए बहुत अधिक कहना पडेगा, अतः बाद में उसका विचार होगा। पदग्रहण का प्रयोजन बताने के लिए पूर्वपक्ष करते हैं-**पदग्रहणमिति**। प्रकृतसूत्र में पद शब्द का निर्देश क्यों है। 'अन्यार्थे' इतना ही कहने पर स्वपदार्थ से भिन्न अन्य अर्थ का आश्रयण होने से अन्य अर्थ का लाभ हो जायेगा। समासपदार्थ सुबन्त होते हैं; अतः उनका क्रियालक्षणवाक्यार्थ में शक्ति असम्भव होने से उसकी निवृत्ति के लिए भी पदग्रहण आवश्यक नहीं होने से पूर्वपक्ष है।

उत्तरभाष्य—**इहेति**। यदि पदशब्द का निर्देश नही करेंगे तो 'अनेकमन्यार्थे' इतना ही सूत्र होगा। इससे 'यथा मे माता तथा मे पिता सुस्नातं भोः' इस वाक्यार्थ में भी बहुव्रीहि की अतिव्याप्ति होगी। किसी ने किसी से पूछा-'तुम्हारे पिता का कुल, शील आदि कैसा है'? उसने उत्तर दिया-'जैसे मेरी माता का कुल, शील है'। ये पद 'यथा मे पिता' इस अन्य अर्थ का बोध कराते हैं, अतः यहाँ समास प्राप्त होगा। अथ वा 'स्नाहि' ऐसा किसी ने किसी से कहा, उसके प्रति 'यथा मे माता' इत्यादि कहा। जैसे 'शुद्ध कुल वाली मेरी माता है, वैसे पिता भी है' ऐसा अभिजनशुद्धि भी स्नान है, बाह्यस्नान से क्या प्रयोजन है? इस तरह 'सुस्नातं भोः' इस वाक्यार्थ में शक्त यथाप्रभृतिपदों का समासवारण के लिए पदशब्द का निर्देश है। पदों की शक्ति अश्रुतवाक्यार्थ में भी देखी जाती है। जैसे स्नान की इच्छा वाले किसी व्यक्ति से किसी ने कहा-'नदी में ग्राह है'। इस वाक्य से 'स्नान न करो' यह वाक्यार्थबोध होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परन्तु जब प्रकृतसूत्र में पदशब्द का निर्देश करते हैं तब कोई दोष नही होता है।

अथाऽन्यग्रहणं किमर्थम्? 'अनेकं पदार्थे' इतीयत्युच्यमाने स्वपदार्थेऽपि बहुव्रीहिः स्यात्-राजपुरुषः तक्षपुरुष इति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। तत्पुरुषः स्वपदार्थे बाधको भविष्यति। भवेदेकसंज्ञाऽधिकारे सिद्धम्। परंकार्यत्त्वे च न सिध्यति। आरम्भसामर्थ्याच्च तत्पुरुषः, परंकार्यत्वाच्च बहुव्रीहिः प्राप्नोति। परंकार्यत्वे च न दोषः, शेष इति वर्त्तते। अशेषत्वान्न भविष्यति।

प्रश्नभाष्य—**अथाऽन्येति**। अन्यपद का निर्देश क्यों करते हैं? अन्तरङ्ग होने से स्वपदार्थ में समास सिद्ध है, फिर पदार्थग्रहणसामर्थ्य से अन्यपदार्थ का लाभ हो जायेगा, अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**अनेकमिति**। यदि अन्यशब्द का ग्रहण नहीं करेंगे तो 'अनेकं पदार्थे' इतना ही सूत्र होगा। स्वपदार्थ में भीं बहुव्रीहि की आपत्ति होने से 'राजपुरुषः, तक्षपुरुषः' में बहुव्रीहि तथा तन्निबन्धन 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ से पूवपदप्रकृतिस्वर की आपत्ति होगी। 'स्वपदार्थेऽपि' में 'अपि'शब्दनिर्देश से 'अन्यपदार्थ में भी बहुव्रीहि होगा' ऐसा अर्थ समझना चाहिये। पदार्थग्रहण का व्याप्ति-आश्रयण के लिए होने से स्वपदार्थ तथा अन्यपदार्थ में समास होगा।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। प्रकृतसूत्र में अन्यशब्द का निर्देश नहीं करने पर भी स्वपदार्थ में बहुव्रीहि की जो आपत्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। स्वपदार्थ में प्राप्त बहुव्रीहि का बाध हो जायेगा। अन्य आचार्य-**भवेदिति**। यदि 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ के अधिकार में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र का निर्देश है, अतः स्वपदार्थ में तत्पुरुष से बहुव्रीहि का बाध कह सकते हैं। परन्तु यदि परकार्य को बलवान् माना जाये तो स्वपदार्थ में भी तत्पुरुष की अपेक्षा पर होने से बहुव्रीहि ही होगा। यहाँ आरम्भसामर्थ्य से तत्पुरुष तथा पर होने से बहुव्रीहि, यह दोनो संज्ञाओं का समावेश होने से स्वर तथा समासान्त की आपत्ति होगी। इतर आचार्य-**परमिति**। आचार्य 'शेषो बहुव्रीहिः' २.२.२३ ऐसा कह रहे हैं। उक्त से अन्य शेष होता है। स्वपदार्थ में तत्पुरुष उक्त है, अतः उसी में परत्वात् बहुव्रीहि नहीं होगा।

*** शेषवचन उक्तम् * शेषवचने उक्तम्। किमुक्तम्? 'तत्र शेषवचनद्दोषः संख्यासमानाधिकरणनञ्समासेषु बहुव्रीहिप्रतिषेध' इति। अथैकसंज्ञाऽधिकारे नाऽर्थोऽन्यग्रहणेन? एकसंज्ञाऽधिकारे च कर्तव्यम्। अक्रियमाणे ह्यन्यग्रहणे यथैव तत्पुरुषः स्वपदार्थे बहुव्रीहिं बाधते**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवमन्यपदार्थेऽपि बाधेत।

समाधानवादी—**शेषग्रहण इति**। 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ सूत्र पर शेषवचन के विषय में 'तत्र शेषवचनाद्दोषः संख्यासमानाधिकरणनञ्समासेषु बहुव्रीहिप्रतिषेधः' ऐसा कहा है। 'द्वीरावतीको देशः, वीरपुरुषको ग्रामः, अब्राह्मणको देशः' इस समासविधि में उपयोग होने तथा अशेष होने से बहुव्रीहि प्राप्त नही हो पा रहा है; अतः शेषग्रहण नहीं करना चाहिये। इस तरह स्वपदार्थ में बहुव्रीहिनिवृत्ति के लिए अन्यग्रहण करना चाहिये, यह सिद्धान्त आया। अन्य आचार्य-**अथैकसंज्ञेति**। एकसंज्ञाधिकारपक्ष में भी अन्यपद का ग्रहण अवश्य करना चाहिये। अन्यथा अन्यपद का ग्रहण नहीं करने पर जैसे स्वपदार्थ में तत्पुरुष से बहुव्रीहि का बाध होता है, वैसे 'नीलोत्पलं सरः' यहाँ पर विशेष का ग्रहण नहीं होने से अन्यपदार्थ में भी स्वपदार्थ की तरह तत्पुरुष से बहुव्रीहि के बाध की आपत्ति होगी। 'कण्ठेकालः' इत्यादि व्यधिकरणपदबहुव्रीहि का अवकाश होगा। परन्तु जब अन्यपद का निर्देश करते हैं तब पर बहुव्रीहि के द्वारा स्वपदार्थ में सावकाश तत्पुरुष का बाध हो जाने से कोई दोष नहीं होता है।

अथाऽनेकग्रहणं किमर्थम्? 'अन्यपदार्थ' इतीयत्युच्यमाने एकस्यापि पदस्य बहुव्रीहिः स्यात्-सर्पिषोऽपि स्याद्, मधुनोऽपि स्याद्, गोमूत्रस्यापि स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं, 'सुप्सुपे'ति वर्तते। इदं तर्हि प्रयोजनं बहूनामपि समासो यथा स्यात्—

सुसूक्ष्मजटकेशेन, सुनताऽजिनवाससा।
समन्तशितिरन्ध्रेण द्वयोर्वृत्तौ न सिध्यति॥

प्रश्नभाष्य—**अथानेकेति**। समास पदविधि है। सामर्थ्य होने पर ही बहुव्रीहिसंज्ञा का विधान होगा तथा वह अनेकपदों में अधिष्ठित होगा। इस तरह अनेकपदों का ही बहुव्रीहि प्राप्त होगा, एक का नहीं; अतः एक की निवृत्ति के लिए अनेकग्रहण उपयोगी नहीं है, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-**अन्यपदार्थ इति**। यदि अनेकग्रहण नहीं करते तो 'अन्यपदार्थे' मात्र इतना ही सूत्र होता। इससे अन्यपदार्थगम्य होने पर एकपद को भी बहुव्रीहि की आपत्ति होने से 'सर्पिषोऽपि स्यात्, मधुनोऽपि स्यात्, गोमूत्रस्याऽपि स्यात्' इन स्थलों में भी बहुव्रीहि की आपत्ति होगी। इससे समासान्त कप्प्रत्यय की अतिव्याप्ति होने लगेगी। यहाँ सर्वत्र 'अपि'शब्द बिन्दु के अर्थ में है; अतः उसी की बहुव्रीहि की आपत्ति दी जा रही है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'सुप्सुपा' का अनुवर्त्तन है। इससे सुबन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का सुबन्त के साथ समास होने से एक पद का बहुव्रीहि नहीं हो सकेगा; अतः एक पद का बहुव्रीहिव्यावर्तन के लिए किया गया अनेकग्रहण व्यर्थ है। अन्य आचार्य-**इदं तर्हीति**। बहुत पदों का भी बहुव्रीहि हो सके, एतदर्थ अनेकग्रहण है। अन्यथा 'सुप्सुपा' इस अनुवर्तन से गुण में संख्या की विवक्षा होने से दो पदों का ही बहुव्रीहि होता।

बहुत पदों का बहुव्रीहि का उदाहरण देते हैं-**सुसुक्ष्मेति**। 'सुसुक्ष्मा जटाः केशा यस्य तेन, सुनतानि अजिनानि वासांसि यस्य तेन, समन्ताः शितयो रन्ध्रा यस्य तेन' इन बहुत पदों का भी बहुव्रीहि होता है। मात्र 'सुप्सुपा' का अनुवर्तन कर दो पदों का समास कहने पर बहुत पदों का बहुव्रीहि असम्भव होगा, इसे बताते हैं-**द्वयोर्वृत्तौ नेति**। 'बहूनामपि' में 'अपि' शब्द से दो पदों का बहुव्रीहि भी संगृहीत है; अतः 'पीताम्बरो हरिः' में भी बहुव्रीहि सिद्ध हो जाता है।

*** उत्तरार्थं च * उत्तरार्थं चाऽनेकग्रहणं कर्तव्यं-'चाऽर्थे द्वन्द्वः'। 'अनेक'मिति। इहापि यथा स्यात्-'प्लक्षन्यग्रोधधवखदिरपलाशाः' इति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'बहूनामपि समासो भवती'ति, यदयम्-उत्तरपदे द्विगुं शास्ति। तत्पुरुषोऽपि तर्हि बहूनां प्राप्नोति। नैष दोषः। ग्रहणेन तत्पुरुष उच्यते, तेन बहूनां न भविष्यति।**

अनेकग्रहण का अन्य प्रयोजन भी बताते हैं—**उत्तरार्थमिति**। उत्तरसूत्र 'चाऽर्थे द्वन्द्वः' २.२.२९ में अनुवृत्ति के लिए भी यहाँ अनेकग्रहण करना चाहिये। इससे 'घटश्च पटश्च मठश्च' इन बहुत पदों का द्वन्द्व होकर 'घटपटमठाः' समास होता है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। अनेकग्रहण का प्रयोजन 'बहूनामपि समासो यथा स्यात्' तथा 'उत्तरार्थं च' भी नहीं है। आचार्य 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ के द्वारा उत्तरपद पर रहते द्विगु का विधान करते हैं। इससे स्पष्ट करते हैं कि अनेकपदों का भी समास होता है। इसी ज्ञापन से बहुतपदों का द्वन्द्व भी सिद्ध हो जायेगा अतः उत्तरसूत्र 'चाऽर्थे द्वन्द्वः' २.२.२९ में अनुवर्तन के लिए भी अनेकग्रहण का प्रयोजन नहीं है। अन्य आचार्य-**तत्पुरुषोऽपीति**। यदि पूर्वोक्त ज्ञापन से बहुतपदों के समास का ज्ञापन करेंगे तो इसकी अतिव्याप्ति तत्पुरुष में होगी; अतः बहुत पदों के तत्पुरुष की आपत्ति होगी। इससे 'महत् कष्टं श्रितः' इन को भी तत्पुरुष की आपत्ति होगी।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'द्वितीया श्रितातीत-'२.२.२४ इत्यादि पदों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का निर्देश कर तत्पुरुष का विधान है; अतः उन्हीं पदों का तत्पुरुष होगा। यह दो पदों का ही निर्देश है; अतः बहुत पदों का तत्पुरुष नहीं होगा।

अत उत्तरं पठति- * अनेकवचनमुपसर्जनार्थम् * अनेकग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? उपसर्जनार्थम्। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जन'मित्यनेकस्य सुप उपसर्जनसंज्ञा यथा स्याच्-चित्रगुः शबलगुरिति * न वैकविभक्तित्वात् * न वैतदपि प्रयोजनमस्ति। किं कारणम्? 'एकविभक्तित्वात्'। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' इत्युपसर्जनसंज्ञा भविष्यति,-चित्रगुः शबलगुरिति। चित्रा अस्य गावश्चित्रगुस्तिष्ठति। चित्रा यस्य गावश्चित्रगुं पश्येति। चित्रा यस्य गावश्चित्रगुणा कृतम्। चित्रा यस्य गावश्चित्रगवे देहि। चित्रा अस्य गावश्चित्रगोरानय। चित्रा यस्य गावश्चित्रगोः स्वम्। चित्रा यस्य गावश्चित्रगौ निधेहि। चित्रा यस्य गावो हे चत्रगो इति। यदि तर्हि यतः कुतश्चिदेव किञ्चित् पदमध्याहृत्य एक-विभक्तियोगः क्रियते, एतदप्येकविभक्तियुक्तं भवतीहापि प्राप्नोति-राजकुमारी तक्षकुमारी। राज्ञो या कुमारी राजकुमारी तिष्ठति। राज्ञो या कुमारी राजकुमारीं पश्य। राज्ञो या कुमारी राजकुमार्या कृतम्। राज्ञो या कुमारी राजकुमार्यै देहि। राज्ञो या कुमारी राजकुमार्या आनय। राज्ञो या कुमारी राजकुमार्याः स्वम्। राज्ञो या कुमारी राजकुमार्यां निधेहि। राज्ञो या कुमारी हे राजकुमारि-इति। एकविभक्तियुक्तमेव यन्नित्यम्। न चैतन्नित्यमेकविभक्ति-युक्तमेव राज्ञः कुमारीं पश्य राजकुमारीं पश्येत्यपि भवति। किं वक्तव्यमेतत्? नहि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? एकग्रहणसामर्थ्यात्। यदि हि यदेकविभक्तियुक्तं चाऽनेकविभक्तियुक्तं च तत्र स्यादेक-ग्रहणमनर्थकं स्यात्। 'विभक्तियुक्तं च पूर्वनिपाते' इत्येव ब्रूयात्।

अन्य आचार्य—उपसर्जनार्थमिति। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' १. २.४३ के द्वारा समासशास्त्र में प्रथमान्तनिर्दिष्ट की उपसर्जनसंज्ञा कही गयी है, वह अनेक की हो, इस के लिए अनेकपद का निर्देश है। जैसे 'चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, शबला गावो यस्य स शबलगुः'। अनेकग्रहण होने पर 'सुप्' की अनुवृत्ति होती है, 'सुपा' की नहीं। इस तरह अनेकपद के द्वारा उत्तरपद भी बोध्य है; अतः समासशास्त्र में गो पद के प्रथमान्त उच्चरित होने से उप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्जनसंज्ञा होती है तथा उसको ह्रस्व होता है। इतर आचार्य इसका खण्डन करते हैं-**न वेति**। अनेकग्रहण का उपसर्जनार्थ भी प्रयोजन नही है। आचार्य ने 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' १.२.४४ यह विशेषसूत्र पढा है, उससे गो शब्द की उपसर्जनसंज्ञा हो जायेगी तथा उसको 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ से ह्रस्वादेश होकर 'चित्रगुः, शबलगुः' रूप हो जायेगा। बहुव्रीहिसमासनिष्ठ ह्रस्वघटित गु शब्द का उदाहरण देते हैं-चित्रा अस्य गावश्चित्रगुस्तिष्ठतीति। अन्य आचार्य-**यदि तर्हीति**। 'चित्रा गावोऽस्य' इत्यादिविग्रहवाक्य में किसी का अनेकविभक्तित्व नहीं है जिसकी अपेक्षा 'गावः' पद का नियतविभक्तित्व हो सके। यदि किसी तरह अन्यपद का अध्याहार कर **एकविभक्तियोग**=नियतविभक्ति का योग करेंगे तो इसकी अतिव्याप्ति 'राज्ञो या कुमारी तां पश्य, तया कृतम्, तस्यै देहि' इत्यादि आश्रयण के द्वारा कुमारी शब्द के नियतविभक्तिक होने से उसकी उपसर्जनसंज्ञा होगी तथा उसको ह्रस्वादेश की आपत्ति होगी। इतर आचार्य-**एकविभक्तीति**। 'प्रथमान्त कुमारीशब्द के साथ ही षष्ठ्यन्त का समास हो' ऐसा कोई नियम नहीं है; अपि तु वाक्यसंस्कारपक्ष में परिनिष्ठितविभक्ति द्वितीययान्त आदि के साथ भी षष्ठ्यन्त का समास होता है; अतः परिनिष्ठितविभक्ति द्वितीयान्त आदि के साथ भी षष्ठी का समास होने से कुमारीशब्द नियतविभक्तिक नहीं रहा; अतः उसको ह्रस्वादेश की आपत्ति नहीं होगी।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। परिनिष्ठितविभक्ति द्वितीयान्त आदि के साथ षष्ठ्यन्त का समासविधान के लिए क्या कोई अतिरिक्तवचन पढा जाना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**नहीति**। इसके लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नही है। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' १.२.४४ सूत्र में आचार्य जो एकपद का निर्देश करते हैं उसके सामर्थ्य से वाक्यसंस्कारपक्ष में परिनिष्ठितविभक्ति के साथ समास सिद्ध हो जायेगा। एक-एक के प्रयोग होने पर सभी पद एकविभक्तिक होंगे, कोई अनेकविभक्ति नहीं होगा; फिर अनेकव्यावर्तन के लिए किया गया एक पद व्यर्थ होने लगेगा; अतः उसकी सार्थकता के लिए वाक्यसंस्कारपक्ष में परिनिष्ठितविभक्ति द्वितीयान्त आदि के साथ समास कहना चाहिये। अन्यथा यदि मात्र प्रथमान्त पद के साथ ही षष्ठीसमास होता तो संज्ञी का निर्देश के लिए आचार्य 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' १.२.४४ के स्थान पर 'विभक्तियुक्तञ्च पूर्वनिपाते' यही सूत्र करते।

* पदार्थाऽभिधानेऽनुप्रयोगाऽनुपपत्तिरभिहितत्वात् * **पदार्थाऽभिधानेऽनुप्रयोगाऽनुपपत्तिः- चित्रगुर्देवदत्त इति। किं कारणम्? 'अभिहित-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वात्'। चित्रगुशब्देनाऽभिहितः सोऽर्थ इति कृत्वाऽनुप्रयोगो न प्राप्नोति।

आक्षेपवार्तिक-**पदार्थाभिधान इति**। 'चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः' इस समास के द्वारा ही 'चित्रा गायों वाला देवदत्त' इस अर्थ का बोध हो रहा है; अतः मात्र 'चित्रगुः' यही कहना चाहिये, देवदत्त पद का अनुप्रयोग नहीं करना चाहिये।

*** न वाऽनभिहितत्वात् * न वैष दोषः। किं कारणम्? 'अनभिहितत्वात्'। चित्रगुशब्देनाऽनभिहितः सोऽर्थ इति कृत्वाऽनुप्रयोगो भविष्यति। कथमनभिहितो, यदिदानीमेवोक्तं**-'पदार्थाऽभिधानेऽनुप्रयोगाऽनुपपत्तिरभिहितत्वा'दिति * सामान्याऽभिधाने हि विशेषानभिधानम् * **सामान्ये ह्यभिधीयमाने विशेषोऽनभिहितो भवति। तत्राऽवश्यं विशेषार्थिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः,-चित्रगुः को देवदत्त इति। भवेत्सिद्धं यदा सामान्ये वृत्तिः। यदा तु खलु विशेषे वृत्तिः, तदा न सिध्यति-चित्रा गावो देवदत्तस्य चित्रगुर्देवदत्त इति। तदाऽपि सिद्धम्। कथम्? नेदमुभयं युगपद् भवति वाक्यं च, समासश्च। यदा वाक्यं, तदा न समासः। यदा समासो, न तदा वाक्यम्। यदा समासस्तदा सामान्ये वृत्तिः। तत्राऽवश्यं विशेषार्थिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः- चित्रगुः। कः? देवदत्त इति।**

समाधानवार्तिक—**न वेति**। 'चित्रगुः' इस बहुव्रीहि के द्वारा मात्र अन्यपदार्थ उक्त है, देवदत्तपदार्थ नहीं; अतः 'चित्रगुः' में बहुव्रीहि होने पर भी देवदत्त अर्थ के अनुक्त होने से उसका अनुप्रयोग होगा।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। अभी-अभी आक्षेपक ने वार्तिकमुख से 'बहुव्रीहि के द्वारा उक्त होने से देवदत्त आदि पदों का अभिधान' बताया था, फिर आप देवदत्त आदि पदों का अनभिधान कैसे बता रहे हैं? अन्य आचार्य अनभिधान स्पष्ट करते हैं-**सामान्येति**। सामान्यकथन के द्वारा विशेषकथन नहीं माना जाता है। 'चत्रा गावो यस्य सः' ऐसा कहने से 'चित्रवर्ण का गाय वाले' का सामान्यबोध होता है। 'चित्रवर्ण की गाय वाला वह विशेषरूप से देवदत्त है' ऐसा बोध नहीं होता है; अतः विशेषरूप से बोध कराने के लिए देवदत्तशब्द का अनुप्रयोग अवश्य करना चाहिये। इतर आचार्य-**भवेदिति**। यदि 'चित्रगुः' को सामान्य अर्थ में शक्त मान कर समास किया जाये तब विशेष देवदत्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि का अनुप्रयोग हो सकता है, परन्तु यदि विशेष अर्थ देवदत्त में ही शक्त मान कर 'चित्रगुः' ऐसा समास किया जाये, तब देवदत्त पद का अनुप्रयोग नहीं होना चाहिये। अन्य आचार्य-**तदापीति**। 'चित्रा गावो देवदत्तस्य' इस विशेष अर्थ में समास होने पर भी देवदत्तपद का अनुप्रयोग अवश्य होगा। वह इस तरह कि वाक्य और समास यह दोनों एक साथ नहीं होते हैं। जब 'चित्रा गावो देवदत्तस्य' यह वाक्यप्रयोग होगा तब 'चित्रगुः' यह समासप्रयोग नहीं होगा, एवं जब समासप्रयोग होगा तब वाक्यप्रयोग नहीं होगा। वाक्य और समास दोनों का एक साथ प्रयोग असम्भव है। वाक्य में विशेष अर्थ देवदत्त आदि का बोध होने पर भी समास में असम्भव होगा; अतः समास में सर्वदा सामान्यवृत्ति ही होगी, विशेषवृत्ति नहीं। इस तरह विशेष अर्थ का बोध कराने के लिए विशेष पद देवदत्त आदि का अनुप्रयोग अवश्य करना चाहिये।

सामान्यस्यैव तर्ह्यनुप्रयोगो न प्राप्नोति-चित्रगुः। कः? चित्रगु तत्, चित्रगु किञ्चित्, चित्रगु सर्वमिति। सामान्यमपि यथा विशेषस्तद्वत्। तत्र चित्रग्वित्युक्ते सन्देहः स्यात्-सर्वे वाऽविश्वं वेति। तत्राऽवश्यं सन्देहनिवृत्त्यर्थं विशेषार्थिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः-'चित्रगु तदि'ति। अथवा विभक्त्यर्थोऽभिधीयते। एतच्चाऽत्र युक्तं यद् विभक्त्यर्थो- ऽभिधीयते, तत्र हि सर्वपश्चात् पदं वर्त्ततेऽस्येति।

इतर आचार्य—**सामान्यस्यैवेति**। यदि समास होने पर विशेष देवदत्त आदि का प्रयोग करते हैं तब समास से उक्त होने से सामान्य पद तद्, किञ्चित्, सर्वम् आदि का अनुप्रयोग नहीं होना चाहिये। अन्य आचार्य-**सामान्यमपीति**। उक्त होने पर भी जैसे सामान्य का प्रयोग करते हैं, वैसे विशेष का भी अनुप्रयोग करना चाहिये। अन्यथा यदि सामान्य का प्रयोग होने पर विशेष का अनुप्रयोग नहीं करेंगे तब सन्देह होगा'यह सब है, अथ वा थोड़ा है?'; अतः विशेषार्थी को सन्देहनिवृत्ति के लिए अवश्य ही विशेषपद का अनुप्रयोग करना चाहिये। इससे सभी सन्देह निवृत्त हो जाते हैं। इसका अन्य पक्ष बताते हैं-**अथवेति**। सम्पूर्णपदार्थ वाच्य होने पर अनुप्रयोग की असिद्धि तथा उसका परिहार बता दिया है। परन्तु जब समास के द्वारा विभक्त्यर्थ सम्बन्ध आदि वाच्य होंगे, तब सम्बन्ध आदि का वाचक विभक्ति का अनुप्रयोग नहीं होना चाहिये। द्रव्य अनुक्त है, अतः द्रव्यवाचक पद देवदत्त आदि का अनुप्रयोग अवश्य करना चाहिये। अन्यपदार्थ वाच्य होने पर विभक्त्यर्थ ही क्या लिया जाये?, इस विषय में कहते हैं-**तत्र हीति**। पद के द्वारा प्रकृत्यर्थ का विशेषण प्रत्ययार्थ वाच्य है; अतः प्राधान्य होने से अन्यपदार्थग्रहण के द्वारा विभक्त्यर्थ का ही ग्रहण होगा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह भाष्य का तात्पर्य है। 'सर्वपश्चात्' इस भाष्यकारवचनप्रामाण्य से अव्यय के साथ भी षष्ठीसमास होता है।

* विभक्त्यर्थाऽभिधानेऽद्रव्यस्य लिङ्गसंख्योपचाराऽनुपपत्तिः * **विभक्त्यर्थाऽभिधानेऽद्रव्यस्य लिङ्गसंख्याभ्यामुपचारोऽनुपपन्नः। बहुयवम्। बहुयवा। बहुयवः बहयवौ बहुयवा इति। अपर आह-** * विभक्त्यर्थाऽभिधाने द्रव्यस्य लिङ्गसंख्योपचाराऽनुपपत्तिः * **विभक्त्यर्थाऽभिधाने द्रव्यस्य ये लिङ्गसंख्ये ताभ्यां विभक्त्यर्थस्योपचारोऽनुपपन्नः। बहुयवम्। बहुयवा। बहुयवः बहयवौ बहुयवा इति। कथं ह्यन्यस्य लिङ्गसंख्याभ्यामन्यस्योपचारः स्यात्?**

आक्षेपवार्तिक—**विभक्त्यर्थेति**। यदि समास के द्वारा विभक्त्यर्थ वाच्य है तब वह द्रव्य नहीं हो सकेगा; अतः उसमें लिङ्ग और संख्या का योग नही होने से 'बहुयवम्' ऐसा नपुंसकलिङ्गघटित, 'बहुयवा' ऐसा स्त्रीलिङ्गघटित तथा 'बहुयवः' ऐसा पुल्लिङ्गघटित रूप नहीं हो सकेगा। एवं संख्या का अन्वय नहीं होने से 'बहुयवौ, बहुयवाः' ऐसा द्विवचन और बहुवचन में भी रूप नहीं हो सकेगा।

अन्य वार्तिककार भी ऐसा ही आक्षेप करते हैं—**विभक्त्यर्थेति**। समास से विभक्त्यर्थ वाच्य होने पर द्रव्य के साथ जो लिङ्ग और संख्या का योग होता है वह समास के साथ नहीं होने से 'बहुयवम्, बहुयवा, बहुयवः, बहुयवौ, बहुयवाः' में लिङ्ग और संख्या का योग नहीं होना चाहिये।

* सिद्धं तु यथा गुणवचनेषु * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'यथा गुणवचनेषु'। कथं गुणवचनेषु? गुणवचनेषूक्तम्। किमुक्तम्? 'गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ती'ति। तद्यथा- शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बला इति। यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तद् गुणस्याऽपि भवति। एवमिहापि यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति विभक्त्यर्थस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तत्समासस्याऽपि भविष्यति। यदि तर्हि विभक्त्यर्थोऽभिधीयते कृत्स्नः पदार्थः कथमभिहितो भवति सद्रव्यः सलिङ्गः ससङ्ख्यश्च?**

इतर आचार्य इस आक्षेप का वारण करते हैं—**सिद्धमिति**। गुणवचनशब्दों का लिङ्ग और संख्या द्रव्याश्रित होती है, यह 'नञ्' २.२.६ सूत्र पर भी बता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आया हूँ। जैसे शुक्लपद नपुंसकवाचिद्रव्य से युक्त होकर नपुंसकलिङ्ग में होता है-शुक्लं वस्त्रम्। स्त्रीलिङ्ग से युक्तद्रव्यवाची से युक्त होकर गुणवाचि शुक्लपद स्त्रीलिङ्ग में होता है-शुक्ला शाटी। एवं द्रव्यवाची पुल्लिङ्ग से युक्त होकर द्रव्य के लिङ्ग और संख्या का भजन करता हुआ पुल्लिङ्ग तथा सभी वचनों में होता है-शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बलाः'। उसी तरह प्रकृत में भी विभक्त्यर्थ जिस द्रव्य के साथ अन्वित होता है, उसका जो लिङ्ग और वचन, वह विभक्त्यर्थ समास का भी होगा। यद्यपि चित्रगुशब्द से सम्बन्ध वाच्य है, तथापि अभेदव्यवहार के द्वारा सम्बन्धी भी वाच्य होता है। सम्बन्ध के द्विष्ठ होने पर भी प्रधान होने से स्वामी का ही आश्रयत्व व्यवस्थापित होता है; अतः स्वामिगत लिङ्ग और संख्या भी समस्त पद के उत्तर में होती है, गवाश्रय-गतसंख्या नहीं। आक्षेपक-**यदि तर्हीति**। यदि समास से मात्र विभक्त्यर्थसम्बन्ध वाच्य है तब **कृत्स्न**=सम्पूर्ण **पदार्थ**= सम्बन्धी का बोध 'सद्रव्यः, सलिङ्गः, ससंख्यः' में कैसे होता है? अर्थात् जैसे शुक्लशब्द के द्वारा कभी गुण वाच्य है तथा कभी गुणी वाच्य है, वैसे चित्रगुशब्द से मात्र सम्बन्ध का भी बोध प्राप्त होता है, जब कि सर्वदा सम्बन्धी का बोध ही इष्ट है जो सिद्ध नहीं होता है, यह आक्षेप का अभिप्राय है।

'अर्थग्रहणसामर्थ्यात्'। इहाऽनेकमन्यपदे इतीयता सिद्धम्। कथं पुनः पदे नाम वृत्तिः स्यात्? पदं नाम शब्दः। शब्दो ह्येष, शब्दे ह्यसम्भवादर्थे कार्यं विज्ञास्यते। सोऽयमेवं सिद्धे सति यदर्थ-ग्रहणं करोति तस्यैतत्प्रयोजनं-'कृत्स्नः पदार्थो यथाऽभिधीयते सद्रव्यः सलिङ्गः ससङ्ख्यश्चे'ति। यदि तर्हि कृत्स्नः पदार्थो यथा-ऽभिधीयते-लैङ्गाः सांख्याश्च विधयो न सिध्यन्ति।

उत्तरभाष्य—**अर्थग्रहणेति**। यदि प्रधान का ग्रहण इष्ट होता तो आचार्य अर्थपद का निर्देश कर 'अनेकमन्यपदार्थे' इतना सूत्र नही पढते, अपि तु 'अनेकमन्यपदे' इतना ही सूत्रनिर्देश करते। अर्थशब्द का ग्रहण नही होने पर भी अर्थ का लाभ हो जाता। वह इस तरह कि 'अन्यपदे' ऐसा कह रहे हैं। पदशब्द से यहाँ शब्द गृहीत होता। शब्द में कार्य असम्भव होने से अर्थ में ही कार्य होता इस तरह सिद्ध होने पर भी आचार्य ने जो अर्थग्रहण किया वह व्यर्थ पड कर द्रव्य, लिङ्ग और संख्यासहित सम्पूर्णपदार्थ का ग्रहण करा देगा। वह पदार्थ प्रधानरूप से विभक्त्यर्थ ही लिया जायेगा। अर्थग्रहणसामर्थ्य से आश्रय से अभिन्न सम्बन्ध आदि विभक्त्यर्थ लिया जायेगा। इस तरह पटु आदि की तरह समस्त पद भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणिपरक ही होगा, गुणपरक नहीं। आक्षेपक-**यदि तर्हीति**। यदि अर्थग्रहणसामर्थ्य से विभक्त्यर्थ का प्राधान्य मान रहे हैं तो जैसे बहुव्रीहि के द्वारा विभक्त्यर्थ उक्त होने पर षष्ठी आदि नहीं होती है, वैसे बहुव्रीहि से लिङ्ग और संख्या के उक्त होने से लिङ्ग और संख्या का वाचक प्रत्यय उत्पन्न नहीं हो सकेगा।

*** उक्तं वा * किमुक्तम्? लैङ्गेषु तावदुक्तं 'सिद्धं तु स्त्रियाः प्रातिपदिकविशेषणात्स्वार्थे टाबादय' इति। साङ्ख्येष्वप्युक्तम्। किमुक्तम्? 'कर्मादीनामनुक्ता एकत्वादय' इति कृत्वा साङ्ख्या भविष्यन्ति' इति। प्रथमा तर्हि न प्राप्नोति। समयाद् भविष्यति। यदि सामयिकी न नियोगतः। अन्याः कस्मान्न भवन्ति? कर्मादीनामभावात्।**

समाधानभाष्य—**उक्तमिति**। 'स्त्रियाम्' ४.१.३ सूत्र पर भाष्यकार ने स्पष्टरूप से लिङ्ग को प्रातिपदिक का अर्थ माना है; अतः लिङ्ग विभक्ति का अर्थ नहीं हो सकता है। स्त्र्यर्थ में शक्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में टाप् आदि प्रत्ययों का विधान है। टाप् आदि प्रत्यय स्त्रीत्व के द्योतक हैं, वाचक नहीं। अब संख्या के विषय में भी समाधान करते हैं-**सांख्येष्वपीति**। 'चित्रगुः' इत्यादि में समास के द्वारा कर्म-आदि-शक्तिरहित प्रातिपदिकार्थमात्र से ही एकत्वआदि संख्या उक्त होगी; अतः कर्मादिगतएकत्वप्रतिपादन के लिए 'चित्रगुं पश्य, चित्रगुणा कृतम्' इत्यादि वचन होते हैं। आक्षेपक-**प्रथमेति**। समास से प्रातिपदिकार्थ उक्त होने पर पुनः प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा नहीं हो सकेगी।

समाधानभाष्य—**समयादिति**।'परश्च' ३.१.२ यह सूत्र नियम के लिए निर्दिष्ट है। इससे प्रकृति से पर में प्रत्यय का प्रयोग करना ही चाहिये। 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, न केवलः प्रत्ययः' यह सिद्धान्तिभाष्य है। इस तरह समास से प्रातिपदिकार्थ उक्त होने पर भी परिनिष्ठितत्वनिष्पत्ति तथा पदसाधुत्व के लिए प्रथमाविभक्ति हो जायेगी। आक्षेपक-**यदि सामयिकीति**। यदि **सामयिकी**='न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, न केवलः प्रत्ययः' इस प्रतिज्ञा से प्रथमा करते भी हैं तो यह किसी नियम से प्राप्त नहीं है; अतः उक्त प्रतिज्ञा के द्वारा पदसाधुत्व के लिए जैसे प्रथमा होती है, वैसे कोई नियामक नहीं होने से उक्त प्रतिज्ञा के द्वारा द्वितीया आदि भी प्राप्त होगी, वह क्यों नहीं होती है?

उत्तरभाष्य—**कर्मादीनामिति**। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ इत्यादि नियमशास्त्र हैं; अतः उनका 'कर्मण्येव द्वितीया, नाऽन्यत्र' ऐसा अर्थ है। 'चित्रगुः' इत्यादि में कर्मआदि नहीं होने से द्वितीयाआदि विभक्तियाँ नही होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ठी तर्हि प्राप्नोति। शेषलक्षणा षष्ठी, अशेषत्वान्न भविष्यति। एवमपि व्यतिकरः प्राप्नोति-एकस्मिन्नपि द्विवचनबहुवचने प्राप्नुतः, द्वयोरप्येकवचनबहुवचने, बहुष्वप्येकवचनद्विवचने। अर्थतो व्यवस्था भविष्यति। अथ वा सङ्ख्या नामेयं परप्रधाना। सङ्ख्येयमनया विशेष्यम्। यदि चाऽत्र प्रथमा न स्यात्, सङ्ख्येयमविशेषितं स्यात्।

आक्षेपक—**षष्ठी तर्हीति**। कर्मआदि का अभाव शेष है; अतः चित्रगुपद के उत्तर में षष्ठी होनी चाहिये।

उत्तरभाष्य—**शेषलक्षणेति**। षष्ठी शेषलक्षणा होती है। कर्मआदि की अविवक्षा ही शेष है। प्रकृत में प्रतिपदिकार्थमात्र का प्रथमाविधि में उपयोग होने से प्रकृत में शेषत्व नहीं है। आक्षेपक-**एवमपीति**। 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, न केवलः प्रत्ययः' इस प्रतिज्ञा के द्वारा प्रथमा इष्ट होने पर भी एकवचन की प्राप्ति में द्विवचन तथा बहुवचन की आपत्ति होगी। एवं द्विवचन में भी एकवचन तथा बहुवचन, एवम् बहुवचन में भी एकवचन तथा द्विवचन प्राप्त होंगे।

समाधानभाष्य—**अर्थत इति**। जैसे अन्यत्र एकत्व की विवक्षा में एकवचन, द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन, एवं बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन होता है, वैसे समासस्थल में भी एकत्वआदि की विवक्षा में एकवचनआदि होने से वचनव्यतिकरप्रसङ्ग नहीं होगा। अन्य प्रकार से दोषरहितप्रथमा का विधान स्पष्ट करते हैं-**अथवेति**। संख्या संख्येय के प्रति विशेषण होती है; अतः संख्या के प्रति संख्येय को विशेष्य कहना चाहिये। जब 'चित्रगुः' इस समस्तस्थल में एकत्वविशिष्ट-प्रातिपदिकार्थ का बोध कराने की इच्छा होगी तब विभक्ति के विना उसका बोध असम्भव होगा, अतः प्रथमा-एकवचन विधेय होगा। इस तरह द्वित्व और बहुत्वबोध कराने की इच्छा से द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग भी हो जायेगा। यदि यहाँ प्रथमा नही होगी तो संख्येय अविशेषित रह जायेगा।

अथ वा वक्ष्यत्येतत्तत्र वचनग्रहणस्य प्रयोजनम् 'उक्तेष्वप्येकत्वादिषु प्रथमा यथा स्या'दिति। एवमपि षष्ठी प्राप्नोति। किं कारणम्? व्यभिचरत्येव ह्ययं समासो लिङ्गसंख्ये, षष्ठ्यर्थं पुनर्न व्यभिचरति। अभिहितः सोऽर्थोऽन्तर्भतः प्रातिपदिकार्थसम्पन्नः, तत्र 'प्रातिपदिकार्थे प्रथमे'ति प्रथमा भविष्यति। न तर्हीदानीमिदं भवति 'चित्रगोर्देवदत्तस्ये'ति? भवति बाह्यमर्थमपेक्ष्य षष्ठी।

अथ वा 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ सूत्र पर आचार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनग्रहण का प्रयोजन बतायेंगे-'एकत्वआदि के उक्त होने पर ही प्रथमा हो सके, एतदर्थ प्रकृतसूत्र में वचनपद का निर्देश है'। आक्षेपक-**एवमपीति**। समास के द्वारा एकत्वादि के उक्त होने पर भी 'चित्रगुः' में षष्ठ्यर्थ का अभाव है अन्य लिङ्ग और अन्यसंख्या का योग होने पर पूर्व का लिङ्ग और संख्या का परित्याग हो जाता है। इस तरह समास से लिङ्ग और संख्या का व्यभिचार होता है, परन्तु षष्ठ्यर्थ का व्यभिचार नही होता है; अतः षष्ठी होकर 'चित्रगोर्देवदत्तस्य' ऐसा षष्ठ्यन्तप्रयोग होना चाहिये। सिद्धान्ती-**अभिहित इति**। कृत्, तद्धित, समास एवं निपात से अभिहित होकर अन्तर्भूत अर्थ प्रातिपदिकार्थ हो जाता है प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमाविभक्ति होती है, षष्ठी नही। आक्षेपक-**न तर्हीदानीमिति**। तो क्या 'चित्रगोर्देवदत्तस्य' ऐसा कभी भी षष्ठ्यन्तप्रयोग नहीं हो सकेगा?

सिद्धान्तिभाष्य—**भवतीति**। गोपदार्थ के साथ अन्यपदार्थ का जो सम्बन्ध है, वही समास में अन्तर्भूत है, सभी नहीं; अतः बाह्य अर्थ गृहआदि की अपेक्षा कर षष्ठी हो जायेगी।

परिगणनं कर्तव्यम्- * बहुव्रीहिः समानाधिकरणानाम् * **समानाधिकरणानां बहुव्रीहिर्वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? व्यधिकरणानां मा भूत्-पञ्चभिर्भुक्तमस्येति** * अव्ययानां च * **अव्ययानां च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः। उच्चैर्मुखमस्येति उच्चैर्मुखः नीचैर्मुखः** * सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च * **सप्तमीपूर्वपदस्योपमानपूर्वपदस्य च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः, उत्तरपदस्य च लोपो वक्तव्यः। कण्ठेस्थः कालोऽस्य कण्ठेकालः। उष्ट्रमुखमिव मुखमस्य उष्ट्रमुखः। खरमुखः।**

वार्तिककार का पक्ष रखने के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**परिगणनमिति**। बहुव्रीहि के स्थलों में परिगणन करना चाहिये- 'समानाधिकरणों का बहुव्रीहि कहना चाहिये'। इससे 'पञ्चभिर्भुक्तमस्य' इस व्यधिकरण में बहुव्रीहि का वारण हो सकेगा। अव्ययों का भी अन्यपदार्थ गम्य होने पर सुबन्त के साथ समास कहना चाहिये। इससे 'उच्चैर्मुखमस्य उच्चैर्मुखः, नीचैर्मुखमस्य नीचैर्मुखः' में बहुव्रीहि हो जायेगा। **सप्तम्युपमानेति**। सप्तम्यन्तपूर्वपद और उपमानपूर्वपद के अन्यपदार्थ में शक्त होने पर समास तथा उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। सप्तम्यन्तपूर्वपद का उदाहरण देते हैं-**कण्ठेस्थ इति**। उपमानपूर्वपद का उदाहरण देते हैं-**उष्ट्रमुखमिवेति**।

* समुदायविकारषष्ठ्याश्च * **समुदायविकारषष्ठ्याश्च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः। उत्तरपदस्य च लोपो वक्तव्यः। केशानां समाहारश्चूडा**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्य केशचूडः। सुवर्णस्य विकारोऽलङ्कारो यस्य सुवर्णालङ्कारः *प्रादिभ्यो धातुजस्य वा* प्रादिभ्यो धातुजस्य बहुव्रीहिर्वक्तव्यः, उत्तरपदस्य च वा लोपो वक्तव्यः। प्रपतितपर्णः प्रपर्णः। प्रपतित-पलाशः प्रपलाशः *नञोऽस्त्यर्थानां च* नञोऽस्त्यर्थानां च बहुव्रीहि-र्वक्तव्यः, उत्तरपदस्य च वा लोपो वक्तव्यः। अविद्यमानः पुत्रोऽस्य अविद्यमानपुत्रः अपुत्रः। अविद्यमानभार्यः अभार्यः।

समुदायविकारेति। इस वार्तिक में षष्ठीपद का प्रत्येक के साथ अन्वय है। समुदायषष्ठी तथा विकारषष्ठी का बहुव्रीहि एवम् उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। समुदायषष्ठी का उदाहरण देते हैं-**केशानामिति**। 'केशानां समाहारः केशसमाहारः, केशसमाहारः चूडाऽस्य केशचूडः'। विकारषष्ठी का उदाहरण देते हैं-**सुवर्णस्येति**। 'सुवर्णस्य विकारः सुवर्णविकारः, सुवर्णविकारोऽलङ्कारो यस्य स सुवर्णालङ्कारः'। मूल में जो विग्रह है वहाँ पूर्व के दो पदों का समास करके ही चूडा और अलङ्कार के साथ विग्रहपूर्वक समास कहना चाहिये। **प्रादिभ्य इति**। प्र आदि से पर में धातुजप्रकृतिक प्रथमान्त का अन्यप्रथमान्त के साथ बहुव्रीहि तथा उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। 'प्रकृष्टं पतितं प्रपतितं, प्रपतितं पर्णमस्येति प्रपतितपर्णः प्रपर्णः'। प्रपतित इस पूर्वपद में उत्तरपद पतित का विकल्प से लोप है। 'प्रकृष्टः पतितः प्रपतितः, प्रपतितः पलाशोऽस्य प्रपतितपलाशः प्रपलाशः'। यहाँ भी प्रपतित इस पूर्वपद में उत्तरपद पतित का विकल्प से लोप है। **नञोऽस्त्यर्थानामिति**। नञ् से पर अस्त्यर्थवाची सुबन्त का बहुव्रीहि तथा अस्त्यर्थवाची उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। 'न विद्यमानोऽविद्यमानः, अविद्यमानः पुत्रोऽस्य अविद्यमानपुत्रः अपुत्रः। नविद्यमाना अधिमाना, अविद्यमाना भार्याऽस्य अविद्यमानभार्यः अभार्यः'।

तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम्? *न वाऽनभिधानादसमा- नाधिकरणेषु समाससंज्ञाऽभावः* न वा वक्तव्यम्। असमानाधिकरणानां बहुव्रीहिः कस्मान्न भवति-पञ्चभिर्भुक्तमस्येति? 'अनभिधानात्'। तच्चा-ऽवश्यमनभिधानमाश्रयितव्यम्। क्रियमाणेऽपि वै परिगणने यत्राऽ-भिहितं नास्ति न भवति तत्र बहुव्रीहिः। तद्यथा-पञ्च भुक्तवन्तो-ऽस्येति। अथैतस्मिन् सत्यनभिधाने यदि वृत्तिपरिगणनं क्रियेत तर्हि वर्तिपरिगणनमपि कर्तव्यम्।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीदमिति**। 'बहुव्रीहिः समानाधिकरणानाम्' से आरम्भ कर 'नञोऽस्त्यर्थानां च'पर्यन्त यह अनेकवार्तिक पढा है, क्या उसे कहना चाहिये?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाष्यकार उक्त सभी वार्तिकों का खण्डन करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**न वेति**। असमानाधिकरण 'पञ्चभिर्भुक्तमस्य' में बहुव्रीहिवारण करने के लिए उक्तवार्तिकों का परिगणन है; परन्तु अनभिधान होने से 'पञ्चभिर्भुक्तमस्य' में बहुव्रीहि नही होगा। अभिधान होने से समानाधिकरणों का बहुव्रीहि हो जायेगा। परिगणन की अपेक्षा अनिभिधानपक्ष मानना ही उचित है। परिगणन करने पर भी जहाँ अभिधान नही है वहाँ 'पञ्च भुक्तवन्तोऽस्य'स्थल में बहुव्रीहि नहीं होगा। अथ वा अनभिधान मानने पर भी यदि मन्दबुद्धिव्युत्पादन के लिए वृत्त्याश्रयवार्तिकों का परिगणन करते हैं तो **वर्ति**='वर्तनं वर्तः=समासः, स विद्यते यस्मिन्नर्थे स वर्ती=समासपदार्थ का परिगणन भी करना चाहिये।

तत्कथं कर्तव्यम्? * अर्थनियमे मत्वर्थग्रहणम् * अर्थनियमे मत्वर्थ-ग्रहणं कर्तव्यम्। 'मत्वर्थे यः स बहुव्रीहि'रिति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-'कष्टं श्रितमनेने'ति * तथा चोत्तरस्य वचनार्थः * एवं च कृत्वोत्तरस्य योगस्य वचनार्थ उपपन्नो भवति। केचित्तावदाहुः-'यद्वृत्तिसूत्रे' इति। 'सङ्ख्ययाऽव्ययान्नादूराधिकसङ्ख्याः संख्येये' इति। अपर आह-'यद्वार्तिके' इति * कर्मवचनेनाऽप्रथमायाः * कर्मवचने-नाऽप्रथमाया बहुव्रीहिर्वक्तव्यः। ऊढो रथो येन ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतः पशू रुद्राय उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृत ओदनः स्थाल्याः-उद्धृतौदना स्थाली। यदि कर्मवचनेनेत्युच्यते, अथ कर्तृवचनेन कथम्-प्राप्तमुदकं ग्रामं प्राप्तोदको ग्रामः। आगता अतिथयो ग्राममागता-ऽतिथिर्ग्रामः? * कर्तृवचनेनापि * कर्तृवचनेनापीति वक्तव्यम्। अप्रथ-माया इति किमर्थम्? वृष्टे देवे गतः।

जिज्ञासु आचार्य—**तत्कथमिति**। वृत्त्याश्रय का परिगणन करने पर भी अर्थाश्रय का परिगणन कैसे करना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**अर्थनियम इति**। अर्थनियम होने पर मत्वर्थ का ग्रहण करना चाहिये। 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ से षष्ठ्यर्थ तथा सप्तम्यर्थ में मत्वर्थ होता है। उसी अर्थ में प्रकृतसूत्र से बहुव्रीहि कहना चाहिये। इससे जहाँ मतुबर्थ नही है, वहाँ 'कष्टं श्रितमनेन' में अन्यपदार्थप्रधान होने पर भी मत्वर्थ नही होने से समास नहीं होता है। अर्थग्रहण में मत्वर्थग्रहण का फल बताते हैं-**तथेति**। अर्थनियम में मत्वर्थग्रहण करने पर ही 'अनेकमन्यार्थे' के उत्तर में पढा जाने वाला सूत्र 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.२५ सूत्र के अभिप्राय से व्याख्या की है, उस अपेक्षा से कहते हैं-**केचिदिति**। कोई आचार्य 'तथा चोत्तरस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनार्थः' इस वार्तिक के स्थान पर 'यद्वृत्तिसूत्रे' ऐसा वचन पढते हैं। अन्य आचार्य उक्त वार्तिक के स्थान पर 'यद्वार्तिके वचनार्थः' ऐसा पाठ करते हैं। अन्यपदार्थ होने पर ही संख्येय अर्थ का समास सिद्ध होने पर उत्तरसूत्र 'संख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.२५ व्यर्थ होने लगेगा। परन्तु जब 'अनेकमन्यपदार्थे' मत्वर्थ में समास करेगा तब अन्य अर्थ में समास के लिए उत्तरसूत्र सार्थक हो जायेगा। वार्तिक-**कर्मप्रवचनेनेति**। 'प्रथमार्थ को छोड कर सर्वत्र अन्यपदार्थ में कर्मवाची के साथ समास होता है' ऐसा कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-**ऊढो रथ इति**। यहाँ सर्वत्र क्त प्रत्यय कर्म में है।

प्रश्नभाष्य—**यदीति**। यदि कर्मवचन के साथ समास कह रहे हैं तो जहाँ कर्ता में क्त प्रत्यय है वहाँ 'प्राप्तमुदकं यम्' इत्यादि में किससे बहुव्रीहि होगा? वार्तिक-**कर्तृवचनेति**। प्रथमार्थ कोड कर सर्वत्र अन्यपदार्थ में कर्तृवाची क्त प्रत्यय के साथ भी समास कहना चाहिये। इससे 'प्राप्तमुदकं यम्' इत्यादि में समास हो जायेगा। मत्वर्थ में बहुव्रीहि होने पर ही उक्त दोनों वार्तिक गतार्थ होते हैं। अन्यथा प्रकृतसूत्र के द्वारा मत्वर्थ से अन्यत्र भी समास होने पर उक्त दोनों वार्तिकों की आवश्यकता नही थी।

प्रश्नभाष्य—**अप्रथमाया इति**। 'अप्रथमा' ऐसा प्रतिषेधवचन उक्त दोनों वार्तिकों में गृहीत है, उसका क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**वृष्टे देव इति**। जहाँ समानाधिकरण होने पर भी अन्यपदार्थ प्रथमान्त में है, वहाँ 'वृष्टे देवे गतः' में समासवारण के लिए 'अप्रथमा' यह प्रतिषेधवचन है।

अथ 'अप्रथमायाः' इत्युच्यमाने इह कस्मान्न भवति-वृष्टे देवे गतं पश्येति? बहिरङ्गाऽत्राऽप्रथमा * सुबधिकारेऽस्तिक्षीरादि-वचनम् * सुबधिकारेऽस्तिक्षीरादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्। अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी। तत्तर्हि वक्तव्यम्? * न वाऽव्ययत्वात् * न वा कर्तव्यम्। किं कारणम्? 'अव्ययत्वात्'। अव्ययमेषोऽस्तिशब्दो, नैषोऽस्तेर्लट्। कथमव्ययत्वम्? 'उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपातसंज्ञा भवन्ती'ति निपातसंज्ञा। 'निपतोऽव्यय'मित्यव्ययसंज्ञा।

प्रश्नभाष्य—**अथ अप्रथमाया इति**। अप्रथमाप्रतिषेध होने पर भी 'वृष्टे देवे गतं पश्य' में जहाँ अन्यपदार्थ द्वितीयार्थ है, वहाँ समास क्यों नही होता है।

उत्तरभाष्य—**बहिरङ्गेति**। उक्त उदाहरण में **वर्ति**=समासपदार्थ को निमित्त मान कर होने वाली प्रथमा अन्तरङ्ग है; जब कि बाह्यपदार्थ को निमित्त मान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर गतपदोत्तरद्वितीया बहिरङ्ग है; अतः अन्तरङ्ग समास की कर्तव्यता में बहिरङ्ग द्वितीया के असिद्ध होने से 'वृष्टे देवे गतं पश्य' में समास नही होगा। वार्तिक-**सुबधिकार इति**। 'सुप् २.१.२ के अधिकार में 'अस्तिक्षीरा' इत्यादि का भी समास कहना चाहिये। 'अस्ति क्षीरं यस्याः सा अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी'। यहाँ पूर्व अवयव 'अस्ति' पद तिङ्न्त है, सुबन्त नहीं; ऐसा मान कर वचन का आरम्भ है। इस वार्तिक का खण्डन करते हैं-**न वेति**। यहाँ 'अस्ति'पद तिङ्न्त नहीं है, अपि तु अव्यय है; अतः सुबन्त होने से ही समास हो जायेगा। उपसर्ग, विभक्तिप्रतिरूपक तथा स्वरप्रतिरूपकों की निपातसंज्ञा होती है। निपात अव्यय होते हैं। 'अस्ति' यह विभक्तिप्रतिरूपक निपात होने से अव्यय है; अतः सुबन्त होने से ही समास हो जायेगा; इसके लिए अतिरिक्त-वचन व्यर्थ है।

अथ किंसब्रह्मचारीति कोऽयं समासः? बहुव्रीहिरित्याह। कोऽस्य विग्रहः? के सब्रह्मचारिणोऽस्येति। यद्येवं 'कठ' इति प्रतिवचनं नोपपद्यते। न ह्यन्यत्पृष्टेनाऽन्यदाख्येयम्। एवं तर्ह्येवं विग्रहः करिष्यते-केषां सब्रह्मचारी 'किंसब्रह्मचारी'ति। प्रतिवचनं चैवं नोपपद्यते, स्वरे च दोषो भवति-किंसब्रह्मचारीत्येवं स्वरः प्रसज्येत, किंसंब्रह्मचारीति चेष्यते। एवं तर्ह्येवं विग्रहः करिष्यते-कः सब्रह्मचारी किंसंब्रह्मचारीति। भवेत्प्रतिवचनमुपपन्नम्। स्वरे च दोषो भवति। एवं तर्ह्येवं विग्रहः करिष्यते-कः सब्रह्मचारी तव किंसब्रह्मचारी त्वमिति।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। 'किंसब्रह्मचारी' इस पद में कौन सा समास होगा?

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहिरिति**। इस पद में बहुव्रीहि समास होगा तथा इसका विग्रह 'के सब्रह्मचारिणोऽस्य' होगा। आक्षेपक-**यद्येवमिति**। यदि 'के सब्रह्म-चारिणोऽस्य' ऐसा बहुवचन के साथ विग्रह करते हैं तो यहाँ अर्थ बहुत्व-संख्यायुक्त होगा। इसका **प्रतिवचन**=उत्तर 'कठः' ऐसा एकवचन से दिया जा रहा है। बहुवचन से पूछे गये प्रश्न का उत्तर एकवचन से युक्त नही होने से पूर्वोक्त विग्रह अनुपपन्न है। अन्य आचार्य-**एवमिति**। 'केषां सब्रह्मचारी' इस विग्रह में 'किंसब्रह्मचारी' ऐसा समास होगा। आक्षेपक-**प्रतिवचनमिति**। ''केषां सब्रह्मचारी' इस विग्रह में समास करने पर 'कठानाम्' यह प्रतिवचन होना चाहिये, परन्तु 'किंसब्रह्मचारी' इस प्रश्न का प्रतिवचन 'कठः' है जो उक्तविग्रह में अनुपपन्न हो रहा है। यहाँ अन्यदोष स्वरदोष भी आयेगा। 'केषां सब्रह्मचारी'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विग्रह में समास करने पर अन्तोदात्तस्वर की आपत्ति हो रही है, जब कि यहाँ आद्युदात्तस्वर इष्ट है। अन्य आचार्य-**एवं तर्हीति**। 'कः सब्रह्मचारी' इस विग्रह में "किंसब्रह्मचारी' यह समास है। आक्षेपक-**भवेदिति**। 'कः सब्रह्मचारी' इस विग्रह में 'सुप्सुपा' से समासहोने पर 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्तस्वर की आपत्ति होगी; जब कि यहाँ अन्तोदात्तस्वर इष्ट है जो बहुव्रीहि में उपपन्न होता है। इस विग्रह में प्रतिवचन 'कठः' उपपन्न हो जाता है, जिसका समर्थन भाष्य में है। अन्य आचार्य-**एवं तर्ह्येवमिति**। 'कः सब्रह्मचारी तव' इस विग्रह में बहुव्रीहि करेंगे। इससे एकवचन में प्रश्न होने से एकवचन में प्रतिवचन 'कठः' भी उपपन्न हो जायेगा तथा बहुव्रीहि होने से 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ से पूर्वपदप्रकृतिस्वर होकर आद्युदात्त भी उपपन्न हो जाता है। इस वचन में भी प्रतिवचन व्यधिकरण प्राप्त हो रहा है।

अथ वा पनुरस्त्वयमेव विग्रहः-के सब्रह्मचारिणोऽस्येति। ननु चोक्तं 'कठ' इति प्रतिवचनं नोपपद्यत' इति। नैष दोषः। अग्नौ-करवाणिन्यायेन भविष्यति। तद्यथा'कश्चित् कञ्चिदाह-अग्नौ करवा-णी'ति। स आह-'कुर्वि'ति। कर्तर्यनुज्ञाते कर्माप्यनुज्ञातं भवति। अपर आह-'अग्नौ करिष्य' इति। 'क्रियता'मिति कर्मण्यनुज्ञाते कर्ताऽप्यनुज्ञातो भवति। यद्यैव खल्वपि-के सब्रह्मचारिणोऽस्येति, 'कठाः' इत्युक्ते सम्बन्धादेतद् गम्यते-'नूनमयमपि कठ' इति। एवं 'कठः' इत्युक्ते सम्बन्धादेतद् गन्तव्यं स्यात्-'नूनं 'तेऽपि कठाः' इति। न खल्वपि ते समासेन शक्याः प्रतिनिर्देष्टुम्। उपसर्जनं हि ते भवन्ति।

'अहं कठः' ऐसा सामानाधिकरण्य देखा जाता है; अतः विशेषाऽभाव मान कर कहते हैं-**अथ वेति**। अथवा 'किंसब्रह्मचारी' इस पद का 'के सब्रह्मचारिणोऽस्य' यही विग्रह मानिये। इस पक्ष में बहुव्रीहि होने से आद्युदात्तस्वर सिद्ध होने पर भी प्रतिवचन की असिद्धि बतायी थी, वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि 'अग्नौ करवाणि' 'क्या मैं आग में करूँ' ऐसा कहने पर श्रोता ने प्रष्टा को आदेश दिया 'कुरु' 'करो'। यहाँ प्रश्न तथा उत्तर दोनों में कर्म का उल्लेख नहीं है। प्रश्न समझे विना उत्तर नहीं दिया जा सकता है। यहाँ प्रश्न का कर्ता ज्ञात है; अतः उसके सम्बन्ध में कर्म का ज्ञान स्वतः हो जाता है। दूसरे आचार्य इस उदाहरण को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-किसी ने कहा-'अग्नौ करिष्ये'। श्रोता ने कहा-'क्रियताम्'। यहाँ पूर्व तथा उत्तर दोनों ही पक्षों में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्मपद का निर्देश नहीं है। फिर भी कर्ता का ज्ञान होने से सम्बन्धमहिम्ना कर्म का ज्ञान हो जाता है। वैसे प्रकृत में भी 'के सब्रह्मचारिणोऽस्य' ऐसा बहुवचन से प्रश्न करने पर 'कठाः' ऐसा बहुवचन में प्रतिवचन होगा। प्रकरणवश सम्बन्धमहिम्ना 'नूनमयमपि कठः' ऐसा एकवचन में प्रतिवचन समझ लिया जायेगा। इसी तरह यदि एकवचन से ''कः सब्रह्मचारी अस्य' ऐसा विग्रह कर समास करेंगे तब एकवचन में 'कठः' ऐसा प्रतिवचन भी होगा। वहाँ भी प्रकरणवश सम्बन्धमहिम्ना 'नूनं तेऽपि कठाः' ऐसा समझ लिया जायेगा। प्रतिवचन के द्वारा कहा जाने वाला 'कठः' ऐसा एकवचनान्त अथ वा 'कठाः' ऐसा बहुवचनान्त का बोध समास के द्वारा विशेषण होने से समास के द्वारा असम्भव है। यहाँ प्रतिवचन समासार्थ में विशेषण है।

अथाऽर्द्धतृतीयेति कोऽयं समासः? बहुव्रीहिरित्याह। कोऽस्य विग्रहः? अर्द्धं तृतीयमेषामिति। कः समासार्थः? समासार्थो नोपपद्यते। अन्यपदार्थो हि नाम स भवति, येषां पदानां समासस्ततोऽन्यस्य पदस्याऽर्थोऽन्यपदार्थः। एवं तर्ह्येवं विग्रहः करिष्यते-अर्द्धं तृतीयमनयोरिति। एवमपि कः षष्ठ्यर्थः? षष्ठ्यर्थो नोपपद्यते। किं हि तयोरर्द्धं भवति? अस्तु तर्ह्ययमेव विग्रहः-अर्द्धं तृतीयमेषामिति।

प्रश्नभाष्य—**अथार्द्धेति**। 'अर्द्धतृतीया' इस पद में क्या समास है?

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहिरिति**। इसमें बहुव्रीहिसमास है।

प्रश्नभाष्य—**कोऽस्येति**। बहुव्रीहिसमासपक्ष में 'अर्द्धतृतीया' इस पद का कैसा विग्रह होगा?

उत्तरभाष्य—**अर्द्धमिति**। 'अर्द्धं तृतीयमेषाम्' ऐसा विग्रह करेंगे।

प्रश्नभाष्य—**क इति**। यदि उक्त पद का विग्रह 'अर्द्धं तृतीयमेषाम्' ऐसा करेंगे तो यहाँ इस विग्रह में बहुव्रीहिसमास होगा। बहुव्रीहि में अन्यपदार्थ प्रधान होता है; अतः यहाँ समासपदार्थ से भिन्न अन्यपदार्थ होना चाहिये। परन्तु यहाँ बहुत्व की अन्यथानुपपत्ति होने तथा समासपदार्थ का भी क्रिया में अन्तर्भाव होने से अन्यपदार्थ उपपन्न नहीं हो पा रहा है। अन्य आचार्य-**एवं तर्हीति**। 'अर्द्धतृतीया' इस पद का 'अर्द्धं तृतीयमनयोः' ऐसा विग्रह करेंगे। इतर आचार्य-**एवमपि क इति**। यदि अन्यपदार्थ 'अनयोः' ऐसा द्विवचन मान कर विग्रह करेंगे तो अदस्पदोत्तर षष्ठीद्विवचन ओस् का क्या अर्थ होगा? यहाँ द्विवचन षष्ठ्यर्थ उपपन्न नहीं हो पा रहा है। वह इस तरह कि 'अर्द्धतृतीया' इस समस्तपद में 'तृतीया' का अर्द्ध अपेक्षित है। परन्तु आप ने द्विवचन से विग्रह कर दो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अर्द्ध बता दिया जो प्रकृत में उपयोगी नही है। ''अर्द्धं तृतीयमेषाम्' मानने वाले आचार्य स्वपक्ष का पोषण करते हैं-**अस्तु तर्हीति**। आप 'अर्द्धं तृतीयमेषाम्' यही विग्रह मानिये।

ननु चोक्तम्-'समासार्थो नोपपद्यते' इति। नैष दोषः * अवयवेन विग्रहः समुदायः समासार्थः * **अवयवेन विग्रहः समुदायः समासार्थः, 'असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डवं' 'सङ्कर्षणद्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्द्धता'मिति,-द्वयोर्द्विवचनमिति द्विवचनं प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्ययमेव विग्रहः-अर्द्धं तृतीयमनयोरिति। ननु चोक्तं-'षष्ठ्यर्थो नोपपद्यत' इति। नैष दोषः। इदं तावदयं प्रष्टव्यः-अथेह 'देवदत्तस्य भ्राते'ति कः षष्ठ्यर्थ इति? तत्रैतत्स्याद्-एकस्मात् प्रादुर्भाव इति। एतच्च वार्तम्। तद्यथा-सार्थिकानामेकप्रतिश्रये उषितानां प्रातरुत्थाय प्रतिष्ठमानानां न कश्चित् परस्परमभिसंम्बन्धो भवति। एवंजातीयकं भ्रातृत्वं नाम। अत्र चेद्युक्तः षष्ठ्यर्थो दृश्यते, इहापि युक्तो दृश्यताम्। इह तर्हि,-'अर्द्धतृतीया आनीयन्ता'मित्युक्तेऽर्द्धस्यानयनं न प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्ययमेव विग्रहः-अर्द्धं तृतीयमेषामिति।**

इस पक्ष में समासार्थ की अनुपपत्ति बतायी थी, वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि अवयव के साथ विग्रह होगा तथा समुदाय समासार्थ होगा। अर्थात् अर्द्ध और दो का जो समुदाय, वह समासार्थ होगा। समुदाय में अवस्थित अवयवों की कभी भेदविवक्षा होती है तथा कभी अभेदविवक्षा होती है। जैसे अभेदविवक्षा होने पर 'ब्राह्मणानां सङ्घः' ऐसा प्रयोग होगा, तथा भेदविवक्षा होने पर 'संघीभवन्ति ब्राह्मणाः' ऐसा प्रयोग होगा। आक्षेपक-**यद्यवयवेनेति**। यदि अवयव के साथ विग्रह तथा समुदाय को समासार्थ मानेंगे तो 'असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डवम्' 'सङ्कर्षणद्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्द्धते' में द्विवचन की आपत्ति होगी। वह इस तरह कि 'द्वयोः पूरणो द्वितीयः' ऐसा विग्रह में द्वितीय द्वयात्मक समुदाय का अवयव होता है; अतः उसका अवयव समुदाय की समास से वाच्यता होने पर द्विवचन की आपत्ति होगी। अन्य आचार्य-**अस्तु तर्हीति**। यदि 'अर्द्धं तृतीयमेषाम्' ऐसा मानने में दोष है तो 'अर्द्धं तृतीयमनयोः' यही विग्रहपक्ष मानिये। इस पक्ष में षष्ठ्यर्थ का अनुपपत्तिरूप दोष दिया था, वह नही रहेगा। वह इस तरह कि यदि आप उक्त विग्रह में षष्ठ्यर्थ उपपन्न मानेंगे तो कृपया आप यह बतायें कि 'देवदत्तस्य भ्राता' इस वाक्य में देवदत्तपदोत्तरषष्ठी का क्या अर्थ होगा। यहाँ स्वभामिभाव सम्बन्ध सम्भव नही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मात्र समान माता-पिता से प्रादुर्भाव है। यहाँ षष्ठी **वार्तम्**=असार है। दो पुत्रों का जन्म माता-पिता से है; अतः इन दोनों का माता-पिता के साथ जन्यजनक-भाव सम्बन्ध है; परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। इन दोनों भाइयों का उसी तरह परस्पर सम्बन्ध नही है जैसे समान आश्रय में रात्रिनिवास करने वाले यात्रिगण जब प्रातः उठ कर प्रस्थान करते हैं तब उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है; वैसे भ्रातृत्व भी उसी तरह का है। 'देवदत्तस्य भ्राता' में यदि षष्ठ्यर्थ उपयुक्त हो सकता है तब 'अर्द्धं तृतीयमनयोः' में भी 'देवदत्तस्य भ्राता' की तरह षष्ठ्यर्थ उपयुक्त हो जायेगा। आक्षेपक-**इह तर्हीति**। 'अर्द्धतृतीया' इस पद का ''अर्द्धं तृतीयमनयोः' ऐसा विग्रह करेंगे तो समासार्थ दो होगा। इस तरह 'अर्द्धतृतीया आनीयन्ताम्' ऐसा कहने से दो का ही आनयन प्राप्त होगा, अर्द्ध का नहीं। अन्य आचार्य-**अस्तु तर्हीति**। यदि द्विवचनान्त से विग्रहपक्ष में दोष है तो 'अर्द्धं तृतीयमेषाम्' यह बहुवचनान्तविग्रह ही मानिये।

ननु चोक्तम्-'असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डवं' 'सङ्कर्षणद्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्द्धता'मिति,-'द्वयोर्द्विवचनमिति द्विवचनं प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। अयं तीयान्तः शब्दोऽस्त्येव पूरणे वर्तते, अस्ति सहायवाची। तद्यः सहायवाची तस्येदं ग्रहणम्-'असिद्वितीयः'। असिसहाय इति गम्यते। एवमपि 'अर्द्धतृतीया' इत्येकस्मिन्नेकवचनं प्राप्नोति। एकार्था हि समुदाया भवन्ति। तद्यथा-शतं यूथं वनमिति। अस्तु तर्ह्ययमेव विग्रहः-अर्द्धं तृतीयमनयोरिति। ननु चोक्तम्-'अर्द्धतृतीया आनीयन्ता'मित्युक्तेऽर्द्धस्याऽऽनयनं न प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। भवति बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि। तद्यथा-'शुक्ल-वाससमानय' 'लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ती'ति तद्गुण आनीयते, तद्गुणाश्च प्रचरन्ति।

इस पक्ष में आपने 'असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डवम्' इत्यादि में एवं 'द्वयोः पूरणो द्वितीयः' इत्यादि में 'द्वितीय' को द्वयात्मक अवयव होने से द्विवचन की आपत्ति दी थी, वह नही रहेगी। वह इस तरह कि यह द्वितीयशब्द तीयप्रत्य-यान्त पूरण अर्थ में है। एवम् अव्युत्पन्न द्वितीयपद सहायवाची है, प्रकृत में उसी का ग्रहण है। इस तरह 'असिरेव **द्वितीयः**=सहायः यस्य सः असि-द्वितीयः' 'सङ्कर्षण एव **द्वितीयः**=सहायो यस्य स सङ्कर्षणद्वितीयः' यह अर्थ होने से द्विवचन की आपत्ति नहीं होगी। आक्षेपक-**एवमपीति**। 'अर्द्धं तृतीय-मेषाम्' इस विग्रह में समासार्थ समुदाय होगा। समुदाय एक होता है; अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'शतं, यूथं, वनम्' की तरह 'अर्द्धतृतीया' इस पद में समुदाय के एक होने से एकत्व की आपत्ति होगी। अन्य आचार्य-**अस्तु तर्हीति**। यदि 'अर्द्धं तृतीयमेषाम्' इस विग्रह में दोष है तो 'अर्द्धं तृतीयमनयोः' यही विग्रह मानिये। इस विग्रह में 'अर्द्धतृतीया आनीयन्ताम्' ऐसा कहने से अर्द्ध के आनयन की आपत्ति होगी, ऐसा दोष दिया था। परन्तु यहाँ तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि मानने पर उपलक्षण अर्थसहित दोनों का आनयन उपपन्न हो जायेगा। तद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि में **गुण**=द्रव्यसहित ग्रहण होता है, इसे उदाहरण से पुष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। यहाँ 'शुक्लवाससमानय' ऐसा कहने से शुक्लवस्त्रसहित आनयन तथा लोहित उष्णिष सहित ग्रहण होता है। जब संयोगसमवायलक्षणसम्बन्ध में बहुव्रीहि करेंगे तब वह तद्गुणसंविज्ञान होगा। जैसे 'शुक्लवाससः, लम्बकर्णः'। परन्तु जब स्वस्वामिभाव आदि सम्बन्ध में बहुव्रीहि होगा तब वह अतद्गुणसंविज्ञान होगा। जैसे 'चित्रगुः'।

अथ वा पुनरस्त्वयमेव विग्रहः-अर्द्धं तृतीयमेषामिति। ननु चोक्तम्-'एकवचनं प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। संख्या नामेयं परप्रधाना। संख्येयमनया विशेष्यम्। यदि चाऽत्रैकवचनं स्यात् सङ्ख्येयमविशेषितं स्यात्। इह तर्ह्यर्द्धतृतीया द्रोणा इति। अयं द्रोणशब्दः समुदाये प्रवृत्तोऽवयवे नोपपद्यते।

द्विवचनप्रसङ्ग से यह पक्ष पुष्ट है, ऐसा मान कर कहते हैं-**अथ वेति**। अथ वा 'अर्द्ध तृतीयमेषाम्' यही विग्रह रखिये। इस पक्ष में समुदाय के एक होने से 'अर्द्धतृतीया' इस पद में एकवचन की आपत्ति दी थी, वह नही रहेगी। वह इस तरह कि संख्या सर्वत्र विशेषण होती है तथा संख्येय सर्वत्र विशेष्य होता है। यदि 'अर्द्धतृतीया' में एकवचन कर देंगे तो बहुवचन संख्येय असिद्ध हो जायेगा। 'अर्द्ध तृतीयमेषाम्' इस विग्रह में अन्यपदार्थ बहुत्वसंख्यायुक्त लब्ध है। यहाँ समास के द्वारा बहुत्वसंख्यायुक्त का ही बोध हो रहा है। जैसे 'वृक्षाः' अथ वा 'धवखदिरपलाशाः' ऐसा कहने से बहुत्वसंख्यायुक्त समुदाय का बोध होता है, वैसे 'अर्द्धतृतीया' ऐसा कहने पर भी बहुत्वसंख्यायुक्त समुदाय का बोध हो जायेगा। आक्षेपक-**इह तर्हीति**। 'अर्द्धतृतीया द्रोणाः' में अर्द्ध और दो द्रोण का जो समुदाय है, वही समासार्थ है। यहाँ अर्थ द्रोणत्वाभावरूप है; अतः 'द्रोणाः' यह बहुवचन उपपन्न नही हो पा रहा है।

नैष दोषः। समुदायेषु हि प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते। तद्यथा-'पूर्वे पञ्चाला, उत्तरे पञ्चालाः, तैलं भुक्तं, घृतं भुक्तं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्लो नीलः कपिल इति। एवमयं समुदाये द्रोणशब्दः प्रवृत्तोऽवयवेष्वपि वर्तते। कामं तर्ह्यनेनैव हेतुना यदा द्वौ द्रोणावर्द्धाढकं च तदा कर्तव्यमर्द्धतृतीया द्रोणा इति। न कर्तव्यम्। समुदायेष्वपि हि शब्दाः प्रवृत्ता अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते। केष्ववयवेषु वर्तन्ते? योऽवयवस्तं समुदायं न व्यभिचरति? कं च समुदायं न व्यभिचरति? अर्द्धद्रोणो द्रोणम्। अर्द्धाढकं पुनर्व्यभिचरति।

अन्य आचार्य इस दोष का मार्जन करते हैं—**नैष इति**। समुदाय अर्थ में प्रवृत्तशब्द अवयव अर्थ में भी होता है। पाञ्चाल, तैल, घृत, शुक्ल, नील और कपिलशब्द समुदायपरक होने पर भी अवयव अर्थ में हैं-पूर्वे पाञ्चाला इत्यादि। वैसे समुदाय अर्थ में प्रवृत्त द्रोणशब्द अवयव अर्थ में प्रवृत्त होगा। अर्द्ध अर्थ में भी द्रोणत्वव्यवहार होने से द्रोणशब्द की प्रवृत्ति हो जायेगी। आक्षेपक-**काममिति**। 'समुदाय में प्रवृत्तशब्द अवयव में भी देखा जाता है' इसी हेतु से दो द्रोण तथा अर्द्ध आढक रहने पर भी 'अर्द्धतृतीया' इस पद का प्रयोग होना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। स्व के अवयव में ही समुदायरूप व्यवहार होता है, अन्यदीय अवयव में नहीं। अर्द्ध आढक अन्य अवयव है, अतः उसको लेकर दो द्रोण के साथ समुदाय में 'द्रोणाः' यह बहुवचनप्रयोग नहीं हो सकता है। अन्य आचार्य-**समुदायेष्वपीति**। समुदाय में प्रवृत्त शब्द अवयवों में भी देखा जाता है। इतर आचार्य-**केष्विति**। समुदाय में प्रवृत्त शब्द किन अवयवों में प्रवृत्त होता है? अन्य आचार्य-**योऽवयव इति**। जो अवयव जिस समुदाय का व्यभिचार नहीं करता है, समुदाय में प्रवृत्त शब्द समुदाय के उसी अवयव में प्रवृत्त होगा। इतर आचार्य-**कं चेति**। अवयव किस समुदाय का व्यभिचार नहीं करता है? अन्य आचार्य-**अर्द्धद्रोण इति**। द्रोण के विना अर्द्धद्रोण असम्भव है; अतः अर्द्धद्रोण द्रोण का व्यभिचार नहीं करेगा। परन्तु अर्द्धद्रोण से अर्द्धाढक का व्यभिचार हो जायेगा। चार आढक को द्रोण कहते हैं; अतः द्रोण के अभाव में भी अर्द्ध का एक आढक सम्भव है। {अनेकमन्य-}।

सङ्ख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूरा-ऽधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये २.२.२५

'द्वित्राः' 'त्रिचतुरा' इति कोऽयं समासः? बहुव्रीहिरित्याह। कोऽस्य विग्रहः? द्वौ वा त्रयो वेति। भवेद्यदा बहूनामानयनं तदा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुवचनमुपपन्नम्। यदा तु खलु द्वावानीयेते तदा न सिध्यति। तदापि सिद्धम्। कथम्? केचित्तावदाहुः-'अनिर्ज्ञातेऽर्थे बहुवचनं प्रयोक्तव्य'मिति। तद्यथा-कति भवतः पुत्राः?, कति भवतो भार्या इति? अपर आह-द्वौ वेत्युक्ते त्रयो वेति गम्यते। त्रयो वेत्युक्ते द्वौ वेति गम्यते। सैषा पञ्चाऽधिष्ठाना वाक्तत्र युक्तं बहुवचनम्।

'संख्यया' तृतीयान्त, 'अव्ययाऽऽसन्नाऽदूराऽधिकसङ्ख्याः' प्रथमान्त, एवं 'संख्येये' सप्तम्यन्त पद है। 'शेषः' २.२.२३ एवम् 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ इन दोनों की निवृत्ति है। 'बहुव्रीहिः' २.२.२३ एवं 'सुप्सुपा' की अनुवृत्ति है। 'संख्येये' इस सप्तम्यन्त पद का 'संख्यया' के साथ अन्वय है। सूत्रार्थ-'संख्यापरिच्छेद्य संख्येय है' उस अर्थ में विद्यमान संख्या के साथ अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक एवं संख्या का समास हो तथा वह बहुव्रीहिसंज्ञ हो'।

प्रश्नभाष्य—**द्वित्रा इति**। 'द्वित्राः, त्रिचतुराः' में कौन समास है? 'द्वित्राः, त्रिचतुराः' यह बहुव्रीहि को निमित्त मान कर 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगडात्' ५.४.७३ के द्वारा डच्प्रत्ययान्त प्रयोग होने से यहाँ बहुव्रीहि होना निश्चित है, अतः विग्रह निश्चित करने के लिए प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहिरिति**। 'द्वित्राः, त्रिचतुराः' में बहुव्रीहि है। प्राश्निक आचार्य अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हैं-**कोऽस्येति**। 'द्वित्राः, त्रिचतुराः' में किस तरह का विग्रह होगा?

उत्तरभाष्य—**द्वौ वेति**। 'द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः, त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुराः' ऐसा विग्रह होगा। यदि यहाँ 'द्वौ त्रय एषामुन्मुग्धानाम्' इत्यादि विग्रह करेंगे तो मत्वर्थ होने से पूर्वसूत्र से ही बहुव्रीहि सिद्ध हो जायेगा, एवं बहुव्रीहि के असंख्येयवृत्ति होने से समासान्त डच्प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब 'द्वौ वा त्रयो वा' ऐसा विग्रह करते हैं तब पक्ष में द्विवचन की आपत्ति होगी। विग्रह में 'वा'शब्द विकल्प अर्थ में है; अतः द्वित्र शब्द कभी द्वित्व का वाचक होगा तथा कभी त्रित्व का वाचक होगा। इस तरह बहुत्व का आनयन होने पर 'द्वित्राः' ऐसा बहुवचनसिद्ध होने पर भी दो का आनयन में बहुवचन नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**तदापीति**। दो का आनयन में बहुवचन नहीं होकर 'द्वित्राः' ऐसा प्रयोग होगा, उसे स्पष्ट करते हैं-**केचिदिति**। 'अनिर्ज्ञातेऽर्थे बहुवचनं प्रयोक्तव्यम्' यह वचन है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं' यह पङ्क्ति का अर्थ है। 'द्वौ वा त्रयो वा' इस विग्रह में 'वा' पद संशय अर्थ में है, विकल्प अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं। संशय में संख्या अनियत होती है; अतः परस्पर संशयविषय का बहुत्व होने से बहुवचन हो जायेगा। 'अनिर्ज्ञातेऽर्थे' इस पद में अर्थशब्द संशयवाची है; अतः 'संख्या ज्ञात नहीं होने पर बहुवचन का प्रयोग करना चाहिये' यह वचन है। इसका उदाहरण देते हैं-**कति भवत इति**। यहाँ अन्तर्भावित पूर्वसंख्या बहुत्वसंख्या की जिज्ञासा की जा रही है। दूसरे आचार्य इस स्पष्ट करते हैं-'द्वौ वा त्रयो वा' ऐसा कहने से संकलन करने पर पाँच संख्या होती है; अतः 'द्वित्राः' में बहुवचन उचित है। 'द्वौ वा' ऐसा कहने 'त्रयो वा' ऐसा अवशिष्ट का बोध होता है तथा 'त्रयो वा' ऐसा कहने से अवशिष्ट 'द्वौ वा' का बोध होता है।

अथ द्विदशाः त्रिदशा इति कोऽयं समासः? बहुव्रीहिरित्याह। कोऽस्य विग्रहः? द्विर्दश द्विदशाः * संख्यासमासे सुजन्तत्वात् सङ्ख्याऽप्रसिद्धिः * **संख्यासमासे सुजन्तत्वात् सङ्ख्येत्यप्रसिद्धिः। नहि सुजन्ता संख्याऽस्ति। एवं तर्ह्येवं विग्रहः करिष्यते-द्वौ दशतौ द्विदशा इति। एवमप्यत्कारान्तत्वात् सङ्ख्ययेत्यप्रसिद्धिः। न ह्यत्कारान्ता संख्याऽस्ति। अस्तु तर्ह्ययमेव विग्रहः-द्विर्दश द्विदशा इति। ननु चोक्तं 'संख्यासमासे सुजन्तत्वात् सङ्ख्याऽप्रसिद्धि'रिति** * न वाऽसुजन्तत्वात् समासे * **न वैष दोषः। किं कारणम्? 'असुजन्तत्वात्'। सुजन्तत्वादित्युच्यते, न चाऽत्र सुजन्तं पश्यामः। किं पुनः कारणं वाक्ये सुज्दृश्यते, समासे तु न दृश्यते?**

प्रश्नभाष्य—**अथ द्विदशा इति**। 'द्विदशाः, त्रिदशाः' इत्यादि में कौन समास होगा। डच्प्रत्ययान्त होने से यहाँ भी बहुव्रीहि स्पष्ट होने पर विग्रहविषय ही पूर्वपक्ष समझना चाहिये; अतः प्राश्निक आचार्य अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हैं-**कोऽस्येति**।

उत्तरभाष्य—**द्विर्दश इति**। 'द्विर्दश' इस विग्रह में 'द्विदशाः' तथा 'त्रिर्दश' इस विग्रह में 'त्रिदशाः' यह समास है। यहाँ विरोध होने से 'द्वौ दश' ऐसा विग्रह नही किया जा रहा है। दशसंख्या के एकत्व होने से द्वित्व नही हो सकेगा, एवं बहुत्व होने से संख्येय दश को भी द्वित्व नही हो सकेगा; अतः द्विशब्द के द्वारा दशत्व का अवाचक द्वित्वसंख्या का प्रतिपादन होने से सुजन्त के साथ विग्रह किया गया है। संख्या का पौनःपुन्य वाच्य होने पर 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' ५.४.१८ के द्वारा द्वि और त्रि पद के अनन्तर सुच् प्रत्यय है। इस पक्ष में दूषण देते हैं-**संख्यासमास इति**। सुच्प्रत्ययान्त द्विः, त्रिः अन्य पद है; अतः वह संख्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का वाचक नही हो सकता है।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'द्वौ दशतौ' इस विग्रह में 'द्विदशाः' यह समास है। 'दश परिमाणमस्य' इस विग्रह में 'पञ्चद्दशतौ वर्गे वा' ५.१.६० यह निपातन है। यहाँ दशन्पद से डत्प्रत्यय तथा डिन्निमित्तक टिलोप है। आक्षेपक-**एवमपीति**। डत्प्रत्ययान्त दशत्शब्द संख्यावाची नही है, अतः संख्या के साथ होने वाला समास यहाँ प्राप्त नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**अस्तु तर्हीति**। आप 'द्विर्दश' यही विग्रह मानिये। इस पक्ष में सुजन्त होने से संख्या की अप्रसिद्धि बतायी थी, वह नहीं रहेगी। इस दोष का मार्जन के लिए वार्तिक कहते हैं-**न वेति**। समस्त पद 'द्विदशाः' में सुच्प्रत्यय का प्रयोग नहीं देखा जाता है। लौकिकप्रयोग में वाक्य तथा समास दोनों ही नित्य हैं। वाक्य का उपमर्दन कर समास किया जाता है तथा शास्त्र के द्वारा अन्वाख्यानमात्र किया जाता है। समास में सुच्प्रत्यय का प्रयोग नही होने पर भी समासवृत्तिनिष्ठ विशेषशक्ति के द्वारा ही संख्या का अभ्यावृत्तिवाची द्विशब्द के होने से द्विशब्द संख्यावाची है; अतः इसका समास हो जाता है। इस तरह समास में द्विशब्द को सुच्प्रत्ययान्त नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। विग्रह में सुच्प्रत्यय देखा जाता है तथा समास में नही देखा जाता है, इसका क्या कारण है?

* सुजभावोऽभिहितार्थत्वात् समासे * **समासे सुजभावः। किं कारणम्? 'अभिहितार्थत्वात्'। अभिहितः सुजर्थः समासेनेति कृत्वा समासे सुज्न भविष्यति। किं च भोः 'सुजर्थे' इति समास उच्यते? न खलु 'सुजर्थ' इत्युच्यते, गम्यते तु सुजर्थः। कथम्? यावता संख्येयो यः संख्यया सङ्ख्यायते, स च क्रिया-भ्यावृत्त्यर्थः, स चोक्तः समासेनेति कृत्वा समासे सुज्न भविष्यति।**

उत्तरभाष्य—**सुजभाव इति**। समास में एकार्थीभाव के द्वारा सुजर्थ उक्त है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय के द्वारा समास में पुनः सुच् का प्रयोग नही हो सकता है। इतर आचार्य कार्यदर्शनपक्ष का आश्रयण कर कहते हैं-**किं चेति**। कही पर भी 'सुजर्थे' ऐसा पद का उच्चारण कर समासविधान नही है। जैसे 'चाऽर्थे द्वन्द्वः' २.२.२९ ऐसा निर्देश कर द्वन्द्वविधान करने पर समास में 'च'शब्द का प्रयोग नहीं होता है, वैसे यदि आचार्य ने 'सुजर्थे' इस पद का उच्चारण कर समास का विधान किया होता तो समास में सुच् का अप्रयोग हो सकता था, अन्यथा नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाधानभाष्य—**न खल्विति**। 'सुजर्थे' ऐसा निर्देश कर समास का विधान नही होने पर भी समासनिष्ठ द्विशब्द के द्वारा सुजर्थबोध हो रहा है। शब्दों के द्वारा अर्थ की बोधकता वाचनिक नहीं है, परन्तु स्वाभाविक है। संख्यावाची के द्वारा क्रियाभ्यावृत्तिलक्षण संख्येय अर्थ का बोध होता है, दशसंख्या अथ वा दशसंख्यायुक्त का नहीं। वह क्रियाभ्यावृत्तिलक्षण अर्थ समास से उक्त है, अतः उसी के लिए 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से पुनः सुच् का प्रयोग नहीं होगा। परन्तु वाक्य में सुच्प्रत्यय का प्रयोग नही होनें पर क्रियाभ्यावृत्तिलक्षण अर्थ का बोध असम्भव है, अतः वाक्य में सुच्प्रत्यय का प्रयोग होता है। इस तरह 'द्विर्दश' ऐसा अस्वपदविग्रह करके 'द्विदशाः' यह प्रयोग है। इसी न्याय से 'द्वौ दशतौ' यह भी विग्रह करना चाहिये। न्यायसाम्य होने से 'द्वौ दशतौ' यह विग्रह भी स्पष्ट हो जा रहा है, अतः भाष्यकार ने पुनः इसकी चर्चा नहीं की है।

* अशिष्यः संख्योत्तरपदः सङ्ख्येयवाऽर्थाभिधायित्वात् * **अशिष्यः संख्योत्तरपदो बहुव्रीहिः। किं कारणम्? 'सङ्ख्येयावार्थाऽभिधायित्वात्'। सङ्ख्येयं वाऽर्थश्चाऽभिधीयते, तत्राऽन्यपदार्थ इत्येव सिद्धम्। भवेत्सिद्धमधिकविंशाः अधिकत्रिंशा इति, यत्रैतद्विचार्यते 'विंशत्यादयो दशदर्थे वा स्युः परिमाणिनि वे'ति; इदं तु न सिध्यति-अधिकदशा इति, यत्र नियोगतः सङ्ख्या संख्येय एव वर्तते।**

आक्षेपक—**अशिष्य इति**। 'अधिका विंशतिर्यासान्ता अधिकविंशा गावः, अधिका त्रिंशद् यासां ता अधिकत्रिंशा गावः' में अन्यपदार्थ संख्येय प्रधान है; अतः यहाँ 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ से ही समास हो जायेगा; अतः इसी के लिए प्रकृतसूत्र के द्वारा कहा गया संख्योत्तरपदबहुव्रीहि व्यर्थ है। 'द्विदशाः' इत्यादि में भी 'द्विरावृत्तदशत्वसंख्यावन्तः' यह अर्थ होने से अन्यपदार्थ संख्येय वाच्य है। 'द्वित्राः' यहाँ पर भी 'द्वित्र्यन्यतरा' ऐसा बोध होने से वाऽर्थ का प्राधान्य है। पूर्वनिपातप्रकरण के अनित्य होने से 'सर्वनामसंख्ययोः' म.भा.२.२.३५ के द्वारा यहाँ विंशतिशब्द के पूर्वनिपात की आशङ्का नही करनी चाहिये।

समाधानभाष्य—**भवेदिति**। यदि विंशतिआदि को **दशत्**=संख्यान और संख्येय अर्थ में अथ वा परिमाणी के अर्थ में शक्त मान लिया जाये तो **वार्थ**=अन्यपदार्थप्रधान होने से 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ के द्वारा 'अधिकविंशाः, अधिकत्रिंशाः' में बहुव्रीहि हो सकता था। परन्तु 'आ दशतः संख्या संख्येये संख्याने च' अर्थात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अष्टादशपर्यन्त संख्या संख्येय तथा संख्यान इन दोनों अर्थो में है; अतः जब दशशब्द के द्वारा संख्येय अर्थ वाच्य होगा तब **वार्थ**=अन्यपदार्थप्रधान नही होने से 'अधिकदशाः' में पूर्वसूत्र से बहुव्रीहि प्राप्त नही होने से संख्योत्तरपद को प्रकृत से समास कहा है।

अथोपदशा इति कोऽयं समासः? बहुव्रीहिरित्याह। कोऽस्य विग्रहः? दशानां समीपे उपदशा इति। कस्य पुनः सामीप्यमर्थः? उपस्य। यद्येवं, नाऽन्यपदार्थो भवति। तत्र च प्रथमानिर्दिष्टं संख्याग्रहणं शक्यकर्तुम् * मत्वर्थे वा पूर्वस्य विधानात् * **अथ वा मत्वर्थे पूर्वो योगः। अमत्वर्थार्थोऽयमारम्भः** * कबभावार्थं वा * **अथ वा कब्मा भूदिति।**

प्रश्नभाष्य—**अथोपदशा इति**। 'उपदशाः' में कौन समास है? यहाँ डच्प्रत्ययान्त होने से बहुव्रीहि स्पष्ट है, अतः विग्रह के विषय में प्रश्न है। स्वाभिप्राय स्पष्ट करते हैं-**कोऽस्येति**। 'उपदशाः' इस पद का क्या विग्रह है?

उत्तरभाष्य—**दशानामिति**। 'दशानां समीपे ये सन्ति' इस विग्रह में 'उपदशाः' यह समास है।

प्रश्नभाष्य—**कस्य पुनरिति**। किस पद का सामीप्य अर्थ है?

उत्तरभाष्य—**उपस्येति**। निपात अनेकार्थक होते हैं, अतः उपशब्द का ही सामीप्य अर्थ है। यहाँ समीपी के प्राधान्य होने पर अव्ययीभाव होगा, इसे बताया जा चुका है। 'सामीप्ये' में धर्म से धर्मी लक्षित है-'कस्य सामीप्यवान्'। 'उपकुम्भम्' इत्यादि में उपशब्द समीपमात्रवाची है, अतः वह सामीप्यवाची नही हो सकता है। दशशब्द का भी सामीप्य अर्थ नही है। यदि समास का अर्थ सामीप्य मानेंगे तो अन्यपदार्थ वृत्तित्व होगा, अतः प्रश्न किया था। उत्तरपक्षी आचार्य ही पुनः कहते हैं-**यद्येवमिति**। यदि उपशब्द का सामीप्य अर्थ होने पर 'उपदशाः' में अन्यपदार्थप्रधान नही है; अतः पूर्वसूत्र से यहाँ समास प्राप्त नही है। इस तरह भाष्यकार ने 'अव्यय, आसन्न, अदूर तथा अधिक'ग्रहण को स्थापित किया है-**तत्र चेति**। अब भाष्यकार प्रथमान्त संख्याग्रहण की भी स्थापना करते हैं-**अथेवति**। अथ वा पूर्वसूत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ मत्वर्थ के लिए आरब्ध है; जब कि उत्तरसूत्र का आरम्भ अमत्वर्थ के लिए है; अतः अमत्वर्थ में बहुव्रीहि के लिए प्रकृतसूत्र में प्रथमान्त संख्या पद का निर्देश है। प्रथमान्त संख्या पद का निर्देश का अन्य प्रयोजन भी देते हैं-**कबभावार्थमिति**। 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ सूत्र में शेषाधिकार में विहित बहुव्रीहि गृहीत है। पूर्वसूत्र शेषाधिकारीय है; अतः उससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समास होने पर 'द्वित्राः' इत्यादि में समासान्त कप् की आपत्ति होगी। यहाँ कप् न हो, इसके लिए प्रकृतसूत्र में समासान्त संख्यापद का निर्देश है।{संख्यया-}।

दिङ्नामान्यन्तराले २.२.२६

तेन सहेति तुल्ययोगे २.२.२८

* दिक्समाससहयोगयोश्चाऽन्तरालप्रधानाऽभिधानात् * **दिक्समाससहयोगयोश्चाऽशिष्यो बहुव्रीहिः। किं कारणम्। 'अन्तरालप्रधानाऽभिधानात्'। दिक्समासे सहयोगे चाऽन्तरालं प्रधानं चाऽभिधीयते, तत्राऽन्यपदार्थ इत्येव सिद्धम्। यद्येवं-दक्षिणपूर्वा दिक्; समानाधिकरणलक्षणः पुंवद्भावो न प्राप्नोति। अद्य पुनरियं सैव दक्षिणा सैव पूर्वेति कृत्वा समानाधिकरणलक्षणः पुंवद्भावः सिद्धो भवति। न सिध्यति। भाषितपुंस्कस्य पुंवद्भावो, न चैतौ भाषितपुंस्कौ।**

सूत्रार्थ—'अन्तरालवाच्य होने पर दिक् का नाम सुबन्त का समास हो तथा वह बहुव्रीहिसंज्ञ हो'। दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं दक्षिणपूर्वा। २.२.२६।

'तुल्ययोग में शक्त 'सह' इस अव्यय का तृतीयान्त के साथ समास हो एवं वह बहुव्रीहिसंज्ञ हो'। पुत्रेण सह सपुत्रः। यहाँ 'वोपसर्जनस्य' ६.३.८२ के द्वारा विकल्प से 'सह' को 'स' आदेश है।

तुल्यन्याय होने से यहाँ दो सूत्रों का एकसाथ विचार करते हैं-**दिक्समासेति**। दिक्समास तथा सहयोगसमास में अन्यपदार्थ प्रधान है। यहाँ 'दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशो यदन्तरालं सा दक्षिणपूर्वा दिक्' इस समास में अन्यपदार्थ अन्तराल प्रधान है। एवं 'सपुत्रः' इस समास में भी अन्यपदार्थ पिता प्रधान है; अतः पूर्वसूत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ से ही समास हो जायेगा, इसी के लिए प्रकृत दोनों सूत्रों का आरम्भ नहीं करना चाहिये। अन्य आक्षेपक-**यद्येवमिति**। यदि यहाँ पूर्वसूत्र से समास करेंगे तो 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु' ६.३.३४ के द्वारा होने वाला समानाधिकरणलक्षणपुंवद्भाव नहीं हो सकेगा। परन्तु **'अद्य पुनः'**=सूत्रारम्भविशिष्टकाल में सूत्रारम्भसामर्थ्य से 'अन्तराले यानि दिङ्नामानि तानि समस्यन्ते' ऐसा अर्थ होगा। समीप होने से दक्षिणा आदि पदों का अन्तराल में वृत्तित्व है; अतः 'दक्षिणा चाऽसौ पूर्वा च' इस तरह का सामानाधिकरण्य होने से पुंवद्भाव होकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'दक्षिणपूर्वा' रूप होगा। परन्तु जब प्रकृतसूत्र का आरम्भ नहीं करते हैं तब दक्षिणा और पूर्वा आदि पदों के स्वार्थ में नहीं होने से वैयधिकरण्य हो जाता है। यहाँ सामानाधिकरण्य होने पर विशेषणसमास इस लिए नहीं माना जा सकता है कि यहाँ पूर्वपदप्रकृतिस्वर तथा 'विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ' १.१.२८ से विकल्पित सर्वनामसंज्ञा इष्ट है जो बहुव्रीहि होने पर ही सिद्ध होती है।

खण्डनभाष्य—**न सिध्यतीति**। भाषितपुंस्क का ही पुंवद्भाव होता है। दिग्वाची दक्षिणा आदि पद भाषितपुंस्क नहीं है, अतः उसको बहुव्रीहि में भी पुंवद्भाव नही होता है।

ननु च भोः दक्षिणशब्दः पूर्वशब्दश्च पुंसि भाष्येते। समानायामाकृतौ यद् भाषितपुंस्कम्, आकृत्यन्तरे चैतौ भाषितपुंस्कौ। दक्षिणा पूर्वेति दिक्शब्दौ, दक्षिणः पूर्व इति व्यवस्था शब्दौ। यदि पुनर्दिक्शब्दा अपि व्यवस्थाशब्दाः स्युः। कथं यानि दिगुपदिष्टानि कार्याणि? यदा दिशो व्यवस्थां वक्ष्यन्ति। यदि हि यो यो दिशि वर्तते स स दिक्शब्द, रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवति-रमणीया दिक्, शोभना दिगिति।

अन्य आक्षेपक—**ननु चेति**। दक्षिणा और पूर्वा पद पुंल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त होते हैं, अतः वह भाषितपुंस्क है। इस तरह उसको पुंवद्भाव हो जाना चाहिये। इतर आचार्य-**समानायामिति**। **समान**=एक ही **आकृति**=जाति में जो भाषितपुंस्क है उसी का पुंवद्भाव विहित है। यहाँ दक्षिणा में दक्षिण और पूर्वा में पूर्व पद भिन्न **आकृति**=जाति में है। दक्षिणा और पूर्वा यह दिग्वाची हैं तथा दक्षिणपद और पूर्वपद व्यवस्थावाची हैं। अन्य आचार्य-**यदि पुनरिति**। यदि दिग्वाची दक्षिणा आदि पदों को भी व्यवस्थावाची मान लिया जाये तो दोनों की प्रवृत्तिनिमित्त जाति समान हो जायेगी तथा भाषितपुंस्क होकर 'दक्षिणपूर्वा' यह समस्त रूप हो जायेगा। इतर आचार्य-**कथं यानीति**। यदि प्रवृत्तिनिमित्त का आश्रयण कर दक्षिणा आदि शब्द दिक् अर्थ में शक्त होंगे, रूढिशक्ति के द्वारा नहीं, तो उनका दिक्शब्दत्व उपपन्न नहीं हो सकेगा। अन्य आचार्य उनका समाधान करते हैं-**यदा दिश इति**। दक्षिणा आदि शब्दों को प्रवृत्तिनिमित्ताश्रय के द्वारा दिक् अर्थ में शक्त होने पर भी जब वे शब्द व्यवस्था को कहेंगे तब उनका व्यवस्थावाचित्व भी उपपन्न हो जायेगा। इतर आचार्य-**यदि हीति**। जो-जो शब्द दिक् अर्थ का बोध करा रहे हों उन सभी को दिक् अर्थ का वाचक मानने पर 'रमणीया दिक्, शोभना दिक्' में दिग्वाची होने से रमणीया और शोभना पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को दिग्वाचकत्व की अतिव्याप्ति होगी।

अथ मतमेतद्-दिशि दृष्टो दिग्दृष्टः, दिग्दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः, यो दिशं न व्यभिचरतीति, न रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवति, पुंवद्भावस्तु न प्राप्नोति। एवं तर्हि * 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्यो दक्षिणोत्तरपूर्वाणामित्येवमर्थम्' * **एवं च कृत्वाऽस्तु-'दिक्समाससहयोगयोरन्तरालप्रधानाभिधाना'-दित्येव। ननु चोक्तं-'दक्षिणपूर्वा दिक्, समानाधिकरणलक्षणः पुंवद्भावो न प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावेन परिहृतम्।**

उत्तरपक्षी आचार्य इसका समाधान करते हैं—**अथ मतमेतदिति**। वे ही दिक्शब्द होंगे जिनका प्रयोग सर्वदा दिक् अर्थ में ही किया जाये, यदि दिक् अर्थ से भिन्न अर्थ में भी उनका प्रयोग देखा जाये तो वे दिक्शब्द नहीं होंगे। रमणीय और शोभन आदि पदों को दिक् से भिन्न 'रमणीयो ग्रामः, शोभना पाकक्रिया' आदि अर्थों में भी प्रयुक्त देखा जाता है, अतः वे दिक्शब्द नही हो सकते हैं।

आक्षेपभाष्य—**पुंवद्भावस्त्विति**। पूर्वोक्त भाष्य के आधार पद दक्षिणा आदि शब्दों का दिक्शब्दत्व सिद्ध होने पर भी भाषितपुंस्क नहीं होने से उसको पुंवद्भाव नहीं हो सकेगा। वार्तिक-**सर्वनाम्न इति**। **वृत्तिमात्र**=कृत्, तद्धित, एकशेष, समास और सनाद्यन्तधातुरूप इन पाँचों वृत्तियों में सर्वनाम को पुंवद्भाव कहना चाहिये। 'दक्षिणोत्तरपूर्वाणाम्' में वैयधिकरण्य होने से पुंवद्भाव नहीं है, अतः उसका पुंवद्भाव कहना चाहिये। उसी से 'दक्षिणपूर्वा' इत्यादि में भी पुंवद्भाव हो जायेगा; अतः इस सूत्र की आवश्यकता नहीं है। इससे पूर्व में 'दक्षिणपूर्वा' इस स्थल में वैयधिकरण्य होने से समानाधिकरणलक्षणपुंवाद्भाव प्राप्त नहीं है, ऐसा जो कहा था, वह सर्वनाम को वृत्तिमात्र में पुंवद्भाव कहने से सिद्ध हो जाता है; अतः पूर्वसूत्र से ही समास तथा सर्वनाम को वृत्तिमात्र में पुंवद्भाव कह कर यहाँ भाष्यकार ने उक्त दोनों सूत्रों का खण्डन कर दिया है।

* मत्वर्थे वा पूर्वस्य विधानात् * **अथ वा मत्वर्थे पूर्वो योगोऽमत्वर्थार्थोऽयमारम्भः** * कबभावार्थं वा * **अथ वा कब्मा भूदिति।**

अब भाष्यकार उक्त दोनों सूत्रों का मण्डन करते हैं-**मत्वर्थे वेति**। पूर्वसूत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ मत्वर्थ में बहुव्रीहि करता है। षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ ही मत्वर्थ होता है। 'दक्षिणपूर्वा' इत्यादि में अन्यपदार्थ मत्वर्थ नही है; अतः पूर्वसूत्र से समास अप्राप्त होने से ही प्रकृत दोनों सूत्रों का आरम्भ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। प्रकृत दोनों सूत्रों का अन्य प्रयोजन भी देते हैं-**कबभावार्थमिति**। यहाँ 'दक्षिणपूर्वा' में 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ के द्वारा समास होने पर 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ के द्वारा समासान्त कप् की आपत्ति होगी। यहाँ 'दक्षिणपूर्वा' आदि में कप् न हो, इसके लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। {तेन सहेति}।

तत्र तेनेदमिति सरूपे २.२.२७

* तृतीयासप्तम्यन्तेषु च क्रियाऽभिधानादशिष्यो बहुव्रीहिः * **तृतीयासप्तम्यन्तेषु चाऽशिष्यो बहुव्रीहिः। किं कारणम्? 'क्रियाऽभिधानात्'। क्रियाऽभिधीयते। तत्रा'ऽन्यपदार्थे' इत्येव सिद्धम्** * न वैकशेषप्रतिषेधार्थम् * **न वाऽशिष्यः। किं कारणम्। 'एकशेषप्रतिषेधार्थम्'। एकशेषप्रतिषेधार्थमिदं वक्तव्यम्।**

'बहुव्रीहिः' २.२.२३ की अनुवृत्ति है। 'तत्र' इस पद के द्वारा सप्तम्यन्तपद विवक्षित है। सप्तम्यन्त का विशेषण 'ग्रहणविषये' इस प्रथमाद्विवचनान्त पद का अध्याहार करना चाहिये। 'तेन' इसके द्वारा दो सप्तम्यन्तपद विवक्षित हैं। इस तृततीयान्त का विशेषण 'प्रहरणविषये' इस प्रथमाद्विवचनान्त का अध्याहर करना चाहिये। उसका विशेषण 'सरूपे' यह प्रथमाद्विवचनान्त पद है। 'ग्रहणविषये' तथा 'प्रहरणविषये' इन दोनों का यथासंख्य सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त के दो-दो पदों के साथ अन्वय होगा। सूत्र में 'इदम्' यह अर्थनिर्देश है। उसका विशेष्य 'युद्धं प्रवृत्तम्' इन पदों का अध्याहार करना चाहिये। एवं 'कर्मव्यतिहारे द्योत्ये' इसका भी अध्याहार करना चाहिये; अतः सूत्रार्थ-'कर्मव्यतिहार द्योत्य होने पर सप्तम्यन्त ग्रहणविषय सरूपपद तथा तृतीयान्त प्रहरणविषय का 'इदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस अर्थ में समास हो तथा वह बहुव्रीहिसंज्ञ हो'। 'गृह्यतेऽस्मिन्निति ग्रहणम्' केश आदि, यहाँ अधिकरण में ल्युट् है। 'ग्रहणं विषयो वाच्यं ययोस्ते ग्रहणविषये='ग्रहणवाचक दो सप्तम्यन्त पद' यह अर्थ है। जैसे 'केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तमिति केशाकेशि। प्रह्रियतेऽनेनेति प्रहरणं दण्डादि, तद्विषयं वाच्यं ययोस्ते प्रहरणविषये='प्रहरणवाचक दो तृतीयान्त पद'। यहाँ भी 'सरूपे पदे' इन दोनों का अन्वय होता है। 'इदं युद्धं प्रवृत्तम्' में 'इदम्' यह सामान्यनिर्देश है तथा 'युद्धम्' यह विशेषनिर्देश है; अतः 'केशाकेशि युद्धम्' यह पुनरुक्ति नहीं है। परस्पर ग्रहण तथा परस्पर प्रहरण यह दोनों व्यतिहार है। 'दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तमिति दण्डादण्डि युद्धम्'। सूत्र में 'इति'शब्दनिर्देश के द्वारा ग्रहणविषय तथा प्रहरणविषय इन दोनों का अध्याहार है।

आक्षेपक आचार्य—**तृतीयेति**। सूत्र में 'इति' पद के द्वारा विवक्षित अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का निर्देश होने से तृतीयान्त 'दण्डादण्डि' तथा सप्तम्यन्त 'केशाकेशि' यह समास युद्धक्रिया में ही होता है। यहाँ युद्धक्रिया अन्यपदार्थ है, अतः पूर्व सूत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ से ही समास हो जायेगा; अतः इसी के लिए किया गया प्रकृतसूत्र का आरम्भ व्यर्थ है। आरम्भवादी आचार्य-**न वैकशेषेति**। 'केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तम' इस ग्रहणविषय में तथा 'दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस प्रहरणविषय में सहविवक्षित सरूप तथा समानविभक्ति होने से 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' १.२.६४ के द्वारा एकशेष प्राप्त होगा। प्रकृतसूत्रारम्भसामर्थ्य से समूहविषया बहुव्रीहिसंज्ञा भी प्राप्त है। समूहविषया बहुव्रीहिसंज्ञा अनवकाश है; अतः उसके द्वारा एकशेष का बाध हो जाता है; इसके लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। परन्तु यदि यहाँ पूर्वयोग से समास करते तो एकशेष के पर होने तथा अन्यपदार्थ की अपेक्षा बहिरङ्ग होने से उसका बाध असम्भव होता।

* पूर्वदीर्घार्थं च * **पूर्वदीर्घार्थं चेदं वक्तव्यम्। केशाकेशि। स्यादेतत् प्रयोजनं यदि नियोगतोऽस्याऽनेनैव दीर्घत्वं स्यात्। अथेदानीमन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घत्वं, न प्रयोजनं भवति** * मत्वर्थे वा पूर्वस्य विधानात् * **अथ वा मत्वर्थे पूर्वो योगोऽमत्वर्थार्थोऽयमारम्भः** * कबभावार्थं वा * **अथ वा कब्मा भूदिति।**

पूर्वदीघार्थं चेति। प्रकृतसूत्र का 'तत्र तेन+आ+इदम्' ऐसा विग्रह होने से यहाँ आकार का प्रश्लेष है; अतः पूर्वपद को दीर्घविधानार्थ भी सूत्र का प्रयोजन है। आक्षेपक-**स्यादिति**। यदि 'केशाकेशि, दण्डादण्डि' में मात्र प्रकृत से ही पूर्वपद को दीर्घ होता तो उसका आरम्भ सार्थक होता, परन्तु यहाँ दूसरा सूत्र 'अन्येषामपि दृश्यते' ६.३.१३७ के द्वारा भी दीर्घ होता है; अतः इन 'केशाकेशि' इत्यादि में दीर्घविधान के लिए प्रकृतसूत्र का प्रयोजन नहीं हो सकता है। अन्य प्रकार से भी सूत्र का मण्डन करते हैं-**मत्वर्थे वेति**। पूर्वसूत्र'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ मत्वर्थ में बहुव्रीहि करता है; अतः अमत्वर्थ में बहुव्रीहिविधान के लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। इस सूत्र का अन्य प्रयोजन भी देते हैं-**कबभावार्थमिति**। पूर्वसूत्र से समास होने पर समासान्त कप्प्रत्यय की आपत्ति होगी; जब कि यहाँ कप्प्रत्यय इष्ट नही है। प्रकृतसूत्र से समास होने पर कप् नही होता है, एतदर्थ प्रकृतसूत्र का आरम्भ है।{तत्र}।

चाऽर्थे द्वन्द्वः २.२.२९

चाऽर्थ इत्युच्यते, चश्चाऽव्ययं, तेन समासस्याऽव्ययसंज्ञा प्राप्नोति। नैष दोषः। पाठेनाऽव्ययसंज्ञा क्रियते। न च द्वन्द्वः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासस्तत्र पठ्यते। पाठेनाऽव्ययसंज्ञायां सत्यामभिधेवल्लिङ्गवचनानि भवन्ति। यश्चेहाऽर्थोऽभिधीयते न तस्य लिङ्गसंख्याभ्यां योगोऽस्ति। नेदं वाचनिकम्अलिङ्गताऽसंख्यता वा। किं तर्हि? स्वाभाविकमेतत्। तद्यथा-'समानमीहमानानां चाऽधीयानानां च केचिदर्थैर्युज्यन्तेऽपरे न। न चेदानीं कश्चिदर्थवानिति कृत्वा सर्वैरर्थवद्भिः शक्यं भवितुं, कश्चिद्वाऽनर्थक इति सर्वैरनर्थकैः'। तत्र किमस्माभिः शक्यं कर्तुम्-यत्राक्समासाच्चाऽर्थस्य लिङ्गसंख्याभ्यां योगो नाऽस्ति, समासे च भवति। स्वाभाविकमेतत्।

'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे' २.१.२ से 'सुप्', 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ से 'अनेकम्', 'समासः' २.१.३ तथा 'विभाषा' २.१.११ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'च अर्थ में विद्यमान अनेकसुबन्तों का विकल्प से समास हो तथा वह द्वन्द्वसंज्ञ हो'। घटश्च पटश्च मठश्चेति घटपटमठाः।

आक्षेपभाष्य—**चार्थ इतीति**। 'च' के अर्थ में द्वन्द्व कहा जा रहा है। 'च' अव्यय है; अतः चार्थ में द्वन्द्व होने पर द्वन्द्व की भी अव्ययसंज्ञा होगी जिससे उसमें लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**पाठेनेति**। गणपाठ के द्वारा अव्ययसंज्ञा की गयी है। अव्ययों के गणपाठ में द्वन्द्वसमास का पाठ नहीं होने से उसको अव्ययसंज्ञा की आपत्ति नहीं होगी। आक्षेप-**यश्चेहार्थ इति**। 'च' पदार्थ में लिङ्ग और संख्या का योग नहीं है; अतः चार्थ में विहित द्वन्द्व में भी लिङ्ग और संख्या का योग नहीं होना चाहिये। चार्थ में समास कहने पर यह दोष दिया जा रहा है। यदि समाहार तथा इतरेतरयोग में समास कहेंगे तो यह दोष नहीं आयेगा।

उत्तरभाष्य—**नेदमिति**। **अलिङ्गता**=लिङ्ग का योग नहीं होना तथा **असंख्यता**= संख्या का योग नहीं होना, यह **वाचनिक**=कहीं पर भी वचनरूप से पठित नहीं है, अपि तु स्वाभाविक है। जैसे समान कक्षा में समान चेष्टा करने वालों में कोई विद्यार्थी विद्यारूप अर्थ ग्रहण करता है तथा कोई नहीं कर पाता है। किसी एक को विषय आ गया तो सभी को आ गया ऐसा नहीं होता है, एवं किसी एक के नहीं आने पर सभी को नहीं आया, ऐसा भी नहीं होता है; यह स्वाभाविक है। वैसे लिङ्ग और संख्या का योग नहीं होने तथा होने में शब्द का स्वभाव कारण है। शब्दशक्तिस्वभाववश ही समास से पूर्व चार्थ में लिङ्ग और संख्या का योग नहीं होता है तथा चार्थ में समास होने पर भी शब्दशक्तिस्वभाववश उसमें लिङ्ग और संख्या का योग होता है। ऐसा शब्द का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वभाववश होता है। उसमें कोई भी कुछ भी नहीं कर सकता है।

अथ वाऽऽश्रयतो लिङ्गवचनानि भविष्यन्ति। यथा गुणवचनेषु। गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति। तद्यथा-शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बला इति,-यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति गुणः, तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तद् गुणस्याऽपि भवति। एवमिहापि यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति समासस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तत्समासस्यापि भविष्यति।

अन्य प्रकार से भी इसका समाधान करते हैं—**अथ वेति**। जैसे गुणवचन शुक्ल, कृष्ण आदि शब्दों को गुणाश्रयद्रव्य का लिङ्ग और वचन के अनुसार ही लिङ्ग और वचन होता है। इससे 'शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बलाः' में द्रव्य के अनुसार ही लिङ्ग और संख्या है, वैसे चार्थ में भी लिङ्ग और वचन भी होगा। गुण द्रव्याश्रित होता है; अतः द्रव्यनिष्ठ लिङ्ग और संख्या के अनुसार ही गुणशब्दो का लिङ्ग और संख्या होगी।

अथेह कस्मान्न भवति-याज्ञिकश्चाऽयं वैयाकरणश्च, कठश्चाऽयं बह्वृचश्च, औक्थिकश्चाऽयं मीमांसकश्चेति? शेष इति वर्तते। अशेषत्वान्न भविष्यति। यदि शेष इति वर्त्तते—

'उपास्नातं स्थूलसिक्तं तूष्णीङ्गङ्गं महाह्रदम्।
द्रोणं चेदशको गन्तुं मा त्वा ताप्तां कृताकृते'।।

इत्येतन्न सिध्यति। नैष दोषः। अन्यद्धि कृतमन्यदकृतम्।

प्रश्नभाष्य—**अथेहेति**। 'याज्ञिकश्चाऽयं वैयाकरणश्च' इत्यादि स्थलों में एक धर्मी के अनेक धर्म का समुच्चय होने से यहाँ द्वन्द्वसंज्ञा प्राप्त होगी। अभ्यर्हित होने से 'अभ्यर्हितं च' वा.२.२.३४ के द्वारा वैयाकरणशब्द का ही पूर्वनिपात होगा। परन्तु यदि तत्पुरुष करते हैं तो 'काणखञ्जः, खञ्जकाणः' की तरह पूर्वनिपात का अनियम होगा। परकार्य होने पर द्वन्द्वसंज्ञा होगी। इसी पक्ष में यह दोष आ रहा है। परन्तु यदि 'आ कडारादेका संज्ञा' १.३.१ पक्ष माना जाये तो विशेष विहित होने से यहाँ तत्पुरुष ही होगा तथा उस पक्ष में कोई दोष नही होगा। व्यधिकरणधर्मबोधक स्थल में 'चार्थे' सावकाश है।

उत्तरभाष्य—**शेष इतीति**। 'शेषो बहुव्रीहिः' २.२.२३ से 'शेषः' पद की अनुवृत्ति 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र में होती है। 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के द्वारा विशेषणसमास उक्त है; अतः 'याज्ञिकश्चायं वैयाकरणश्च' इत्यादि स्थलों में विशेषणसमास होने से यह अशेष हो गया। इस तरह यहाँ शेषलक्षण-द्वन्द्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। आक्षेपक-**यदीति**-

यदि प्रकृतसूत्र में 'शेषः' २.२.२३ पद की अनुवृत्ति करेंगे तो 'कृताकृते' की असिद्धि होगी। इस कारिका का अर्थ इस प्रकार है-'उपास्नात, स्थूलसिक्त, तूष्णीङ्गङ्ग, महाह्रद तथा द्रोण इन पाँच तीर्थविशेषों में यदि तुम जा सकते हो तो **कृताकृत**=किया हुआ सुकृत और दुष्कृत तुम्हें स्पर्श नहीं करेगा; अर्थात् कष्ट नहीं देगा। यहाँ यह तीर्थस्नानप्रशंसा है। **कृत**=सत्कृत फलनाश के अनन्तर ताप देता है तथा **अकृत**=दुष्कर्म अनिष्ट फल का हेतु होने से ही सन्ताप देता है। यहाँ 'कृताकृते' इस उदाहरण में 'क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्' २.१.६ के द्वारा समासविधान होने से अशेषत्व है, अतः द्वन्द्व की अप्राप्ति रही है। कृत और अकृत इन दोनों को एक ही अधिकरण में कर्मसामान्य मान कर आक्षेप है।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। कृत और अकृत यह दोनों एकाधिकरण नहीं हैं, अपि तु भिन्न अधिकरण हैं; अतः भिन्न अधिकरण होने से इनका शेषत्व नहीं है।

* चाऽर्थे द्वन्द्ववचनेऽसमासेऽपि चाऽर्थसम्प्रत्ययाद् अनिष्टप्रसङ्गः *

चाऽर्थे द्वन्द्ववचनेऽसमासेऽपि चाऽर्थसम्प्रत्ययादनिष्टं प्राप्नोति,—

'अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं पशुम्।
वैवस्वतो न तृप्यति सुराया इव दुर्मदी'।। इति।

आक्षेपभाष्य—**चार्थे द्वन्द्वेति**। चार्थ में द्वन्द्व कह रहे हैं। समास से भिन्न वाक्य में भी चार्थ का बोध होने से द्वन्द्व की आपत्ति होगी। इसे कारिका के द्वारा स्पष्ट करते हैं—

अहरहरिति। दुर्मदी-दुःख के कारण मतवाला जैसे सुरा से तृप्त नहीं होता है वैसे गो, अश्व, पुरुष और पशु को प्रतिदिन यमलोक ले जाने पर भी **वैवस्वत**=सूर्त्रपुत्र यम तृप्त नहीं होता है। यहाँ नयनक्रिया में समुच्चयार्थ होने से द्वन्द्व की प्राप्ति हो रही है।

'इन्द्रस्त्वष्टा वरुणो वायुरादित्य' इति * सिद्धं तु युगपदधिकरण-वचने द्वन्द्ववचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'युगपदधिकरणवचने द्वन्द्व-वचनात्'। युगपदधिकरणवचने द्वन्द्वो भवतीति वक्तव्यम्** * तत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुंवद्भावप्रतिषेधः * तत्रैतस्मिँल्लक्षणे पुंवद्भावस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। पट्वीमृद्व्यौ। समानाधिकरणलक्षणः पुंवद्भावः प्राप्नोति।

एवम् 'इन्द्रस्त्वष्टा वरुणो वायुरादित्यः' में इन्द्र आदि के लोकपालकत्व होने से गम्यमान पालनक्रिया में समुच्चयार्थ होने से द्वन्द्व की आपत्ति हो रही है।

समाधानभाष्य—**सिद्धं त्विति**। आचार्य यहाँ अन्यन्यास के द्वारा दोषवारण कर रहे हैं। एक-एक शब्द के द्वारा एकसाथ जब द्वन्द्ववाच्य समुदायरूप अधिकरण वाच्य होगा तब द्वन्द्व होगा। परन्तु 'गाम्, अश्वम्' इत्यादि में भिन्न-शब्दों के द्वारा गो आदि का द्वन्द्व नही हो सकेगा। वार्तिक-**तत्र पुंवदिति**। इस सूत्र द्वारा विहित द्वन्द्व में पुंवद्भाव का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे 'पट्वीमृद्व्यौ'। यहाँ एक-एक शब्द के द्वारा दो अर्थो का बोध होने से सामानाधि-करण्य है; अतः सामानाधिकरण्यलक्षण पुंवद्भाव प्राप्त होने पर निषेध कहा है।

* विप्रतिषिद्धेषु चानुपपत्तिः * विप्रतिषिद्धेषु युगपदधिकरणवचन-तायाः अनुपपत्तिः। शीतोष्णे, सुखदुःखे, जननमरणे। किं कारणम्? सुखप्रतिघातेन हि दुःखम्, दुःखप्रतिघातेन च सुखम्। यत्तावदुच्यते-'तत्र पुंवद्भावप्रतिषेध' इति। इदं तावदयं प्रष्टव्यः-अथेह पुंवद्भावः कस्मान्न भवति-दर्शनीयाया माता दर्शनीयामातेति? अथ मतमेतत्-'प्राक्समासाद्यत्र सामानाधिकरण्यं तत्र पुंवद्भावो भवती'ति, इहापि न दोषो भवति। यदप्युच्यते-'विप्रतिषिद्धेषु चानुपपत्ति'रिति। सर्व एव हि शब्दा विप्रतिषिद्धाः। इहापि प्लक्षन्यग्रोधाविति, प्लक्षशब्दः प्रयुज्यमानः प्लक्षार्थं सम्प्रत्याययति, न्यग्रोधार्थं निवर्तयति। न्यग्रोधशब्दः प्रयुज्यमानो न्यग्रोधार्थं सम्प्रत्याययति, प्लक्षार्थं निवर्तयति। अथाऽत्र चेद्युक्ता युगपदधिकरणवचनता दृश्यते, इहापि युक्ता दृश्यताम्।

आक्षेप वार्तिक—**विप्रतिषिद्धेष्विति**। **विप्रतिषिद्ध**=परस्पर विरुद्ध पदों का एकसाथ अधिकरणवचनता असम्भव होने से उनको द्वन्द्व नहीं हो सकेगा। जैसे 'शीतोष्णे, सुखदुःखे,जननमरणे'। सुखप्रतिघात के द्वारा दुःख, तथा दुःखप्रतिघात के द्वारा सुख होता है। शीतप्रतिघात के द्वारा उष्ण तथा उष्णप्रतिघात के द्वारा शीत होता है। जननप्रतिघात के द्वारा मरण तथा मरणप्रतिघात के द्वारा जनन होता है। इस तरह ये सभी परस्पर विरुद्ध होने से एक अधिकरण में नहीं रह सकते हैं। इससे पूर्व में जो पुंवद्भावप्रतिषेध कहा था, उस पर आक्षेप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते हैं-**यत्तावदिति**। 'पट्वीमृद्व्यौ' में समानाधिकरण होने से पुंवद्भाव की प्राप्ति मान कर उसका निषेध किया गया था; कृपया आप बतावें कि 'दर्शनीया-माता' में भी समानाधिकरण है; फिर यहाँ पुंवद्भाव क्यों नहीं होता है? इसका उत्तरपक्ष कहते हैं-**अथ मतमेतदिति**। समास से पूर्व वाक्य में जिनका सामाना-धिकरण्य है समासवृत्ति में उन्हीं का पुंवद्भाव होगा। 'दर्शनीयामाता' में 'दर्शनीयाया माता' ऐसा विग्रहवाक्य है। इसमें सामानाधिकरण्य नहीं होने से वृत्ति में पुंवद्भाव नहीं हो सकेगा। इसी समाधान से 'पट्वीमृद्व्यौ' में भी पुंवद्भाव प्राप्त नहीं होगा। विप्रतिषिद्धों का समास बताते हैं-**यदप्युच्यत इति**। परस्परविरुद्धशब्दों का समुच्चय बता कर 'शीतोष्णे' इत्यादि में समास की अनुपपत्ति बतायी थी, वह नहीं रहेगी। वस्तुतः न केवल शीत, उष्ण आदि शब्द ही विप्रतिषिद्ध हैं, अपि तु सभी शब्द ही विप्रतिषिद्ध होते हैं। 'प्लक्षन्यग्रोधौ' में भी प्रयुज्यमान प्लक्षशब्द प्लक्ष अर्थ का बोध कराता है तथा न्यग्रोधरूप अर्थ की निवृत्ति कराता है। एवं प्रयुज्यमान न्यग्रोधशब्द न्यग्रोधरूप अर्थ का बोध कराता है तथा प्लक्षरूप अर्थ की निवृत्ति कराता है। इस तरह परस्पर विरुद्ध होने पर भी यदि प्लक्ष और न्यग्रोधशब्द की एक साथ अधिकरणवचनता बन सकती है, तो परस्पर विरुद्ध होने पर 'शीतोष्णे' आदि की भी युगपद्अधिकरणवचनता होनी चाहिये; अतः यहाँ द्वन्द्व सिद्ध हो जायेगा।

* शब्दपौर्वापर्यप्रयोगादर्थपौर्वापर्याभिधानम् * **शब्दपौर्वापर्यप्रयोगा-दर्थपौर्वापर्याभिधानं प्राप्नोति। अतः किम्? युगपदधिकरणवचनताया अनुपपत्तिः। प्लक्षन्यग्रोधा इति। यथैव हि शब्दानां पौर्वापर्यं तद्वदर्थानामपि भवितव्यम्** * शब्दपौर्वापर्यप्रयोगादर्थपौर्वापर्याभिधानमिति चेद् द्विवचनबहुवचनयोरनुपपत्तिः * **शब्दपौर्वापर्यप्रयोगादर्थपौर्वाप-र्याभिधानमिति चेद् द्विवचनबहुवचनयोरनुपपत्तिः। प्लक्षन्यग्रोधौ, प्लक्षन्यग्रोधा इति। प्लक्षशब्दः सार्थको निवृत्तो, न्यग्रोधशब्द उपस्थितः। एक एकार्थः, तस्यैकार्थत्वादेकवचनं प्राप्नोति।**

आक्षेपवार्तिक—**शब्दपौर्वापर्येति**। जिस क्रम से शब्दों का प्रयोग होता है, उसी क्रम से अर्थो की भी उपस्थिति होगी। प्रयोग में शब्दों का यौगपद्य नहीं होता है; अतः अर्थो का भी यौगपद्य नहीं होने से शब्दों की युगपद्अधिकरणवचनता नहीं हो सकती है; अतः द्वन्द्व असम्भव है। अन्य आक्षेपक-**द्विवचनानुपपत्तिरिति**। यदि शब्दों के पौर्वापर्य से अर्थ का पौर्वापर्य मानेंगे तो सर्वत्र द्वन्द्व में एकवचन ही होगा, कहीं पर भी द्विवचन तथा बहुवचन नहीं हो सकेगा। जैसे 'प्लक्षन्यग्रोधौ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में पहले प्लक्षशब्द उच्चरित होगा तथा उसका अर्थ भी पहले उपस्थित होकर निवृत्त हो जायेगा। फिर प्लक्षरूपशब्दोच्चारणकाल में उपस्थित प्लक्षरूप अर्थ के निवृत्त होने पर जब न्यग्रोधरूप अर्थ उपस्थित होगा, उस काल में प्लक्षरूप अर्थ के निवृत्त हो जाने से न्यग्रोधरूप एक ही अर्थ रहेगा तथा उससे एकवचन की ही प्राप्ति होगी, द्विवचन की नहीं। इसी तरह 'प्लक्षाग्रन्यग्रोधाः' में बहुवचन की अप्राप्ति समझनी चाहिये।

विग्रहे च युदपद्वचनं ज्ञापकं युगपद्वचनस्य **विग्रहे खल्वपि युदपद्वचनता दृश्यते-'द्यावा ह क्षामा' 'द्यावा चिदस्मै पृथिवी संनमेते' इति। किमेतत्? युगपदधिकरणवचनताया उपोद्बलकम्। विग्रहे किल नाम युगपदधिकरणवचनता स्यात्, किं पुनः समासे** *समुदायात्सिद्धम्* **समुदायात्सिद्धमेतत्। किमेतत् समुदायात्सिद्धमिति? 'द्विवचनबहुवचनता- प्रसिद्धि'रिति चोदितं तस्यायं परिहारः** *समुदायात्सिद्धमिति चेन्नैकार्थत्वात् समुदायस्य* **समुदायात्सिद्धमिति चेत्। तन्न। किं कारणम्? 'एकार्थत्वात् समुदायस्य'। एकार्था हि समुदाया भवन्ति। तद्यथा-शतं यूथं वनमिति।**

दूषणोद्धारवार्तिक—**विग्रहे चेति**। विग्रह में भी युगपद्वचनता देखी जाती है। जैसे 'द्यावा ह क्षामा, द्यावा चिदस्मै पृथिवी सन्नमेते' इस प्रयोग में 'सन्नमेते' इस द्विवचननिर्देश से 'द्यावा' तथा 'पृथिवी' यह दोनों द्विवचनान्त होंगे। दिवा और पृथिवी का वाचक द्यो शब्द से प्रथमाद्विवचन को 'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' ७.१.३९ के द्वारा आत्व आदेश है। एवं 'गोतो णित्' ७.१.९0 में गो शब्द को ओकारान्त का उपलक्षण मान कर द्यो शब्द को णिद्वद् अतिदेश होने पर वृद्धि तथा आवादेश होकर 'द्यावा' निर्देश है। इसी तरह दिवस् तथा पृथिवी का वाचक पृथिवी शब्द से प्रथमाद्विवचन में 'वा च्छन्दसि' ६.१.१०७ के द्वारा पूर्वसवर्णदीर्घ-एकादेश है। यथोक्त अभिप्राय नही समझ कर प्रश्न करते हैं-**किमेतदिति**। उत्तर देते हैं-**युगपदिति**। 'द्यावा ह क्षामा' इत्यादि युगपदधिकरणवचनता के 'उत्कृष्टं बलकम् उद्बलकम्= प्रत्यक्ष, उसके समीप होने से **उपोद्बलकम्**=अनुमान के रूप में न्यस्त है। अन्य आचार्य- **विग्रहे किलेति**। युगपदधिकरणवचनता वाक्य में होगी, अथ वा समास में होगी? जब साहचर्य आदि निमित्त का आश्रयण करने से वाक्य में भी शब्दों का एकार्थत्व देखा जाता है तब जो शब्दशक्ति वाक्य में नही देखी जाती है उसका समास में दर्शन होने से उसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है। युगपद्वचनकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होने पर भी द्विवचन और बहुवचन का असिद्धिरूप दोष का मार्जन करते हैं-**समुदायादिति**। समुदाय के द्वारा द्विवचन और बहुवचन की सिद्धि हो जायेगी। जिज्ञासु आचार्य-**किमेतस्येति**। समुदाय के द्वारा द्विवचन और बहुवचन की सिद्धि कैसे होगी?

उत्तरभाष्य—**द्विवचनेति**। 'शब्दपौर्वापर्यप्रयोगादर्थपौर्वापर्याभिधानमिति चेद् द्विवचन- बहुवचनयोरनुपपत्तिः' यह दोष दिया था, उसका यह परिहार है। द्वन्द्व के द्वारा समुदायरूप अर्थ का बोध होता है। इससे द्विवचन तथा बहुवचन की प्रसिद्धि हो जायेगी। आक्षेपक-**समुदायादिति**। समुदाय एकार्थक होता है; अतः उससे एकवचन ही होगा, द्वन्द्व के द्वारा समुदायरूप अर्थ वाच्य होने पर द्विवचन तथा बहुवचन अनुपपन्न ही रहेगा। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। जैसे 'शतं, यूथं, वनम्' में समुदाय होने से एकवचन ही प्रयुक्त होता है।

* नैकार्थ्यम् * **नाऽयमेकार्थः। किं तर्हि? द्व्यर्थो बह्वर्थश्च। प्लक्षोऽपि द्व्यर्थो, न्यग्रोधोऽपि द्व्यर्थः। यदि तर्हि प्लक्षोऽपि द्व्यर्थो, न्यग्रोधोऽपि द्व्यर्थः**-* तयोरनेकार्थत्वाद् बहुवचनप्रसङ्गः * **तयोरनेकार्थत्वाद् बहुषु बहुवचनमिति बहुवचनं प्राप्नोति** * तयोरनेकार्थत्वाद् बहुवचनप्रसङ्ग इति चेन्न बहुत्वाऽभावात् * **तयोरनेकार्थत्वाद् बहुवचनप्रसङ्ग इति चेत्। तन्न। किं कारणम्? 'बहुत्वाऽभावात्'। नाऽत्र बहुत्वमस्ति। किमुच्यते 'बहुत्वाऽभावा'दिति, यदिदानीमेवोक्तं-'प्लक्षोऽपि द्व्यर्थो, न्यग्रोधोऽद्व्यर्थ' इति? याभ्यामेवात्रैको द्व्यर्थस्ताभ्यामेवाऽपरोऽपि। यद्येवम्** * अन्यवाचकेनाऽन्यस्य वचनाऽनुपपत्तिः * **अन्यवाचकेनाऽन्यस्य वचनं नोपपद्यते। यथा प्लक्षेण न्यग्रोधार्थः।**

उत्तरभाष्य—**नैकार्थ्यमिति**। समुदाय के द्वारा दो प्रकार का अर्थबोध होता है। पहला तिरोहितावयवभेद तथा दूसरा उद्भूतावयवभेद। जब तिरोहितावयवभेद वाच्य होगा तब एकवचन ही होगा, द्विवचन अथ वा बहुवचन नहीं। परन्तु जब उद्भूतावयवभेद वाच्य होगा तब समुदाय से द्विवचन तथा बहुवचन भी होगा। 'प्लक्षन्यग्रोधौ' इस समुदाय में उद्भूतावयव होने से प्लक्ष भी द्व्यर्थ है तथा न्यग्रोध भी द्व्यर्थ है। आक्षेपक-**यदि तर्हीति**। 'प्लक्षन्यग्रोधौ' में प्रत्येक से द्वित्वरूप अर्थ की उपस्थिति मानेंगे तो मिल कर चार होंगे। इससे बहुवचन की आपत्ति होने से प्लक्षन्यग्रोध पद के अनन्तर बहुवचन की आपत्ति होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**तयोरनेकार्थेति**। प्लक्षन्यग्रोध के बहुत नही होने से उसके उत्तर में बहुवचन की आपत्ति नहीं होगी। यहाँ बहुत्व नहीं है, अपि तु द्वित्व है; अतः द्विवचन हो जायेगा। आक्षेपक-**किमुच्यत इति**। आप ने अभी-अभी प्लक्ष और न्यग्रोध इन दोनों में प्रत्येक में द्वित्वरूप अर्थ का अन्वय बताया है। वे मिल कर बहुत होंगे; फिर आप कैसे कहते हैं कि उसमें बहुत्व अर्थ का अन्वय नहीं हो सकेगा? इन दोनों पदों में जिस पूर्वपद से द्वित्वरूप अर्थ वाच्य है, उसी के उत्तरपद से भी द्वित्वरूप अर्थ वाच्य है।

उत्तरभाष्य—**यद्येवमिति**। यदि 'प्लक्षन्यग्रोधौ' इस समुदाय में प्रत्येक से द्वित्वरूप अर्थ का बोध मानेंगे तो यह सत्य है। परन्तु प्लक्ष भी द्वित्वार्थक है तथा न्यग्रोध भी द्वित्वार्थक है तथा इन दोनों का समुदाय प्लक्षन्यग्रोध भी द्वित्वार्थक है; अतः द्विवचन की ही विभक्ति आयेगी, बहुवचन की नहीं। अन्य शब्द के द्वारा अन्य अर्थ की उपस्थिति नहीं होती है। जैसे घटशब्द से पटरूप अर्थ की उपस्थिति नहीं होती है वैसे प्लक्षशब्द से न्यग्रोधरूप अर्थ की उपस्थिति भी नहीं होगी। लौकिकन्याय से ही शब्दों का अर्थनिर्धारण होता है। लोक में एक अर्थ में उच्चरितशब्द अन्य अर्थ का बोध नहीं कराता है।

* अन्यवाचकेनाऽन्यस्य वचनानुपपत्तिरिति चेत् प्लक्षस्य न्यग्रोधत्वान्न्यग्रोधस्य च प्लक्षत्वात् स्वशब्देनाऽभिधानम् * **अन्यवाचकेन शब्देनाऽन्यस्य वचनानुपपत्तिरिति चेदेवमुच्यते, तन्न। किं कारणम्? 'प्लक्षस्य न्यग्रोधत्वान्न्यग्रोधस्य च प्लक्षत्वात् स्वशब्देनाऽभिधानम्'। प्लक्षस्य न्यग्रोधत्वान्न्यग्रोधस्य च प्लक्षत्वात् स्वशब्देनाऽभिधानं भविष्यति। प्लक्षोऽपि न्यग्रोधो न्यग्रोधोऽपि प्लक्षः। कथं पुनः प्लक्षोऽपि न्यग्रोधो न्यग्रोधोऽपि प्लक्षः स्याद्यावता-'कारणाद् द्रव्ये शब्दनिवेशः'** * कारणाद् द्रव्ये शब्दनिवेश इति चेत्तुल्यकारणत्वात् सिद्धम् * **कारणाद् द्रव्ये शब्दनिवेश इति चेदेवमुच्यते, तन्न। 'तुल्यकारणत्वात् सिद्धम्'। तुल्यं हि कारणम्। यदि तावत्प्रक्षरतीति प्लक्षः स्यान्न्यग्राधेऽप्येतद् भवति। तथा यदि न्यग्रोहतीति न्यग्रोधः प्लक्षेऽप्येतद् भवति।**

आक्षेपक—**अन्यवाचकेनेति**। अन्य अर्थ का वाचकशब्द अपर अर्थ का वाचक नहीं होता है। इससे प्लक्ष तथा न्यग्रोधशब्द **स्व**=अपना-अपना प्लक्ष तथा न्यग्रोध अर्थ का ही वाचक होंगे, अन्य अर्थ का नहीं; इससे प्लक्ष तथा न्यग्रोधशब्दों का स्वार्थाभिधायित्व है, अर्थान्तराभिधायित्व नहीं। लौकिकप्रसिद्धि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के द्वारा अर्थान्तराभिधायित्व कहा जा रहा है। परन्तु वृत्तिविषय में एक-एक के ही द्वित्व अर्थ होने से वे दोनों समुदाय भी द्व्यर्थक होते हैं। 'प्लक्षोऽपि न्यग्रोधः' इत्यादि का 'प्लक्ष भी न्यग्रोध अर्थ का वाचक है, तथा न्यग्रोध भी प्लक्ष अर्थ का वाचक है' ऐसा अर्थ समझना चाहिये। आक्षेपक-**कथं पुनरिति**। यहाँ भाष्य में कारणशब्द से शब्द और अर्थ के निर्णय का हेतुरूप लोकव्यवहार विवक्षित है। चुँकि लोकव्यवहार में प्लक्ष से प्लक्षरूप अर्थ का ही बोध होता है, न्यग्रोधरूप अर्थ का नहीं। एवं न्यग्रोधशब्द से न्यग्रोधरूप अर्थ का ही बोध होता है, प्लक्षरूप अर्थ कानहीं; फिर आपने प्लक्षशब्द से न्यग्रोधरूप अर्थ की उपस्थिति तथा न्यग्रोधशब्द से प्लक्षरूप अर्थ की उपस्थिति कैसे कह दी? इतर आचार्य शब्दप्रवृत्तिनिमित्त का कारण मान कर कहते हैं-**कारणादिति**। यदि लोक में शब्दप्रवृत्तिनिमित्त ही शब्दप्रयोग में हेतु है तो प्लक्ष को प्लक्ष कहने में लोक में जो हेतु है वही हेतु न्यग्रोध को न्यग्रोध कहने में भी है। जैसे **'प्रक्षरतीति प्लक्षः'**=विस्तार से अवस्थित होने से प्लक्ष है, तो न्यग्रोध भी विस्तार से अवस्थित होता है; अतः वह भी प्लक्षपद वाच्य होगा। एवं **'न्यग्रोहतीति न्यग्रोधः'**=अर्थात् अधःशाखा अवस्थान से न्यग्रोध कहेंगे तो प्लक्ष का भी अधःशाखा अवस्थान होता है; अतः वह भी न्यग्रोधपद वाच्य होगा। लोक में **प्लक्ष**=पकड़ी तथा **न्यग्रोध**=वट कहलाता है।

* दर्शनं वै हेतुः * **न च न्यग्रोधे प्लक्षशब्दो दृश्यते** * दर्शनं वै हेतुरिति चेत्तुल्यम् * **दर्शनं वै हेतुरिति चेत्तुल्यमेतद् भवति। प्लक्षेऽपि न्यग्रोधशब्दो दृश्यतां न्यग्रोधेऽपि प्लक्षशब्दः। तुल्यं हि कारणम्। न वै लोके एष सम्प्रत्ययो भवति। न हि 'प्लक्ष आनीयता'मित्युक्ते न्यग्रोध आनीयते** * तद्विषयं च * **तद्विषयं चैतद् द्रष्टव्यं प्लक्षस्य न्यग्रोधत्वम्। किं विषयम्? द्वन्द्वविषयम्। युक्तं पुनर्यन्नियतविषया नाम शब्दाः स्युः? बाढं युक्तम्।**

इतर आचार्य अपना आशय स्पष्ट करते हैं-**दर्शने वै हेतुरिति**। शब्दों के प्रयोग में **दर्शनम्**=लोकव्यवहार ही हेतु है। लोक में प्लक्षशब्द न्यग्रोध अर्थ में नही देखा जाता है तथा न्यग्रोध भी प्लक्ष अर्थ में नही देखा जाता है; अतः ये दोनों शब्द स्वार्थ का परित्याग कर अन्यार्थ में प्रयुक्त नही होते हैं। अन्य आचार्य-**दर्शनमिति**। यदि शब्दों के प्रयोग में लोकव्यवहार को ही हेतु मानते हैं तो 'प्लक्षन्यग्रोधौ दृश्येताम्' ऐसा कहने से लोक तथा शास्त्र में उभय की दर्शनकर्मता होती है। जिस कारण से प्लक्ष में दर्शनकर्मता है उसी कारण से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यग्रोध में भी दर्शनकर्मता है। अन्य आचार्य-**न वै लोके इति**। लोक में प्लक्षशब्द से न्यग्रोध तथा न्यग्रोधशब्द से प्लक्ष की उपस्थिति नहीं देखी जाती है। यदि प्लक्ष से न्यग्रोधरूप अर्थ की उपस्थिति देखी जाती तो 'प्लक्ष आनीयताम्' ऐसा कहने से न्यग्रोध का भी आनयन प्राप्त होता, परन्तु ऐसा नहीं होता है। द्वन्द्वविषय में अनेक अर्थवचनता स्पष्ट करते हैं-**तद्विषयं चेति**। द्वन्द्व का ही यह विशिष्ट सामर्थ्य है कि 'प्लक्षन्यग्रोधौ आनीयेताम्' ऐसा कहने से दोनों से दोनों अर्थ का बोध करा देता है। परन्तु यदि केवल 'प्लक्ष आनीयताम्' ऐसा कहा जाये तो उससे प्लक्षरूप अर्थ ही उपस्थित होगा, न्यग्रोधरूप अर्थ नहीं।

प्रश्नभाष्य—**युक्तं पुनरिति**। शब्द अपने-अपने अर्थ में नियत हैं। प्लक्ष प्लक्ष अर्थ में तथा न्यग्रोध न्यग्रोध अर्थ में नियत है; फिर क्या उन नियतशब्दों का अन्य अर्थ में शक्ति सम्भव है, जिसे 'प्लक्षन्यग्रोधौ आनीयेताम्' में बता रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**बाढमिति**। भिन्न रूप तथा भिन्न शक्ति होने से शब्दों की नियतविषयता होती है।

* अन्यत्रापि तद्विषयदर्शनात् * **अन्यत्रापि हि नियतविषयाः शब्दा दृश्यन्ते। तद्यथा-समाने रक्ते वर्णे गौर्लोहित इति भवति, अश्वः शोण इति। समाने च काले वर्णे गौः कृष्ण इति भवति, अश्वो हेम इति। समाने च शुक्ले वर्णे गौः श्वेत इति भवति, अश्वः कर्क इति। यदि तर्हि प्लक्षोऽपि न्यग्रोधो, न्यग्रोधोऽपि प्लक्षः** * एकेनोक्तत्वादपरस्य प्रयोगोऽनुपपन्नः * **एकेनोक्तत्वात्तस्याऽर्थस्याऽपरस्य प्रयोगो नोपपद्यते, प्लक्षेण न्यग्रोधस्य न्यग्रोधप्रयोगः।**

अन्यत्र भी शब्दों की नियतविषयता देखी जाती है, इसे स्पष्ट करते हैं-**अन्यत्रापीति**। अन्यत्र भी शब्द नियतविषय देखे जाते हैं। रक्त वर्ण गाय एवम् अश्व इन दोनों द्रव्यों में समान ही होता है; फिर भी गोनिष्ठ रक्तवर्ण को लोहित पद से कहते हैं तथा अश्वनिष्ठ रक्तवर्ण को शोणपद से कहते हैं। गोनिष्ठ तथा अश्वनिष्ठ काला वर्ण के समान होने पर भी गोनिष्ठ काला वर्ण को हेम कहते हैं तथा अश्वनिष्ठ काला वर्ण को हेम कहते हैं। एवं शुक्लवर्ण के समान होने पर भी गोनिष्ठ शुक्लवर्ण को श्वेत तथा अश्वनिष्ठ शुक्लवर्ण को कर्क कहते हैं। इससे तरह समझिये-जैसे अश्व से अन्यत्र शोण आदि का प्रयोग नहीं होता है वैसे द्वन्द्व के अभाव में प्लक्ष आदि शब्द न्यग्रोध आदि के वाचक नहीं हो सकेंगे। आक्षेपक-**यदि तर्हीति**। शब्द को आप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियतविषय बता रहे हैं। 'प्लक्षन्यग्रोधौ' इस द्वन्द्व में दोनों पद दोनों अर्थों के वाचक हैं। प्लक्षशब्द भी न्यग्रोध अर्थ का वाचक होगा तथा न्यग्रोधशब्द भी प्लक्ष अर्थ का वाचक होगा। इस तरह किसी एक से ही अपर अर्थ वाच्य होने पर अपर का प्रयोग नहीं होना चाहिये। यदि प्लक्षशब्द से न्यग्रोधरूप अर्थ भी वाच्य है तो न्यग्रोधशब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिये; अथ वा न्यग्रोधशब्द से यदि प्लक्षरूप अर्थ वाच्य है तो प्लक्षशब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिये। अब यहाँ प्रश्न होता है कि जब आचार्य 'तद्विषयं च' ऐसा उत्तर दे चुके हैं तब इस दोष का क्या अवसर है, तो यहाँ दोषवादी की दृष्टि इस प्रकार समझनी चाहिये-परस्पर सन्निधान के द्वारा जब 'प्लक्षन्यग्रोधौ' में दोनों का दोनों अर्थ में सामर्थ्य है, तब किसी भी एक के नहीं होने पर भी सामर्थ्यहानि नहीं होती है। जैसे वह्नि के निवृत्त हो जाने पर भी वह्निजन्य पाकज रूप बना रहता है।

* एकेनोक्तत्वादपरस्य प्रयोगोऽनुपपन्न इति चेदनुक्तत्वात् प्लक्षेण न्यग्रोधस्य न्यग्रोधप्रयोगः * **एकेनोक्तत्वादपरस्य प्रयोगोऽनुपपन्न इति चेत्, तन्न। किं कारणम्? 'अनुक्तत्वात् प्लक्षेण न्यग्रोधस्य न्यग्रोधप्रयोगः'। अनुक्तः प्लक्षेण न्यग्रोधार्थ इति कृत्वा न्यग्रोधशब्दः प्रयुज्यते। कथमनुक्तो, यावतेदानीमेवोक्तं-'प्लक्षोऽपि न्यग्रोधो, न्यग्रोधोऽपि प्लक्ष इति? सहभूतावेतावन्योऽस्याऽर्थमाहतुर्न पृथग्भूतौ। किं पुनः कारणं सहभूतावेतावन्योऽन्यस्याऽर्थमाहतुर्न पृथग्भूतौ?** * अभिधानं पुनः स्वाभाविकम् * **स्वाभाविकमभिधानम्।**

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**अनुक्तत्वादिति**। प्लक्षशब्द ही प्लक्षरूप अर्थ का वाचक होगा, न्यग्रोधरूप अर्थ का नहीं; अतः प्लक्षशब्द का प्रयोग होने पर न्यग्रोधशब्द का भी प्रयोग किया जाता है। एवं न्यग्रोधशब्द न्यग्रोधरूप अर्थ का ही वाचक है, प्लक्षरूप अर्थ का नहीं; अतः न्यग्रोधशब्द का प्रयोग होने पर भी प्लक्षशब्द का भी प्रयोग होता है।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। आप ने अभी-अभी प्लक्ष से भी न्यग्रोधरूप तथा न्यग्रोध से भी प्लक्षरूप अर्थ की उपस्थिति बतायी है; फिर आप तुरन्त इसके बाद प्लक्षशब्द से न्यग्रोधरूप अर्थ की अनुपस्थिति तथा न्यग्रोध से प्लक्षरूप अर्थ की अनुपस्थिति कैसे बता रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**सहभूताविति**। प्लक्ष और न्यग्रोध इन दोनों पदों का एक साथ प्रयोग करने पर ही दोनों दोनों अर्थ के वाचक होते हैं। यदि मात्र प्लक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का प्रयोग करेंगे तो वह प्लक्षरूप अर्थ का ही वाचक होगा, न्यग्रोधरूप अर्थ का नहीं। एवं यदि केवल न्यग्रोधशब्द का ही प्रयोग करेंगे तो वह न्यग्रोधरूप अर्थ का ही वाचक होगा, प्लक्षरूप अर्थ का नहीं।

प्रश्नभाष्य—किं पुनरिति। क्या कारण है कि उक्त दोनों शब्द समस्त होने पर ही एक दूसरे के अर्थ के वाचक होते हैं, पृथक् रह कर ये शब्द एक दूसरे के अर्थ के वाचक क्यों नहीं होते हैं?

उत्तरभाष्य—अभिधानमिति। शब्दों से अर्थ की उपस्थिति स्वाभाविक है; उसमें पुरुष का कुछ भी प्रयत्न नहीं है। समुदित होने पर उक्त दोनों पदों के मध्य में कोई भी शब्द एक दूसरे के अर्थ को नहीं कहेगा।

अथ वेह कौ चित् प्राथमकल्पिकौ प्लक्षन्यग्रोधौ, कौ चित् क्रियया वा गुणेन वा, प्लक्ष इवायं प्लक्षो, न्यग्रोध इवायं न्यग्रोध इति। तत्र प्लक्षावित्युक्ते सन्देहः स्यात्-किमिमौ प्लक्षावेव, आहोस्विन्न्यग्रोधावेव, आहोस्वित् प्लक्षन्यग्रोधाविति। तत्राऽसन्देहार्थं न्यग्रोधशब्दः प्रयुज्यते। इयं युगपदधिकरणवचनता नाम दुःखा च दुरुपपादा च। यच्चाऽप्यस्या निबन्धनमुक्तं-द्यावा ह क्षामेति, तदपि च्छान्दसम्। तत्र सुपां सुपो भवन्तीत्येव सिद्धम्। सूत्रं च भिद्यते।

अन्य पक्ष में भी इसका समाधान करते हैं—**अथ वेति**। मुख्य रूप से लोक में पद का उच्चारणमात्र से ही अर्थ का बोध माना जाता है। प्रथम कल्प में कोई प्लक्ष और न्यग्रोध था, वह किसी क्रिया अथ वा गुण से युक्त था। उस प्लक्ष की तरह यह प्लक्ष है तथा उस न्यग्रोध की तरह यह न्यग्रोध है। यहाँ जो प्राथमकल्पिक प्लक्ष और न्यग्रोध है तत्सहचरित गुण और क्रिया का दर्शन होने से तद्रूप का आरोप है, अतः एतत्कल्प का प्लक्ष और न्यग्रोध गौड है। अत एव इसके अनुकूल ही उक्त दोनों पदों का विग्रह स्पष्ट किया है-प्रक्षरतीति प्लक्षः, न्यग्रोहतीति न्यग्रोधः। उक्त दोनों में अन्यतर की प्रयोगदशा में दोष स्पष्ट करते हैं-**तत्र प्लक्षेति**। यदि न्यग्रोधशब्द का प्रयोग नही करके मात्र प्लक्षशब्द का ही प्रयोग करते तो सन्देह होता-क्या ये दोनों प्लक्ष हैं अथ वा दोनों न्यग्रोध हैं? परन्तु यदि प्लक्षशब्द के साथ न्यग्रोधशब्द का भी प्रयोग करते हैं तब सन्देह नहीं रह जाता है; अतः असन्देह के लिए प्लक्षशब्द के साथ न्यग्रोधशब्द का प्रयोग है। इससे पूर्व में जो युगपदधिकरणवचनता कही थी, उसका खण्डन करते हैं-**इयं युगपदिति**। वह जो युगपदधिकरणवचनता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कही थी वह दुःखा है। वह इस तरह कि समुदाय से ही दोनों अर्थो की उपस्थिति होती है, प्रत्येक से नहीं; यह अनुभवसिद्ध है; अतः प्रत्येक की द्व्यर्थता नही है। प्रत्येक की द्व्यर्थता नहीं होने में अन्य-प्रमाण भी देते हैं-**दुरुपपादेति**। कोई प्रमाण नहीं होने से दोनों की युगपदधिकरणवचनता नहीं हो सकती है। लोक में प्लक्षशब्द की प्लक्षन्यग्रोधवाचकता नहीं देखी जाती है। न्यग्रोधशब्द से ही न्यग्रोधरूप अर्थ के उक्त होने से प्लक्षशब्द गौड नहीं है, अपि तु मुख्य है। 'प्लक्षन्यग्रोधौ-प्लक्षन्यग्रोधौ' यह आवृत्ति जैसे द्व्यर्थ का बोधक है, वैसे 'प्लक्षन्यग्रोधौ' ऐसा कहने से प्रत्येक से दो अर्थो का बोध नहीं होता है। चुँकि समास अनेकार्थक होता है; अतः उससे पर में द्विवचन तथा बहुवचन की उपपत्ति हो जायेगी। द्विवचन तथा बहुवचन के अन्य प्रकार से उपपन्न नहीं होने की दशा में भी युगपदधिकरणवचनता नहीं हो सकेगी। युगपदधिकरणवचनता का जो उदाहरण दिया था, उसको अन्यथासिद्ध करते हैं-**यच्चाप्यस्येति**। 'द्यावा ह क्षामा' इत्यादि में जो युगपदधिकरणवचनता बतायी थी, उसका समाधान छान्दसत्वात् कर लेंगे। वहाँ जो द्योशब्द का प्रथमाद्विवचन में 'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' ७.१.३९ के द्वारा समाधान किया जा चुका है। अथ वा यहाँ एकवचन प्राप्त होने पर छान्दसत्वात् द्विवचन हुआ है; अतः लिङ्गव्यत्यय के द्वारा समाधान करना चाहिये। आक्षेपक-**सूत्रं चेति**। आचार्य चार्थ में द्वन्द्व कह रहे हैं। इससे द्वन्द्व होने पर ही चार्थ का बोध होना चाहिये। परन्तु विग्रह में भी चार्थ का बोध होता है। इससे द्वन्द्व में चार्थ का बोध कराने के लिए पृथक् तथा वाक्य में चार्थ का बोध कराने के लिए पृथक् सूत्र करने से सूत्रभेद होगा।

यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं-'चाऽर्थे द्वन्द्ववचनेऽसमासेऽपि चाऽर्थसम्प्रत्ययादनिष्टप्रसङ्ग' इति। नैष दोषः। इह 'चे द्वन्द्व' इतीयता सिद्धम्। कथं पुनश्चे नाम वृत्तिः स्यात्? शब्दो ह्येषः। शब्दे कार्याऽसम्भवादर्थे कार्यं विज्ञास्यते। सोऽयमेवं सिद्धे सति यदर्थग्रहणं करोति तस्यैतत् प्रयोजनम्-एवं यथा विज्ञायेत-चेन कृतोऽर्थश्चाऽर्थ इति।

उत्तरपक्षी आचार्य यथान्यासपक्ष में दोष का वारण करते हैं-**यथान्यासेति**। सूत्र को यथान्यास ही रखिये। सूत्र के यथान्यासपक्ष में वाक्य में भी चार्थज्ञान होने से समास की आपत्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि आचार्य प्रकृतसूत्र के स्थान पर 'चे द्वन्द्वः' इतना ही सूत्र पढते; फिर 'च'शब्द में समास असम्भव होने से 'च'शब्द का अर्थ में ही समास होता। इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्ध होने पर भी आचार्य ने जो अर्थग्रहण किया वह व्यर्थ पड कर यहाँ मध्यमपदलोपी २.१.६० समास का ज्ञापन करायेगा-**चेन**='चशब्देन कृतोऽर्थः' इस अर्थ में चार्थ है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि 'च' शब्द के द्वारा अर्थ का कृतत्व उत्पादन है, अथ वा प्रकाशन है? शब्दों के द्वारा अर्थ का उत्पादन नही होने से यहाँ उत्पादनपक्ष सम्भव नहीं है। इसको 'नहि शब्दकृतेन नामार्थेन भवितव्यम्' से स्पष्ट कर दिया है।

कश्च पुनश्चेन कृतोऽर्थः? समुच्चयोऽन्वाचय इतरेतरयोगः समाहार इति। समुच्चयः-प्लक्षश्चेत्युक्ते गम्यते एतत्-न्यग्रोधश्चेति, तथा 'न्यग्रोधश्चे'त्युक्ते गम्यते एतत्-प्लक्षश्चेति। अन्वाचयः-प्लक्षश्चेत्युक्ते गम्यते एतत्'सापेक्षोऽयं प्रयुज्यते' इति। इतरेतरयोगः- 'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्चे'त्युक्ते गम्यते एतत्-'प्लक्षोऽपि न्यग्रोधसहायो, न्यग्रोधोऽपि प्लक्षसहायः' इति। प्लक्षश्च न्यग्रोधश्चेत्युक्ते समाहारेऽपि क्रियते-प्लक्षन्यग्रोधमिति। तत्राऽयमप्यर्थः-द्वन्द्वैकवद्भावो न पठितव्यो भवति। समाहारैकत्वादेव सिद्धम्।

यदि शब्दों के द्वारा अर्थ का प्रकाशनपक्ष माना जाये तो वाक्य में भी चार्थ होने से अतिव्याप्ति होगी, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-**कः पुनरिति**। 'चेन कृतोऽर्थः' इस विग्रह में मध्यमपदलोपी समास होने पर चार्थशब्द से क्या अर्थ उपस्थित होगा?

उत्तरभाष्य—**समुच्चय इति**। समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग एवं समाहार यह चार अर्थ 'च'पद के द्वारा वाच्य है। परस्पर निरपेक्ष अनेकसुबन्तपदों का एकक्रिया में अन्वय समुच्चय कहलाता है। जैसे 'गाम् अश्वं पुरुषं चानय' इस वाक्य में परस्पर निरपेक्ष गो आदि का आनयनक्रिया में अन्वय समुच्चय है। प्रकृतसूत्र में अर्थग्रहणसामर्थ्य से 'चेन कृतोऽर्थः चार्थः' ऐसा मध्यमपदलोपी समास है; अतः यहाँ 'चेनैव यः कृतोऽर्थस्तत्र द्वन्द्वः' ऐसा अर्थ होगा। 'गामश्वं पुरुषमानय' में 'च' पद का ग्रहण नही होने पर भी समुच्चय अर्थ का बोध होता है। जैसे 'दध्ना उपसिक्त ओदन दध्योदनः' में अन्तःसेकक्रिया के द्वारा सामर्थ्य है, वैसे 'गामश्वम्' आदि में सामर्थ्य नही है; अतः यहाँ असामर्थ्य होने से समास नही किया जा सकता है। जब 'न्यग्रोधो दृश्यताम्' ऐसा उपक्रम कर 'प्लक्षश्च दृश्यताम्' ऐसा कहेंगे तो 'न्यग्रोधश्च' इसका भी समुच्चय होगा। एवं 'प्लक्षो दृश्यताम्' ऐसा उपक्रम कर 'न्यग्रोधश्च दृश्यताम्' कहेंगे तब तब 'प्लक्षश्च' यह भी अर्थ उपस्थित होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसी एक का आनुषङ्गिक रूप से अन्वय अन्वाचय कहलाता है। जैसे 'भिक्षामट गां चानय' में किसी एक का आनयनक्रिया में अनुषङ्गवश अन्वय है। यदि मात्र 'प्लक्षश्च दृश्यताम्' ऐसा कहा जाये तो 'च' पद के द्वारा प्रधान न्यग्रोधपद को **सापेक्ष**=प्रधानीभूत क्रिया के प्रति सापेक्ष माना जायेगा। यहाँ न्यग्रोध ही प्रधान होगा। न्यग्रोध के अनुरोध से प्लक्ष को दर्शनक्रियासम्बद्ध होने से भिन्न कक्ष्या होगी; अतः परस्पर सामर्थ्य नहीं होने से अन्वाचय में भी समास नहीं होगा। यदि प्रधानाभिधायि पद चार्थ में नहीं है, अपि तु प्रधानपद ही चार्थ में है, तब अनेकपदों के चार्थवृत्तित्व नहीं होने से द्वन्द्व का अभाव होगा।

इतरेतरयोग में परस्पर सापेक्ष अनेकपदों का एक में अन्वय होने पर 'च'शब्द के द्वारा ही परस्पर सहितता द्योतित होती है; अतः इतरेतरयोग में समास होता है। 'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च' ऐसा कहने से इन दोनों का सम्मिलित रूप से 'स्तः' इस सत्ताक्रिया में अन्वय होता है। यहाँ 'प्लक्ष न्यग्रोध का सहायक है तथा न्यग्रोध प्लक्ष का सहायक है' इस अर्थ का बोध होता है।

'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्चेत्यनयोः समाहारः' इस विग्रह में भी प्लक्ष और न्यग्रोध का साहित्यबोध होता है; अतः परस्पर साहित्य होने से समाहार में भी द्वन्द्व होता है। समूहरूप ही समाहार है। समाहर को चार्थ मान कर उसमें द्वन्द्वविधान मान लेने पर लाघव भी होता है। वह यह कि 'द्वन्द्वश्च प्राणितुर्यसेनाङ्गानाम्' २.४.२ इत्यादि के द्वारा आचार्य जो द्वन्द्व को एकवद्भाव कहते हैं, वह नही कहना पडेगा। यहाँ भाष्यकार समाहार को चार्थ मान कर द्वन्द्व के एकवद् अतिदेश का खण्डन कर रहे हैं। परन्तु युगपदधिकरणवचनता पक्ष में एक-एक पद के अनेकार्थक होने पर समाहार में एकवद्भाव प्राप्त नही हो सकेगा; अतः इसके लिए पृथक् द्वन्द्वैकवद् अतिदेश कहना पडेगा जो पाणिनि को इष्ट है। द्वन्द्वैकवद् का प्रयोग देखे जाने से विषयविभाग स्पष्ट है; अतः द्वन्द्वैकवद् अतिदेश के लिए अतिदेशशास्त्रों को नही माना जा सकता है।

एकादश द्वादशेति कोऽयं समासः? *एकादीनां दशादिभिर्द्वन्द्वः* **एकादीनां दशादिभिर्द्वन्द्वः समासः** *एकादीनां दशादिभिर्द्वन्द्व इति चेद्विंशत्यादिषु वचनप्रसङ्गः* **एकादीनां दशादिभिर्द्वन्द्व इति चेद्विंशत्यादिषु वचनं प्राप्नोति-एकविंशतिः। द्वाविंशतिः** *सिद्धं त्वधिकान्ता सङ्ख्या सङ्ख्यया समानाधिकरणाऽधिकारेऽधिकलोपश्च* **सिद्धमेतत्। कथम्? समानाधिकरणाऽधिकारे वक्तव्यम्-'अधिकान्ता सङ्ख्या सङ्ख्यया सह समस्यतेऽधिकशब्दस्य च लोपो भवती'ति। एकाधिका**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विंशतिः-एकविंशतिः, द्व्यधिका विंशतिः-द्वाविंशतिः। यदि समानाधिकरणः-स्वरो न सिध्यति। यद्धि तत्-'संख्या पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवती'ति, 'द्वन्द्वे' इत्येवं तत्। किं पुनः कारणं 'द्वन्द्व' इत्येवं तत्? इह मा भूत्-शतसहस्रमिति।

प्रश्नभाष्य—**एकादशेति**। एकादश और द्वादश पद में क्या समास है?

उत्तरभाष्य—**एकादीनामिति**। एक आदि का दश तथा **आदि**=विंशति आदि के साथ द्वन्द्व समास है। वस्तुतः एकादश आदि नित्य बहुवचनान्त हैं, अतः दश आदि के साथ द्वन्द्व होने में कोई दोष नही है; अतः यह विचार विंशति आदि के लिए ही किया जा रहा है। 'एकश्च दश च एकादश, द्वौ च दश च द्वादश' ऐसा द्वन्द्वसमास है। आक्षेपक-**विंशत्यादिष्विति**। यदि एक का दश और विंशति आदि के साथ द्वन्द्व कहेंगे तो 'एकश्च विंशतिश्च एकविंशतिः' में सम्मिलित होने से द्विवचन तथा 'द्वाविंशतिः' में बहुवचन की आपत्ति होगी।

उत्तरभाष्य—**सिद्धं त्विति**। 'एकविंशतिः' इत्यादि में 'एकश्च विंशतिश्च' ऐसा विग्रह नहीं है, अपि तु 'एकेनाधिका एकाधिका, एकाधिका विंशतिरेकविंशतिः' इत्यादि इस तरह का समानाधिकरणविग्रह तथा विशेषणसमास है। शाकपार्थिवादिगण २.१.६० में पठित होने से इसमें उत्तरपद अधिका का लोप है। आक्षपेक-**यदीति**। समानाधिकरणसमास में यहाँ द्वन्द्व नहीं हो सकेगा। इससे यहाँ 'समासस्य' ६.१.२२३ के द्वारा अन्तोदात्त की आपत्ति होगी। परन्तु जब यहाँ द्वन्द्व करते हैं तब 'संख्या' ६.२.३५ के द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर सिद्ध होता है, अन्यत्र नही।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि द्वन्द्व में ही संख्यावाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है?

उत्तरभाष्य—**इह मेति**। 'शतस्य सहस्रं शतसहस्रम्' इस षष्ठीसमासस्थल में पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो, इसके लिए द्वन्द्व में ही संख्यावाची पूर्वपद को प्रकृतिस्वर कहा है।

अस्तु तर्हि द्वन्द्वः। ननु चोक्तम्-'एकादीनां दशादिभिर्द्वन्द्व इति चेद्विंशत्यादिषु वचनप्रसङ्ग' इति। नैष दोषः। सर्वो हि द्वन्द्वो विभाषयैकवद् भवति। यदा तर्ह्येकवचनं तदा नपुंसकलिङ्गं प्राप्नोति। लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य।

'एकविंशतिः' इत्यादि में वचन की अतिव्याप्तिवारण के लिए उत्तरपक्ष कहते हैं-**अस्तु तर्हीति**। यदि समानाधिकरणसमासपक्ष में 'एकविंशतिः' इत्यादि में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरदोष आ रहा है तो आप यहाँ 'एकश्च विंशतिश्च' इस विग्रह में द्वन्द्वसमास ही मानिये। इस पक्ष में द्विवचन तथा बहुवचन की अतिव्याप्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि 'तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्' १.२.६३ सूत्र में बहुवचनग्रहण के द्वारा 'विकल्प से सभी द्वन्द्वों का एकवद्भाव ज्ञापित है'। इससे समाहारद्वन्द्व होने पर नपुंसकलिङ्ग की आपत्ति होगी, परन्तु लिङ्ग के **लोकाश्रय**=पाणिनि- प्रभृति महर्षियों के आश्रय होने से यहाँ पुल्लिङ्गता हो जायेगी तथा एकवद्भाव होने से एकवचन हो जायेगा; अतः 'स नपुंसकम्' २.४.१७ सूत्र का प्रणयन नहीं करना चाहिये। {चार्थे द्वन्द्वः}।

उपसर्जनं पूर्वम् २.२.३०

किमर्थमिदमुच्यते? * उपसर्जनस्य पूर्ववचनं परप्रयोगनिवृत्त्यर्थम् * उपसर्जनस्य पूर्ववचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'परप्रयोगनिवृत्त्यर्थम्'। परप्रयोगो मा भूदिति * न वाऽनिष्टदर्शनात् * न वैतत् प्रयोजनमस्ति। किं कारणम्? 'अनिष्टदर्शनात्'। नहि किञ्चिदनिष्टं दृश्यते। नहि कश्चिद्राजपुरुष इति प्रयोक्तव्ये पुरुषराज इति प्रयुङ्क्ते। यदि चाऽनिष्टं प्रसज्येत ततो यत्नार्हं स्यात्।

'प्राक्कडारात् समासः' २.१.३ से 'समासः' प्रथमान्त पद की अनुवृत्ति है। उसका प्रकरणवश सप्तम्यन्त विपरिणाम होता है। 'पूर्वम्' इस पद से 'पूर्व प्रयोज्यम्' यह अर्थ विवक्षित है। समासपद से समासशास्त्र अर्थ वाच्य है; अतः सूत्रार्थ-'समासशास्त्र में प्रथमान्त उच्चरित पद का पूर्वनिपात हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिदमिति**। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**उपसर्जनस्येति**। जैसे वाक्य में पदों का प्रयोग अनियत होता है, वैसे समास में भी अनियतप्रयोग प्राप्त होने पर नियम के लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। इससे 'उपसर्जन का पूर्वप्रयोग ही करना चाहिये, पर प्रयोग नहीं' यह नियम होगा।

खण्डनभाष्य—**न वाऽनिष्टेति**। लोक में 'राज्ञः पुरुषः' इस विग्रह में समास करने पर 'राजपुरुषः' यही प्रयोग होता है। यहाँ 'षष्ठी' २.२.८ सूत्र से समास है तथा षष्ठ्यन्त का पूर्वप्रयोग लोक से सिद्ध है। सभी 'राजपुरुषः' यही प्रयोग करते हैं, कोई भी उक्त विग्रह में समास करने पर 'पुरुषराजः' ऐसा प्रयोग नहीं करता है; अतः प्रकृतसूत्र का आरम्भ उपसर्जन का परप्रयोगनिवृत्ति नहीं हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकता है। नित्यशब्दों में प्रयोगसङ्कर स्थित होने पर गावी आदि प्रयोगनिवारण के लिए यह शास्त्र है। परन्तु यहाँ विपर्ययप्रयोग नहीं देखा जाता है; अतः उसकी निवृत्ति के लिए किया गया सूत्रारम्भ व्यर्थ है।

अथ यत्र द्वे षष्ठ्यन्ते भवतः कस्मात्तत्र प्रधानस्य पूर्वनिपातो न भवति-राज्ञः पुरुषस्य राजपुरुषस्येति? * षष्ठ्यन्तयोः समासेऽर्थाऽभेदात् प्रधानस्याऽपूर्वनिपातः * **षष्ठ्यन्तयोः समासेऽर्थाऽभेदात् प्रधानस्याऽपूर्वनिपातो न भविष्यति। एवं न चेदकृतं भवति-'उपसर्जनं पूर्व'मिति, अर्थश्चाऽभिन्न इति कृत्वा प्रधानस्य पूर्वनिपातो न भविष्यति। {उपसर्जनं पूर्वम्}।**

अब सूत्रारम्भपक्ष में भी दोष देते हैं—**अथ यत्रेति**। जहाँ 'राज्ञः पुरुषस्य' ऐसा दो षष्ठ्यन्त पदों का उच्चारण करते हैं वहाँ 'षष्ठी' २.२.८ सूत्र से समास होने पर विग्रह के दोनों षष्ठ्यन्तों का पूर्वप्रयोग प्राप्त होगा। वहाँ आप पुरुषपद के पूर्वनिपात का वारण कैसे करेंगे?

उत्तरभाष्य—**षष्ठ्यन्तयोरिति**। उपसर्जन यह अन्वर्थसंज्ञा है; अतः अप्रधान का ही पूर्वनिपात होगा, प्रधान का नहीं। क्रिया में साक्षात् अन्वय होने से पुरुष प्रधान है तथा राजा अप्रधान है; अतः अप्रधान उपसर्जन का ही पूर्वनिपात होगा, प्रधान का नहीं। यदि प्रधान का पूर्वनिपात करेंगे तो 'उपसर्जनं पूर्वम्' यह निर्देश चरितार्थ नहीं हो सकेगा। {उपसर्जनं-}।

अल्पाच्तरम् २.२.३४

किमयं तन्त्रं तरनिर्देशः, आहोस्विदतन्त्रम्? किं चाऽतः? यदि तन्त्रं द्वयोर्नियमो बहुष्वनियमः। तत्र को दोषः? 'शङ्खदुन्दुभिवीणाना'मिति न सिध्यति। दुन्दुभिशब्दस्याऽपि पूर्वनिपातः प्राप्नोति। अथाऽतन्त्रं 'मृदङ्गशङ्खतूणवाः पृथङ् नदन्ति संसदि' 'प्रासादे धनपतिरामकेशवाना'मित्येतन्न सिध्यति।

अल्पः=अल्पसंख्यः अच् यस्मिँस्तदल्पाच्, तदेव अल्पाच्तरम्। सूत्रार्थ-'द्वन्द्व में अल्प अच् वाला पद का पूर्वप्रयोग हो'। शिवश्च केशवश्च शिवकेशवौ।

प्रश्नभाष्य—**किमयमिति**। आचार्य सूत्र में तरप्प्रत्यय का निर्देश कर रहे हैं। क्या यह **तन्त्रम्**=द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ सूत्र से विहित प्रकर्षार्थक तरप् प्रत्यय है, अथ वा निपातन के द्वारा स्वार्थ में तर प्रत्यय किया गया है? यदि सूत्र से विहित प्रकर्षार्थक तरप् प्रत्यय है तो जहाँ दो पदों का द्वन्द्व हो रहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है वहाँ 'प्लक्षन्यग्रोधौ' में ही अल्पाच् का पूर्वनिपात प्राप्त होगा। परन्तु जहाँ बहुतपदों का समास हो रहा है 'शङ्खदुन्दुभिवीणानाम्' में अल्पाच् का पूर्वप्रयोगनियम नही हो सकेगा। दो के मध्य में किसी एक का प्रकर्ष बताने के लिए ही तरप् प्रत्यय का प्रयोग होता है; परन्तु जब बहुतों के मध्य में किसी एक का प्रकर्ष बताना होगा तब तरप् प्रत्यय से यह अर्थ अकथनीय होगा। 'शङ्खदुन्दुभिवीणानाम्' में 'अल्पाच्तरम्' की अप्रवृत्ति होने से दुन्दुभिशब्द के पूर्वनिपात की आपत्ति होगी। परन्तु यदि तर को स्वार्थ में मानेंगे तो उपर्युक्त उदाहरणों में दोष नहीं होने पर भी 'मृदङ्गशङ्खतूणवाः' तथा 'धनपतिरामकेशवानाम्' इन द्वन्द्वस्थलों में क्रमशः अल्पाच् पद शङ्ख तथा राम का पूर्वप्रयोग प्राप्त होने पर 'मृदङ्गशङ्खतूणवाः' इत्यादि की असिद्धि होगी।

यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावदतन्त्रम्। ननु चोक्तम्- 'द्वयोर्नियमो बहुष्वनियम' इति। तत्र 'शङ्खदुन्दुभिवीणाना'मिति न सिध्यति। दुन्दुभिशब्दस्याऽपि पूर्वनिपातः प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। यदेतदल्पाच्तरमिति तदल्पाजिति वक्ष्यामि। अथ वा पुरस्त्व- तन्त्रम्। ननु चोक्तं-'मृदङ्गशङ्खतूणवाः पृथङ् नदन्ति संसदि' 'प्रासादे धनपतिरामकेशवाना'मित्येतन्न सिध्यती'ति * अतन्त्रे तरनिर्देशे शङ्खतूणवयोर्मृदङ्गेन समासः * **अतन्त्रे तरनिर्देशे शङ्खतूणवयोर्मृदङ्गेन सह समासः करिष्यते। शङ्खश्च तूणवश्च शङ्खतूणवौ। मृदङ्गश्च शङ्खतूणवौ च मृदङ्गशङ्खतूणवाः। रामश्च केशवश्च रामकेशवौ। धनपतिश्च रामकेशवौ च धनपतिरामकेशवाः, तेषां धनपतिराम- केशवानामिति।**

समाधानभाष्य—**यथेच्छसीति**। आप जैसा चाहते हैं वैसा ही सूत्र रखिये। आप सूत्र में तन्त्रनिर्देश मानिये। इस पक्ष में 'शङ्खदुन्दुभिवीणानाम्' इन बहुत पदों के द्वन्द्व में 'अल्पाच्तरम्' की अप्रवृत्ति होने से दुन्दुभि शब्द का भी पूर्वप्रयोग की आपत्ति दी थी; वह नहीं रहेगी। इसके लिए हम प्रकृतसूत्र के स्थान पर मात्र 'अल्पाच्' इतना ही सूत्र रखेंगे। इससे अल्प अच् पदों का ही पूर्वप्रयोग नियम होने से उक्त में दुन्दुभिशब्द को पूर्वप्रयोग की आपत्ति नहीं होगी। अथ वा जो दूसरा अतन्त्रपक्ष है उसके अनुसार निपातन के द्वारा स्वार्थ में 'तर' ऐसा निर्देश मानिये। इस पक्ष में 'मृदङ्गशङ्खतूणवाः' तथा 'धनपतिरामकेशवानाम्' में क्रमशः शङ्ख तथा राम पद के पूर्वप्रयोग की आपत्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि 'शङ्खतूणवौ' ऐसा द्वन्द्व करके बाद में मृदङ्गशब्द ही अल्पाच्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। एवं 'रामकेशवौ' इस द्वन्द्व के साथ धनपतिशब्द का द्वन्द्व करेंगे। इस तरह अल्पाच् होने से धनपतिशब्द का ही पूर्वनिपात होगा। यहाँ 'शङ्खतूणवौ' में अल्पाच् शङ्ख तथा 'रामकेशवौ' में अल्पाच् राम पद का पूर्वप्रयोग है।

अथ यत्र बहूनां निपातप्रसङ्गः किं तत्रैकस्य नियमो भवेत्याहो स्विदविशेषेण? * अनेकप्राप्तावेकस्य नियमोऽनियमः शेषेषु * **अनेकस्य प्राप्तावेकस्य नियमो भवति, शेषेष्वनियमः। पटुमृदुशुक्लाः। पटुशुक्लमृदव इति** * ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्येण समानाक्षराणाम् * **ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्येण समानाक्षराणां पूर्वनिपातो वक्तव्यः। शिशिरवसन्तावुदगायनस्थौ। कृत्तिकारोहिण्यः** * अभ्यर्हितम् * **अभ्यर्हितं च पूर्वं निपततीति वक्तव्यम्। मातापितरौ। श्रद्धामेधे** * लघ्वक्षरम् * **लघ्वक्षरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम्। कुशकाशम्। शरचापम्।**

प्रश्नभाष्य—**अथ यत्रेति**। जहाँ बहुत अल्पाच् पद हैं वहाँ सभी का एक साथ पूर्वनिपात प्राप्त होने पर मात्र एक का ही पूर्वनिपात होगा, अथ वा **अविशेषेण**= सामान्यरूप से सभी का बारी-बारी से पूर्वनिपात होगा? यदि जातिपदार्थपक्ष का आश्रयण करेंगे तो लक्षण की आवृत्ति नहीं होने से मात्र एक ही का पूर्वनिपात नियम होगा, परन्तु जब व्यक्तिपक्ष का आश्रयण करेंगे तब लक्षण की प्रवृत्ति पुनःपुनः होने से सभी का पूर्वप्रयोग का नियम होना चाहिये, ऐसा मान कर प्रश्न है। लक्ष्यदर्शनवश जातिपक्ष का आश्रयण कर इस का उत्तर देना चाहिये। मात्र एक का नियमपक्ष में दोष देते हैं-**अनेकप्राप्ताविति**। अनेक अल्पाच् पदों के मध्य में किसी एक का पूर्वप्रयोगनियम होने पर शेष का पूर्वप्रयोगनियम नहीं हो सकेगा। जैसे 'पटुमृदुशुक्लाः' इत्यादि सभी प्रयोग इष्ट है। मृदु तथा शुक्ल पद का द्वन्द्व कर मृदु के पूर्वप्रयोग होने पर 'मृदुशुक्लौ' तथा शुक्ल पद के पूर्वप्रयोग होने पर 'शुक्लमृदू' पद है। इसके बाद इन दोनों के साथ पटु पद का प्रयोग है। यदि एक को ही पूर्वप्रयोग का नियम करेंगे तो 'मृदुशुक्लौ' ऐसा मृदु पद का पूर्वप्रयोग होने पर शुक्ल पद का पूर्वप्रयोग नहीं हो सकेगा, यह आक्षेप है। इसका उत्तरपक्ष 'बहुतों का पूर्वप्रयोग प्राप्त होने पर विकल्प से सभी का पूर्वप्रयोग होना चाहिये'। **ऋतुनक्षत्राणामिति**। **समानाक्षर**=समानसंख्या अच् वाला ऋतुवाची तथा नक्षत्रवाची पदों का द्वन्द्व आनुपूर्वी लोकप्रसिद्ध है। इससे 'शिशिरवसन्तौ **उदगायनस्थौ**=उत्तरायणस्थौ' यही प्रयोग होगा, 'वसन्तशिशिरौ' नही। वार्तिक-**अभ्यर्हितमिति**। द्वन्द्व में **अभ्यर्हित**= पूज्य का पूर्वप्रयोग होना चाहिये। जैसे 'मातापितरौ'। गर्भधारण आदि के द्वारा पिता की अपेक्षा माता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभ्यर्हिता है। एवं 'श्रद्धामेधे' में श्रद्धा होने पर ही अर्थक्रियाकारिणी मेधा उत्पन्न होती है; अतः मेधा की अपेक्षा श्रद्धा का अभ्यर्हितत्व है। वार्तिक-**लघ्वक्षरमिति**। द्वन्द्व में लघ्वक्षर का पूर्वप्रयोग करना चाहिये। जैसे 'कुशकाशम्, शरचापम्' में काश और चाप पद गुरु अक्षर वाला है कुश और शर पद लघु अक्षर वाला है; अतः उसका पूर्वप्रयोग है। स्वरसहित व्यञ्जन को अक्षर कहा जाता है; यह 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च; वा.५.२.५१ से स्पष्ट है।

अपर आह-सर्वत एवाऽभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम्। लघ्वक्षरादपीति। श्रद्धातपसी दीक्षातपसी * वर्णानामानुपूर्व्येण * **वर्णानाञ्चाऽनुपूर्व्येण पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम्। ब्राह्मण-क्षत्रियविट्शूद्राः** * भ्रातुश्च ज्यायसः * **भ्रातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम्। युधिष्ठिरार्जुनौ** * सङ्ख्याया अल्पीयसः * **सङ्ख्याया अल्पीयसः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम्। एकादश द्वादश** * धर्मादिषूभयम् * **धर्मादिषूभयं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम्। धमार्थौ, अर्थधर्मौ। कामार्थौ, अर्थकामौ। गुणवृद्धी, वृद्धिगुणौ। आद्यन्तौ, अन्तादी।** {अल्पाच्तरम्}।

अपर आहेति—पूर्वप्रतिषेध के द्वारा 'अभ्यर्हितं च' से 'लघ्वक्षरम्' का बाध कहना चाहिये। 'मातापितरौ' में 'अभ्यर्हितं च' चरितार्थ है तथा 'कुशकाशम्' में 'लघ्वक्षरम्' चरितार्थ है। 'श्रद्धातपसी, दीक्षातपसी' में दोनों की प्रवृत्ति होने पर अभ्यर्हित से लघ्वक्षर का बाध होता है। यहाँ तपस् पद लघ्वक्षर है; अतः उसका पूर्वनिपात प्राप्त था। वार्तिक-**वर्णानामिति**। वर्णवाचक ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का क्रमशः ब्राह्मण से आरम्भ कर पूर्वप्रयोग कहना चाहिये। जैसे 'ब्राह्मण-क्षत्रियविट्शुद्राः'। वार्तिक-**भ्रातुश्चेति**। कनिष्ठ तथा **ज्यायस्**=ज्येष्ठ इन दोनों भाइयों का एक साथ द्वन्द्व करने पर ज्यायस् का पूर्वप्रयोग कहना चाहिये। जैसे 'युधिष्ठिरार्जुनौ'। वार्तिक-**संख्याया इति**। बडी संख्या और छोटी संख्या का द्वन्द्व करने पर **अल्पीयसः**=छोटी संख्या का पूर्वप्रयोग करना चाहिये। जैसे 'एक च दश च एकादश, द्वौ च दश च द्वादश'। वार्तिक-**धर्मादिष्विति**। धर्म आदि गणपठितों के मध्य में दोनों का विकल्प से पूर्वप्रयोग कहना चाहिये। जैसे 'धर्मार्थौ, अर्थधर्मौ' इत्यादि। {अल्पाच्-}।

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २.२.३५

* बहुव्रीहौ सर्वनामसङ्ख्ययोरुपसंख्यानम् * **बहुव्रीहौ सर्वनाम-सङ्ख्ययोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। विश्वदेवः। विश्वयशाः। द्विपुत्रः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विभार्यः। अथ यत्र संख्यासर्वनाम्नोरेव बहुव्रीहिः कस्य तत्र पूर्वनिपातेन भवितव्यम्? परत्वात् संख्यायाः,-द्व्यन्याय, त्र्यन्याय * वा प्रियस्य * **वा प्रियस्य पूर्वनिपतो भवतीति वक्तव्यम्। प्रियगुडः गुडप्रियः** * सप्तम्याः पूर्वनिपाते गड्वादिभ्यः परवचनम् * **सप्तम्याः पूर्वनिपाते गड्वादिभ्यः परा सप्तमी भवतीति वक्तव्यम्। गडुकण्ठः गडुशिरः।** {सप्तमी वि}।

'उपसर्जनं पूर्वम्' २.२.३० से 'पूर्वम्' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'बहुव्रीहिसमास में विशेषण तथा सप्तम्यन्त पद का पूर्वप्रयोग हो'। जैसे सप्तम्यन्त-कण्ठेकालः। विशेषण-चित्रगुः।

वार्तिक—**बहुव्रीहाविति**। बहुव्रीहि में सर्वनामसंज्ञ तथा संख्यावाची का पूर्वप्रयोग कहना चाहिये। जैसे सर्वनामसंज्ञ-विश्वो देवो यस्य स विश्वदेवः। विश्वं यशो यस्य स विश्वयशाः। यहाँ विश्वपद सर्वनामसंज्ञ है; अतः उसका पूर्वप्रयोग हुआ। संख्यावाची यथा-द्वौ पुत्रौ यस्य स द्विपुत्रः। द्वे भार्ये यस्य स द्विभार्यः।

प्रश्नभाष्य—**अथ यत्रेति**। जहाँ संख्यावाची और सर्वनाम इन दोनों का बहुव्रीहि होगा वहाँ किसका पूर्वनिपात होगा?

उत्तरभाष्य—**परत्वादिति**। 'सर्वनामसंख्ययोः' ऐसा वार्तिककार का निर्देश है। इसमें संख्यापद का परनिर्देश होने से परविप्रतिषेध के द्वारा संख्या से सर्वनाम के पूर्वप्रयोग का बाध होगा। जैसे 'द्वौ अन्यौ तस्मै द्व्यन्याय, त्रयोऽन्ये यस्मै तस्मै त्र्यन्याय'। वार्तिक-**वा प्रियस्येति**। बहुव्रीहि में प्रिय पद का विकल्प से पूर्वप्रयोग कहना चाहिये। जैसे 'गुडः प्रियो यस्य स प्रियगुडः-गुडप्रियः' यह दोनों रूप होगा। वार्तिक-**सप्तम्या इति**। बहुव्रीहि में सप्तमी का पूर्वप्रयोग-प्रकरण में गडु आदि गणपठितंशब्दों से पर में सप्तम्यन्त का प्रयोग कहना चाहिये। जैसे-'गडुः कण्ठे यस्य स गडुकण्ठः। गडुः शिरसि यस्य स गडुशिराः'। {सप्तमी-}।

निष्ठा २.२.३६

* निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् * **निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा भवतीति वक्तव्यम्। शार्ङ्गजग्धी। पलाण्डुभक्षिती। मासजाता। संवत्सरजाता। सुखजाता। दुःखजाता** * न वोत्तरपदस्याऽन्तोऽदात्तवचनं ज्ञापकं परभावस्य * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'उत्तरपदस्याऽन्तोऽदात्तवचनं ज्ञापकं परभावस्य'। यदयं जातिकालसुखादिभ्यः परस्या निष्ठाया उत्तर-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदस्याऽन्तोऽदात्तत्वं शास्ति तज्ज्ञायत्याचार्यः-'पराऽत्र निष्ठा भवती'ति *प्रतिषेधे तु पूर्वनिपातप्रसङ्गस्तस्माद् राजदन्तादिषु पाठः* **प्रतिषेधे तु पूर्वनिपातः प्राप्नोति-'अकृतमित्रप्रतिपन्ना' इति, तस्माद् राजदन्तादिषु पाठः कर्तव्यः** *न वा प्रतिषेधवचनं ज्ञापकं परभावस्य* **न वा कर्तव्यः। अत्रापि प्रतिषेधवचनं ज्ञापकं-'परा निष्ठा भवती'ति।**

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २.२.३५ से 'बहुव्रीहौ' 'उपसर्जनं पूर्वम्' २.२.३० से 'पूर्वम्' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'बहुव्रीहि में निष्ठासंज्ञ प्रत्ययान्त का पूर्वनिपात हो'। कृतः कृत्यो येन स कृतकृत्यः। 'क्तक्तवतू निष्ठा' १.१.२६ से क्त और क्तवतु की निष्ठासंज्ञा करेंगे।

वार्तिक—**निष्ठाया इति**। बहुव्रीहि में जाति, काल एवं सुखादि से पर में निष्ठान्त का परप्रयोग कहना चाहिये। जातिपूर्व का उदाहरण देते हैं-**सारङ्गेति**। **सारङ्गः**=हरिणो **जग्धः**=भक्षितो यया सा सारङ्गजग्धी, 'अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा' ४.१.५३ से ङीष् प्रत्यय है। इसी तरह 'पलाण्डुर्भक्षितो यया सा पलाण्डुभक्षिती' में भी समझना चाहिये। कालपूर्व का उदाहरण देते हैं-**मासजाता इति**। मासो जातो यस्याः सा मासजाता। संवत्सरो जातो यस्याः सा संवत्सरजाता। सुखादिपूर्व का उदाहरण देते हैं-**सुखजातेति**। सुखं जातं यस्याः सा सुखजाता इत्यादि। भाष्यकार प्रकृतवार्तिक का खण्डन करते हैं-**न वेति**। 'जातिकालसुखादिभ्यो-ऽनाच्छादनात् क्तः' ६.२.१७० के द्वारा जाति, काल और सुखादि से पर निष्ठान्त का प्रयोग होता है। वार्तिक-**विप्रतिषेधे त्विति**। 'अकृतमितप्रतिपन्नाः' में कृत आदि का अन्तोदात्तत्वप्रतिषेध एवम् अन्तोदात्तविधान से निष्ठान्त का परनिपात भी ज्ञापित है। भाष्यकार इसका भी खण्डन करते हैं-**न वा प्रतिषेधेति**। उत्तरपद को अन्तोदात्तत्व प्राप्त होने पर निषेध किया जा रहा है। यदि निष्ठान्त का परप्रयोग होगा तभी प्रतिषेध चरितार्थ होगा, अन्यथा नहीं; अतः निष्ठा का प्रतिषेधविषय में परप्रयोग ही करना चाहिये।

प्रहरणार्थेभ्यश्च **प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम्। अस्युद्यतः मुसलोद्यतः। असिपाणिः दण्डपाणिः** *द्वन्द्वे घ्यजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन* **द्वन्द्वे घीत्यस्मादजाद्यदन्तमित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। 'द्वन्द्वे घी'त्यस्याऽवकाशः-पटुगुप्तौ। 'अजाद्य-दन्त'मित्यस्याऽवकाशः-उष्ट्रखरौ। इहोभयं प्राप्नोति-इन्द्रग्नी। 'अजाद्यदन्त'मित्येद् भवति विप्रतिषेधेन** *उभाभ्यामल्पाच्तरम्* **उभा-भ्यामल्पाच्तरमित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। 'द्वन्द्वे घी'त्यस्याऽवकाशः-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पटुगुप्तौ। 'अल्पाच्तर'मित्यस्याऽवकाशः-वाग्दृषदौ। इहोभयं प्राप्नोति-वागग्नी। 'अल्पाच्तर'मित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। 'अजाद्यदन्त'-मित्यस्याऽवकाशः-उष्ट्रखरौ। 'अल्पाच्तर'मित्यस्याऽवकाशः-स एव। इहोभयं प्राप्नोति-वागिन्द्रौ। 'अल्पाच्तर'मित्येतद् भवति विप्रति-षेधेन। {निष्ठा}।

वार्तिक—**प्रहरणार्थेति**। प्रहरणार्थ से पर में निष्ठान्त तथा सप्तम्यन्त का उदाहरण देते हैं-**अस्युद्यत इति**। 'असिरुद्यतो येन सः, मुसल उद्यतो येन सः'। सप्तम्यन्त का उदाहरण देते हैं-**असिपाणिरिति**। 'असिः पाणौ यस्य सः, दण्डः पाणौ यस्य सः'। विप्रतिषेधवादी-**द्वन्द्वे घीति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ से 'द्वन्द्वे घि' २.२.३२ का बाध कहना चाहिये। 'पटुश्च गुप्तश्च पटुगुप्तौ' में 'द्वन्द्वे घि' २.२.३२ चरितार्थ है। 'उष्ट्रश्च खरश्च उष्ट्रखरौ' में 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ चरितार्थ है। 'इन्द्राग्नी' इस द्वन्द्वस्थल में उक्त दोनों सूत्रों की सहप्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ की प्रवृत्ति होती है। विप्रतिषेधवादी-**उभाभ्यामिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'अल्पाच्तरम्' २.२.३४ के द्वारा **उभाभ्याम्**='द्वन्द्वे घि' २.२.३२ तथा 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ इन दोनों का बाध कहना चाहिये। 'पटुगुप्तौ' में क्रमशः 'द्वन्द्वे घि' २.२.३२ तथा 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ चरितार्थ है। 'वाग्दृषदौ' में 'अल्पाच्तरम्' २.२.३४ चरितार्थ है। 'वागग्नी' में 'द्वन्द्वे घि' २.२.३२ तथा 'अल्पाच्तरम्' इन दोनों की सहप्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'अल्पाच्तरम्' २.२.३४ से 'द्वन्द्वे घि' २.२.३२ का बाध हो जाता है। 'उष्ट्रखरौ' में 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ चरितार्थ है तथा 'वाग्दृषदौ' में 'अल्पाच्तरम्' २.२.३४ चरितार्थ है। 'वागिन्द्रौ' में दोनों की सहप्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'अल्पाच्तरम्' २.२.३४ से 'अजाद्यदन्तम्' २.२.३३ का बाध होता है। {निष्ठा}।

कडाराः कर्मधारये २.२.३८

*** कडारादयः * कडारादय इति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-गडुलशाण्डिल्यः शाण्डिल्यगडुलः। खण्डवात्स्यः। वात्स्यखण्डः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। बहुवचननिर्देशात् कडारादय इति विज्ञास्यते।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'कडारादिगणपठितशब्दों का कर्मधारय में विकल्प से पूर्वप्रयोग हो'। कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः।

वार्तिककार—**कडारादय इति**। 'कडाराः कर्मधारये' सूत्र के स्थान पर 'कडारादयः कर्मधारये' ऐसा सूत्रपाठ करना चाहिये था। इससे कर्मधारय में कडारशब्द का विकल्प से पूर्वप्रयोग होगा तथा उसके गण में पठित शाण्डिल्य आदि शब्दों का भी पूर्वप्रयोग होगा।

आक्षेपभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'कडाराः' के स्थान पर 'कडारादयः' ऐसा पाठ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। 'कडारादयः' ऐसा निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य 'कडारः' ऐसा एकवचननिर्देश नहीं करके 'कडाराः' ऐसा बहुवचननिर्देश कर रहे हैं; उससे 'कडारादयः' इस गणपाठ का ज्ञापन हो जायेगा। {कडाराः-}।

श्रीमद्‌भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय द्वितीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

द्वितीय पाद भी पूर्ण हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ तृतीये पादे प्रथममाह्निकम् ❁

अनभिहिते २.३.१

अनभिहित इत्युच्यते, किमिदनभिहितं नाम? 'उक्तं निर्दिष्टमभिहित'मित्यनर्थान्तरम्। यावद् ब्रूयादनुक्ते, 'अनिर्दिष्टे' इति, तावदनभिहिते इति * अनभिहितवचनमनर्थकमन्यत्रापि विहितस्याऽभावादभिहिते * अनभिहितवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'अन्यत्रापि विहितस्याऽभावादभिहिते'। अन्यत्राप्यभिहिते विहितं न भवति। क्वाऽन्यत्र? चित्रगुः शबलगुः-बहुव्रीहिणोक्तत्वान्मत्वर्थस्य मत्वर्थीयो न भवति। गर्गाः, वत्साः, बिदाः, उर्वाः,-यञञ्भ्यामुक्तत्वादपत्यार्थस्य न्याय्योत्पत्तिर्न भवति। सप्तपर्णोऽष्टापदमिति,-समासेनोक्तत्वाद्वीप्सायां द्विर्वचनं न भवति।

यह अधिकारसूत्र है। पादसमाप्तिपर्यन्त इसका अधिकार है। प्रत्याख्यानवादी आचार्य अनभिहितशब्दार्थ का ज्ञान के लिए आरम्भवादी से प्रश्न करते हैं-**किमिदमिति**। स्वरूप तथा अर्थ के प्रसिद्ध होने पर भी अभिहितशब्द के अनेकार्थक होने से सिद्धान्ती द्वारा स्वीकृत अर्थ का उसी के मुख से वाचन करा कर सूत्र का प्रत्याख्यान के लिए पूर्वपक्ष है। अभिपूर्वक 'धा' धातु का बन्धन, उच्चारण तथा प्रतिपादन अर्थ है। 'अश्वाभिधानीमाधत्ते' में बन्धन अर्थ में, 'अभिहितः श्लोकः' में उच्चारण अर्थ में, तथा 'अभिहितोऽर्थः' में प्रतिपादन अर्थ में धा धातु है। अभिपूर्वक 'हि' धा.पा.१२५८ धातु भी गति और वृद्धि अर्थ में शक्त है। आगे कहा जाने वाला कर्म आदि अर्थों का बन्धन, उच्चारण, गति तथा वृद्धि यह चार अर्थ असम्भव है; अतः प्रकृत में प्रतिपादनवाचक अभिहितशब्द का आश्रयण होगा, फिर उसका कोई प्रयोजन नहीं होने से सूत्र व्यर्थ है, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं-'अनभिहित ऐसा कह रहे हैं, अनभिहित क्या है'? पूर्वोक्त अभिप्राय से कहते हैं-**उक्तमिति**। **उक्त**=प्रतिपादित, **निर्दिष्ट**=उच्चरित तथा **अभिहित** यह तीनों पर्यायशब्द हैं। आचार्य 'अनुक्ते' अथ वा 'अनिर्दिष्टे' ऐसा कहते, उसी अर्थ में 'अनभिहिते' ऐसा कह रहे हैं। यहाँ भाष्य में 'यावत्' और 'तावत्' यह दोनों निपातन अभिन्न अर्थ के वाचक हैं। भाष्यकार प्रकृतसूत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का खण्डन करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**अनभिहितवचनमिति**। अर्थबोध के लिए ही लोक में शब्दप्रयोग किया जाता है। वह अर्थ यदि अन्य शब्द से वाच्य होता है तब उसी को कहने के लिए अन्य शब्द का प्रयोग नहीं होता है। यदि नेत्रसंकेत से भी कोई अर्थ उक्त हो जाये तो उसी अर्थ को कहने के लिए पुनः शब्दप्रयोग नहीं होता है। फिर किसी से कर्म आदि के वाच्य होने पर पुनः उसी अर्थ को बताने के लिए अन्यशब्दप्रयोग का वारण लौकिकन्याय से ही हो जायेगा, फिर उसी के लिए जो प्रकृतसूत्र का आरम्भ किया वह व्यर्थ है। अन्यत्र भी किसी से अभिहित होने पर उसी अर्थ का वाचक अन्य शब्द का प्रयोग नही होता है। जैसे 'चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, शबला गावो यस्य स शबलगुः' में बहुव्रीहि से मत्वर्थ उक्त होने से पुनः मत्वर्थ का प्रयोग नहीं होता है। 'गर्गाः, वत्साः' में यञ् के द्वारा तथा 'बिदाः, उर्वाः' में अञ् के द्वारा अपत्य अर्थ उक्त होने पर **न्याय्य**=उत्सर्गतः अपत्यार्थक अन्य शब्द का प्रयोग नहीं होता है। यहाँ 'यञञोश्च' २.४.६४ से यञ् और अञ् का लुक् है। वीप्साविषय गम्य होने पर द्विर्वचन होता है। 'सप्तपर्णः' में 'सप्त-सप्त पर्णानि अस्य' ऐसा विग्रह है तथा 'अष्टापदम्' में 'अष्टौ-अष्टौ पदानि अस्य' ऐसा विग्रह है। यहाँ समास से वीप्सा उक्त है, पुनः वीप्सा में द्वित्व नही होता है। वैसे प्रकृत में भी अभिहित होने से कर्म आदि में द्वितीया आदि की प्राप्ति नहीं होगी; अतः इसी के लिए किया गया 'अनभिहिते' सूत्र का आरम्भ व्यर्थ है।

यत्तावदुच्यते-'चित्रगुः शबलगुरिति-बहुव्रीहिणोक्तत्वान् मत्वर्थस्य मत्वर्थीयो न भवती'ति। अस्तिसामानाधिकरण्ये मतुब्विधीयते, न चात्राऽस्तिना सामानाधिकरण्यम्। यदप्युच्यते-'गर्गाः, वत्साः, बिदाः, उर्वाः,-यञञ्भ्यामुक्तत्वादपत्यार्थस्य न्याय्योत्पत्तिर्न भवती'ति। 'समर्थानां प्रथमाद्वे'ति वर्तते, न चैतत् समर्थानां प्रथमम्। किं तर्हि? द्वितीयमर्थमुपसङ्क्रान्तम्। यदप्युच्यते-'सप्तपर्णोऽष्टापद-मिति,-समासेनोक्तत्वाद्वीप्साया द्विर्वचनं न भवती'ति। यदत्र वीप्सा-युक्तं नाऽदः प्रयुज्यते। किं पुनस्तत्? पर्वणि-पर्वणि सप्त पर्णा-न्यस्य। पङ्क्तौपङ्क्तावष्टौ पदानीति।

आरम्भवादी आचार्य दृष्टान्तों में अन्यथासिद्धि बताने के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**यत्तावदिति**। अनारम्भवादी ने 'चित्रगुः, शबलगुः' में बहुव्रीहि से उक्त होने के कारण मत्वर्थीय प्रत्यय का अप्रयोग बताया था, वह यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लागू नही होता है। 'अस्ति'पद के साथ सामानाधिकरण्य होने पर ही मत्वर्थीय का प्रयोग होता है। जैसे 'गावः सन्ति यस्य स गोमान्, धनमस्ति यस्य स धनी'। यहा 'अस्ति' पद के साथ सामानाधिकरण्य होने पर ही मत्वर्थीय का प्रयोग है। परन्तु 'चित्रगुः, शवलगुः' में समास एवं वाक्य यह दोनों ही अन्यपदार्थ में उपसङ्क्रान्त हैं तथा उसी में 'अस्ति'रूप अर्थ का भी अन्तर्भाव है, अतः 'अस्ति' के साथ सामानाधिकरण्य नहीं होने से मत्वर्थीय प्राप्त नहीं है। परन्तु जब अन्यपदार्थ के साथ तद्वत्ताप्रतिपादन की इच्छा होती है, तब बहुव्रीहि से ही मतुप् होता है। जैसे 'चित्रगुमान्'। **यदप्युच्यत इति**। 'गर्गाः, वत्साः' में यञ् के द्वारा तथा 'विदाः, उर्वाः' में अञ् के द्वारा अपत्य अर्थ उक्त होने पर पुनः अन्य अपत्यार्थक शब्द का अप्रयोग के लिए जो उदाहरण दिया था, वह भी ठीक नही है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ के अधिकार में 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४.१.१०५ तथा 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ सूत्र पढा है; अतः अपत्यवानूवाची षष्ठ्यन्त से प्रत्यय होना चाहिये, अपत्यवाची से नहीं। 'यञञोश्च' २.४.६४ के द्वारा यञ् और अञ् का लुक् करने पर गर्ग आदि प्रकृति ही अपत्य अर्थ का वाचक है; अतः यहाँ अण् नहीं होता है। एवं जो 'सप्तपर्णः' इत्यादि उदाहरण में समास से उक्त होने से वीप्सा का अप्रयोग दिखाया था, वह भी उचित नहीं है। यहाँ जो वीप्सायुक्त 'सप्तपर्ण' पद है उसका प्रयोग नहीं है; अपि तु 'पर्वणि-पर्वणि सप्त पर्णानि अस्य' 'पङ्क्तौ-पङ्क्तौ अष्टौ पदानि अस्य' इस अर्थ में 'सप्तपर्ण' तथा 'अष्टापदम्' का प्रयोग होने से समास के द्वारा वीप्सा उक्त नहीं है। यहाँ पर्व अर्थ की वीप्सा है, सप्त अर्थ की नही। यहाँ समास में पर्वशब्द का प्रयोग नहीं है।

श्नम्बहुजकक्षु तर्हि। श्नम्-भिनत्ति च्छिनत्ति। श्नमोक्तत्वात् कर्तृत्वस्य कर्तरि शब्न भवति। बहुच्-बहुकृतं बहुभिन्नमिति। बहुचोक्तत्वादीषदसमाप्तेः कल्पबादयो न भवन्ति। अकच्-उच्चकैः नीचकैरिति। अकचोक्तत्वात् कुत्सादीनां कादयो न भवन्ति। ननु च श्नम्बहुजकचोऽपवादास्तेऽपवादत्वाद् बाधका भविष्यन्ति * श्नम्बहुजकक्षु नानादेशत्वादुत्सर्गाऽप्रतिषेधः * समानदेशैरपवादैरुत्सर्गाणां बाधनं भवति। नानादेशत्वान्न प्राप्नोति।

प्रत्याख्यानवादी—**श्नम्बहुजकक्ष्विति**। 'भिनत्ति' 'छिनत्ति' में 'रुधादिभ्यः श्नम्' ३.१.७८ से विहित श्नम्विकरण के द्वारा कर्ता उक्त है; अतः श्नम् से उक्त होने से पुनः कर्त्रर्थक शप्विकरण का प्रयोग नही होता है। 'बहुकृतम्, बहुभिन्नम्' में 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु' ५.३.६८ के द्वारा विहित बहुच् प्रत्यय के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा ईषद्-असमाप्ति अर्थ उक्त है; अतः पुनः उसी अर्थ के लिए अन्य प्रत्यय कल्पप् आदि का प्रयोग नहीं होता है। 'उच्चकैः, नीचकैः' में 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' ५.३.७१ के द्वारा विहित अकच् प्रत्यय से कुत्सित आदि अर्थ उक्त है; अतः उसी में 'क' प्रत्यय का विधान के लिए 'कुत्सिते' ५.३.७४ सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है। 'भाव, कर्म एवं कर्ता विकरणार्थ हैं' ऐसा मान कर श्नम् से आपत्ति दी है। वस्तुतः कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर रहते विकरणविधान होने से पाणिनीयव्याकरण में श्नम् के द्वारा प्रदत्त आपत्ति ठहरती नही है। आरम्भवादी आचार्य इसे भी अन्यथासिद्ध मान कर कहते हैं-**ननु चेति**। शप् का अपवाद श्नम्, कल्पप् आदि का अपवाद बहुच् तथा 'क' आदि प्रत्यय का अपवाद कल्पप् प्रत्यय है; अतः श्नम् आदि के प्रवृत्त होने पर श्नम् आदि के द्वारा शप् आदि का बाध हो जायेगा। प्रत्याख्यानवादी- **श्नम्बहुजकक्ष्विति**। समानदेश में ही अपवाद से उत्सर्गों का बाध होता है। श्नम् मित् है; अतः 'मिदचोऽन्त्यात्' १.१.४७ के द्वारा अन्त्य अच् से पर में अन्त का अवयव होगा; जब कि शप् प्रकृति और प्रत्यय के मध्य में होता है। बहुच्प्रत्यय प्रकृति से पूर्व होता है तथा कल्पप् आदि प्रकृति से पर होते हैं, अतः इनका भी भिन्नदेश है। अकच् प्रत्यय टि से पूर्व प्रकृति के मध्य में पतित होता है; जब कि 'क' प्रत्यय प्रकृति से पर में होता है। इस तरह श्नम् आदि तथा शप् आदि भिन्न विषय हैं; फिर आप शप् आदि को उत्सर्ग तथा श्नम् आदि को अपवाद कैसे बता रहे हैं? बाध का कारण विरोध होता है, विशेषविधान नहीं, यह वार्तिककार का दर्शन है; जब कि भाष्यकार विरोध नहीं होने पर भी विशेषविधानमात्र से सामान्यविधान का बाध मानते हैं। लोक में दधिदान का बाध नहीं होने पर भी विशेषविहित तक्रदान से दधिदान का बाध हो जाता है, इसे भाष्यकार ने स्थल-स्थल पर तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा स्पष्ट किया है। यहाँ श्नम् आदि दृष्टान्त का आरम्भ कर उक्तत्व की हेतुता स्थापित की है।

किं पुनरिहाऽकर्तव्योऽनभिहिताऽधिकारः क्रियते, आहो स्विदन्यत्र कर्तव्यो न क्रियते? इहाऽकर्तव्यः क्रियते। एष एव हि न्याय्यः पक्षो यदभिहिते विहितं न स्यात् * अनभिहितस्तु विभक्त्यर्थस्तस्मादनभिहितवचनम् * **अनभिहितस्तु विभक्त्यर्थः। कः पुनर्विभक्त्यर्थः? एकत्वादयो विभक्त्यर्थाः। तेष्वनभिहितेषु कर्मादयोऽभिहिता विभक्तीनामुत्पत्तौ निमित्तत्वाय मा भूवन्निति। 'तस्मादनभिहितवचनम्'। तस्मादनभिहिताऽधिकारः क्रियते। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्-'एकत्वादयो विभक्त्यर्था' इति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब आरम्भवादी आचार्य- अन्यपक्ष का आश्रयण करने के लिए प्रश्न करते हैं—**किं पुनरिति**। क्या प्रकृतप्रदेश में जो अनभिहिताधिकार नहीं करना चाहिये था, उसका अधिकार करते हैं, अथ वा 'अपूपौ द्वौ' इस प्रयोग में 'औ'प्रत्यय के द्वारा द्वित्व उक्त होने पर भी द्विशब्द का प्रयोग देखा जाता है। इस तरह श्नम् आदि के द्वारा उक्त होने पर शप् आदि की निवृत्ति के लिए करणीय अनभिहिताधिकार यहाँ कर रहे हैं?, यह भाष्य का आशय है। प्रत्याख्यानवादी-**इहाऽकर्तव्य इति**। 'अपूपौ द्वौ' इत्यादि में द्वित्व के गतार्थ होने पर भी द्विशब्द का प्रयोग देखा जाता है। परन्तु अन्य गतार्थ का प्रयोगाभाव निष्प्रयोजन होने से ही सिद्ध है; अतः यहाँ जिस अनभिहिताधिकार का आरम्भ नहीं करना चाहिये था उसका आरम्भ करते हैं। उचित पक्ष यही है कि किसी शब्द से जो अर्थ उक्त है उसी अर्थ में दूसरे शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अब आरम्भवादी आचार्य एकत्व आदि को विभक्त्यर्थ मान कर सूत्र का समर्थन करते हैं-**अनभिहितस्त्विति**। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ इत्यादि का 'बहुषु बहुवचनम्' १.४.२१ इत्यादि के साथ एकवाक्यता होती है। इस पक्ष में जब एकत्व आदि विशेषण होंगे तथा कर्म आदि विशेष्य होंगे; तब अर्थ होगा-'एक का जो कर्म, उसमें द्वितीया-एकवचन हो'। इस पक्ष में कर्म द्वितीयार्थ होगा। जब कृत् आदि के द्वारा कर्म उक्त होगा तब गतार्थ होने से द्वितीया की प्राप्ति नहीं होगी; अतः अनभिहिताधिकार का कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु जब कर्म आदि को विशेषण तथा एकत्व आदि को विशेष्य मानेंगे तो 'कर्म का वाचक जो एकत्व आदि, उसमें द्वितीया हो' ऐसा अर्थ होगा। इस पक्ष में एकत्व आदि विभक्त्यर्थ होंगे। वे एकत्व आदि विभक्त्यर्थ कृत् आदि के द्वारा अभिहित भी होंगे, एवं कर्म आदि में अनभिहित होंगे; अतः कर्मगतसंख्या का अभिधान के लिए द्वितीया आदि की प्राप्ति होने पर उसका निवारण के लिए अनभिहिताधिकार करना चाहिये। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ इत्यादि में कर्म आदि श्रुत हैं; अतः 'कर्म आदि को ही विभक्त्यर्थ होना चाहिये' ऐसा नाम कर प्रश्न करते हैं-**कः पुनरिति**। विभक्त्यर्थ क्या है? उत्तरपक्षी-**एकत्वादय इति**। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ इत्यादि सूत्रों में जो 'कर्मणि' इत्यादि सप्तमीनिर्देश है, वह एकत्व आदि की अपेक्षा से है; अतः 'कर्म में जो एकत्व आदि, उसमें द्वितीया हो', अभिधेयप्रतिपादन के लिए नहीं'। एकत्व आदि विभक्त्यर्थ के अनुक्त होने पर भी कर्म आदि उक्त होंगे, वे विभक्ति की उत्पत्ति में निमित्त न हों, इसके लिए अनभिहिताधिकार है। कर्म आदि आश्रित एकत्व आदि को विभक्त्यर्थ मानने पर परम्परा से कर्म आदि निमित्तभाव हैं, इस अभिप्राय से 'निमित्त-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वाय मा भूवन्' यह भाष्य है। एकत्व आदि को निमित्त का अर्थ अवश्य मानना चाहिये।

*** अभिहिते हि प्रथमाऽभावः * यो हि मन्यते-'कर्मादयो विभक्त्यर्थास्तेष्वभिहितेषु सामर्थ्यान् मे विभक्तीनामुत्पत्तिर्न भविष्यती'ति प्रथमा तस्य न प्राप्नोति। क्व? वृक्षः प्लक्षः। किं कारणम्? प्रातिपदिकेनोक्तः प्रातिपदिकार्थ इति। न क्वचित् प्रातिपदिकेनाऽनुक्तः प्रातिपदिकार्थः, उच्यते च प्रथमा, सा वचनाद् भविष्यति। तवैव तु खल्वेष दोषः-यस्य ते एकत्वादयो विभक्त्यर्थाः, 'अभिहिते प्रथमाऽभाव' इति प्रथमा ते न प्राप्नोति। क्व? पचत्योदनं देवदत्त इति। किं कारणम्? तिङोक्ता एकत्वादय इति। अनभिहिताऽधिकारं त्वं च करोषि, परिगणनं च।**

आरम्भवादी—**अभिहिते हीति**। यदि वक्ष्यमाण कर्मत्व आदि को विभक्ति का अर्थ मानेंगे तो प्रथमाविभक्ति का अर्थ प्रातिपदिकार्थ भी होगा। जब प्रातिपदिक से प्रातिपदिकार्थ उक्त है, तब फिर 'वृक्षः, प्लक्षः' इत्यादि में 'उक्तार्थानामप्रयोगः'न्याय से प्रथमा नहीं हो सकेगी। परन्तु जब एकत्व आदि को विभक्ति का अर्थ मानेंगे तब उसका वाचक विभक्ति 'वृक्षः, प्लक्षः' में हो जायेगी। प्रत्याख्यानवादी-**न क्वचिदिति**। प्रातिपदिक से ही प्रातिपदिकार्थसंख्या उक्त है; परन्तु आचार्य 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ इत्यादि सूत्र का आरम्भ करते हैं; अतः उक्त होने पर भी सूत्रारम्भसामर्थ्य से प्रथमाविभक्ति हो जायेगी। सूत्रारम्भवादी के मत में दोष दे रहे हैं-**तवैव त्विति**। जो तुम सूत्रारम्भवादी एकत्व आदि को विभक्त्यर्थ मान रहे हो, तुम जो कहते हो कि एकत्व आदि को प्रातिपदिकार्थ मानने पर प्रातिपदिक से उक्त होने पर 'उक्तार्थानामप्रयोगः'न्याय से प्रथमा नहीं हो सकेगी; परन्तु एकत्व आदि को विभक्त्यर्थ मान लेने पर प्रथमा हो जाती है, यह तुम्हारा पक्ष उचित नहीं है। यदि तुम यह उपर्युक्त पक्ष मानते हो तो तुम्हारे अनुसार 'पचत्योदनं देवदत्तः' में भी देवदत्तपदोत्तर प्रथमा नहीं होनी चाहिये। यहाँ पच्धातूत्तर तिङ् के द्वारा कर्तृनिष्ठ एकत्व उक्त है; अतः अभिहित होने से तुम्हारे अनुसार देवदत्तपदोत्तर प्रथमा-एकवचन नहीं होना चाहिये था। तुम आरम्भवादी अनभिहिताधिकार भी कर रहे हो, तथा 'अभिधानं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः' यह परिगणन भी कर रहे हो। 'पचत्योदनं देवदत्तः' में तिङ् के द्वारा एकत्व उक्त है; अतः तुम्हारे अनुसार प्रथमा नहीं होनी चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न क्वचित् तिङैकत्वादीनामनभिधानम्, उच्यते च प्रथमा। सा वचनाद् भविष्यति। ननु चेहाऽनभिधानं-वृक्षः प्लक्ष इति। अत्राप्यभिधानमस्ति। कथम्? वक्ष्यत्येतत्'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ती'ति। वृक्षः प्लक्षः। 'अस्ती'ति गम्यते। तवैव तु खल्वेष दोषो यस्य ते कर्मादयो विभक्त्यर्था अभिहिते प्रथमाऽभाव इति,-प्रथमा ते प्राप्नोति। क्व? 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीय'मिति। कटशब्दादुत्पद्यमानया द्वितीययाऽभिहितं कर्मेति कृत्वा भीष्मादिभ्यो द्वितीया न प्राप्नोति। का तर्हि प्राप्नोति? प्रथमा। तद्यथा-'कृतः कटो भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीय' इति करोतेरुत्पद्यमानेन क्तेनाऽभिहितं कर्मेति कृत्वा भीष्मादिभ्यो द्वितीया न भवति। का तर्हि? प्रथमा भवति। नैष दोषः। न हि ममाऽनभिहिताऽधिकारोऽस्ति, नापि परिगणनम्। सामर्थ्यान् मे विभक्तीनामुत्पत्तिर्भविष्यति। अस्ति च सामर्थ्यम्। किम्? कर्मविशेषो वक्तव्यः।

आरम्भवादी—न क्वचिदिति। सर्वत्र सुबन्त प्रथमान्त पदों का प्रयोग क्रिया की अपेक्षा से ही होता है। 'वृक्षः, प्लक्षः' ऐसा कहने से सर्वत्र अस्तिर्भवन्तीपरः= लट्परक अस् धा.पा.१०६५ धातु का प्रथमपुरुष अप्रयुज्यमान होने पर भी रहता है। जैसे 'वृक्षः, प्लक्षः' ऐसा कहने से 'अस्ति' ऐसा सत्ताक्रिया का बोध होगा। यहाँ भी तिङ् के द्वारा एकत्व अर्थ उक्त है; फिर भी चुँकि आचार्य प्रातिपदिकार्थ २.३.४६ सूत्र का आरम्भ करते हैं, अतः वचनसामर्थ्य से यहाँ प्रथमा हो जायेगी। इस तरह आरम्भवादी स्वपक्ष में दोष का परिहार कर परपक्ष में दोष का उद्भावन करता हैं-तवैवेति। परन्तु तुम अनारम्भवादी कर्म आदि को विभक्ति का अर्थ मान रहे हो, तुम्हारे ही मत में अन्यत्र 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' में भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया नहीं हो सकेगी। वह इस तरह कि भीष्म आदि विशेषणविशिष्ट कट ही 'करोति'क्रिया का कर्म है, वह कर्मत्व कटशब्द से पर में उत्पन्न होने वाली द्वितीया विभक्ति से उक्त हो गया, उक्त होने से 'कृतः कटो भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीयः' की तरह प्रथमाविभक्ति ही होगी। यहाँ कृ धातूत्तर क्त के द्वारा कटनिष्ठ कर्म के उक्त होने पर जैसे भीष्म आदि पदों के अनन्तर प्रथमा है, वैसे 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' में भी भीष्म आदि पदों के अनन्तर भी तुम्हारे मत में उक्त होने से प्रथमा की आपत्ति होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्याख्यानवादी आचार्य स्वमत में प्राप्त दोष का मार्जन करते हैं-**न हि ममेति**। मेरे मत में अनभिहिताधिकार भी नहीं है, एवं 'उक्तं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः' ऐसा परिगणन भी नहीं है; अतः मेरे मत में सामर्थ्यवश विभक्ति की उत्पत्ति होगी। 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' में कर्मविशेष होने से सामर्थ्य है। 'करोति'क्रिया के साथ जो भी सम्बद्ध होने का इष्टतम है वह सभी कर्म है तथा सभी से द्वितीया उत्पन्न होगी। 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' में कट द्रव्य तथा भीष्म आदि गुण यह दोनों कर्म हैं; अतः कटमात्र से ही द्वितीया नहीं होगी; अपि तु भीष्म आदि गुणवाची से भी द्वितीया होगी। यहाँ 'करोति'क्रिया में सभी की पृथक्-पृथक् कर्मता है; अतः सभी से द्वितीया होगी तथा बाद में उनका विशेषणविशेष्यभाव निश्चित होगा।

अथ वा कटोऽपि कर्म, भीष्मादयोऽपि, तत्र 'कर्मणी'त्येव सिद्धम्। अथवा कट एव कर्म, तत्सामानाधिकरण्याद् भीष्मादिभ्यो द्वितीया भविष्यति। अस्ति खल्वपि विशेषः-'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीय'मिति च, 'कृतः कटो भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीय' इति च करोतेरुत्पद्यमानः क्तोऽनवयवेन सर्वं कर्माभिधत्ते, कटशब्दात् पुनरुत्पद्यमानया द्वितीयया यत्कटस्थं कर्म तच्छक्यभिधातुं, न हि कर्मविशेषः। तवैव तु खल्वेष दोषो यस्य ते एकत्वादयो विभक्त्यर्थाः, 'अभिहिते प्रथमाऽभाव' इति प्रथमा ते न प्राप्नोति। क्व? एको द्वौ बहव इति। किं कारणम्? प्रातिपदिकेनोक्ता एकत्वादय इति। कर्मादिष्वपि वै विभक्त्यर्थेष्ववश्यमेकत्वादयो निमित्तत्वेनोपादेयाः-कर्मण एकत्वे, कर्मणो द्वित्वे, कर्मणो बहुत्वे इति। न चैकत्वादीनामेकत्वादयः सन्ति। अथ सन्ति, ममाऽपि सन्ति। तेष्वनभिहितेषु प्रथमा भविष्यति।

यद्यपि गुणद्रव्य का ही 'करोति'क्रिया के साथ सम्बन्ध है, फिर भी 'कतुरीप्सिततमं कर्म' १.४.४९ सूत्र में तमप्निर्देश के द्वारा प्रकर्षरूप अर्थ आश्रित होने से क्रियान्तर में द्रव्य का ही उपयोग है, अतः ईप्सिततम होने से द्रव्य की ही कर्मसंज्ञा होगी, गुण की नहीं, ऐसा मान कर कहते हैं-**अथ वेति**। अथ वा कट ही कर्म है, भीष्म आदि नहीं; फिर भी भीष्म आदि विशेषणों को विशेष्यवाचकपद से होने वाली विभक्ति के तुल्य विभक्ति ही होनी चाहिये। 'परश्च' ३.१.२ इस नियम के द्वारा केवल भीष्म आदि प्रातिपदिकों की प्रयोगार्हता नहीं है। जैसे राजा का मित्र यदि निर्धन भी है तो राजा के धन से धनवान् हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है वैसे विशेषणवाचकपद भी विशेष्यवाचकपद के समानविभक्तिक हो जाते हैं। क्त प्रत्यय के द्वारा द्वितीया का वैधर्म्य दिखाते हैं-**अस्ति खल्विति**। 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' इत्यादि तथा 'कृतः कटो भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीयः' इस वाक्यस्थ कृत शब्द में कृ धातु से उत्पन्न क्त प्रत्यय से कटगत कर्म उक्त है; अतः सभी से प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा ही होती है। जब कि कट पद से पर में विहित द्वितीया से कटगत कर्म ही उक्त है, भीष्म आदि गुणगत कर्मविशेष नहीं; अतः भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया होती है। इस तरह प्रत्याख्यानवादी स्वपक्ष में दोष का परिहार कर परपक्ष में दोष देता है-**तवैव त्विति**। एकत्व आदि को विभक्त्यर्थ मानने वाले तुझ आरम्भवादी के मत में 'एकः, द्वौ, बहवः' में विभक्ति प्राप्त नहीं होगी। तुम्हारे मत में अनभिहित एकत्व आदि का बोध कराने के लिए ही 'सु' आदि विभक्तियाँ आयेंगी। परन्तु एक, द्वि तथा बहु पद से एकत्व, द्वित्व तथा बहत्व उक्त है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः'न्याय से एक आदि पदों के अन्तर सु आदि प्रत्यय नहीं हो सकेंगे। अब आरम्भवादी आचार्य प्रत्याख्यानवादी से अपनी तुल्यता दिखाते हैं-**कर्मादिष्वपीति**। कर्म आदि को विभक्त्यर्थ मानने वाले को भी 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ तथा 'बहुषु बहुवचनम्' १.४.२१ इत्यादि की एकवाक्यता करनी होगी। परन्तु उसका गुणप्रधानभाव विपरीत होगा। उसके मत में 'प्रातिपदिकार्थगत एकत्वादिविशिष्ट कर्म में द्वितीया हो' इत्यादि वाक्यार्थ होगा। यदि यहाँ यह कहा जाये कि एकत्व आदि को विशेषण तथा कर्म आदि को विशेष्य माना जाये, फिर किस कर्म से विशेषणता का प्रतिपादन होगा, तो यह कोई दोष नहीं है; वह इस तरह कि 'प्रातिपदिक का अर्थ एकत्व होने पर प्रातिपदिकार्थविशिष्ट कर्म का वाचक द्वितीया हो' इस तरह का अर्थ यहाँ विवक्षित है। इससे प्रातिपदिकार्थ से भिन्न होने से अन्य विशेषणीभूत एकत्व आदि का अभाव होने से 'एकः' इत्यादि में आप प्रत्याख्यानवादी के मत में भी प्रथमा नहीं हो सकेगी। उपर्युक्त परिस्थितियों के होने पर भी यदि आप प्रत्याख्यान-वादी के मत में 'एकः' इत्यादि में प्रथमा सिद्ध हो सकती है तो मुझ आरम्भवादी के मत में भी विभक्ति के द्वारा एकत्व आदि के अनुक्त होने से एकादिपदोत्तर प्रथमा सिद्ध हो जायेगी। जैसे 'शतम्' इस पद में प्रवृत्तिनिमित्त शतसंख्या अन्य है तथा विभक्तिवाच्य प्रातिपदिकगत एकत्वसंख्या अन्य है, वैसे 'एकः' पद में भी प्रवृत्तिनिमित्त तथा विभक्तिवाच्य दो एकत्व है।

अथ वोभयवचना ह्येते द्रव्यं चाहुर्गुणं च। यत्स्थोऽसौ गुणस्त-स्याऽनुक्ता एकत्वादय इति कृत्वा प्रथमा भविष्यति। अथ वा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सङ्ख्या नामेयं परप्रधाना, सङ्ख्येयमनया विशेष्यम्। यदि चाऽत्र प्रथमा न स्यात् संख्येयमविशेषितं स्यात्। अथ वा वक्ष्यति तत्र वचनग्रहणस्य प्रयोजनम्-'उक्तेष्वप्येकत्वादिषु प्रथमा यथा स्या'दिति। अथ वा समयाद् भविष्यति। यदि सामयिकी, न नियोगतः। अन्याः कस्मान्न भवन्ति? कर्मादीनामभावात्। षष्ठी तर्हि प्राप्नोति। शेषलक्षणा षष्ठी, अशेषत्वान्न भविष्यति। एवमपि व्यतिकरः प्राप्नोति-एकस्मिन्नपि द्विवचनबहुवचने प्राप्नुतो, द्वयोरप्येकवचनबहुवचने प्राप्नुतो, बहुष्वप्येकवचनद्विवचने प्राप्नुतः। अर्थतो व्यवस्था भविष्यति।

इस तरह शब्दशक्ति का आश्रयण कर एकत्वादि भेद के द्वारा समाधान करके अब अभेदपक्ष में भी समाधान करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा एक आदि शब्द उभयवाचक हैं। यह जिस द्रव्य में अवस्थित होंगे, गुणी द्रव्य के साथ अभेद होने से द्रव्यवाचक भी होंगे, तथा पृथक् गृहीत होने से गुणवाचक भी होंगे। प्रातिपदिक के द्वारा गुणोपसर्जन द्रव्य वाच्य होगा तथा द्रव्योपसर्जन गुण अर्थ विभक्ति से वाच्य होगा। जैसे गुणोपसर्जनद्रव्यवाची शुक्ल पद से द्रव्योपसर्जन उसी गुण में भावार्थक ष्यञ् प्रत्यय होकर 'शौक्ल्यम्' रूप होता है। जिस द्रव्य में एकत्वादि गुण स्थित होगा, उस द्रव्य का एकत्व आदि प्रधान रूप से अनुक्त होगा; अतः एक पद के अनन्तर प्रथमा सिद्ध हो जायेगी। अन्य प्रकार से भी यहाँ प्रथमा सिद्ध करते हैं-**अथ वेति**। 'परं प्रधानं यस्याः सा परप्रधाना' संख्या सर्वत्र विशेषण होती है तथा संख्येय सर्वत्र विशेष्य होता है; अतः यदि एक आदि पदों के अनन्तर प्रथमा नही करेंगे तो संख्येय द्रव्य अविशेषित होगा। केवल प्रातिपदिक का प्रयोग नहीं होता है। प्रथमा के अभाव में एक आदि शब्दों का उच्चारण भी नही कर सकेंगे; अतः पदसाधुत्वार्थ के लिए ही सही, आप को एक आदि पदों के अनन्तर प्रथमा लानी पडेगी। इस तरह युक्ति के द्वारा प्रथमा की उत्पत्ति बता कर अब वचन से भी एकादि पदों के अनन्तर प्रथमा की सिद्धि बताते हैं-**अथ वा वक्ष्यतीति**। आचार्य प्रातिपदिकार्थ २.३.४६ सूत्र पर वचनग्रहण का प्रयोजन बतायेंगे-'एकत्व आदि के उक्त होने पर भी एक आदि के अनन्तर प्रथमा हो सके, इसके लिए प्रातिपदिकार्थ २.३.४६ सूत्र में वचनग्रहण है; अतः वचनग्रहणसामर्थ्य से एक आदि पदों के अनन्तर प्रथमा हो जायेगी। यहाँ नियम से भी प्रथमा की सिद्धि बताते हैं-**अथ वेति**। अथ वा आचार्य ने 'परश्च' ३.१.२ सूत्र का निर्देश किया है। वह नियमार्थक है-'प्रत्ययपरा ही प्रकृति का प्रयोग करना चाहिये,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केवल नहीं'। इस **समयात्**=नियम से भी एक आदि पदों के अनन्तर प्रथमा हो जायेगी। अन्य आचार्य-**यदि सामयिकीति**। यदि 'परश्च' ३.१.२ इस नियम से एक आदि पदों के अनन्तर प्रथमा कहते हैं तो वह किसी सूत्र से विहित नहीं होगी, अपि तु नियमतः प्राप्त होगी; फिर एक आदि पदों के अनन्तर पदसाधुत्व के लिए द्वितीया आदि विभक्तियाँ क्यों नही होती हैं?, वहाँ 'एकम्, एकेन, एकस्मै' आदि भी होना चाहिये। आरम्भवादी-**कर्मादीनामिति**। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ इत्यादि सूत्र नियमार्थक है-'कर्माधिक्य में द्वितीया हो' इत्यादि। एक आदि पदों में कर्माधिक्य नहीं है; अतः उससे द्वितीया आदि विभक्तियाँ नहीं होंगी। परन्तु जहाँ कर्म आदि अधिक होंगे वहाँ 'एकं पश्य' इत्यादि में द्वितीया आदि विभक्तियाँ अवश्य होंगी। अन्य आचार्य-**षष्ठी तर्हीति**। एक आदि पदों के अनन्तर पदसाधुत्व के लिए षष्ठी की आपत्ति होगी। कर्म आदि का अभाव शेष है, वह यहाँ है; अतः षष्ठी की आपत्ति होगी। आरम्भवादी-**शेषलक्षणेति**। शेषलक्षणा ही षष्ठी होती है। यहाँ अशेष है; अतः षष्ठी नही हो सकेगी। प्रथमाविधि में प्रातिपदिकार्थ का उपयोग है तथा वह एक आदि पदों में है; अतः एक आदि पदों के अनन्तर प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा की प्राप्ति होने से यहाँ अशेष है, शेष नहीं। अन्य आचार्य-**एवमपीति**। यदि यहाँ प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा की प्राप्ति बता रहे हैं तो एक पद के अनन्तर द्विवचन और बहुवचन, द्वि पद के अनन्तर एकवचन तथा बहुवचन एवं बहु पद के अनन्तर एकवचन तथा द्विवचन की भी आपत्ति होगी। आरम्भवादी-**अर्थतो व्यवस्थेति**। यहाँ अर्थ के द्वारा व्यवस्था होने से एक पद के अनन्तर एकवचनार्थक सु, द्वि शब्द के अनन्तर द्विवचनार्थ औ तथा बहु पद के अनन्तर बहुवचनार्थक जस् की ही प्राप्ति होने से वचनव्यतिकर का दोष नहीं रहेगा। यहाँ पर एक ही एकत्व है, वह प्रातिपदिक के द्वारा ही उक्त है; अतः अप्राप्त प्रथमा का नियम के द्वारा विधान है। यहाँ जैसे नियम का पालन होता है तथा एकत्वानुगुण का भी पालन होता है; अन्यत्र एकत्वाभिधान होने पर दृष्ट सामर्थ्यवचन होता है वैसे करना चाहिये। इस तरह 'संख्या विभक्त्यर्थः' इस पक्ष में 'अनभिहिते' सूत्र की स्थापना कर दी है।

परिगणनं कर्तव्यम् * तिङ्कृत्तद्धितसमासैः परिसङ्ख्यानम् * **तिङ्कृत्तद्धितसमासैः परिसङ्ख्यानं कर्तव्यम्**। तिङ्-**क्रियते कटः**। तिङ्। कृत्-**कृतः कटः**। कृत्। तद्धित-**औपगवः कापटवः**। तद्धित। समास-**चित्रगुः शबलगुः**। समास * उपसर्गे हि प्रातिपदिकसामानाधिकरण्ये विभक्तिवचनम् * **उपसर्गे हि प्रातिपदिकसामानाधिकरण्ये**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभक्तिर्वक्तव्या। क्व? 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीय'-मिति। कटशब्दादुत्पद्यमानया द्वितीययाऽभिहितं कर्मेति कृत्वा भीष्मादिभ्यो द्वितीया न प्राप्नोति। का तर्हि स्यात्? षष्ठी। शेषलक्षणा षष्ठी, अशेषत्वान्न भविष्यति। अन्या अपि न प्राप्नुवन्ति। किं कारणम्? कर्मादीनामभावात्। समयश्च कृतः-'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, न च केवलः प्रत्ययः' इति, न चान्या उत्पद्यमाना एतमभिसम्बन्धमुत्सहते वक्तुमिति कृत्वा द्वितीया भविष्यति। अथवा कटोऽपि कर्म, भीष्मादयोऽपि, तत्र 'कर्मणी'त्येव सिद्धम्। अथ वा कट एव कर्म, तत्सामानाधिकरण्याद् भीष्मादिभ्यो द्वितीया भविष्यति। तस्मान्नाऽर्थः परिगणनेन।

भाष्यकार—**परिगणनं कर्तव्यमिति**। किस-किस से उक्त होता है?, इसका परिगणन करना चाहिये। भाष्यकार इसका परिगणन करते हैं-**तिङ्कृत्तद्धितेति**। तिङ्, कृत्, तद्धित और समास के द्वारा उक्त होता है, ऐसा परिगणन करना चाहिये। प्रत्येक का उदाहरण देते हैं-**तिङ्ङिति**। 'क्रियते कटः' में तिङ् के द्वारा कर्म उक्त है। 'कृतः कटः' में कृ धातूत्तर कृत् प्रत्यय के द्वारा कर्म उक्त है; अतः इन दोनों स्थलों में कर्म के उक्त होने से प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा है, द्वितीया नहीं। 'उपगोरपत्यमौपगवः, कापटोरपत्यं कापटवः' में 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से अपत्यार्थक अण्प्रत्यय है। यहाँ तद्धित के द्वारा सम्बन्ध उक्त है; अतः षष्ठी नहीं होती है। एवं 'चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, शबला गावो यस्य स शबलगुः' में समास के द्वारा स्वस्वामिभावसम्बन्ध उक्त है; अतः उसी को कहने के लिए पुनः षष्ठी नहीं होती है। प्रत्याख्यानवादी आचार्य सूत्रारम्भपक्ष में दोष देकर उसका समाधान करते हैं-**उत्सर्गे हीति**। 'अनभिहिते' इस सूत्र का सामान्यरूप से प्रणयन करने पर प्रातिपदिक सामानाधिकरण्य में भी विभक्ति-विधान के लिए वचन का आरम्भ करना चाहिये। जहाँ 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' में कट आदि बहुत सारे समानाधिकरण प्रातिपदिक विवक्षित हैं वहाँ समानयोगक्षेम होने से मात्र कट आदि पदों से उत्पन्न द्वितीया के द्वारा सर्वप्रातिपदिकगत कर्मत्व उक्त होने से भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया प्राप्त नहीं हो रही है, उसका विधान के लिए अतिरिक्त वचन पढना चाहिये। परिगणन का अभाव में प्राप्त दोषों का निवारण के लिए प्रश्न करते हैं-**का तर्हीति**। यदि द्वितीया प्राप्त नही होगी तो उक्त स्थल में कौन विभक्ति प्राप्त होगी? अनारम्भवादी-**षष्ठीति**। उक्त वाक्य में भीष्म आदि पदों के अनन्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ठी प्राप्त होगी। आक्षेपक- **शेषलक्षणेति**। षष्ठी शेषलक्षणा होती है। कर्म आदि का अभाव ही शेष है। प्रातिपदिकार्थ का प्रथमाविधि में उपयोग होने से यहाँ अशेष है; अतः भीष्म आदि पदों के अनन्तर शेषलक्षणा षष्ठी नहीं हो सकेगी। अनारम्भवादी-**अन्या अपि नेति**। चुँकि कट से उत्पन्न द्वितीया से कर्म उक्त है; अतः उसका समानाधिकरण भीष्म आदि पदों से भी कर्म उक्त होने से कर्म आदि का अभाव रहेगा; अतः भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया आदि अन्य विभक्तियाँ भी नहीं हो सकेंगी; अतः भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीयाविधान के लिए वचन का आरम्भ करना चाहिये। आरम्भवादी आचार्य-**समयश्चेति**। 'केवल प्रकृति का प्रयोग नहीं करना चाहिये, एवं केवल प्रत्यय का भी प्रयोग नहीं करना चाहिये' ऐसी प्रतिज्ञा की है। यदि भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया से इतर विभक्ति करेंगे तो सामानाधिकरण्यरूपसम्बन्ध का वाचक नहीं होने सकेगी; अतः सामर्थ्यवश भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया विभक्ति हो जायेगी; इसके लिए अतिरिक्तवचननिर्देश की आवश्यकता नहीं है। अन्य प्रकार से भी इसका समाधान करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा कृ धातु का कट भी कर्म है तथा भीष्म आदि भी कर्म हैं; अतः 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ से ही भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया हो जायेगी। अन्य प्रकार से भी यहाँ द्वितीया की सिद्धि बताते हैं-**अथ वेति**। अथ वा उक्त वाक्य में कट ही कर्म है, उसका समानाधिकरण होने से भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीया हो जायेगी। इस तरह भीष्म आदि पदों के अनन्तर द्वितीयाविधान के लिए 'उत्सर्गे हि प्रातिपदिकसामानाधिकरण्ये विभक्तिवचनम्' इस अतिरिक्त वचन का आरम्भ नहीं करना चाहिये, इसे बताते हैं-**तस्मान्नार्थ इति**।

* द्वयोः क्रिययोः कारकेऽन्यतरेणाऽभिहिते विभक्त्यभावप्रसङ्गः *

द्वयोः क्रिययोः कारकेऽन्यतरेणाऽभिहिते विभक्तिर्न प्राप्नोति। क्व? प्रासादे आस्ते, शयने आस्त इति। किं कारणम्? सदिप्रत्ययेनाऽभिहितमधिकरणमिति कृत्वा सप्तमी न प्राप्नोति * न वाऽन्यतरेणाऽनभिधानम् * **न वैष दोषः। किं कारणम्? 'अन्यतरेणाऽनभिधानात्'। अन्यतरेणाऽत्राऽनभिधानम्। सदिप्रत्ययेनाऽभिधानम्, आसिप्रत्ययेनाऽनभिधानम्। यतोऽनभिधानं तदाश्रया सप्तमी भविष्यति। कुतो नु खल्वेतत्-सत्यभिधाने चाऽनभिधाने चाऽनभिहिताश्रया सप्तमी भविष्यति, न पुनरभिहिताश्रयः प्रतिषेध इति?** * अनभिहिते हि विधानम् * **अनभिहिते हि सप्तमी विधीयते, नाऽभिहिते प्रतिषेधः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि तावदत्रैतच्छक्ये वक्तुं यत्राऽन्या चाऽन्या च क्रिया, यत्र तु खलु सैव क्रिया तत्र कथम्-आसने आस्ते, शयने शेत इति? अत्राप्यन्यत्वमस्ति। कुतः? कालभेदात् सम्बन्धभेदाच्च। एकस्यात्रासेरासिः साधनं, सर्वकालश्च प्रत्ययः। अपरस्य बाह्यं साधनं, वर्तमानकालश्च प्रत्ययः।

'अनभिहिते' इस न्यास में पर्युदास तथा प्रसज्य उभयपक्षों में दोष है; अतः उसका निवारण के लिए उद्भावन करते हैं-**द्वयोः क्रिययोरिति**। यदि 'अनभिहिते' में प्रसज्यप्रतिषेधपक्ष मानेंगे तो ''अभिहिते न स्यात्' ऐसा अर्थ होगा। इससे जहाँ दो क्रियायें हैं वहाँ किसी भी क्रिया से अभिहित होने पर विभक्ति नही होगी। जैसे 'प्रासादे आस्ते' में सद् क्रिया तथा आस क्रिया है। इन दोनों का अधिकरण प्रासाद है। 'प्रासाद्यतेऽस्मिन् प्रासादः' में 'प्रआङ्'पूर्वक सद् धातु से अधिकरण अर्थ में 'करणाधिकरणयोश्च' ३.३.११७ से घञ् प्रत्यय है। यहाँ घञ् के द्वारा अधिकरण उक्त है। दोनों क्रियाओं का अधिकरण एक ही है; अतः सद्धातूत्तर घञ् के द्वारा उक्त होने से पुनः प्रासादपद से सप्तमी नही होनी चाहिये। इसी तरह 'शयने आस्ते' में शीङ् तथा आस यह दो धातु है। 'शीयते यस्मिँस्तच्छयनम्' में 'करणाधिकरणयोश्च' ३.३.११७ के द्वारा अधिकरण अर्थ में शीङ् धातु से ल्युट् प्रत्यय विहित है। यहाँ ल्युट् से अधिकरण उक्त है; अतः शयन पद से अधिकरण अर्थ में सप्तमी नहीं होनी चाहिये। पर्युदास तथा शक्तिसाधनपक्ष मान कर इसका समाधान करते हैं-**न वेति**। जहाँ दो क्रिया है वहाँ अन्यतर से उक्त होने पर अपरक्रियानिरूपितविभक्ति की जो अप्राप्ति बतायी थी, वह ठीक नहीं है। किसी एक से उक्त होने पर भी अन्य से अनुक्त है। जिससे अनुक्त है उसको आश्रय मान कर विभक्ति हो जायेगी। जैसे प्रासाद पद मे सद्धातूत्तर घञ् के द्वारा अथ वा घञन्त साद के द्वारा अधिकरण उक्त होने पर भी आसधातुनिरूपित अधिकरण अनुक्त है; अतः आसधातुनिरूपित अधिकरण में सप्तमी हो जायेगी। इसी तरह ल्युडन्त शयन पद से अधिकरण उक्त होने पर भी आसधातुनिरूपित अधिकरण अनुक्त है; अतः आसधातुनिरूपित अधिकरण में सप्तमी हो जायेगी। प्रसज्यप्रतिषेधवादी-**कुतो नु खल्विति**। 'प्रसादे आस्ते' इत्याद में अन्यतर के अभिहित होने तथा अन्यतर के द्वारा अनभिहित होने पर अनभिहिताश्रया सप्तमी होगी, परन्तु अभिहिताश्रया सप्तमी का प्रतिषेध नहीं होगा, ऐसा क्यों है? पर्युदासपक्ष मान कर समाधान करते हैं-**अनभिहिते हीति**। आचार्य 'अनभिहिते' सूत्र के अधिकार में 'सप्तम्यधिकरणे च' २.३.३६ सूत्र का आरम्भ कर अनभिहित अधिकरण में सप्तमी का विधान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते हैं; अतः अनभिहित तथा अभिहित दोनों होने पर अनभिहितलक्षणा विभक्ति होगी; परन्तु अभिहितलक्षणप्रतिषेध नहीं होगा। अब पर्युदासपक्ष में भी दोष देते हैं-**यद्यपि तावदिति**। 'आसने आस्ते' में एक ही आसनक्रिया है तथा उसका अधिकरण ल्युट् से उक्त है। एवं 'शयने शेते' में एक ही शयनक्रिया है तथा उसका अधिकरण ल्युट् से उक्त है; अतः आसन तथा शयनपदोत्तर अधिकरणार्थक सप्तमी नहीं होनी चाहिये?

उत्तरभाष्य—**अत्राप्यन्यत्वमिति**। 'आसने आस्ते' तथा 'शयने शेते' में कालभेद तथा **साधन**=कारकभेद होने से आसनक्रिया तथा शयनक्रिया भिन्न-भिन्न है, एक नहीं। एक पद से प्राप्त क्रियासाधनसम्बन्ध होने पर ही 'अनभिहिते' सूत्र से विभक्ति का निषेध है, वाक्य में प्राप्त क्रियासाधनसम्बन्ध में नहीं। यहाँ आसिक्रिया का आसिक्रिया साधन है। अर्थात् 'आसनम्' इस पद में जो आसिक्रिया है, उसका आसिक्रिया साधन है, आस धातु से पर में विहित अधिकरणार्थक ल्युट् प्रत्यय किसी कालविशेष में नहीं होने से सर्वकाल है। परन्तु **अपरस्य**= 'आस्ते' इस पद में बाह्य देवदत्त आदि साधन हैं तथा यहाँ 'वर्तमाने लट्' ३. २.१२३ से विहित होने से वर्तमान काल है। इस तरह भिन्न पद द्वारा बोध्य भिन्नक्रिया के होने से 'आसने आस्ते' में सप्तमी हो जायेगी। यहाँ आसिग्रहण से उपलक्षणविधया शीङ् का भी ग्रहण करना चाहिये।

किं पुनर्द्रव्यं साधनमाहो स्विद् गुणः? किं चातः? यदि द्रव्यं साधनं, नैतदन्यद् भवत्यभिहितात्। अथ हि गुणः साधनं, भवत्येतदन्यदभिहितात्। अन्यो हि सदिगुणोऽन्यश्चाऽऽसिगुणः। किं पुनः साधनं न्याय्यम्? गुण इत्याह। कथं ज्ञायते? एवं हि कश्चित् कञ्चित् पृच्छति-'क्व देवदत्त' इति। स तस्मायाचष्टे-'असौ वृक्षे' इति। कतरस्मिन्? यस्तिष्ठतीति। स वृक्षोऽधिकरणं भूत्वाऽन्येन शब्देनाऽभिसम्बध्यमानः कर्ता सम्पद्यते। द्रव्ये पुनः साधने सति यत्कर्म, कर्मैव स्यात्, यत्करणं करणमेव, यदधिकरणमधिकरणमेव।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। यहाँ द्रव्य **साधन**=कारक है अथ वा **गुण**= शक्ति साधन है? यदि द्रव्य साधन है तो वह एक ही होगा, अतः इस पक्ष में पूर्वोक्त समाधान उचित नहीं होगा। परन्तु यदि **गुण**=शक्ति साधन है तो उसके भिन्न होने से किसी के द्वारा अभिहित होने पर भी किसी के द्वारा अनभिहित होगा, अतः जिससे अनभिहित होगा उसको निमित्त मान कर 'आसने आस्ते'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यादि में सप्तमी हो जायेगी। एवं 'प्रासादे आस्ते' में सद्‌निरूपित शक्ति भिन्न है तथा आसनिरूपित शक्ति भिन्न है, अतः सप्तमी सिद्ध हो जाती है, ऐसा मान कर पूर्वपक्ष है। आश्रित होने से यहाँ शक्ति ही गुणपद से विवक्षित है। वह पुनः प्रश्न करता है-**किं पुनरिति**। क्या यहाँ द्रव्य को साधन मानना उचित है?

उत्तरभाष्य—**गुण इत्याहेति**। यहाँ शक्ति ही साधन है, द्रव्य नही। इसे उदाहरण से सिद्ध करते हैं-**एवं हि कश्चिदिति**। किसी ने किसी से प्रश्न किया 'देवदत्त कहाँ है'? उत्तर मिला 'असौ वृक्षे' 'वह वृक्ष पर है'। पुनः प्रश्न हुआ 'कतरस्मिन्'? 'किस वृक्ष पर है'? उत्तर हुआ 'यस्तिष्ठति'। यहाँ दो वार प्रश्न तथा दो वार उत्तर है। प्रथम उत्तर 'असौ वृक्षे' में वृक्ष अधिकरण है, जब कि द्वितीय उत्तर 'यस्तिष्ठति' में वृक्ष कर्ता है। यहाँ एक ही वृक्ष प्रथम उत्तर में अधिकरण होकर द्वितीय उत्तर में कर्ता हो रहा है। यहाँ द्रव्य अभिन्न है, परन्तु **गुण**=शक्ति भिन्न है। जब कि द्रव्य को साधन मानने पर जो कर्म है, वह सर्वदा कर्म ही रहेगा; जो करण है, वह सर्वदा करण ही रहेगा, तथा जो अधिकरण है वह सर्वदा अधिकरण ही रहेगा। इससे द्रव्य को साधन मानने के पक्ष में नानाशक्ति सिद्ध नहीं हो पायेगी। परन्तु गुण को साधन मानने पर नानाशक्ति सिद्ध हो जाती है; अतः गुण को ही साधन मानना चाहिये।

* अनभिहितवचनमनर्थकं प्रथमाविधानस्याऽनवकाशत्वात् * **अनभिहितवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'प्रथमाविधानस्याऽनवकाशत्वात्'। अनवकाशा प्रथमा, सा वचनाद् भविष्यति। सावकाशा प्रथमा। कोऽवकाशः? अकारकम्-वृक्षः प्लक्ष इति।**

अब भाष्यकार सूत्र का खण्डन करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**अनभिहितेति**। 'क्रियते कटः, कृतः कटः' इत्यादि में द्वितीयाआदि का निवारण के लिए अनभिहिताधिकार करते हैं; जब कि यहाँ कर्म के उक्त होने से प्रातिपदिकार्थसम्पन्न दो पदों से प्रथमा तथा कर्म में द्वितीया इन दोनों के प्राप्त होने पर अनवकाश होने से प्रथमा ही होगी। यदि यहाँ उक्त प्रयोंगो में भी द्वितीया आदि विभक्तियाँ होंगी तो प्रथमा निरवकाश ही होगी, अतः अनवकाश होने से प्रथमा के द्वारा द्वितीया आदि का बाध होगा। इस तरह 'अनभिहिते' सूत्र का अधिकार करने से कोई प्रयोजन नही है। आरम्भवादी आचार्य-**सावकाशेति**। 'वृक्षः, प्लक्षः' में द्वितीया आदि की प्राप्ति नहीं है, परन्तु वहाँ प्रथमा है; अतः प्रथमा सावकाश है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनारम्भवादी का प्रश्नभाष्य—**कोऽवकाश इति**। 'वृक्षः, प्लक्षः' यह कारक नहीं है। यहाँ कोई क्रियापद श्रुत नहीं है; अतः उसके योग में 'वृक्षः, प्लक्षः' का **कारकत्व**=क्रियाजनकता नहीं हो सकेगी; फिर आप अकारक होने से यहाँ प्रथमा का कारकत्व कैसे बता रहे हैं?

* अवकाशोऽकारकमिति चेन्नाऽस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ति * **अवकाशोऽकारकमिति चेत्, तन्न। किं कारणम्? 'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ति'। अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति गम्यते। वृक्षः प्लक्षः। अस्तीति गम्यते** * विप्रतिषेधाद्वा प्रथमाऽभावः * **अथ वा द्वितीयादयः क्रियन्तां, प्रथमा वेति, प्रथमा भविष्यति विप्रतिषेधेन। द्वितीयादीनामकावशः-'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीय'मिति। प्रथमाया अवकाशः-अकारकं-वृक्षः प्लक्ष इति। इहोभयं प्राप्नोति-'कृतः कटो भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीय' इति। प्रथमा भविष्यति विप्रतिषेधेन। न सिध्यति। परत्वात् षष्ठी प्राप्नोति। शेषलक्षणा षष्ठी, अशेषत्वान्न भविष्यति।**

आरम्भवादी आचार्य यहाँ प्रथमा का सावकाशत्व सिद्ध करते हैं-**अनवकाशोऽकारकमिति**। ज्ञात वस्तु का प्रतिपादन के लिए शब्दप्रयोग होता है। जिसकी सत्ता होती है उसी का ज्ञान होता है। जहाँ 'वृक्षः, प्लक्षः' में क्रियापद का प्रयोग नहीं है वहाँ सत्ताक्रिया का बोध स्वाभाविक होगा; अतः अस धातु का लट्परक प्रयोग होने से 'वृक्षः, प्लक्षः' में कर्ता में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' २.३.१८ की प्रवृत्ति होने से कर्ता में तृतीया प्राप्त होने पर यहाँ प्रथमा अनवकाश ही है; अतः अनवकाश प्रथमा के द्वारा द्वितीया आदि का बाध हो जाने से 'क्रियते कटः' इत्यादि में द्वितीया आदि की अतिव्याप्ति नहीं होगी। अन्य प्रकार से भी सूत्र का प्रत्याख्यान करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा परविप्रतिषेध के द्वारा प्रथमा से द्वितीया आदि का बाध हो जायेगा। 'कटं करोति भीष्ममुदारं शोभनं दर्शनीयम्' इत्यादि में 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ आदि चरितार्थ है तथा 'वृक्षः, प्लक्षः' में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ चरितार्थ है। अन्यत्र-अन्यत्र लक्ष्य में चरितार्थ उक्त दोनों सूत्रों की एक साथ 'कृतः कटः भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीयः' में प्राप्ति होने पर विप्रतिषेध के द्वारा प्रथमा से द्वितीया आदि का बाध होता हो जाता है। आरम्भवादी आचार्य-**न सिध्यतीति**। 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ की अपेक्षा 'षष्ठी शेषे' २.३.५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर है; अतः क्रियाकारकसम्बन्ध होने से परत्वात् 'कृतः कटः भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीयः' इत्यादि में षष्ठी प्राप्त होगी। प्रत्याख्यानवादी आचार्य-**शेषलक्षणेति**। षष्ठी शेषलक्षणा है। उक्त से अन्य शेष होता है। वह प्रातिपदिकार्थ से भी अन्य होगी। 'कृतः कटः भीष्म उदारः शोभनो दर्शनीयः' इत्यादि में प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा प्राप्त होने से इसे शेष नहीं कहा जा सकता है; अतः यहाँ शेष-लक्षणा षष्ठी नहीं हो सकेगी। इस तरह अनभिहिताधिकार करने का कोई प्रयोजन नहीं है।

* कृत्प्रयोगे तु परं विधानं षष्ठ्यास्तत्प्रतिषेधार्थम् * **कृत्प्रयोगे तु परं षष्ठी प्राप्नोति। तत्प्रतिषेधार्थम् अभिहिताऽधिकारः कर्तव्यः। कर्तव्यः कट इति। स कथं कर्तव्यः? यद्येकत्वादयो विभक्त्यर्थाः। अथ हि कर्मादयो विभक्त्यर्था, नाऽर्थोऽनभिहिताऽधिकारेण।**

आरम्भवादी आचार्य—**कृत्प्रयोगे त्विति**। कृदन्त के योग में 'कर्तव्यः कटः' इत्यादि में परशास्त्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५ के द्वारा 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण-वचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ का बाध होने से षष्ठी की आपत्ति होगी; यहाँ षष्ठी न हो, इसके लिए अनभिहिताधिकार किया गया है।

प्रत्याख्यानवादी आचार्य का प्रश्नभाष्य—**स कथमिति**। अनभिहिताधिकार करने का अन्य पक्ष क्या है, संख्या विभक्त्यर्थ, अथ वा कर्म आदि विभक्त्यर्थ? आरम्भवादी आचार्य-**यद्येकत्वादय इति**। एकत्व आदि संख्या को विभक्ति का अर्थ मानने पर अनभिहिताधिकार अवश्य करना चाहिये। परन्तु यदि विभक्ति का अर्थ कर्म आदि माना जाये तो अनभिहिताधिकार का कोई प्रयोजन नहीं है, इसे मैं इसी सूत्र पर ज्योत्स्ना में विस्तार से बता आया हूँ। {अनभिहिते}।

कर्मणि द्वितीया २.३.२

* समयानिकषाहायोगेषूपसंख्यानम् * **समयानिकषाहायोगेषूपसंख्यानं कर्तव्यम्**। समया-**समया ग्रामम्**। समया। निकषा-**निकसा ग्रामम्**। निकषा। हायोगे-**हा देवदत्तम्। हा यज्ञदत्तम्। अपर आह**-* द्वितीया-विधानेऽभितःपरितःसमयानिकषाऽध्यधिधिग्योगेषूपसंख्यानम् * **द्वितीयाविधाने-ऽभितःपरितःसमयानिकषाऽध्यधिधिग्योगेषूपसंख्यानं कर्तव्यम्। अभितो ग्रामम्**। अभितः। **परितो ग्रामम्**। परितः। **समया ग्रामम्**। समया। **निकषा ग्रामम्**। निकषा। **अध्यधि ग्रामम्**। अध्यधि। **धिग्जाल्मम्। धिग् वृषलम्**। धिग्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अनभिहिते' २.३.१ का अधिकार है। सूत्रार्थ-'अनुक्त कर्म में द्वितीया हो'। हरिं वन्दे। कटं करोति।

वार्तिक—**समयानिकषेति**। समया, निकषा तथा हा पद के योग में भी द्वितीया कहनी चाहिये। जैसे-समया ग्रामम्। ग्राम के समीप' यह अर्थ है। यहाँ सामीप्यसम्बन्ध में षष्ठी प्राप्त होने पर द्वितीयाविधान है। इसी तरह 'निकषा ग्रामम्'=ग्राम के समीप' में भी सामीप्यसम्बन्ध में षष्ठी प्राप्त होने पर द्वितीयाविधान है। हा पद के योग में-'हा देवदत्तम्। हा यज्ञदत्तम्' में द्वितीया है। यहाँ हा पद शोक आदि अर्थों में शक्त है, उसके योग में षष्ठी प्राप्त होने पर द्वितीया-विधान है। अन्य वार्तिक-**द्वितीयेति**। अभितः, परितः, समया, निकषा, अध्यधि एवं धिक्शब्द के योग में द्वितीया कहनी चाहिये। 'पर्यभिभ्यां च' ५.३.९ के द्वारा तसिलन्त अभितः, परितःशब्द क्रमशः उभयतः एवं सर्वतः इन अर्थों में शक्त है। इन दोनों के योग में षष्ठी प्राप्त होने पर द्वितीयाविधान है-'अभितो ग्रामम्। परितो ग्रामम्। समया ग्रामम्। निकषा ग्रामम्। अध्यधि ग्रामम्। यहाँ 'उपर्यधसः सामीप्ये' ८.१.७ से द्विर्वचन है। 'धिग्जाल्मम्' 'धिग् वृषलम्' इत्यादि में निन्दार्थक धिक्शब्द के योग में षष्ठी प्राप्त होने पर द्वितीयाविधि है। हा तात! इत्यादि में अन्तरङ्ग होने से सम्बोधनविभक्ति ही होती है।

अपर आह—

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्राऽपि दृश्यते।।

उभ सर्व इत्येताभ्यां तसन्ताभ्यां योगे द्वितीया वक्तव्या। उभयतो ग्रामम्। सर्वतो ग्रामम्। धिग्योगे-धिग्जाल्मम्। **धिग्वृषलम्। उपर्यादिषु त्रिष्वाम्रेडितान्तेषु द्वितीया वक्तव्या। उपर्युपरि ग्रामम्। अध्यधि ग्रामम्। अधोऽधो ग्रामम्। 'ततोऽन्यत्रापि दृश्यते'। न देवदत्तं प्रतिभाति किञ्चित्। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।** {कर्मणि द्वितीया}।

अन्य वार्तिक—**उभसर्वतसोरिति**। 'उभसर्वयोस्तसौ' ऐसा षष्ठीसमास है। उभयशब्द का अवयव उभशब्द का अनुकरण कर उभशब्द का वार्तिक में निर्देश होने से यहाँ उभयशब्द का ग्रहण होगा। द्विर्वचन तथा टाप्विषय होने से उभशब्द का तसन्तत्व सम्भव नहीं है; अतः भाष्यकार अर्थ करते हैं-उभ और सर्व इन दोनों से तस् प्रत्यय करने पर तसन्त उभयतः, सर्वतः के योग में द्वितीया कहनी चाहिये-'उभयतो ग्रामम्, सर्वतो ग्रामम्'। धिक्पद के योग में द्वितीया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहनी चाहिये-'धिग्जाल्मम्, धिग्वृषलम्'। उपरि आदि तीनों के आम्रेडितान्त होने पर उसके योग में द्वितीया कहनी चाहिये। प्रत्येक का उदाहरण देते हैं-उपर्युपरि ग्रामम् इत्यादि। इस श्लोक में परिगणित प्रातिपदिकों से इतर प्रातिपदिकों के योग में भी द्वितीया होती है, इसे बताते हैं-**ततोऽन्यत्रापीति**। यहाँ दृशिग्रहण प्रयोगानुसरणार्थ है। इसका उदाहरण देते हैं-**न देवदत्तमिति**। यहाँ षष्ठी प्राप्त हो रही थी। यहाँ 'प्रति' यह शब्द क्रियाविशेषक उपसर्ग है, कर्मप्रवचनीय नहीं। किसी को कुछ याद आया तथा किसी को कुछ याद आया, अतः इसके अनेक उदाहरण हैं-बुभुक्षितं न भतिभाति किञ्चिद्' इत्यादि। {कर्मणि-}।

तृतीया च होश्छन्दसि २.३.३

किमर्थमिदमुच्यते? तृतीया यथा स्यात्। अथ द्वितीया सिद्धा? सिद्धा। कथम्? 'कर्मणी'त्येव। तृतीयाऽपि सिद्धा। कथम्? 'सुपां सुपो भवन्ती'त्येव। असत्येतस्मिन्-'सुपां सुपो भवन्ती'ति तृतीयार्थोऽयमारम्भः। यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति। एवं तर्हि तृतीया सिद्धा। कथम्? 'कर्तृकरणयो'रित्येव। अयमग्निहोत्रशब्दोऽस्त्येव ज्योतिषि वर्त्तते। तद्यथा-'अग्निहोत्रं प्रज्वलित'मिति। अस्ति हविषि वर्त्तते। तद्यथा-'अग्निहोत्रं जुहोती'ति। जुहोतिश्चाऽस्त्येव प्रक्षेपणे वर्तते। अस्ति प्रीणात्यर्थे वर्त्तते। तद्यदा तावद्यवागूशब्दात्तृतीया, तदाऽग्निहोत्रशब्दो ज्योतिषि वर्त्तते, जुहोतिश्च प्रीणात्यर्थे। तद्यथा-'यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति'। अग्निं प्रीणाति। यदा यवागूशब्दाद् द्वितीया तदाऽग्निहोत्रशब्दो हविषि वर्तते जुहोतिश्च प्रक्षेपणे। तथा-'यवागूमग्निहोत्रं जुहोति'। यवागूं हविरग्नौ प्रक्षिपति। {तृतीया च}।

यहाँ 'च'पदनिर्देश से 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ से 'कर्मणि' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'वेद में हु दानादानयोः धा.पा.१०८३ धातु के कर्म में तृतीया तथा द्वितीया हो'। जैसे 'यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति। यवागूमग्निहोत्रं जुहोति'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**तृतीया यथेति**। हु धातु के कर्म में तृतीया हो सके, एतदर्थ प्रकृतसूत्र का अरम्भ है। देवता को उद्देश्य कर अग्नि में हविःप्रक्षेप हु धात्वर्थ है, उसमें यवागूपद से द्वितीया प्राप्त होने पर तृतीयाविधान के लिए सूत्रारम्भ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**अथ द्वितीयेति**। क्या यहाँ हु धातु के योग में द्वितीया सिद्ध है; क्या अप्राप्त द्वितीया का चकार से विधान है; अथ वा तृतीया के द्वारा द्वितीया का बाध न हो इसके लिए चकार का निर्देश है?, ऐसा मान कर यह पूर्वपक्ष है।

उत्तरभाष्य—**सिद्धेति**। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ से कर्म में द्वितीया प्राप्त है, उसी से हु धातु के योग में भी द्वितीया हो जायेगी। आक्षेपक-**तृतीयापीति**। आचार्य कात्यायन ने 'सुपां सुपो भवन्ति' ऐसा वार्तिक पढ कर वेद में सुप् को सुप् आदेश कहा है; इससे द्वितीया को तृतीया आदेश होने से 'यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति' में तृतीया हो जायेगी; अतः इसी के लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ नहीं करना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**असत्येतस्मिन्निति**। आचार्य पाणिनि के सूत्रप्रणयनकाल में कात्यायनवार्तिकों का अभाव था, अतः सूत्ररचना की गयी; अब जब सूत्र से लक्ष्यसिद्धि हो जा रही है तब आचार्य कात्यायन को ही वार्तिक नहीं पढना चाहिये। 'यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति' में सूत्र से ही यवागूपदोत्तर तृतीया करनी चाहिये। आक्षेपक-**एवं तर्हीति**। होमकर्म में यवागू करण है; अतः 'कर्तृकरणयो-स्तृतीया' २.३.१८ से करण में तृतीया हो जायेगी, इसी के लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ नही करना चाहिये था। 'अग्निहोत्रं प्रज्चलितम्' ऐसा प्रयोग में 'अग्निर्ज्वलितः' यह अर्थ है। यहाँ अग्निहोत्रशब्द ज्योतिः अर्थ में शक्त है। एवम् 'अग्निहोत्रं जुहोति' इस प्रयोग में अग्निहोत्रशब्द हविः अर्थ में है। हु धातु का प्रक्षेपण अर्थ है। एवम् 'अग्निषु हूयमानेषु' इस तरह के वाक्यों का 'अग्नि के प्रसन्न होने पर' ऐसा अर्थ होगा; हु धातु का 'प्रीणाति' भी अर्थ है। इस तरह जब अग्नि-होत्रशब्द ज्योतिः अर्थ में है तब यवागू पद से करण में तृतीया हो जायेगी। अर्थ होगा-'यवागू के द्वारा अग्नि को प्रसन्न करता है'। जब यवागू पद से द्वितीया होगी तब अग्निहोत्रशब्द हविः अर्थ में तथा हु धातु प्रक्षेपण अर्थ में है। जैसे 'यवागूमग्निहोत्रं जुहोति' इस वाक्य का 'यवागूहविः का अग्नि में प्रक्षेप करता है' यह अर्थ होगा। इस तरह प्रीणात्यर्थक हु धातु के योग में करण में तृतीया सिद्ध होने पर सूत्रारम्भ व्यर्थ है।{तृतीया च}।

अन्तरान्तरेण युक्ते २.३.४

इह कस्मान्न भवति-किं ते बाभ्रवशालङ्कायनानामन्तरेण गतेनेति? 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवे'ति। अथ वा यद्यपि तावदय-मन्तरेणशब्दो दृष्टाऽपचारो निपातश्चाऽनिपातश्च। अयं तु खल्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** अत्यन्तसंयोगे कर्मवल्लाद्यर्थम् * अत्यन्तसंयोगे कालाध्वानौ कर्मवद् भवत इति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'लाद्यर्थम्'। लादिभिरभिधानं यथा स्यात्, लादिभिरभिहिते द्वितीया मा भूत्। आस्यते मासः। शय्यते क्रोशः।**

'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ से 'द्वितीया' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'अत्यन्तसंयोग होने पर कालवाची तथा अध्ववाची से द्वितीया हो'। मासमधीते। क्रोशं कुटिला नदी।

पाणिनि के इस सूत्रन्यास के होने पर 'मासमास्यते देवदत्तेन' में भाव में ही लकार आदि होंगे, कर्म में नहीं। इससे 'आस्यते मासः, आसितो मासः, आसितव्यो मासः, स्वासो मासः' में कर्म में प्रत्यय नही हो सकेगा, जब कि यहाँ कर्म में प्रत्यय इष्ट है; अतः यहाँ कर्म में प्रत्ययविधान के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**अत्यन्तसंयोग इति**। अत्यन्तसंयोग होने पर कालवाची तथा अध्ववाची को कर्मवत् अतिदेश कहना चाहिये। इससे लकार आदि के द्वारा कर्म उक्त होने पर उसमें द्वितीया नहीं होगी। जैसे 'आस्यते मासः, शय्यते क्रोशः'। परन्तु जहाँ कर्म अनुक्त है, वही पर 'मासमास्ते, क्रोशं शेते' में ही द्वितीया होगी।

अथ वत्करणं किमर्थम्? स्वाश्रयमपि यथा स्याद्आस्यते मासम्। शय्यते क्रोशम्। 'अकर्मकाणां भावे लो भवती'ति भावे लो यथा स्यात्। तत्तर्हि वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। प्राकृतमेवैतत् कर्म। यथा कटं करोति, शकटं करोतीति।

प्रश्नभाष्य—**अथ वत्करणमिति**। 'अत्यन्तसंयोगे कर्म लाद्यर्थम्' इतना ही वार्तिक पढिये, आप वत्करण क्यों करते हैं? वार्तिकमतानुयायी-**स्वाश्रयमपीति**। जैसे 'ब्राह्मणवदस्मिन् क्षत्रिये वर्तितव्यम्' इस वाक्य में वत्करण से ब्रह्मणकार्य का क्षत्रिय में अतिदेश होने पर भी स्वाश्रय ब्राह्मणकार्य की निवृत्ति नहीं होती है, वैसे प्रकृत में वत्करण से कर्मकार्य का अतिदेश होता है; परन्तु स्वाश्रयकार्य की निवृत्ति नही होती है, एतदर्थ वत्करण है। इससे 'आस्यते मासम्, शय्यते क्रोशम्' में स्वाश्रय कर्मप्रयुक्त द्वितीया भी होती है, एवं 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' ३.४.६९ से अकर्मक धातुओं से भाव में लकार भी होता है। 'आस्यते मासम्' इत्यादि में भाव में लकार है तथा मासपदोत्तर स्वाश्रय द्वितीया है, यह वत्करण का फल है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'आस्यते मासम्' इत्यादि मे कर्म में लकारविधान के लिए 'अत्यन्तसंयोगे कर्मवल्लाद्यर्थम्' यह वार्तिक पढना चाहिये?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त वार्तिक की आवश्यकता नही है। जैसे 'कटं करोति, शकटं करोति' में 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ के द्वारा कर्म में द्वितीया है, वैसे 'मासमास्ते' इस वाक्य का 'आसनेन मासं व्याप्नोति' अर्थ होने से यहाँ 'वि आङ्'पूर्वक आप्लृ व्याप्तौ १२६१ धातु का **प्राकृतम्**=स्वाभाविक कर्म मास है, अतः यहाँ 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ के द्वारा कर्म में द्वितीया सिद्ध हो जायेगी, इसके लिए 'अत्यन्तसंयोगे कर्मवल्लाद्यर्थम्' यह वार्तिक कहने की आवश्यकता नही है।

एवं मन्यते-यत्र कश्चित् क्रियाकृतो विशेष उपजायते, तन्न्याय्यं कर्मेति। न चेह कश्चित् क्रियाकृतो विशेष उपजायते। नैवं शक्यम्। इह हि दोषः स्यात्-आदित्यं पश्यति, हिमवन्तं श्रृणोति, ग्रामं गच्छतीति।

इस तरह यहाँ कर्मवत् अतिदेश का कोई प्रयोजन नही है; फिर वार्तिककार किस लिए कर्मवत् अतिदेश करते हैं?, इस आशङ्का से पूर्वपक्ष करते हैं-**एवमिति**। यहाँ एकदेशी आचार्य वार्तिककार का आशय स्पष्ट करते हैं-**यत्र कश्चिदिति**। जहाँ कर्म में क्रियाकृत कुछ विशेष होता है वह कर्म ही न्याय्य है। जैसे 'काष्ठं छिनत्ति' में छेदनक्रियाकृत विशेष, 'तण्डुलं पचति' में पाकक्रियाकृत विशेष है; अतः यहाँ काष्ठ तथा तण्डुल कर्म है, उससे द्वितीया हो जाती है। परन्तु '**न चेह**'= 'मासमास्ते' इत्यादि में मास आदि में आसनक्रियाकृत कुछ भी विशेष नहीं है; अतः इसकी कर्मसंज्ञा नही होने पर मास आदि को कर्मसंज्ञाविधानार्थ वार्तिकावतार है।

खण्डनभाष्य—**नैवमिति**। 'जिसमें क्रियाकृतविशेष हो उसी को कर्म कहते हैं' ऐसा कर्म का लक्षण मानने पर 'आदित्यं पश्यति' आदि की कर्मसंज्ञा नही हो सकेगी। आदित्य में दर्शनक्रियाकृत कुछ भी विशेष नही है, एवं हिमवान् में श्रवण-क्रियाकृत कुछ भी विशेष नही है तथा ग्राम में गमनक्रियाकृत कुछ भी विशेष नही है।

तस्मात् प्राकृतमेवैतत् कर्म। यथा-कटं करोति, शकटं करोतीति। यदि तर्हि प्राकृतमेवैतत् कर्म, 'अकर्मकाणां भावे लो भवती'ति भावे लो न प्राप्नोति-आस्यते मासं देवदत्तेनेति? तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'अकर्मकाणा'मित्युच्यते, न च केचित् कालभावादि-भिरकर्मकास्त एवं विज्ञास्यामः-'क्वचिद्ये ऽकर्मका' इति।

परन्तु **प्राकृत**=स्वाभाविक कर्म है; अतः 'कटं करोकति, शकटं करोति' में जैसे स्वाभाविक कर्म है वैसे 'आदित्यं पश्यति' आदि में भी है तथा 'मासम् आसनेन व्याप्नोति' इस अर्थ में शक्त 'मासमास्ते' में भी प्राकृत कर्म ही मान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर वार्तिक को अनावश्यक मानना चाहिये। वार्तिक को आवश्यक बताते हैं- **यदि तर्हीति**। यदि 'मासमास्ते' में प्राकृतकर्म मानेंगे तो 'आस्यते मासं देवदत्तेन' में अकर्मक आस धातु १०२१ धातु से भाव में लट् आदि नही हो सकेंगे। वह तभी होता है जब 'मासमास्ते' इत्यादि में 'कटं करोति' की तरह प्राकृत कर्म ही माना जाये। इसके लिए वार्तिक का आरम्भ आवश्यक हो गया; अतः जो कर्मवद् अतिदेश कहा था, वह कहना चाहिये। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या 'मासमास्ते' इत्यादि में कर्मवद् अतिदेश कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि-कर्ता स णौ' १.४.५२ सूत्र में आचार्य 'अकर्मकाणाम्' ऐसा कहते हैं। योग-विभाग के द्वारा सजातीयापेक्षनियम से ही सिद्ध होने पर उक्त सूत्र में जो अकर्मकग्रहण किया, इससे काल, भाव आदि भिन्न कर्मरहित अर्थ का बोधकों का ही शास्त्र में अकर्मकग्रहण से ग्रहण होंगा; अतः जो काल, भाव आदि के रहित होने से अकर्मक हो, उसका अकर्मकपद से ग्रहण नहीं करके जो द्रव्यकर्म से रहित होकर अकर्मक हो उसका ग्रहण करेंगे।

अथ वा-येन कर्मणा सकर्मकाश्चाऽकर्मकाश्च भवन्ति तेना-ऽकर्मकाणाम्, न चैतेन कर्मणा कश्चिदप्यकर्मकः। अथ वा यत्कर्म भवति, न च भवति, तेनाऽकर्मकाणाम्, न चैतत् कर्म क्वचिदपि न भवति। न तर्हीदानीमिदं सूत्रं वक्तव्यम्? वक्तव्यं च। किं प्रयोजनम्? यत्राऽक्रिययाऽत्यन्तसंयोगस्तदर्थं-क्रोशं कुटिला नदी, क्रोशं रमणीया वनराजिः।

अथ वा जिस कर्म के होने से सकर्मक तथा नहीं होने से अकर्मक होते हैं प्रकृत में उन्हीं का सकर्मकत्व, अकर्मकत्वव्यवहार करेंगे। काल, भाव आदि के द्वारा कोई क्रिया सकर्मक अथ वा अकर्मक नही होती है। द्रव्य कर्म अन्तरङ्ग है तथा काल, भाव आदि कर्म बहिरङ्ग हैं, अतः बहिरङ्ग काल, भाव आदि कर्म के अन्तर्भाव होने से उसकी अपेक्षा सकर्मक, अकर्मक व्यवहार नही हो सकेगा। परन्तु जहाँ अन्तरङ्ग कर्म सन्निहित नहीं है वहाँ काल, भाव आदि निमित्तक सकर्मक व्यवहार होगा तथा कर्म में लकार होकर 'आस्यते मासम्' ऐसा वाक्य भी होगा। अथ वा जो द्रव्य आदि कर्म होते हैं तथा जो काल आदि कर्म नही होते हैं उनको मान कर गत्यादि सूत्र में 'अकर्मकाणाम्' ऐसा कहा है। एवं जो अवश्य कर्म होता है उसको निमित्त मान कर धातु सकर्मक होता है। यहाँ नञ्द्वय के द्वारा प्रकृत्यर्थ में दाढर्यबोधन है। इस तरह यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाष्यकार ने अपनी कल्पना के द्वारा सकर्मक अकर्मक की व्यवस्था दे दी। अब प्रश्न पठता है कि इसी व्यवस्था से सर्वत्र द्वितीया आदि की सिद्धि कर ली जाये, इसके लिए प्रकृतसूत्र नहीं करना चाहिये, इस आशय से प्रश्न करते हैं- **न तर्हीदानीमिति**। तो क्या प्रकृतसूत्र का आरम्भ नहीं करना चाहिये?

समाधानभाष्य—**वक्तव्यमिति**। 'क्रोशं कुटिला नदी, क्रोशं रमणीया वनराजिः' में जहाँ क्रियापद के अभाव में भी अत्यन्तसंयोग है वहाँ द्वितीयाविधान के लिए 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र का आरम्भ करना चाहिये। {कालाध्वनो-}।

अपवर्गे तृतीया २.३.६

* क्रियाऽपवर्गे * **क्रियाऽपवर्ग इति वक्तव्यम्। साधनाऽपवर्गे मा भूद्-मासमधीतोऽनुवाको, न चानेन गृहीत इति। {अपवर्गे}।**

यहाँ पूर्वसूत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' २.३.५ की अनुवृत्ति है। अपवर्ग= फलप्राप्ति। सूत्रार्थ-'फलप्राप्ति द्योत्य होने पर कालवाची तथा अध्ववाची से अत्यन्तसंयोग होने पर तृतीया हो'। 'अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः'।

वार्तिक—**क्रियापवर्ग इति**। क्रियापवर्ग गम्य होने पर ही तृतीया कहनी चाीिये। इससे जहाँ 'मासमधीतोऽनुवाको न चाऽनेन गृहीतः' में साधनापवर्ग है वहाँ तृतीया की अतिव्याप्ति नहीं होगी। अपवर्ग फलप्राप्ति है; वह कभी क्रिया की होती है तथा कभी साधनों की होती है। अतः साधनापवर्ग में तृतीया की निवृत्ति के लिए वार्तिकावतार है। यद्यपि साधनापवर्ग में भी क्रियापवर्ग है, फिर भी विशेषणग्रहणसामर्थ्य से विशेष ही लिया जायेगा-'क्रिया का जो अपवर्ग, अशक्त्यादिनिमित्तसाधनों का अपवर्ग नहीं'। {अपवर्गे-}।

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये २.३.७

* क्रियामध्ये इति च * **क्रियामध्य इति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहाद् भोक्ता, द्व्यहे भोक्ता। 'कारकमध्य' इतीयत्युच्यमाने इहैव स्याद्-इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति, क्रोशे लक्ष्यं विध्यति। यं च विध्यति यतश्च विध्यत्युभयोस्तन्मध्यं भवति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नाऽन्तरेण साधनं क्रियायाः प्रवृत्तिर्भवति। क्रियामध्यं चेत् कारकमध्यमपि भवति। तत्र 'कारकमध्य' इत्येव सिद्धम्। {सप्तमीपञ्चम्यौ}।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ पूर्वसूत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' २.३.५ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'कारकद्वय के मध्य में जो काल और अध्ववाची, उससे पर में सप्तमी एवं पञ्चमी हो'। जैसे कालवाची-'अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे-द्व्यहाद्वा भोक्ता'। यहाँ कर्ता और शक्ति के बीच में द्व्यह यह काल है। अध्ववाची-'इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्'। यहाँ कर्तृशक्ति एवं कर्मशक्ति के मध्य में अध्वा है।

वार्तिक—**क्रियामध्य इति**। क्रिया के मध्य में होने पर भी कालवाची एवम् अध्ववाची से सप्तमी कहनी चाहिये। 'अद्य भुक्त्वा देवदत्तो द्व्यहे-द्व्यहाद्वा भोक्ता'। यहाँ द्रव्य कारक है। वह यहाँ एक ही है; अतः भेदनिबन्ध मध्यव्यवहार नहीं होने से सप्तमी और पञ्चमी अप्राप्त है; अतः क्रियामध्यनिबन्धन सप्तमी और पञ्चमीविधान के लिए वार्तिकावतार है। यदि मात्र कारकद्वयमध्य में ही कालवाची तथा अध्ववाची से सप्तमी और पञ्चमी कहेंगे तो 'इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति, क्रोशे लक्ष्यं विध्यति' में ही पञ्चमी और सप्तमी होगी। यहाँ **यम्**=जिस लक्ष्य का भेदन करता है तथा **यतः**= जिस प्रदेश से भेदन करता है कर्म लक्ष्य और अपादानप्रदेश इन दोनों के भिन्न होने से मध्यव्यवहार होता है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'क्रियामध्ये' इस वार्तिक का आरम्भ करना चाहिये था?

खण्डनभाष्य—**नेति**। 'कारकं शक्तिः' यह पक्ष है। **साधनम्**=शक्ति के अभाव में क्रिया की प्रवृत्ति नहीं होती है। जो क्रिया के मध्य में होगा वह कारक के मध्य में भी होगा; अतः 'कारकमध्ये' इतना कहने से ही 'क्रियामध्ये' इस अर्थ का बोध हो जाने से उक्त स्थल में सप्तमी और पञ्चमी हो जायेगी। {सप्तमीपञ्चम्यौ-}।

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २.३.८

*** कर्मप्रवचनीययुक्ते प्रत्यादिभिश्च लक्षणादिषूपसङ्ख्यानं सप्तमीपञ्चम्योः प्रतिषेधार्थम् * कर्मप्रवचनीययुक्ते प्रत्यादिभिश्च लक्षणादिषूपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्, वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्, वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्। साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति, साधुर्देवदत्तो मातरं परि, साधुर्देवदत्तो मातरमनु। किं प्रयोजनम्? 'सप्तमी-पञ्चम्योः प्रतिषेधार्थम्'। सप्तमीपञ्चम्यौ मा भूतामिति। 'साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तमी'ति सप्तमी, 'पञ्चम्यपाङ्परिभि'रिति पञ्चमी।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्रायमप्यर्थः-'अप्रते'रिति न वक्तव्यं भवति।

सूत्रार्थ—'कर्मप्रवचनीययुक्त से द्वितीया हो'। वृक्षं प्रति।

वार्तिक—**कर्मप्रवचनीययुक्त इति**। यदि सामान्यरूप से 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' ऐसा लक्षण करेंगे तो 'वृक्षं प्रति विद्योतते' में विशेष विहित होने से 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' २.३.१० से पञ्चमी की प्राप्ति होगी। एवं 'साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति' में 'साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः' २.३.४३ से परत्वात् सप्तमी प्राप्त होगी; अतः इसका निषेध के लिए 'अप्रति' ऐसा प्रतिषेध कहना चाहिये, ऐसा मान कर कहते हैं-**प्रत्यादिभिश्चेति**। इस प्रतिषेधवचन से सप्तमी और पञ्चमी का प्रतिषेध हो जाता है। इस वार्तिकनिर्देश से अन्यत्र लाघव भी है, इसे स्पष्ट करते हैं-**अप्रतेरिति**। वार्तिक में 'अप्रतेः' ऐसा निषेधवचन कहने से '-सप्तम्यप्रतेः' में 'अप्रतेः' ऐसा निषेध नही पढना पडता है, यह लाघव भी है।

तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् *उक्तं वा* किमुक्तम्? एकत्र तावदुक्तम्-'अप्रते'रिति। इतरत्रापि-यद्यपि तावदयं परिर्दृष्टापचारो वर्जने चाऽवर्जने च, अयं खल्वपशब्दोऽदृष्टापचारो वर्जनार्थ एव। तस्य कोऽन्यो द्वितीयः सहायो भवितुमर्हति-अन्यदतो वर्जनार्थात्। तद्यथा-अस्य गोर्द्वितीयेनाऽर्थ इति गौरेवाऽऽनीयते, नाऽश्वो न गर्दभः। {कर्मप्रवचनीययु}।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'प्रत्यादिभिश्च लक्षणादिषु' यह वचननिर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। यह वचन नही करना चाहिये। प्रति के योग में सप्तमी का प्रतिषेध 'सप्तम्यप्रतेः' कह दिया है। बाकी बँचा परि। उसके योग में पञ्चमी प्राप्त है। वर्जन तथा अवर्जन इन दोनों अर्थो में परि शब्द है। 'परेर्वर्जने' ८.१.५ से वर्जन अर्थ में परि का द्विःप्रयोगरूप द्विर्वचन है; अतः वर्जनार्थक परि के योग में पञ्चमीविधान होने से ही अवर्जनार्थक के योग में 'वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्' में पञ्चमी की आपत्ति निरस्त हो जायेगी। बाकी बँचा अदृष्टापचार वर्जनार्थक अप। उसका वर्जनरूप अर्थ के अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं है। जैसे 'अस्य गोर्द्वितीयेनार्थः' ऐसा कहने से गो का द्वितीय=सहायक गो ही होता है तथा उसी का ग्रहण होता है, अश्व अथ वा गर्दभ का नहीं। वैसे वर्जनार्थक अप का द्वितीय भी अप ही होगा तथा उसके योग में पञ्चमी ही विहित है; अतः द्वितीया की आपत्ति नही होगी। पुनः द्वितीयांविधान से यहाँ पूर्वोक्त दोषों का अवसर निरस्त हो जाता है। {कर्मप्रवनीय-}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी २.३.९

कथमिदं विज्ञायते-यस्य चैश्वर्यमीश्वरता ईश्वरभावस्त- स्मात् कर्मप्रवचनीयादिति, आहो स्विद्यस्य स्वस्येश्वरस्तस्मात् कर्मप्रवचनीय-युक्तादिति? कश्चात्र विशेषः? * यस्य चेश्वरवचनमिति कर्तृनिर्देश-श्चेदवचनात् सिद्धम् * **यस्य चेश्वरवचनमिति कर्तृनिर्देशश्चेदन्तरेण वचनं सिद्धम्। अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः। आधृतास्ते तस्मिन् भवन्ति। सत्यमेवमेतद्-नित्यं परिग्रहीतव्यं परिग्रहीत्रधीनं भवति।**

'सूत्रार्थ—'यस्मादधिकम् इस अर्थ में तथा यस्य ईश्वरवचनम् इस अर्थ में कर्मप्रवचनीययुक्त होने पर सप्तमी हो'। जैसे यस्मादधिम्- 'उपपरार्धे हरेर्गुणाः। 'परार्धादधिकाः' यह अर्थ है। ऐश्वर्य अर्थ में स्वस्वामिभाव होने से पर्याय से सप्तमी होगी। जैसे 'अधि भुवि रामः' 'अधि रामे भूः'।

यहाँ 'अधि भुवि रामः' 'अधि रामे भूः' में स्वस्वामिभावाची से पर्याय से सप्तमी इष्ट है, अतः अभ्यन्तर को ही सप्तमी होने से विचार करते हैं- **कथमिति**। भावार्थक ष्यञ् आदि प्रत्यय के अभाव में भी यदि ईश्वरपद से ऐश्वर्य अर्थ का उपस्थापन करेंगें, अथ वा 'ईश्वरवचनः' इस पद से 'ईश्वर उच्यतेऽनेनेति ईश्वरवचनम्' इस व्युत्पत्ति के द्वारा ऐश्वर्य अर्थ वाच्य मानेंगे तो 'स्वामिवाचक पद से भी सप्तमी हो' यह अर्थ होता है। जब 'यस्य' इस पद से 'स्वम्' अर्थ का ही निर्देश मानेंगे तब जिसका सम्बन्धी ईश्वर उक्त हो रहा है वहाँ स्व अर्थ का वाचक पद से भी सप्तमी हो' यह अर्थ होता है। इस तरह यहाँ 'यस्य चेश्वरवचनम्' इस पद से दो प्रकार का अर्थ उपस्थित हो रहा है; फिर यहाँ कौन अर्थ माना जाये? अन्य आचार्य-**कश्चात्रेति**। यहाँ 'यस्येश्वरवचनम्' इस पद का 'यस्य ऐश्वर्य तस्मात् कर्मप्रवचनीयात्' यह अर्थ माना जाये अथ वा 'यस्य स्वस्य ईश्वरः' यह अर्थ माना जाये, इन दोनों में क्या भेद है? प्राश्निक आचार्य यहाँ भेद स्पष्ट करते हैं-**यस्येति**। यदि 'यस्य चेश्वरवचनम्' इस पद से कर्ता अर्थ वाच्य मानेंगे तो **अवचनात्**=प्रकृत सूत्र का आरम्भ नहीं होने पर भी वह सिद्ध हो जायेगा। यहाँ ईशिता कर्तृत्वरूप से अभिमत है; अतः 'स्वामी से सप्तमी हो' यह अर्थ आयेगा; अतः प्रकृतसूत्र का आरम्भ नहीं करने पर भी 'अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः' में सप्तमी सिद्ध हो जायेगी। यहाँ **ते**=पञ्चाल, **तस्मिन्**=स्वामिरूप आधार में **आधृताः**=स्थित है; अतः यहाँ अधिकरणलक्षणा सप्तमी ही हो जायेगी। 'सप्तमी शौण्डैः' २.१.४० से विकल्प से समासविधान होने से अधिब्रह्मदत्त तथा ब्रह्मदत्ताधीन यह दोनों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद होगा। यदि अधि को विभक्त्यर्थ में शक्त मानेंगे तो 'अधिब्रह्मदत्तम्' ऐसा अव्ययीभाव समास होगा। अन्य आचार्य-**सत्यमेवमिति**। यह वात सत्य है कि पञ्चाल अधिब्रह्मदत्तरूप स्वामी आधार में ही अवस्थित है। परिग्राह्य वस्तु परिग्रहीता के अधीन ही होता है। पञ्चाल परिग्राह्य है तथा उसका परिग्रहीता अधिब्रह्मदत्त है।

*** प्रथमाऽनुपपत्तिस्तु * प्रथमा नोपपद्यते। कुतः? * पञ्चालेभ्यः * का तर्हि स्यात्? षष्ठीसप्तम्यौ-'स्वामीश्वराधिपती'ति। न तत्राऽधिशब्दः पठ्यते। यद्यपि न पठ्यते, अधिरीश्वरवाची। न तत्र पर्यायवचनानां ग्रहणं भवति। कथं ज्ञायते? यदयं कस्य चित् पर्यायवचनस्य ग्रहणं करोति-'अधिपतिदायादे'ति। षष्ठी तर्हि प्राप्नोति। शेषलक्षणा षष्ठी, अशेषत्वान्न भविष्यति।**

आक्षेपक—**प्रथानुपपत्तिस्त्विति**। अधिब्रह्मदत्त में अधि शब्द का प्रयोग है, उसके योग में 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्र- तिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ के द्वारा पञ्चाल पद से षष्ठी और सप्तमी की आपत्ति होगी, अतः पञ्चाल पद के अनन्तर प्रथमा प्राप्त नहीं हो सकेगी। सप्तमीविधान अनर्थक हो रहा है तथा स्व से प्रथमा प्राप्त नहीं हो रही है, यह दो दोषों का उपन्यास है।

खण्डनभाष्य—**न तत्रेति**। 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ सूत्र में अधि शब्द के प्रयोग में षष्ठी और सप्तमी विहित नहीं है, अपि तु अधिपतिशब्द के योग में षष्ठी और सप्तमी विहित है; अतः 'अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः' में अधि का योग मान कर पञ्चाल पद से षष्ठी और सप्तमी की आपत्ति नहीं है।

आक्षेपभाष्य—**यद्यपि नेति**। 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ सूत्र में अधिशब्द का पाठ नही होने पर भी अधिपतिघटक अधिशब्द पढा गया है जो ईश्वरार्थक है; अतः ईश्वरार्थक अधिशब्द के योग में उक्त वाक्यघटक पञ्चाल पद से षष्ठी और सप्तमी की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**न तत्रेति**। **तत्र**='स्वामीश्वराधिपतिदायाद- साक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ सूत्र में अधिपति तथा दायाद इन दो पर्यायशब्दों का निर्देश है। यदि यहाँ पर्यायशब्दों का ग्रहण होता तो आचार्य अन्यतर का ही निर्देश करते, अतः उक्त सूत्र में पर्याय का ग्रहण नही होने से अधिब्रह्मदत्त को पर्याय मान कर उसके योग में पञ्चाल पद से षष्ठी और सप्तमी की आपत्ति नही दे सकते हैं। आक्षेपक-**षष्ठी तर्हीति**। यदि उक्त सूत्र में पर्याय का अग्रहण कर षष्ठी और सप्तमी का वारण कर लेने पर भी उक्त वाक्यघटक पञ्चालपद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से षष्ठी प्राप्त हो रही है।

समाधानभाष्य—**शेषलक्षणेति**। 'षष्ठी शेषे' २.३.५० से शेषलक्षणा षष्ठी होती है। उक्त से अन्य शेष होता है। 'अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः' में 'सन्ति' का समानाधिकरण 'पञ्चालाः' पद है। लकार से कर्ता उक्त होने से प्रातिपदिकार्थसम्पन्न पञ्चालपद से प्रथमा प्राप्त है; अतः इसे शेष नहीं कहा जा सकता है; अतः यहाँ शेषलक्षणा षष्ठी की आपत्ति नहीं है।

द्वितीया तर्हि प्राप्नोति-'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीये'ति। सप्तम्योक्तत्वात् तस्याऽर्थस्य द्वितीया न भविष्यति। भवेद् योऽधेर्ब्रह्मदत्तस्य चाभिसम्बन्धः स सप्तम्योक्तः स्याद्यस्तु खल्वधेः पञ्चालानां चाऽभिसम्बन्धस्तत्र द्वितीया प्राप्नोति।

आक्षेपक—**द्वितीया तर्हीति**। 'अधिरीश्वरे' १.४.९७ के द्वारा अधि पद कर्मप्रवचनीयसंज्ञ है; अतः उसके योग में 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया'२.३.८ के द्वारा पञ्चाल पद से द्वितीया की आपत्ति होगी।

उत्तरभाष्य—**सप्तम्योक्तत्वादिति**। इस द्वितीया का अपवाद सप्तमी का विधान ब्रह्मदत्त पद के उत्तर में है, उसी से उभयगतसम्बन्ध के उक्त होने से पञ्चालपद से द्वितीया नहीं हो सकेगी। आक्षेपक-**भवेद्योऽधेरिति**। अधि पद का ब्रह्मदत्त पद के साथ जो सम्बन्ध है, वही सप्तमी के द्वारा उक्त है, परन्तु अधि पद का पञ्चाल पद के साथ जो सम्बन्ध है, वही किसी के द्वारा उक्त नहीं है, उक्त वाक्य में पञ्चाल पद से द्वितीया की आपत्ति हो रही है।

* स्ववचनात्तु सिद्धम् * **अस्तु-'यस्य स्वस्येश्वरस्तस्मात् कर्मप्रवचनीययुक्ता'दिति। एवमप्यन्तरेण वचनं सिद्धम्। अधिब्रह्मदत्तः पञ्चालेषु। आधृतः स तेषु भवति। सत्यमेवमेतत्-नित्यं परिग्रहीता परिग्रहीतव्याधीनो भवति** * प्रथमानुपपत्तिस्तु * **प्रथमा तु नोपपद्यते। कुतः?** * ब्रह्मदत्तात् * **का तर्हि स्यात्? षष्ठीसप्तम्यौ-'स्वामीश्वराधिपती'ति। न तत्राधिशब्दः पठ्यते। यद्यपि न पठ्यतेऽधिरीश्वरवाची। न तत्र पर्यायवचनानां ग्रहणं भवति। कथं ज्ञायते? यदयं कस्यचित्पर्यायवचनस्य ग्रहणं करोति-'अधिपतिदायादे'ति। षष्ठी तर्हि प्राप्नोति। शेषलक्षणा षष्ठी, अशेषत्वान्न भविष्यति। द्वितीया तर्हि प्राप्नोति-'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीये'ति। सप्तम्योक्तत्वात् तस्याऽभिसम्बन्धस्य द्वितीया न भविष्यति। भवेद् योऽधेः पञ्चालानां**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाऽभिसम्बन्धः स सप्तम्योक्तः स्याद्, यस्तु खल्वधेर्ब्रह्मदत्तस्य चाभिसम्बन्धस्तत्र द्वितीया प्राप्नोति।

अब द्वितीय वाक्य का अर्थ बताते हैं-**स्ववचनात्त्विति**। यदि 'यस्य ऐश्वर्यं तस्मात् कर्मप्रवचनीययुक्तात्' इस अर्थ में दोष है तो 'यस्य स्वस्येश्वरस्तस्मात् कर्मप्रवचनीययुक्तात्' यह दूसरा अर्थ मानिये। आक्षेपक-**एवमप्यन्तरेणेति**। यदि द्वितीय अर्थ मान कर सप्तमी का विधान करेंगे तो इसकी आवश्यकता नही है। कोई अतिरिक्तसूत्रनिर्देश नहीं करने पर भी 'अधि ब्रह्मदत्तः पञ्चालेषु' में 'सप्तम्यधिकरणे च' २.३.३६ के द्वारा ही सप्तमी हो जायेगी। ब्रह्मदत्त का आधार पञ्चाल है। यह वात सत्य है कि परिग्रहीता परिग्रहीतव्य के अधीन होता है। आक्षेपक-**प्रथमानुपपत्तिरिति**। 'अधिब्रह्मदत्तः पञ्चालेषु' इस वाक्य में विना अतिरिक्तवचन पढे सामान्यसूत्र से सप्तमी होने पर भी ब्रह्मदत्तपद से प्रथमा नहीं हो सकेगी, अपि तु 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ सूत्र से षष्ठी एवं सप्तमी की आपत्ति होगी। 'न तत्राधिशब्दः पठ्यते' से आरम्भ कर 'तत्र द्वितीया प्राप्नोति' तक का भाष्य की व्याख्या पूर्ववत् करनी चाहिये।

एवं तर्हि- * स्ववचनात्तु सिद्धम् * इति। अधिः स्वं प्रति कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवतीति वक्तव्यम्। एवमपि यदा ब्रह्मदत्तेऽधिकरणे सप्तमी तदा पञ्चालेभ्यो द्वितीया प्राप्नोति। कथम्? 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीये'ति। 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी'ति प्रथमा भविष्यति। {यस्मादधिकम्}।

अब भाष्यकार 'स्ववचनात्तु सिद्धम्' को अन्यथासिद्ध करने के लिए अवतरण करते हैं-**एवं तर्हीति**। 'अधिरीश्वरे' १.४.९७ यह सूत्र हटा कर इसके स्थान पर 'अधिः स्वे' ऐसा सूत्रपाठ करना चाहिये। इससे स्वसम्बन्ध के प्रति ही अधि शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होगी तथा उसी से प्रकृतसूत्र के द्वारा सप्तमी का विधान होगा। इससे स्वामी के प्रति अधि शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा नहीं होने से उससे द्वितीया की आपत्ति नहीं होगी। इससे 'अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः' की सिद्धि हो जाती है तथा अधिकरण सप्तमी के द्वारा 'अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः' की सिद्धि हो जाती है। इस पक्ष में दोषोद्भावन करते हैं-**एवमपीति**। ब्रह्मदत्तपद से अधिकरणसप्तमी सिद्ध होने पर भी कर्मप्रवचनीयसंज्ञक अधि के योग में पञ्चाल पद से द्वितीया की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**उपपदविभक्तेरिति**। 'तिष्ठन्ति'क्रिया अथ वा 'सन्ति'क्रिया से योग होने पर स्थान आदि क्रिया की अपेक्षा से पञ्चाल का कर्तृत्व है, अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उससे पर में कारकविभक्ति प्रथमा प्राप्त है तथा अधि पद के योग में प्राप्त होने से द्वितीया उपपदविभक्ति भी प्राप्त है। उपपदविभक्ति की अपेक्षा कारकविभक्ति के बलवती होने से उक्त वाक्य में पञ्चाल पद से प्रथमा ही होगी, द्वितीया नहीं। {यस्मादधिकं-}।

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि २.३.१२

* अध्वन्यर्थग्रहणम् * **अध्वन्यर्थग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूत्-पन्थानं गच्छति, वीवधं गच्छतीति** * आस्थितप्रतिषेधश्च * **आस्थित-प्रतिषेधश्चाऽयं वक्तव्यः। यो ह्युत्पथेन पन्थानं गच्छति, 'पथे गच्छती'त्येव तत्र भवितव्यम्। किमर्थं पुनरिदमुच्यते? चतुर्थी यथा स्यात्। अथ द्वितीया सिद्धा। सिद्धा। कथम्? 'कर्मणी'त्येव। चतुर्थ्यपि सिद्धा। कथम्? 'सम्प्रदाने' इत्येव। न सिध्यति। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदान'मित्युच्यते, क्रियया चाऽसौ ग्राममभिप्रैति। कया क्रियया? गतिक्रियया।**

सूत्रार्थ—'चेष्टा अर्थ गम्य होने पर गत्यर्थकधातुओं के अध्वभिन्न कर्म में द्वितीया एवं चतुर्थी हो'। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति।

'स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा' १.१.६८ इस वचन से स्वरूप का ही ग्रहण प्राप्त है; अतः अर्थग्रहण बताने के लिए वार्तिकावतार करते हैं-**अध्वन्यर्थ-ग्रहणमिति**। अध्वा इस पद से अर्थ का ग्रहण कर पर्याय से भी चतुर्थी का प्रतिषेध कहना चाहिये। परन्तु 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ की प्रवृत्ति होगी; अतः 'पन्थानं गच्छति, वीवधं गच्छति' में चतुर्थी की प्राप्ति नहीं होती है। प्रतिषेध-वादी आचार्य-**आस्थितेति**। **आस्थितः**=आक्रान्त होकर जब मार्गकर्मक गमन है तभी 'अनध्वनि' यह प्रतिषेध कहना होगा। परन्तु जब **उत्पथेन**= आकाश-मार्ग से गमनकर्मक इच्छा करता है तब चतुर्थी होकर 'पथे गच्छति' यही प्रयोग होगा। आक्षेपक-**किमर्थमिति**। प्रकृत सूत्र का आरम्भ नहीं होने पर भी 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ से द्वितीया तथा 'चतुर्थी सम्प्रदाने' २.३.१३ से चतुर्थी होकर 'ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति' की सिद्धि हो जायेगी; पुनः इसी के लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

खण्डनभाष्य—**न सिध्यतीति**। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' १.४.३२ के द्वारा कर्म से जिसका सम्बन्ध है उसी की सम्प्रदानसंज्ञा बतायी गयी है। परन्तु प्रकृत में गमनक्रिया से ग्राम का सम्बन्ध है, कर्म से नहीं; अतः उसकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्प्रदानसंज्ञा नही होने से उक्त वाक्यघटक ग्रामपदोत्तर चतुर्थी नही हो सकेगी।

क्रियाग्रहणमपि तत्र चोद्यते। * चेष्टायामनध्वनि स्त्रियं गच्छत्यजां नयतीत्यतिप्रसङ्गः * **चेष्टायामनध्वनि 'स्त्रियं गच्छति' 'अजां नयती'- त्यतिप्रसङ्गो भवति** * सिद्धं त्वसंप्राप्तवचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'असंप्राप्तवचनात्'। 'असंप्राप्ते कर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ भवत' इति वक्तव्यम्** * अध्वनश्चाऽनपवादः * **एवं च कृत्वाऽनध्वनीत्येतदपि न वक्तव्यं भवति। संप्राप्तं ह्येतत् कर्माध्वानं गच्छतीति।** {गत्यर्थ- कर्मणि}।

भाष्यकार प्रकृतसूत्र का खण्डन करते हैं—**क्रियाग्रहणमिति। तत्र**='कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' १.४.३२ सूत्र के भाष्य में क्रियापद का ग्रहण कर क्रिया से योग होने पर ही चतुर्थी का विधान होने से ही 'ग्रामाय गच्छति' में चतुर्थी हो जायेगी; अतः इसके लिए पृथक् सूत्ररचना व्यर्थ है। अब सूत्र की अतिव्याप्ति दिखाने के लिए कहते हैं-**चेष्टायामिति**। 'स्त्रियं गच्छति, अजां नयति' में चेष्टा गम्य है तथा कर्म अध्वा से भिन्न है; अतः स्त्री एवम् अजा पद के उत्तर में चतुर्थी की अतिव्याप्ति हो रही है। यह दोष हटानें के लिए भाष्यकार कहते हैं-**सिद्धं त्विति**। 'असम्प्राप्त कर्म में ही द्वितीया और चतुर्थी होती है' ऐसा कहना चाहिये, सम्प्राप्त कर्म में नहीं। गमन के द्वारा प्राप्य जिस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा हो वह असम्प्राप्त कर्म होता है तथा उसी में द्वितीया और चतुर्थी होगी। परन्तु स्त्री और अजा सम्प्राप्त है; अतः उससे चतुर्थी नहीं होगी। असम्प्राप्त कर्म में द्वितीया और चतुर्थी कहने पर अन्यत्र लाघव भी है, उसे दिखाते हैं-**अध्वनश्चेति**। अध्व कर्म ही सम्प्राप्त है; अतः उससे चतुर्थी प्राप्त नही होने से 'अनध्वनि' यह निषेधवचन व्यर्थ है। {गत्यर्थ-}।

चतुर्थी सम्प्रदाने २.३.१३

* चतुर्थीविधाने तादर्थ्य उपसंख्यानम् * **चतुर्थीविधाने तादर्थ्ये उपसंख्यानं कर्तव्यम्। यूपाय दारु, कुण्डलाय हिरण्यमिति। किमिदं तादर्थ्यमिति? तदर्थस्य भावस्तादर्थ्यम्। तदर्थं पुनः किम्? सर्व- नाम्नोऽयं चतुर्थ्यन्तस्याऽर्थशब्देन सह समासः। कथं चाऽत्र चतुर्थी? अनेनैव। यद्येवमितरेतराश्रयं भवति। केतरेतराश्रयता? निर्देशोत्तर- कालं चतुर्थ्या भवितव्यं, चतुर्थ्यां च निर्देशः, तदेतदितरेतराश्रयं भवति, इतदितरेतराश्रयाणि च कार्याणि न प्रकल्पन्ते। तत्तर्हि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'भवति ह्यर्थशब्देन योगे चतुर्थी'ति, यदयं 'चतुर्थीतदर्थाऽर्थे'ति चतुर्थ्यन्तस्याऽर्थशब्देन सह समासं शास्ति। न खल्वप्यवश्यं चतुर्थ्यन्तस्यैवाऽर्थशब्देन सह समासो भवति। किं तर्हि? षष्ठ्यन्तस्यापि भवति। तद्यथा-गुरोरिदं गुर्वर्थमिति।

सूत्रार्थ—'सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी हो'। विप्राय गां ददाति।

वार्तिक—**चतुर्थीविधान इति**। चतुर्थीविधान में तादर्थ्य में भी चतुर्थी कहनी चाहिये। जैसे 'यूपाय दारु, कुण्डलाय हिरण्यम्'।

प्रश्नभाष्य—**किमिदमिति**। तादर्थ्य पद का क्या अर्थ है?

उत्तरभाष्य—**तदर्थस्येति**। तदर्थपद से भाव अर्थ में 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२४ के द्वारा ष्यञ् प्रत्यय है।

प्रश्नभाष्य—**तदर्थमिति**। ष्यञ्प्रत्यय की प्रकृति तदर्थ पद का क्या अर्थ है? सर्वनामसंज्ञ तत्पद चतुर्थ्यन्त का अर्थ पद के साथ समास है-तस्मै इदं तदर्थम्। यहाँ तत्पद से कार्य का निर्देश है। 'तदर्थम्' इस समास के द्वारा विशिष्टकार्यप्रयोजनकरण वाच्य है। 'समासकृत्तद्धितेषु भावप्रत्ययेन सम्बन्धाभिधानम्' इस वचन के द्वारा तादर्थ्य पद से कार्यकारणसम्बन्ध उक्त है। सम्बन्ध के द्विष्ठ होने पर भी जैसे 'राज्ञः पुरुषः' में विशेषणवाचकपद से ही षष्ठी होती है, विशेष्यवाचकपद से नहीं, वैसे 'यूपाय दारु' में भी कारणपद से ही चतुर्थी होगी, कार्यपद से नहीं।

प्रश्नभाष्य—**कथं चात्रेति**। तदर्थपद का विग्रहवाक्य में तत्पदोत्तर चतुर्थी कैसे होती है?

उत्तरभाष्य—**अनेनैवेति**। इसी वार्तिक से ही चतुर्थी होती है। आक्षेपक-**यद्येवमिति**। यदि 'तस्मै इदम्' में इसी वार्तिक से चतुर्थी करेंगे तो यहाँ अन्योन्याश्रयदोष होगा। वह इस तरह कि वार्तिकनिर्देश के उत्तर में चतुर्थी होगी तथा चतुर्थी होने पर निर्देश होगा। इस तरह अन्योन्याश्रय होगा। यद्यपि अन्यत्र नित्यशब्द के द्वारा अन्योन्याश्रय का परिहार उक्त है; अतः उसी से यहाँ भी अन्योन्याश्रय का परिहार सम्भव है, तथापि कार्यवादपक्ष में भी अन्योन्याश्रय का परिहार करते हैं-**तत्तर्हीति**। क्या चतुर्थीविधायक 'तादर्थ्ये उपसंख्यानम्' इस वचन का आरम्भ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। चतुर्थीविधायक उक्त अतिरिक्त वार्तिक का आरम्भ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं करना चाहिये। आचार्य 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' २.१.३६ सूत्र का आरम्भ करते हैं। इसमें तदर्थ पद चतुर्थ्यन्त का अर्थ पद के साथ समास करके निर्देश है। वस्तुतः यहाँ इतरेतराश्रय ही नहीं है, इसे बताते हैं-**न खल्विति**। यदि तदर्थपद में चतुर्थी के अतिरिक्त अन्य समास नहीं होता तो यहाँ अन्योन्याश्रय हो सकता था, परन्तु यहाँ 'तस्यार्थः' इस विग्रह में अर्थ पद के साथ षष्ठ्यन्त का समास है, अतः अन्योन्याश्रय नहीं है। यहाँ उदाहरण के द्वारा अर्थपद के साथ षष्ठ्यन्त का समास स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**।

यदि तादर्थ्ये उपसंख्यानं क्रियते नाऽर्थः सम्प्रदानग्रहणेन। योऽपि ह्युपाध्यायाय गौर्दीयते उपाध्यायार्थः स भवति, तत्र तादर्थ्य इत्येव सिद्धम्। अवश्यं सम्प्रदानग्रहणं कर्तव्यम्। याऽन्येन लक्षणेन सम्प्रदानसंज्ञा तदर्थं-'छात्राय रुचितं, छात्राय स्वदित'मिति। तत्तर्ह्युपसंख्यानं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति- 'भवति हि तादर्थ्ये चतुर्थी'ति यदयं 'चतुर्थी तदर्थार्थे'ति चतुर्थ्यन्तस्य तदर्थेन शब्देन सह समासं शास्ति।

अब सम्पूर्णसूत्र पर आक्षेप करते हैं—**यदि तादर्थ्य इति**। यदि तादर्थ्य में चतुर्थी का विधान करते हैं तब सम्प्रदानग्रहण की आवश्यकता नहीं है। उपाध्याय के लिए जो गाय दी जाती है वह उपाध्यायार्थ होती है; अतः 'उपाध्यायाय गां ददाति' में तादर्थ्य में ही चतुर्थी सिद्ध हो जायेगी; अतः इसी के लिए प्रकृतसूत्र में सम्प्रदानग्रहण नहीं करके मात्र 'तादर्थ्ये चतुर्थी' इतना ही कहना चाहिये।

समाधानभाष्य—**अवश्यमिति**। अन्य सूत्र 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' १.४.३२ से जो सम्प्रदानसंज्ञा कही जा रही है उसका प्रयोजन बताने के लिए 'चतुर्थी सम्प्रदाने' का आरम्भ कर इससे सम्प्रदान में अवश्य चतुर्थी कहनी चाहिये। इससे 'छात्राय रुचितम्' 'छात्राय स्वदितम्' में भी सम्प्रदान में चतुर्थी हो जाती है। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या 'तादर्थ्ये चतुर्थी' वार्तिक का निर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। अतिरिक्तवार्तिकवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'चतुर्थी दर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' २.१.३६ सूत्र में 'तस्मै इदं तदर्थम्' ऐसा तादर्थ्य में चतुर्थी का निर्देश किया है, उसी से तादर्थ्य में चतुर्थी हो जायेगी।

*** क्लृपि सम्पद्यमाने * क्लृपि सम्पद्यमाने चतुर्थी वक्तव्या। मूत्राय कल्पते यवागूः। उच्चाराय कल्पते यवाऽन्नमिति * उत्पातेन ज्ञाप्य-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माने * उत्पातेन ज्ञाप्यमाने चतुर्थी वक्तव्या।

वाताय कपिला विद्युद्, आतपायातिलोहिनी।
कृष्णा सर्वविनाशाय, दुर्भिक्षाय सिता भवेत्।।

मांसौदनाय व्याहरति मृगः * हितयोगे च * हितयोगे चतुर्थी वक्तव्या। हितमरोचकिने। हितमामयाविने।

वार्तिक—**क्लृपि सम्पद्यमान इति**। 'क्लृप् धातु का प्रयोग होने पर सम्पद्यमान अर्थ में वर्तमान से चतुर्थी हो'। जैसे 'मूत्राय कल्पते यवागूः'। 'उच्चाराय कल्पते यवान्नम्'। वार्तिक-**उत्पातेनेति**। अशुभसूचक आकस्मिक भूतविकार उत्पात है; उससे सूचित अर्थ में शक्त से चतुर्थी कहनी चाहिये। इसका उदाहरण-'वाताय कपिला विद्युत्' इत्यादि श्लोक के माध्यम से स्पष्ट किया है।

मांसौदनाय व्याहरति मृगः' यह भी इसी का उदाहरण है। **हितयोगे च**। हित के योग में भी चतुर्थी कहनी चाहिये। जैसे-'हितमरोचकिने' इत्यादि। {चतुर्थी-}।

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च २.३.१६

* स्वस्तियोगे चतुर्थी कुशलार्थैराशिषि वाविधानात् * स्वस्तियोगे चतुर्थी कुशलार्थैराशिषि वाविधानाद् भवति विप्रतिषेधेन। स्वस्तियोगे चतुर्थ्या अवकाशः-स्वस्ति जाल्माय, स्वस्ति वृषलाय। कुशलार्थैराशिषि वाविधानस्यावकाशः-अन्ये कुशलार्थाः-कुशलं देवदत्ताय, कुशलं देवदत्तस्य। इहोभयं प्राप्नोति-स्वस्ति गोभ्यः, स्वस्ति ब्राह्मणेभ्य इति। चतुर्थी भवति विप्रतिषेधेन * अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् * अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूद्-अलंकुरुते कन्या-मिति। अपर आह-अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणं कर्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-अलं मल्लो मल्लाय, प्रभुर्मल्लो मल्लाय। प्रभवति मल्लो मल्लायेति। {नमःस्वस्ति}।

'चतुर्थी सम्प्रदाने' २.३.१३ से 'चतुर्थी' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् तथा वषट् के योग में चतुर्थी हो'।

वार्तिक—**स्वस्तियोगे इति**। 'चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशल- सुखार्थहितैः' २.३.७३ के द्वारा आशीः अर्थ में विकल्प से चतुर्थी प्राप्त है तथा 'नमः-स्वस्तिस्वाहास्वधा-' सूत्र से स्वस्ति के योग में नित्य चतुर्थी प्राप्त है। नित्य तथा विकल्प दोनों प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा स्वस्ति के योग में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्य चतुर्थी कहनी चाहिये। 'स्वस्ति जाल्माय, स्वस्ति वृषलाय' में स्वस्ति के योग में चतुर्थी चरितार्थ है। आशीः अर्थ में कुशलार्थ के योग में 'कुशलं देवदत्ताय, कुशलं देवदत्तस्य' में विकल्प से चतुर्थीविधान चरितार्थ है। 'स्वस्ति जाल्माय' में तत्त्वकथन है, आशीः नहीं। 'स्वस्ति गोभ्यः, स्वस्ति ब्राह्मणेभ्यः' में नित्य चतुर्थी तथा विकल्प चतुर्थी दोनों के प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा नित्य चतुर्थी से विकल्प चतुर्थी का बाध होता है। वार्तिक-**अलमितीति**। सूत्र में निर्दिष्ट अलम् पद पर्याप्ति अर्थ में शक्त है; अतः पर्याप्ति अर्थ में शक्त अलम् पद के योग में ही चतुर्थी होगी। इससे जो भूषण अर्थ में शक्त अलम् पद है उसके योग में 'अलंकुरुते कन्याम्' में चतुर्थी नही हो सकेगी। दूसरे आचार्य भी इस वार्तिक की व्याख्या करते हैं-**अपर आहेति**। अलम् पद को पर्याप्ति अर्थ में मानने से 'अलं मल्लो मल्लाय' इत्यादि में ही चतुर्थी होती है, अन्य नहीं। {नमःस्वस्ति-}।

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु २.३.१७

'अप्राणिष्वि'त्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति-'न त्वा श्वानं मन्ये, न त्वा शुने मन्ये' इति। एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते'मन्य-कर्मण्यनादरे विभाषा'। ततः 'अप्राणिषु'। अप्राणिषु च विभाषेति। इहापि तर्हि प्राप्नोति-न त्वा काकं मन्ये, न त्वा शुकं मन्य इति। यदेतदप्राणिष्विति, एतदनावादिष्विति वक्ष्यामि। इमे च नावादयो भविष्यन्ति। न त्वा नावं मन्ये यावत्तीर्णं न नाव्यम्। न त्वाऽन्नं मन्ये यावद् भुक्तं न श्राद्धमिति। अत्र येषु प्राणिषु नेष्यते ते नावादयो भविष्यन्ति * मन्यकर्मणि प्रकृष्यकुत्सितग्रहणम् * **मन्यकर्मणि प्रकृष्यकुत्सितग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूत्-त्वां तृणं मन्य इति।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य तृतीये पादे प्रथममाह्निकम्

●

'चतुर्थी सम्प्रदाने' २.३.१३ से चतुर्थी पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'तिरस्कार गम्य होने पर प्राणिवर्ज मन्य के कर्म में विकल्प से चतुर्थी हो'। न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा।

आक्षेपक—**अप्राणिष्विति**। आचार्य 'अप्राणिषु' ऐसा कह रहे हैं; इससे जहाँ मन्य का कर्म प्राणी है वहाँ उसके कर्म में चतुर्थी नहीं होने से 'न त्वा शुने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन्ये' की असिद्धि होगी। भाष्यकार अनादर गम्य होने पर मन्य का कर्म प्राणी में भी चतुर्थीविधान के लिए कहते हैं-**एवं तर्हीति**। प्रकृतसूत्र का योगविभाग कर 'मन्यकर्मण्यनादरे विभाषा' यह प्रथम सूत्र तथा 'अप्राणिषु' यह द्वितीयसूत्र होगा। इससे प्रथमयोग के प्राणी में भी चतुर्थीविधान होने से 'न त्वा शुने मन्ये' में चतुर्थी हो जायेगी। द्वितीययोग में 'विभाषा' की अनुवत्ति होने से उत्तरयोग भी विकल्प से प्रवृत्त होगा। आक्षेपक-**इहापि तर्हीति**। यदि प्रकृत योग का विभाग कर प्रथमयोग के द्वारा प्राणिकर्म में भी चतुर्थी प्राप्त होगी। इससे 'न त्वा काकं मन्ये' 'न त्वा शुकं मन्ये' में 'त्वा' पद से उत्तर में भी चतुर्थी की आपत्ति होगी। इस तरह योगविभाग होने पर भी प्राप्त दोष का अन्ययोग के द्वारा हटाने के लिए कहते हैं-**यदेतदिति**। 'युष्मदस्मदोः षष्ठी-चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वां नावौ' ८.१.२० इत्यादि से भिन्न में ही 'अप्राणिषु' ऐसा प्रतिषेध कहेंगे। 'त्वामौ द्वितीयायाः' ८.१.२३ इत्यादि भी 'नौ' आदि ही है; अतः मन्य कर्म त्वा आदि से चतुर्थी की आपत्ति नहीं होगी। 'न त्वा नावं मन्ये यावत्तीर्णं न नाव्यम्' इत्यादि में जिन प्राणियों में चतुर्थी इष्ट नहीं है, वे ही नौ आदि होंगे। वार्तिक-**मन्यकर्मणीति**। **कुत्सा**=निन्दा गम्य होने पर मन्य कर्म में चतुर्थी कहनी चाहिये। इससे 'न त्वा तृणं मन्ये' में चतुर्थी नही होती है।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय तृतीय पाद प्रथम आह्निक पर
डाँ. हरिनारायण तिवारी द्वारा- रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

कर्तृकरणयोस्तृतीया २.३.१८

* तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् * **तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानं कर्तव्यम्। प्रकृत्याऽभिरूपः। प्रकृत्या दर्शनीयः। प्रायेण याज्ञिकाः। प्रायेण वैयाकरणाः। माठरोऽस्मि गोत्रेण। गार्ग्योऽस्मि गोत्रेण। समेन धावति। विषमेण धावति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। त्रिद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। पञ्चकेन पशून् क्रीणाति। साहस्रेणाऽश्वान् क्रीणाति। तत्तर्हि वक्तव्यम्?**

'अनभिहिते' २.३.१ का अधिकार है। सूत्रार्थ-'अनभिहित कर्ता तथा करण में तृतीया हो'। रामेण बाणेन हतो बाली।

वार्तिक—**तृतीयाविधान इति**। तृतीयाविधान में प्रकृति आदि गणपठित से भी तृतीया कहनी चाहिये। 'प्रकृत्या अभिरूपः' इत्यादि में क्रियापद का श्रवण नही होने से कर्ता अथ वा करण में तृतीया प्राप्त नहीं है; अतः वार्तिक का आरम्भ है। 'प्रायेण याज्ञिकाः' में प्राय पद बह्वर्थवाची है; अतः 'बहवो याज्ञिकाः' यह अर्थ होगा। यहाँ प्रथमा प्राप्त है। 'माठरोऽस्मि गोत्रेण' में प्रथमा अथ वा षष्ठी प्राप्त है। 'समेन धावति' इत्यादि में द्वितीया प्राप्त है। 'द्वयोर्द्रोणयोः समाहारो द्विद्रोणम्' में पात्रादि होने से स्त्रीत्वाभाव है। यहाँ भी द्वितीया प्राप्त है। 'पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकं संघः, पञ्चकेन पशून् क्रीणाति' में भी द्वितीया प्राप्त है। 'पशून्' पद के साथ पञ्चक का सामानाधिकरण्य है; अतः संघ तथा संघी की अभेदविवक्षा होगी। सहस्रपरिमाणः संघस्तेनाश्वान् क्रीणाति। यहाँ 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' ५.१.२७ के द्वारा अण् प्रत्यय है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या यहाँ 'तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' यह वार्तिक पढा जाना चाहिये?

न वक्तव्यम्। 'कर्तृकरणयोस्तृतीये'त्येव सिद्धम्। इह तावत्-प्रकृत्याऽभिरूपः। प्रकृत्या दर्शनीय इति,-प्रकृतिकृतं तस्याऽऽभिरूप्यम्। प्रायेण याज्ञिकाः। प्रायेण वैयाकरणा इति,-एष तत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रायो येन तेऽधीयते। माठरोऽस्मि गोत्रेण, गार्ग्योऽस्मि गोत्रेणेति,-एतेनाऽहं संज्ञाये। समेन धावति। विषमेण धावतीति,-इदमत्र प्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते-समेन पथा धावति। विषमेण पथा धावतीति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। त्रिद्रोणेन धान्यं क्रीणातीति,-तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यम्। द्विद्रोणार्थं द्विद्रोणं, द्विद्रोणेन हिरण्येन धान्यं क्रीणातीति। पञ्चकेन पशून् क्रीणातीति,-अत्रापि 'तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यम्'। पञ्चपश्वर्थः पञ्चकः। पञ्चकेन पशून् क्रीणातीति। साहस्रेणाऽश्वान् क्रीणातीति,-सहस्रपरिमाणं साहस्रं, साहस्रेण हिरण्येनाऽश्वान् क्रीणातीति।

खण्डनभाष्य—नेति। 'प्रकृत्याऽभिरूपः' इत्यादि में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' २.३.१८ से ही तृतीया सिद्ध हो जायेगी, इसके लिए उक्त वार्तिक की आवश्यकता नही है। जैसे 'प्रविश पिण्डम्' में गम्यमान 'भुङ्क्ष्व' क्रिया की अपेक्षा से 'पिण्डीम्' यह कर्म है, 'प्रविश' की अपेक्षा से नहीं; अतः 'प्रविश' क्रिया का कर्म 'गृहम्' गम्यमान है तथा 'पिण्डीम्' कर्म की क्रिया 'भुङ्क्ष्व' गम्यमान है। वैसे 'प्रकृत्याभिरूपम्' में करणान्तरव्युदास के लिए प्रकृति का ही करणत्व विवक्षित है। 'यह स्वभाव से ही अभिरूप है, वस्त्र अलङ्कार आदि के द्वारा नहीं' यह अर्थ है। 'प्रायेण याज्ञिकाः, प्रायेण वैयाकरणाः' में जिससे वह अध्ययन करता है वही **प्रायः**= बाहुल्य है। यहाँ अध्ययन करणत्वरूप से विवक्षित है। 'माठरोऽस्मि गोत्रेण, गार्ग्योऽस्मि गोत्रेण' में स्वीयबोध में गोत्र करण है। 'समेन पथा धावति, विषमेण पथा धावति' ऐसा प्रयोग करना चाहिये था, परन्तु ऐसा प्रयोग नहीं करके 'समेन धावति, विषमेण धावति' ऐसा प्रयोग कर रहा है; अतः यहाँ भी 'समेन, विषमेण' यह करण में ही तृतीया है। 'द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति, त्रिद्रोणेन धान्यं क्रीणाति' में द्विद्रोण पद द्विद्रोणार्थ में तथा त्रिद्रोण पद त्रिद्रोणार्थ में है; अतः यहाँ करण में ही तृतीया हो जायेगी। 'पञ्चकेन पशून् क्रीणाति' में भी पञ्चक पद पञ्चपश्वर्थ में शक्त है; अतः यहाँ भी करण में ही तृतीया हो जायेगी। 'साहस्रेण अश्वान् क्रीणाति' में भी सहस्रपरिमाण अर्थ में साहस्र पद है; अतः 'साहस्र हिरण्य' ऐसा अर्थ होने से करण में तृतीया हो जायेगी। इस तरह वार्तिककार 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' का जो भी उदाहरण मानते हैं, उन सभी में करण अर्थ में ही तृतीया हो जाने से वार्तिक व्यर्थ है। {कर्तृकरण-}।

सहयुक्तेऽप्रधाने २.३.१९

किमुदाहरणम्? तिलैः सह माषान् वपतीति। नैतदस्ति। तिलै-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र्मिश्रीकृत्य माषा उप्यन्ते, तत्र 'करणे' इत्येव सिद्धम्। इदं तर्हि- 'पुत्रेण सहाऽऽगतो देवदत्त' इति। अप्रधाने कर्तरि तृतीया यथा स्यात्। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। प्रधाने कर्तरि लादयो भवन्तीति प्रधानकर्ता क्तेनाऽभिधीयते, यश्चाऽप्रधानं सिद्धा तत्र 'कर्तरी'त्येव तृतीया। इदं तर्हि प्रयोजनं-'पुत्रेण सहागमनं देवदत्तस्ये'ति। षष्ठ्यत्र बाधिका भविष्यन्ति। इदं तर्हि- पुत्रेण सह स्थूलः। पुत्रेण सह पिङ्गल इति। इदं चाऽप्युदाहरणं-'तिलैः सह माषान् वपती'ति।

'कर्तृकरणयोस्तृतीया' २.३.१८ से 'तृतीया' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'सह पद के योग में अप्रधान में तृतीया हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। इस सूत्र का क्या उदाहरण है?

उत्तरभाष्य—**तिलैः सहेति**। 'तिलै सह माषान् वपति' यह इस सूत्र का उदाहरण है। यहाँ वपनक्रिया में प्रधानरूप से माष का अन्वय है, तिल अप्रधान है; अतः उससे तृतीया होती है। यहाँ अप्रधान तिल पद से द्वितीया प्राप्त होने पर तृतीयाविधि है। आक्षेपक-**नैतदिति**। उक्त वाक्य का 'तिल के साथ मिश्रण करके माष का वपन करता है' यह अर्थ है। इसमें तिल करण है; अतः करण अर्थ में ही तिल पद से तृतीया सिद्ध हो जायेगी; अतः यह प्रकृत सूत्र का उदाहरण नहीं हो सकता है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'पुत्रेण सहागतो देवदत्तः' में अप्रधान में पुत्र पद से तृतीया हो सके, इसके लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। आक्षेपक-**एतदपीति**। प्रकृतसूत्र का यह भी प्रयोजन नहीं है। प्रधान तथा अप्रधान दोनों कर्ता उपस्थित होने पर लकार आदि प्रधान कर्ता में होते हैं; अतः आङ्पूर्वक गम् धातूत्तर क्त भी प्रधान कर्ता को कहेगा; अतः प्रधान कर्ता के उक्त होने पर प्रधान कर्तृवाची देवदत्तपद से प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा होगी। पुत्र अप्रधान कर्म अनुक्त है; अतः उससे 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' २.३.१८ से ही तृतीया हो जायेगी; अतः प्रकृतसूत्र का यह भी प्रयोजन नहीं है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। 'पुत्रेण सहागमनं देवदत्तस्य' यह प्रकृतसूत्र का उदाहरण है। यहाँ ल्युट् के द्वारा व्यापारवाच्य है, कर्ता नहीं; अतः उभयत्र अनुक्त कर्ता में तृतीया प्राप्त होने पर नियमार्थ प्रकृत सूत्रा का आरम्भ है-'अप्रधान में ही तृतीया हो, प्रधान में नहीं'। आक्षेपक-**षष्ठ्यत्रेति**। 'पुत्रेण सहागमनं देवदत्तस्य' में अप्रधान कर्म में तृतीया तथा 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५ से कर्ता अर्थ में षष्ठी प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा षष्ठी से तृतीया का बाध हो जायेगा। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। यदि 'पुत्रेण सहागमनं देवदत्तस्य'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस उदाहरण में दोष है तो प्रकृत सूत्र का उदाहरण 'पुत्रेण सह स्थूलः, पुत्रेण सह पिङ्गलः' मानिये। यहाँ गुणसम्बन्ध का प्रतिपादन होने से क्रिया का अभाव है; अतः पुत्र पद का कर्तृत्व नही हो सकता है। पूर्व में दिये गये प्रथम उदाहरण का भी पोषण करते हैं-**इदं चापीति**। प्रकृत सूत्र का 'तिलैः सह माषान् वपति' यह भी उदाहरण है।

ननु चोक्तं-'तिलैर्मिश्रीकृत्य माषा उप्यन्ते, तत्र 'करणे' इत्येव सिद्ध'मिति। भवेत् सिद्धं यदा तिलैर्मिश्रीकृत्योप्येरन्। यदा तु खलु कस्य चिन्माषबीजाऽऽवाप उपस्थितस्तदर्थं च क्षेत्रमुपार्जितं, तत्राऽन्यदपि किञ्चिदुप्यते-'यदि भविष्यति भविष्यती'ति, तदा न सिध्यति।

इस उदाहरण में जो दोष दिया था, उसका मार्जन करते हैं-**ननु चोक्तमिति**। उक्त उदाहरण में तिल पद से करण अर्थ में ही जो तृतीया बतायी थी, वह तब सिद्ध होती है जब तिल के साथ मिला कर माषों का वपन करता है। परन्तु किसी को माषवपन करने का समय उपस्थित हुआ। उसने माषवपन के लिए ही क्षेत्र तैयार किया है। परन्तु माषवपन के निमित्त तैयार किया गया क्षेत्र में यदि अन्य कुछ तिल आदि का वपन करता है तब उससे करण अर्थ में तृतीया नहीं हो सकेगी। वहाँ माष प्रधान होगा तथा तिल अप्रधान होगा; अतः ऐसी परिस्थिति में अप्रधान तिल पद से तृतीयाविधान होने से प्रकृतसूत्र का यह भी उदाहरण है।

* सहयुक्तेऽप्रधानवचनमनर्थकम् उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिबलीयस्त्वादन्यत्रापि * **सहयुक्तेऽप्रधानवचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिबलीयस्त्वात्'। अन्यत्रापि उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी'ति प्रथमा भवति। एवमत्रापि 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी'ति प्रथमा भविष्यति। क्वाऽन्यत्र? गाः स्वामी व्रजतीति।** {सहयुक्ते}।

अब भाष्यकार अप्रधानवचन का खण्डन करते हैं—**सहयुक्ते इति**। अन्यत्र भी कारकविभक्ति तथा उपपदविभक्ति दोनों के एक साथ प्राप्त होने पर कारक-विभक्ति की बलवत्ता होती है तथा कारकविभक्ति से उपपदविभक्ति का बाध होता है। प्रकृतसूत्र में प्रधान की निवृत्ति के लिए अप्रधानवचन का ग्रहण करते हैं। प्रधान के अन्तरङ्ग होने से उससे कारकविभक्ति हो जायेगी; अतः प्रधान की निवृत्ति के लिए अप्रधानवचन का ग्रहण नहीं करना चाहिये था। 'शिष्येण सह उपाध्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यायस्य गौः' में भी गो के साथ सम्बन्ध अन्तरङ्ग होने से उपाध्यायपदोत्तर षष्ठी ही होगी, तृतीया नही। 'गवां स्वामी व्रजति' में 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ से उपपदविभक्ति षष्ठी और सप्तमी प्राप्त होने पर उसका बाध कर व्रजनक्रिया में गो के कर्म होने से गोपदोत्तर द्वितीया ही होती है। {सहयुक्तऽप्रधाने}।

येनाऽङ्गविकारः २.३.२०

इह कस्मान्न भवति-अक्षि काणमस्येति? * अङ्गाद् विकृतात् तद्विकारश्चेदङ्गिनो वचनम् * अङ्गाद् विकृतात् तृतीया वक्तव्या, तेनैव चेद्विकारेण अङ्गी द्योत्यत इति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। अङ्गशब्दोऽयं समुदायशब्दः, 'येने'ति करणे एषा तृतीया। येनावयवेन समुदायोऽङ्गी द्योत्यते तस्मिन् भवितव्यम्। न चैतेनाऽवयवेन समुदायो द्योत्यते। {येनाऽङ्ग}

सूत्रार्थ—'जिस अङ्ग से अङ्गी का विकार लक्षित हो उससे तृतीया हो'। अक्ष्णा काणः, पादेन खञ्जः। यहाँ अक्षि और पाद में अङ्गी का विकार लक्षित है, अतः उससे तृतीया है।

अङ्गशब्द अवयववाचित्वरूप से प्रसिद्ध है; अतः 'जिस गुण से अङ्ग का विकार लक्षित हो, उससे तृतीया हो' यह अर्थ मान का प्रश्न करते हैं-**इह कस्मादिति**। 'अक्षि काणमस्य' में अक्षि पद से तृतीया क्यों नहीं होती है? 'इह कस्मान्न' का 'इहैव कस्मान्न' ऐसा अर्थ है। कण निमीलने धा.पा.१७१६ इस चौरादिकधातु का अजन्त अथ वा घञन्त 'काण' यह रूप है। अथ वा काणगुणयोग में अभेदव्यवहार होने से 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः' वा.१.४.३९ के द्वारा मतुप् का लुक् होकर काणशब्द से अक्षि वाच्य है। परन्तु इस अर्थ में 'अक्ष्णा काणः' में अक्षि पद से तृतीया प्राप्त नहीं हो सकेगी।

उत्तरभाष्य—**अङ्गाद्विकृतादिति**। यदि विकृत अङ्ग से देवदत्त आदि अङ्गी का प्रकाशन हो रहा हो, तभी विकृत अङ्ग से तृतीया होगी, ऐसा कहना चाहिये।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'अक्षि काणमस्य' में तृतीयावारण के लिए 'अङ्गाद्विकृतादङ्गिनो वचनम्' यह वार्तिक पढना आवश्यक है?

खण्डनभाष्य—**नेति**। 'अक्षि काणमस्य' में तृतीयावारण के लिए उक्त वार्तिक का होना आवश्यक नही है। प्रकृतसूत्र में 'अङ्गानि यस्य सन्ति' इस अर्थ में 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१६२ के द्वारा मतुबर्थ अच्प्रत्ययान्त अङ्गशब्द समुच्चयशब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। 'येन' यह करण में तृतीया है; अतः इससे विकृत अङ्ग लक्षित होगा। अविकृत अङ्ग से अङ्गी का विकार लक्षित करना सम्भव नहीं है। जिस अवयव से समुदाय अङ्गी का द्योतन हो रहा है, उससे तृतीया होगी। 'अक्षि काणमस्य' में अक्षि-समानाधिकरण काण से अवयवी उक्त नही है, अपि तु अवयव उक्त है, यहाँ अवयवी के साथ अवयव विशेषित है; अतः अवयव के प्रधान होने से उसी की विकारप्रतीति हो रही है। {येना-}।

इत्थंभूतलक्षणे २.३.२१

* इत्थंभूतलक्षणे तत्स्थे प्रतिषेधः * **इत्थंभूतलक्षणे तत्स्थे प्रतिषेधो वक्तव्यः। अपि भवान् कमण्डलुपाणिं छात्रमद्राक्षीदिति** * न वेत्थं-भूतस्य लक्षणेनाऽपृथग्भावात् * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'इत्थं-भूतस्य लक्षणेनाऽपृथग्भावात्'। यत्रेत्थंभूतस्य पृथग्भूतं लक्षणं तत्र भवितव्यम्, न चाऽत्रेत्थंभूतस्य पृथग्भूतं लक्षणम्। किं वक्त-व्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? तथा ह्ययं प्राधान्येन लक्षणं प्रतिनिर्दिशति-इत्थंभूतस्य लक्षणमित्थंभूतलक्षणं, तस्मिन्नित्थंभूतलक्षण इति।** {इत्थंभूत}।

'अयं प्रकार इत्थम्, तं प्राप्त इत्थंभूतः'। भू प्राप्तौ धा.पा.१८४५ इस चौरादिक धातु से 'आधृषाद्वा' ग.सू.२०२ से णिच् के अभावपक्ष मे "गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्था-सवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ इत्यादि के द्वारा कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय है। लक्षण का अर्थ ज्ञापक है। सूत्रार्थ-'प्रकारविशेष को प्राप्त का ज्ञापक में तृतीया हो'। जटाभिस्तापसः। 'जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्टः' यह अर्थ है।

जब लक्षणवाचिशब्द लक्ष्यवाचिसमासावयवपरक होगा तब तृतीया न हो, इसके लिए वचन का अरम्भ करते हैं-**इत्थंभूतलक्षणे इति**। 'इत्थंभूतलक्षणे' से तृतीयाविधि में **तत्स्थे**=लक्ष्यवाचिस्थ में तृतीया का निषेध कहना चाहिये। जैसे 'अपि भवान् कमण्डलुपाणिं छात्रमद्राक्षीत्' में 'कमण्डलुः पाणौ यस्य स तम्' ऐसा बहुव्रीहि करने पर कमण्डलुशब्द से तृतीया प्राप्त हो रही है, उसका निषेध कहना चाहिये। इत्थंभूत छात्रत्व को प्राप्त जो छात्र, उसका लक्षण कमण्डलु है।

खण्डनभाष्य—**न वेति**। जो इत्थंभूतल लक्षण पृथक् नहीं है, उसी से तृतीया होगी। जैसे जटा तपस्वी से पृथक् नही है, अतः उससे तृतीया हो जायेगी। परन्तु कमण्डलु छात्र से पृथक् नहीं है; अतः उससे तृतीया नहीं होगी।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। क्या उक्त वाक्य में पृथग्भूत कमण्डलु से तृतीया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न हो, इसके लिए अलग से वचन का निर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—नहीति। 'अपृथग्लक्षणे' यह कहने की आवश्यकता नहीं है। 'इत्थंभूतस्य लक्षणम्' इस विग्रह में षष्ठीसमास होकर 'इत्थंभूतलक्षणम्' यह तत्पुरुषनिर्देश है। तत्पुरुष में उत्तरपदार्थ प्रधान होता है। इस तरह इत्थंभूत का जो लक्षण विशेषण को अप्राप्त प्रधान, उस में तृतीया हो। जैसे 'कमण्डलुना च्छात्रमद्राक्षीत्'। परन्तु बहुव्रीहि में अन्यपदार्थ में विशेषण होने से उससे तृतीया नहीं होगी। {इत्थं-}।

संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि २.३.२२

* संज्ञः कृत्प्रयोगे षष्ठी विप्रतिषेधेन * **संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणीत्येतस्मात् कृद्योगे षष्ठी भवति विप्रतिषेधेन। 'संज्ञोऽन्यतरस्या'-मित्यस्यावकाशः-मातरं संजानीते, मात्रा संजानीते। कृत्प्रयोगे षष्ठ्या अवकाशः- इध्मप्रव्रश्चनः। पलाशशातनः। इहोभयं प्राप्नोति-मातुः संज्ञाता। पितुः संज्ञाता। षष्ठी भवति विप्रतिषेधेन।**

'कर्तृकरणोस्तृतीया' २.३.१८ से 'तृतीया' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'समूपूर्वक ज्ञा धातु के कर्म में विकल्प से तृतीया हो'। मया मम वा सञ्जानीते।

विप्रतिषेधवादी—**संज्ञः कृदिति**। परविप्रतिषेध के द्वारा समूपूर्वक ज्ञा धातु से विहित कृत्प्रत्यय के योग में प्राप्त कृद्‌योगा षष्ठी से 'संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि' का बाध कहना चाहिये। 'मातरं संजानीते, मात्रा संजानीते' में 'संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि' से कर्म में तृतीया चरितार्थ है। 'इध्मस्य प्रव्रश्चनः, पलाशस्य शातनः' में 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५ से कृद्योगा षष्ठी चरितार्थ है। 'मातुः संज्ञाता, पितुः संज्ञाता' में सम्पूर्वक ज्ञा धातु का कर्म मातृ, पितृ पद से कर्म में तृतीया तथा कृद्योग में षष्ठी प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा षष्ठी से तृतीया का बाध होता है।

* उपपदविभक्तेश्चोपपदविभक्तिः * **उपपदविभक्तेश्चोपपदविभक्तिर्भवति विप्रतिषेधेन। 'अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' इत्यस्यावकाशः-अन्यो देवदत्तात्। 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्चे'त्यस्यावकाशः-गोषु स्वामी, गवां स्वामी। इहोभयं प्राप्नोति-अन्यो गोषु स्वामी, अन्यो गवां स्वामीति। 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्चे'तद् भवति विप्रतिषेधेन।**

उपपदविभक्तेश्चेति। परविप्रतिषेध के द्वारा उपपदविभक्ति से भी उपपद-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभक्ति का बाध कहना चाहिये। 'अन्यो देवदत्तात्' में अन्य पद के योग में 'अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९ के द्वारा पञ्चमी चरितार्थ है। 'गोषु स्वामी, गवां स्वामी' में स्वामिपद के योग में 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ के द्वारा षष्ठी और सप्तमी चरितार्थ है। 'अन्यो गोषु स्वामी, अन्यो गवां स्वामी' में अन्यपद के योग में पञ्चमी तथा स्वामिपद के योग में षष्ठी एवं सप्तमी प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ से 'अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९ का बाध होता है।

नैष युक्तो विप्रतिषेधः। नह्यत्र गावोऽन्ययुक्ताः। कस्तर्हि? स्वामी। एवं तर्हि 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्या'-मित्यस्यावकाशः-तुल्यो देवदत्तस्य। तुल्यो देवदत्तेनेति। 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्चे'- त्यस्यावकाशः-स एव। इहोभयं प्राप्नोति-तुल्यो गोभिः स्वामी, तुल्यो गवां स्वामीति। 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्या'मित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। {संज्ञोऽन्य}।

आक्षेपक आचार्य का खण्डनभाष्य—**नैष इति**। 'अन्यो गोषु स्वामी, अन्यो गवां स्वामी' में अन्यपद का स्वामिपद के साथ योग है, गोपद के साथ नहीं; अतः अन्यपद के योग में गोपद से पञ्चमी की आपत्ति नही दी जा सकती है। अब विप्रतिषेधवादी आचार्य अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-**एवं तर्हीति**। 'तुल्यो देवदत्तस्य, तुल्यो देवदत्तेन' में 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' २.३.७२ चरितार्थ है तथा 'गोषु स्वामी, गवां स्वामी' में 'स्वामीश्वराधि- पतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३.३९ चरितार्थ है। 'तुल्यो गोभिः स्वामी, तुल्यो गवां स्वामी' में उक्त दोनों की सहप्रवृत्ति होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' २.३.७२ से 'स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च' २.३. ३९ का बाध होता है। {संज्ञोऽन्यतरस्याममू-}।

हेतौ २.३.२३

*** निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम् * निमित्तकारणहेतुषु सर्वा विभक्तयः प्रायेण दृश्यन्त इति वक्तव्यम्। किं निमित्तं वसति। केन निमित्तेन वसति। कस्मै निमित्ताय वसति। कस्माद् निमित्ताद् वसति। कस्य निमित्तस्य वसति। कस्मिन् निमित्ते वसति। किं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणं वसति। केन कारणेन वसति। कस्मै कारणाय वसति। कस्मात् कारणाद् वसति। कस्य कारणस्य वसति। कस्मिन् कारणे वसति। को हेतुर्वसति। कं हेतुं वसति। केन हेतुना वसति। कस्मै हेतवे वसति। कस्माद्धेतोर्वसति। कस्य हेतोर्वसति। कस्मिन् हेतौ वसति। {हेतौ}।

सूत्रार्थ—'हेतु अर्थ में तृतीया हो' द्रव्यादिसाधारण एवं निर्व्यापारसाधारण हेतुत्व होता है।

वार्तिक—**निमित्तकारणेति**। निमित्त, कारण तथा हेतु पद का प्रयोग होने पर सभी विभक्तियों का **प्राय**=बाहुल्यरूप से प्रयोग होता है। 'किं निमित्तं वसति' से आरम्भ कर 'कस्मिन् हेतौ वसति' तक सभी का उदाहरण मूल में स्पष्ट है। {हेतौ}।

अपादाने पञ्चमी २.३.२८

* पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् * **पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चम्या उपसंख्यानं कर्तव्यम्। प्रासादमारुह्य प्रेक्षते- प्रासादात् प्रेक्षते** * अधिकरणे च * **अधिकरणे चोपसंख्यानं कर्तव्यम्। आसनात् प्रेक्षते। शयनात् प्रेक्षते** * प्रश्नाख्यानयोश्च * **प्रश्नाख्यान- योश्च पञ्चमी वक्तव्या। कुतो भवान्? पाटलिपुत्रात्** * यतश्चाऽध्वकाल- निर्माणम् * **यतश्चाऽध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी वक्तव्या। गवीधुमतः साङ्काश्यं चत्वारि योजनानि। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे** * तद्युक्तात् काले सप्तमी * **तद्युक्तात् काले सप्तमी वक्तव्या। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे** * अध्वनः प्रथमा च * **अध्वनः प्रथमा च सप्तमी च वक्तव्या। गवीधुमतः साङ्काश्यं चत्वारि योजनानि। गवीधुमतः साङ्काश्यं चतुर्षु योजनेषु।**

सूत्रार्थ—'अपादान में पञ्चमी हो'। प्रयागात् काशी गच्छति।

वार्तिक—**पञ्चमीविधान इति**। ल्यप्प्रत्ययान्त का लोप होने पर उसके कर्म में पञ्चमी कहनी चाहिये। 'प्रासादमारुह्य प्रेक्षते' इस वाक्य में 'आरुह्य' इस ल्यबन्त का कर्म 'प्रासादम्' पद है; अतः कर्म पद से पञ्चमी होगी-'प्रासादात् प्रेक्षते'। **अधिकरणे चेति**। पञ्चमीविधान में ल्यबन्त पद का कर्मवाचक पद से अधिकरण में पञ्चमी कहनी चाहिये। जैसे 'आसनमारुह्य प्रेक्षते' में ल्यबन्त पद का लोप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर यहाँ सप्तमी का अपवाद पञ्चमी होती है-'आसनात् प्रेक्षते, शयनात् प्रेक्षते'। वार्तिक-**प्रश्नाख्यानयोश्चेति**। प्रश्न तथा **आख्यान**=उत्तर में भी पञ्चमी कहनी चाहिये। 'कुतो भवान्'? इस प्रश्न में 'कुतः' पञ्चम्यन्त है। 'पाटलिपुत्रात्' इस उत्तर में भी पञ्चमी है। वार्तिक-**यतश्चेति**। जहाँ से **अध्वा**=मार्ग तथा काल का निर्माण होता हो, वहाँ पञ्चमी कहनी चाहिये। जैसे **मार्ग**-गवीधुमनामक स्थान से साङ्काश्यनामक स्थान चार योजन है। **काल**-कार्तिक से अगहन एक मास है। गवीधुम से अध्वा तथा कार्तिक से काल का निर्माण होने से यहाँ पञ्चमी है। वार्तिक-**तद्युक्तादिति**। तद्=कालयुक्त में पञ्चम्यन्तार्थ के साथ जो युक्त मास आदि, तद्वाची से सप्तमी कहनी चाहिये। जैसे 'कार्तिक से अगहन एक मास है'। वार्तिक-**अध्वनः प्रथमेति**। पञ्चम्यन्त से युक्त अध्ववाची से प्रथमा तथा सप्तमी दोनों कहनी चाहिये। जैसे 'गवीधुमतः साङ्काश्यं चत्वारि योजनानि चतुर्षु योजनेषु'।

तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'अपादाने' इत्येव सिद्धम्। इह तावत् 'प्रासादात् प्रेक्षते, शयनात् प्रेक्षते इति,- * अपक्रामति तत् तस्माद् दर्शनम् *** यद्यपक्रामति किं नाऽत्यन्तायाऽपक्रामति? *** संततत्वात् *** अथ वा *** अन्यप्रादुर्भावात् *** अन्या चाऽन्या च प्रादुर्भवति। प्रश्नाख्यानयोश्च पञ्चमी वक्तव्येति,-इदमत्र प्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते-कुतो भवानागच्छतीति, पाटलिपुत्रादागच्छामीति। यतश्चाऽध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी वक्तव्येति,-इदमत्र प्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते-गवीधुमतो निःसृत्य साङ्काश्यं चत्वारि योजनानि। आर्तिक्या आग्रहायणी मासे इति,-इदमत्र प्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते-कार्तिक्याः प्रभृत्याग्रहायणी मास इति। तद्युक्तात् काले सप्तमी वक्तव्येति,-इदमत्र प्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते-कार्तिक्या आग्रहायणी गते मास इति। अध्वनः प्रथमा च सप्तमी चेति,-इदमत्र प्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते-गवीधुमतो निःसृत्य यदा चत्वारि योजनानि गतानि भवन्ति, ततः साङ्काश्यम्। चतुर्षु योजनेषु गतेषु ततः साङ्काश्यमिति। {अपादाने पञ्चमी}।**

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीदमिति**। क्या 'ल्यब्लोपे कर्मणि' से आरम्भ कर 'अध्वनः प्रथमा च' पर्यन्त जितना वार्तिक पढा है उतना पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है, वहाँ सर्वत्र अपादान में ही पञ्चमी सिद्ध हो जायेगी। 'प्रासादात् प्रेक्षते,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शयनात् प्रेक्षते' में **दर्शन**=चक्षुरिन्द्रिय तेजोरूप को प्राप्त होकर विषयग्राही होने से प्रासाददेश तथा शयनदेश से निकल कर विषयदेश में जाती है; अतः यहाँ अपादान में ही पञ्चमी हो जायेगी, इसे बताते हैं-**अपक्रामति तत्तस्मादिति**। क्षणिकपक्ष में भेद मान कर भी समाधान करते हैं-**अथ वेति**। अन्य-अन्य तेजोरूप इन्द्रिय के उत्पन्न होने से यहाँ अपादान है। एवं जो 'प्रश्नाख्यानयोश्च' वार्तिक पढा था उसकी भी आवश्यकता नहीं है। 'कुतो भवान्'? इस प्रश्न में 'आगच्छति' इतना शेष है; अतः यहाँ भी क्रिया के प्रति अपादानत्व होने से अपादान में ही पञ्चमी हो जायेगी। 'यतश्चाध्वकालनिर्माणम्' यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है। इसका जो उदाहरण दिया था वहाँ 'निःसृत्य' क्रिया शेष है; अतः उसके प्रति अपादानत्व होने से यहाँ पर भी गवीधुम पद से अपादान में ही पञ्चमी हो जायेगी। इस वार्तिक में काल का जो उदाहरण दिया था वहाँ पर भी '**प्रभृत्य**=आरभ्य' यह क्रियापद शेष है; अतः आरम्भक्रिया के प्रति अपादानत्व होने से यहाँ भी कार्तिकी पद से अपादान में ही पञ्चमी हो जायेगी। 'तद्युक्तात् काले सप्तमी' यह भी नहीं पढना चाहिये। इसके उदाहरण में 'गते' इतना पद शेष है; अतः यहाँ 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' २.३.३७ से ही सप्तमी हो जायेगी। 'अध्वनः प्रथमा च' यह भी पढने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ इसके उदाहरण में भी 'भवन्ति'क्रिया के शेष होने से उसके योग में कर्ता उक्त होने पर प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा हो जायेगी। एवं 'गतेषु' के शेष होने पर 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' २.३.३७ से 'चतुर्षु योजनेषु' में सप्तमी हो जायेगी। इसत तरह सर्वत्र अपादान में ही पञ्चमी, उक्त होने से प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा तथा अन्यत्र सति सप्तमी होने से उक्त वार्तिकों का आरम्भ नहीं करना चाहिये था। {अपादाने-}।

अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते २.३.२९

अञ्चूत्तरपदग्रहणं किमर्थं, न दिक्शब्दैर्योग इत्येव सिद्धम्? षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेनेति वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपकर्षः। {अन्यारा}।

युजिर् योगे धा.पा.१४४५ से भाव में क्त प्रत्यय करके युक्त पद का निर्देश है। 'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ से 'पञ्चमी' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'अन्य, आरात्, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच् तथा आहि के योग में पञ्चमी हो'।

प्रश्नभाष्य—**अञ्चूत्तरपदेति**। अञ्चूत्तरपद प्राक्, प्रत्यक् आदि भी दिक्शब्द हैं; अतः दिक्शब्द के योग में पञ्चमीविधान से ही प्राक्, प्रत्यक् आदि अञ्चूत्तरपद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के योग में पञ्चमी सिद्ध हो जायेगी, फिर अञ्चूत्तरपद के योग में पञ्चमीविधान क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**षष्ठ्यतसर्थेति**। 'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' ५.३.२७ से 'आहि च दूरे' ५.३.३७, 'उत्तराच्च' ५.३.३८ पर्यन्तसूत्रों के द्वारा दिग्वाची, देशवाची तथा कालवाचिशब्दों से स्वार्थ में प्रत्यय विहित है। उन सूत्रों के मध्य 'दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्' ५.३.२८ के द्वारा अतसुच् प्रत्यय विहित है; उसका अर्थ दिग्रूप, देशरूप तथा कालरूप है। 'दिग्, देश और कालरूप है अर्थ जिसका, ऐसा जो अतसर्थप्रत्यय, उसके योग में षष्ठी हो' यह 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० का अर्थ है। यद्यपि अतसर्थप्रत्ययों में अस्ताति ही प्रथम है; संयुक्ताक्षरघटित होने से वह गौरवग्रस्त है; अतः उसका प्रयोग नहीं करके लाघवानुरोध से 'अतसर्थ' ऐसा कहा है। इस तरह यहाँ भाष्यकार का हृदय ऐसा समझना चाहिये-सूत्रकार अतसर्थ के योग में षष्ठी का विधान करने वाले हैं, उसका अपवाद यहाँ अञ्चूत्तरपद का ग्रहण किया गया है। {अन्यारादितर-}।

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन २.३.३०

अर्थग्रहणं किमर्थम्? 'षष्ठ्यतस्प्रत्ययेने'त्युच्यमाने इहैव स्यात्-दक्षिणतो ग्रामस्य, उत्तरतो ग्रामस्येति। इह न स्यात्-उपरि ग्रामस्य, उपरिष्टाद् ग्रामस्येति। अर्थग्रहणे पुनः क्रियमाणेऽतस्प्रत्ययेन च सिद्धं भवति। यश्चाऽन्यस्तेन समानार्थः।

'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९. इस सूत्र में अञ्चूत्तरपद के योग में पञ्चमी विहित है, उसका अपवाद प्रकृत सूत्र है। इसका अर्थ-'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९ की ज्योत्स्ना में स्पष्ट है। इसका उदाहरण 'ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्' है।

प्रश्नभाष्य—**अर्थग्रहणमिति**। अर्थपद का निर्देश नहीं करके मात्र 'षष्ठ्यतस्प्रत्ययेन' इतना ही सूत्रपाठ क्यों नहीं किया गया है?

उत्तरभाष्य—**षष्ठ्यतस्प्रत्ययेनेति**। यदि प्रकृतसूत्र को अर्थपद रहित 'षष्ठ्यतस्प्रत्ययेन' इतना ही पढते तो अतसन्त के योग में 'दक्षिणतो ग्रामस्य, उत्तरतो ग्रामस्य' में ही षष्ठी होती, 'उपरि ग्रामस्य, उपरिष्टाद् ग्रामस्य' में षष्ठी नहीं होती, जब्र कि यहाँ भी षष्ठी इष्ट है; अतः अर्थपद का ग्रहण करते हैं। इससे अतसन्त के योग में भी षष्ठी होती है तथा अतसर्थ में जो अन्य प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्तातिआदि हैं उसके योग में भी षष्ठी होने से 'उपरि ग्रामस्य, उपरिष्टाद् ग्रामस्य' में भी षष्ठी हो जाती है।

अथ प्रत्ययग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूत्-प्राग्ग्रामात्, प्रत्यग्ग्रामात्। अञ्चूत्तरपदस्याऽप्येतत् प्रयोजनमुक्तम्। तत्राऽन्यतरच्छक्यमवक्तुम्। {षष्ठ्यतस}।

प्रश्नभाष्य—**अथ प्रत्ययेति**। प्रकृतसूत्र में प्रत्ययपद का निर्देश किस लिए है?

उत्तरभाष्य—**इह मा भूदिति**। यदि यहाँ प्रत्ययपद का निर्देश नहीं करेंगे तो 'षष्ठ्यतसर्थेन' इतना मात्र सूत्र होगा। इससे अतसर्थ में जो भी होगा उसके योग में षष्ठी प्राप्त होने से 'प्राग्ग्रामात्, प्रत्यग्ग्रामात्' में भी प्राक् और प्रत्यक्पद के अतसर्थ में होने से उसके योग में ग्रामपद से षष्ठी की आपत्ति होगी। परन्तु जब प्रत्ययग्रहण करते हैं तब प्रत्यय के द्वारा अतसर्थ के उक्त होने पर ही उसके योग में षष्ठी होगी, अन्यत्र नहीं। 'प्राग्ग्रामात्' आदि में प्रकृति के द्वारा अतसर्थ उक्त है, प्रत्यय के द्वारा नहीं है; अतः यहाँ षष्ठी की आपत्ति नहीं होती है। अञ्चूत्तरपद २.३.२९ ग्रहण का भी यही प्रयोजन बताया है; अतः दोनों का एक ही प्रयोजन होने से किसी एक को छोडा भी जा सकता था। {षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन}।

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २.३.३२

* पृथगादिषु पञ्चमीविधानम् * **पृथगादिषु पञ्चमी विधेया। पृथग्देवदत्तात्। किमर्थं, न प्रकृतं पञ्चमीग्रहणमनुवर्तते? क्व प्रकृतम्? 'अपादाने पञ्चमी'ति** * अनधिकाराच्च * **अनधिकारः सः** * अधिकारे हि द्वितीयाषष्ठीविषये प्रतिषेधः * **अधिकारे हि द्वितीयाषष्ठीविषये प्रतिषेधो वक्तव्यः स्यात्। दक्षिणेन ग्रामम्, दक्षिणतो ग्रामस्येति। एवं तर्हि-अन्यतरस्यांग्रहणसामर्थ्यात् पञ्चमी भविष्यति।**

'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ से 'पञ्चमी' पद की तथा 'एनपा द्वितीया' २.३.३१ से 'द्वितीया' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'पृथक्, विना तथा नाना पद के योग में तृतीया एवं पक्ष में पञ्चमी एवं द्वितीया हो'। पृथक् कृष्णेन कृष्णात् कृष्णं वा।

वार्तिक—**पृथगादिष्विति**। 'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ में 'पञ्चमी' पद का अधिकार नही होने से प्रकृतसूत्र में उसका अनुवर्तन नहीं है; अतः पृथक् इत्यादि के योग में पञ्चमी प्राप्त नहीं हो रही है। इससे पृथक् इत्यादि के योग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में 'पृथग् देवदत्तात्' इत्यादि में पञ्चमीविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढना चाहिये। 'अपादाने पञ्चमी'घटक पञ्चमीपद का अधिकार मानने पर मध्य का सूत्र 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० तथा 'एनपा द्वितीया' २.३.३१ में भी उसका सम्बन्ध होने से उक्त द्वितीया एवं षष्ठी का विषय 'दक्षिणेन ग्रामम्' तथा 'दक्षिणतो ग्रामस्य' में भी पञ्चमी की आपत्ति होगी जिसका निषेध कहना पडेगा; इसे बताते हैं-**अधिकारे हीति**।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। आचार्य प्रकृतसूत्र में 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण करते हैं, उसके सामर्थ्य से पञ्चमी हो जायेगी; अतः अतिरिक्तवचन की आवश्यक्ता नही है। 'अन्यतरस्याम्' यह अव्ययपद का निर्देश है। अव्यय अनेकार्थक होते हैं; अतः उससे पञ्चमी का समुच्चय हो जायेगा, यह भाष्यकार का हृदय है।

अस्त्यन्यदन्यतरस्यांग्रहणस्य प्रयोजनम्। किम्? यस्यां नाऽप्राप्तायां तृतीयाऽऽरभ्यते सा यथा स्यात्। कस्यां च नाऽप्राप्तायाम्। अन्ततः षष्ठ्याम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'अपादाने पञ्चमी'ति। ननु चोक्तम्-अनधिकारः सः, अधिकारे हि द्वितीयाषष्ठीविषये प्रतिषेध' इति। एवं तर्हि सम्बन्धमनुवर्तिष्यते-'अपादाने पञ्चमी'। अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते पञ्चमी। 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन'। अन्यारादिभिर्योगे पञ्चमी। 'एनपा द्वितीया'। अन्यारादिभिर्योगे पञ्चमी। 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्'। पञ्चमीग्रहणमनुवर्तते, 'अन्यारादिभिर्योगे' इति निवृत्तम्।

भाष्यकार के आशय से अनभिज्ञ आचार्य आशङ्का करते हैं-**अस्त्यन्यदिति**। **अन्ततः**=अवसानतः षष्ठी प्राप्त होने पर तृतीया का आरम्भ है; अतः 'तृतीया ही हो, षष्ठी नहीं' इसके लिए अव्ययपद का निर्देश है; अतः वह पञ्चमी का समुच्चय नहीं करा सकेगी।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या पृथक् आदि के योग में पञ्चमीविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। पृथक् आदि पदों के योग में पञ्चमीविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। 'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ से 'पञ्चमी' का अधिकार हो जायेगा। 'इसके अधिकार में 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० तथा 'एनपा द्वितीया' २.३.३१ के विषय में पञ्चमी की आपत्ति होने से उसका प्रतिषेध कहना पडेगा' ऐसा जो कहा था, वह दोष नहीं रहेगा। वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस तरह कि जिन सूत्रों में पञ्चमी २.३.२८ पद का सम्बन्ध होना है, उसकी व्याख्या कर देंगे। इससे मध्य में षष्ठी और द्वितीया के विषय में पञ्चमी की आपत्ति नहीं होगी।

अथ वा * मण्डूकगतयोऽधिकाराः * **तद्यथा मण्डूका उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छन्ति तद्वदधिकाराः। अथ वा** * अन्यवाचनाच्चकाराऽकरणात् प्रकृतस्याऽपवादो विज्ञायते यथोत्सर्गेण प्रसक्तस्य * **अन्यस्या विभक्तेर्वचनाच्चकारस्यानुकर्षणार्थस्याऽकरणात् प्रकृतायाः पञ्चम्या द्वितीयाषष्ठ्यौ बाधिके भविष्यतः। 'यथोत्सर्गेण प्रसक्तस्य'। यथोत्सर्गेण प्रसक्तस्यापवादो बाधको भवति। अथ वा वक्ष्यत्येतद्-'अनुवर्तन्ते च नाम विधयो, न चानुवर्तनादेव भवन्ति। किं तर्हि? यत्नाद् भवन्ती'ति।** {पृथग्विना}।

अन्य प्रकार से भी षष्ठी और द्वितीया के विषय में पञ्चमी की आपत्ति का निरास करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा मडूकप्लुति की तरह हम 'पञ्चमी' पद का अधिकार करेंगे। जैसे मडूक कूद-कूद कर चलता है। मध्य की भूमि से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता है। वैसे 'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ में निर्दिष्ट पञ्चमी पद को षष्ठी तथा द्वितीया में सम्बन्ध किये विना ही पृथक् आदि में अधिकार करेंगे। इससे मध्य में षष्ठी तथा द्वितीया के विषय में पञ्चमी की आपत्ति नहीं होने से उसका प्रतिषेधवचन नहीं कहना पडेगा। अन्य प्रकार से भी इस दोष का मार्जन करते हैं-**अन्यवचनादिति**। 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० तथा 'एनपा द्वितीया' २.३.३१ से अन्य विभक्ति क्रमशः षष्ठी तथा द्वितीया विहित है। वह दोनों ही पञ्चमी की बाधिका होगी। अथ वा यहाँ पञ्चमी का समुच्चय कराने के लिए उक्त दोनों सूत्रों में कोई भी समुच्चयार्थक 'च' आदि पदों का निर्देश आचार्य ने नही किया है; अतः षष्ठी तथा द्वितीया के विषय में पञ्चमी की प्राप्ति ही नहीं होगी। अन्य प्रकार से भी इस दोष का मार्जन करते हैं-**अथ वेति**। आचार्य आगे बतायेंगे-'मात्र अनुवर्तन से कोई विधि प्राप्त नहीं होती है; अपि तु यत्न से होती है'। आचार्य ने षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० तथा 'एनपा द्वितीया' २.३.३१ सूत्र पर पञ्चमी का समुच्चय करने के लिए 'अन्यतरस्याम्'ग्रहणरूप यत्न नही किया है; अतः षष्ठी और द्वितीया के विषय में पञ्चमी की आपत्ति ही नही है। {पृथग्विना-}।

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च २.३.३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* दूरान्तिकार्थेभ्यः पञ्चमीविधाने तद्युक्तात् पञ्चमीप्रतिषेधः * **दूरान्तिकार्थेभ्यः पञ्चमीविधाने तद्युक्तात् पञ्चम्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः। दूराद् ग्रामस्य** * न वा तत्रापि दर्शनादप्रतिषेधः * **अनर्थकः प्रतिषेधोऽप्रतिषेधः। न वा तत्रापि दर्शनात् पञ्चम्याः प्रतिषेधोऽनर्थकः। तत्रापि हि पञ्चमी दृश्यते—**

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम्।
दूराच्च भाव्यं दस्युभ्यो दूराच्च कुपिताद् गुरोः।।

'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ से 'पञ्चमी' तथा 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्' २.३.३२ से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक पद से द्वितीया, पञ्चमी तथा तृतीया हो'। 'दूरम्, दूराद्, दूरेण वा; अन्तिकम्, अन्तिकाद्, अन्तिकेन वा'। 'करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्याऽसत्त्ववचनस्य' २.३.३३ से प्रकृतसूत्र में 'असत्त्ववचनस्य' की अनुवृत्ति होती है; अतः दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक के सत्त्ववचन होने पर द्वितीया आदि नहीं होगी, अपि तु द्रव्यसमानाधिकरण अन्यविभक्ति होगी-दूरः पन्थाः।

निषेधवादी आचार्य—**दूरान्तिकार्थेभ्य इति**। दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक से पञ्चमीविधि में जिसकी अपेक्षा से दूर और अन्तिक है, तद्वाची से भी पञ्चमी प्राप्त हो रही है, उसका निषेध कहना चाहिये। सामान्यरूप से दूरार्थयुक्त तथा अन्तिकार्थयुक्त से निषेध कहने पर पूर्वसूत्रस्थ 'अन्यतरस्याम्' पद का निर्देश व्यर्थ होने लगेगा; वह न हो इसके लिए प्रकृत वार्तिक में 'पञ्चमीविधाने' यह पद सार्थक है। इसका उदाहरण देते हैं-**दूराद् ग्रामस्येति**। यहाँ दूर पद से युक्त ग्राम पद है; अतः ग्राम पद से भी पञ्चमी प्राप्त हो रही है, उसका प्रतिषेध कहना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**न वा तत्रेति**। जिसकी अपेक्षा से दूर अथ वा अन्तिक बताया जा रहा है उससे भी पञ्चमी होती है। इसे श्लोक के द्वारा उद्धृत करते हैं-**दूरादावसथादिति**। दूर से युक्त आवसथ, दस्यु तथा कुपित पद से भी पञ्चमी है; अतः यहाँ प्रतिषेध अनर्थक है। {दूरा-}।

सप्तम्यधिकरणे च २.३.३६

* सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् * **सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानं कर्तव्यम्। अधीती व्याकरणे। परिगणिती याज्ञिक्ये। आम्नाती छन्दसि** * साध्वसाधुप्रयोगे च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तमी * साध्वसाधुप्रयोगे च सप्तमी वक्तव्या। साधुर्देवदत्तो मातरि। असाधुः पितरि।

सूत्रार्थ—'अधिकरण में सप्तमी हो'। चकारग्रहण से दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक से भी सप्तमी कहनी चाहिये। औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापकभेद से आधार तीन प्रकार का होता है। जैसे औपश्लेषिक-'कटे आस्ते, वटे गावः शेरते'। वैषयिक-'मोक्षे इच्छाऽस्ति, मिष्टाने इच्छाऽस्ति'। अभिव्यापक-'इक्षुषु रसः, दध्नि सर्पिः'। दूर और अन्तिक पद से 'ग्रामस्य दूरे, अन्तिके वा'।

वार्तिक—**सप्तमीविधान इति**। इनुप्रत्ययान्त जो क्तप्रत्ययान्त, उसके कर्म में सप्तमी कहनी चाहिये। अधिपूर्वक इङ् अध्ययने धा.पा.१०४६ भावार्थक क्तप्रत्यय होकर उससे 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से कर्ता में इनिप्रत्यय होकर 'अधीती' रूप है। 'व्याकरणम् अधीतवान्' इस अर्थ में 'अधीती व्याकरणे' यह प्रयोग है। यहाँ कर्मवाचकपद व्याकरण से सप्तमी है। एवं 'याज्ञिक्यं परिगणितवान्' में कर्मवाचक पद याज्ञिक्य तथा 'छन्दः आम्नातवान्' में कर्मवाचक पद छन्दः से क्तान्त इन्नन्त के योग में सप्तमी होकर 'परिगणिती याज्ञिक्ये, आम्नाती च्छन्दसि' प्रयोग है। वार्तिक-**साध्वसाधुप्रयोगे चेति**। साधु तथा असाधु पद का प्रयोग होने पर भी सप्तमी कहनी चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-'साधुर्देवदत्तो मातरि' इत्यादि।

* कारकार्हाणां च कारकत्वे * **कारकार्हाणां च कारकत्वे सप्तमी वक्तव्या। ऋद्धेषु भुञ्जानेषु दरिद्रा आसते। ब्राह्मणेषु तरत्सु वृषला आसते** * अकारकार्हाणां चाऽकारकत्वे * **अकारकार्हाणां चाऽकारकत्वे सप्तमी वक्तव्या। मूर्खेष्वासीनेषु ऋद्धा भुञ्जते। वृषलेष्वासीनेषु ब्राह्मणास्तरन्ति** * तद्विपर्यासे च * **तद्विपर्यासे च सप्तमी वक्तव्या। ऋद्धेष्वासीनेषु मूर्खा भुञ्जते। ब्राह्मणेष्वासीनेषु वृषलास्तरन्ति।**

वार्तिक—**कारकार्हाणामिति**। यहाँ कारकशब्द भावप्रधान है। जिनमें क्रियार्हता है, उनकी क्रियाकारिता होने पर सप्तमी कहनी चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-**ऋद्धेष्विति**। भोजनक्रियाकारिता **ऋद्ध**=धनी लोगों में होने से यहाँ भोजनक्रिया की अर्हता है। इसी तरह 'ब्राह्मणेषु तरत्सु वृषला आसते' में भी समझना चाहिये। वार्तिक-**अकारकार्हाणामिति**। जिनमें क्रियार्हता नहीं है उसकी क्रियार्हता नहीं होने पर भी सप्तमी कहनी चाहिये। जैसे 'मूर्खों के बैठे रहने पर **ऋद्ध**=धनी भोजन करते हैं' इत्यादि। यहाँ मूर्खों में भोजनक्रियाकारिता की अर्हता नहीं है। इसी तरह का अन्वय 'वृषलेषु आसीनेषु ब्राह्मणास्तरन्ति' में भी करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिक-**तद्विपर्यासे चेति**। 'कारकार्हाणां च कारकत्वे' के उल्टा होने पर भी सप्तमी कहनी चाहिये। जैसे-**ऋद्धेष्विति**। 'भोजनक्रिया ऋद्ध में तथा तरणक्रिया ब्राह्मण में होती है' यह दोनों की स्वाभाविकयोग्यता है। परन्तु यदि विपरीत होने से भोजनक्रिया की अर्हता दरिद्र में तथा अनर्हता ऋद्ध में, एवं तरणक्रिया की अर्हता वृषल में तथा अनर्हता ब्राह्मण में हो जाये तब यह प्रयोग है। यहाँ उक्त के विपरीत होने पर भी सप्तमी है।

* निमित्तात् कर्मसंयोगे * **निमित्तात् कर्मसंयोगे सप्तमी वक्तव्या।**

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः।।

वार्तिक—**निमित्तादिति**। यहाँ निमित्तपद के द्वारा क्रियाफल विवक्षित है। जिसके लिए क्रिया का आरम्भ होता है उससे हेतु में तृतीया प्राप्त होने पर कर्मसंयोग में सप्तमी का विधान है। उसका उदाहरण श्लोक में प्रस्तुत करते हैं-**चर्मणीति**। 'चर्मार्थं व्याघ्रं हन्ति' यह अर्थ है। यहाँ 'हन्ति'क्रिया का कर्म द्वीपी के साथ चर्म का समवाय है। इसी तरह 'दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्' इत्यादि में भी समन्वय करना चाहिये। {सप्तम्यधि-}।

यस्य च भावेन भावलक्षणम् २.३.३७

* भावलक्षणे सप्तमीविधानेऽभावलक्षणे उपसंख्यानम् * **भावलक्षणे सप्तमीविधानेऽभावलक्षणे उपसंख्यानं कर्तव्यम्। अग्निषु हूयमानेषु प्रस्थितो, हुतेष्वागतः। गोषु दुह्यमानासु प्रस्थितो, दुग्धास्वागतः। किं पुनः कारणं न सिध्यति? लक्षणं नाम तद् भवति येन पुनः पुनर्लक्ष्यते। सकृच्चाऽसौ कथं चिदग्निषु हूयमानेषु प्रस्थितो, हुतेष्वागतः। गोषु दुह्यमानासु प्रस्थितो, दुग्धास्वागतः।**

यहाँ सूत्र में दोनों ही भावशब्द क्रिया के पर्याय हैं; अतः सूत्रार्थ-'जिसकी क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित हो उससे सप्तमी हो'। क्रिया कर्ता तथा कर्म में आश्रित होती है; अतः कर्तृवाचक तथा कर्मवाचक पद से ही सप्तमी होगी। जैसे कर्तृनिष्ठा क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित होने पर 'वृष्टे देवे गतः। कर्मनिष्ठा क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित होने पर-'वेदेषु पठ्यमानेषु आगतः'।

वार्तिक—**भावलक्षणे इति**। भावलक्षण में सप्तमीविधि में अभावलक्षण में भी सप्तमी कहनी चाहिये। इससे 'अग्निषु हूयमानेषु प्रथितः? गोषु दुह्यमानासु प्रस्थितः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस भावलक्षण में सप्तमी होती है तथा 'हुतेषु आगतः, दुग्धासु आगतः' इस अभावलक्षण में भी सप्तमी हो जाती है।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि अभावलक्षण में सप्तमी नहीं हो पा रही है? एकदेशी-**लक्षणं नामेति**। लक्षण वह होता है जो लक्ष्य में बराबर बना रहे। जैसे-गो में सास्ना। परन्तु एक वार ही अग्नि के हूयमान होने पर गया तथा हुत होने पर आया। एवम् एक वार ही गायों के दुह्यमान होने पर गया तथा दोहन समाप्त होने पर आया; अतः यहाँ गमनक्रिया तथा आगमनक्रिया के एक वार ही होने से वह लक्षण नहीं हो सकता है; अतः अभावलक्षण में सप्तमी अप्राप्त होने से वार्तिकावतार है।

*** सिद्धं तु भावप्रवृत्तौ यस्य भावारम्भवचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'भावप्रवृत्तौ यस्य भावारम्भवचनात्'। यस्य भावप्रवृत्तौ द्वितीयो भाव आरभ्यते तत्र सप्तमी वक्तव्या। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तम्-'भावलक्षणे सप्तमीविधानेऽभाव-लक्षण उपसंख्यान'मिति। नैष दोषः। न खल्ववश्यं तदेव लक्षणं भवति येन पुनः पुनर्लक्ष्यते। सकृदपि यन्निमित्तत्वाय कल्पते तदपि लक्षणं भवति। तद्यथा-अपि भवान् कमण्डलुपाणिं छात्रमद्राक्षीदिति। सकृदसौ कमण्डलुपाणिर्दृष्टश्छात्रस्तस्य तदेव लक्षणं भवति।**

अन्य आचार्य—**सिद्धं त्विति**। जिस **भाव**=क्रिया की प्राप्ति होने पर द्वितीय **भाव**=क्रिया का आरम्भ होता है, उससे सप्तमी कहनी चाहिये। इससे 'हुतेषु' एवं 'दुग्धासु' में भी सप्तमी सिद्ध हो जायेगी। आक्षेपक-**सिध्यतीति**। 'भावप्रवृत्तौ यस्य भावारम्भवचनात्' ऐसा कहने से उक्त स्थल 'हुतेषु, दुग्धासु' में भी सप्तमी सिद्ध हो जा रही है। परन्तु इससे सूत्रभेदरूप दोष स्पष्ट है। भाष्यकार सूत्र के यथान्यास में ही उक्त दोष का मार्जन कर रहे हैं-**यथान्यासमेवेति**। सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। इसके यथान्यासपक्ष में दोष दिया था कि 'एक वार दर्शन होने से कोई वस्तु लक्षण नहीं होती है, अपि तु वार-वार **दर्शन**= उपलब्ध होने पर कोई वस्तु लक्षण होती है'; वस्तुतः यह सिद्धान्त नहीं है; अपि तु एक वार की भी **दर्शन**=उपलब्धता लक्षण बन जाती है। जैसे किसी ब्रह्मचारी छात्र ने एक दिन भी हाथ में कमण्डलु धारण कर लिया तो वह उसका **लक्षण**=व्यावर्तक हो जाता है; अतः जो निर्ज्ञात काल हवन आदि है, उसकी उपलब्धता एक वार भी होने पर वह अनिर्ज्ञात काल का कालनिमित्त बन जाता है तथा वही उसका लक्षण होता है।{यस्य-}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चमी विभक्ते २.३.४२

इह कस्मान्न भवति-कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमेति? विभक्त इत्युच्यते, न चैतद् विभक्तम्। विभक्तमेतत्। गोभ्यः कृष्णा विभज्यते। विभक्तमेव यन्नित्यं तत्र भवितव्यं, न चैतन्नित्यं विभक्तम्। किं वक्तव्यमेतत्? नहि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? विभक्तग्रहण-सामर्थ्यात्। यदि यद् विभक्तं चाऽविभक्तं च तत्र स्याद् विभक्त-ग्रहणमनर्थकं स्यात्। {पञ्चमी वि}।

वि पूर्वक भज सेवायाम् धा.पा.९९८ से भाव में क्त प्रत्यय है। विभक्त का अर्थ विभाग है। सूत्रार्थ-'निर्धार्यमाण का जहाँ भेद हो वहाँ पञ्चमी हो'। माधुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। 'कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमा' में अन्य गायों से कृष्णा गाय का विभाग है, अतः गो पद से पञ्चमी क्यों नहीं होती है? 'कृष्णा भी गाय है तथा उसका गोत्व में अन्तर्भाव है' ऐसा मान कर आक्षेप करते हैं-**न चैतदिति**। क्या यहाँ विभाग नहीं है? अन्य आचार्य-**विभक्तमेवेति**। जो नित्य विभक्त हो उसी से पञ्चमी होगी। कृष्णा गाय इतर गायों से नित्य विभक्त है; अतः उससे पञ्चमी नहीं होती होगी।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। क्या नित्यविभक्त से पञ्चमीविधान के लिए अतिरिक्त-वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नहीति**। इसके लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य विभक्तग्रहण कर रहे हैं। यदि विभक्त तथा अविभक्त दोनों में पञ्चमी होगी तो विभक्तग्रहण व्यर्थ होने लगेगा; अतः विभक्तग्रहणसामर्थ्य से जो नित्यविभक्त है उसी का ग्रहण होगा, अन्य का नहीं। {पञ्चमी विभक्ते}।

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः २.३.४३

* अप्रत्यादिभिः * **अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति, मातरं परि, मातरमनु। {साधु}।**

सूत्रार्थ—'**अर्चा**=पूजा अर्थ गम्य होने पर साधु और निपुण पद के योग में सप्तमी हो, परन्तु प्रति पद का योग होने पर न हो'। साधुर्निपुणो वा मातरि। 'अप्रतेः' प्रतिषेध से 'साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति परि अनु वा' में द्वितीया ही रही। यहाँ प्रति कहने से 'प्रतिपर्यनवः' १.४.९० विवक्षित है। इसे वार्तिक के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप में स्पष्ट करते हैं-**अप्रत्यादिभिरिति**। {साधुनिपुणा-}।

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च २.३.४४

प्रसित इत्युच्यते, कः प्रसितो नाम? यस्तत्र नित्यं प्रतिबद्धः। कुत एतत्? सिनोतिरयं बध्नात्यर्थे वर्ततेबद्ध इवाऽसौ तत्र भवति।

'साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः' २.३.४३.से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'प्रसित और उत्सुक पद के योग में तृतीया तथा सप्तमी हो'। प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा।

प्राश्निक आचार्य प्रसित पद का अर्थबोध के लिए पूर्वपक्ष करते हैं-**प्रसित इतीति**। प्रसित के योग में विभक्तिविधान किया जा रहा है। प्रसित पद का क्या अर्थ है?

उत्तरभाष्य—**यस्तत्रेति**। प्रसित पद नित्यप्रतिबद्ध अर्थ में शक्त है।

प्रश्नभाष्य—**कुत एतदिति**। प्रसित पद नित्यप्रतिबद्ध अर्थ कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**सिनोतिरिति**। षिञ् बन्धने धा.पा.१२४८ धातु बन्धनार्थक है। प्र पूर्वक षिञ् धातु से कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय करके प्रसित पद है; अतः जो बद्ध जैसा हो, उसे प्रसित कहेंगे। {प्रसितो-}।

नक्षत्रे च लुपि २.३.४५

इह कस्मान्न भवति-अद्य पुष्यः, अद्य मघा इति? अधिकरण इति वर्तते।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

'साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः' २.३.४३. से 'सप्तमी' तथा 'प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च'२.३.४४ से 'तृतीया' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'नक्षत्र पद का लोप होने पर सप्तमी तथा तृतीया हो'। मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मादिति**। 'अद्य पुष्यः, अद्य मघा' में तृतीया क्यों नहीं होती है?

उत्तरभाष्य—**अधिकरण इतीति**। 'सप्तम्यधिकरणे च' २.३.३६ से 'अधिकरणे' पद की अनुवृत्ति होने से नक्षत्र पद का लुप् होने पर अधिकरणरूप से विवक्षित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर ही सप्तमी और तृतीया होगी, अन्यत्र नहीं। 'अद्य पुष्यः' इत्यादि में पुष्य आदि की कर्तृत्वरूप से विवक्षा है, अधिकरणरूप से नहीं; अतः उससे सप्तमी और तृतीया नहीं होगी।{नक्षत्रे-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय तृतीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डाँ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ तृतीये पादे तृतीयमाह्निकम् ❁

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २.३.४६

प्रातिपदिकार्थग्रहणं किमर्थम्? उच्चैर्नीचैरित्यत्रापि यथा स्यात्। किं पुनरत्र प्रथमया प्रार्थ्यते? पदत्वम्। नैतदस्ति। षष्ठ्यात्र पदत्वं भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-ग्राम उच्चैस्तव स्वम्, ग्राम नीचैस्ते स्वम्। 'सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषे'त्येष विधिर्यथा स्यात्।

सूत्रार्थ—'प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गमात्राधिक्य, परिमाणमात्राधिक्य एवं वचनमात्र में प्रथमा हो'। अलिङ्ग, अव्यय आदि एवं नियतलिङ्ग प्रातिपदिकार्थमात्र के उदाहरण हैं। जैसे-'उच्चैः, नीचैः, रामः, श्रीः, ज्ञानम्'। अनियतलिङ्ग लिङ्गमात्राधिक्य के उदाहरण हैं। जैसे-'तटः, तटी, तटम्'। परिमाणमात्राधिक्य का 'द्रोणो व्रीहिः', एवं वचनमात्र का 'एकः, द्वौ, बहवः' उदाहरण है।

ङ्यन्त, आबन्त एवं प्रातिपदिक से विहित स्वादि का यह प्रकरण नियमार्थक है, अतः प्रातिपदिकग्रहण नहीं करने पर भी 'अर्थे प्रथमा' ऐसा कहने से 'किस अर्थ में प्रथमा हो' इस आकाङ्क्षा में कोई अर्थविशेष का निर्देश नहीं होने से जिससे प्रथमा विहित है उस प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा सिद्ध हो जायेगी। इस तरह निर्देश नहीं होने पर भी प्रातिपदिक पद का लाभ होने पर भी प्रातिपदिक पद का ग्रहण क्यों किया है?, इस आशय से प्रश्न करते हैं- **प्रातिपदिकग्रहणमिति**।

उत्तरभाष्य—**उच्चैर्नीचैरिति**। अव्यय से भी प्रथमा हो सके, इसके लिए प्रातिपदिकग्रहण है। 'बहुषु बहुवचनम्' १.४.२१ इत्यादि के साथ प्रकृतसूत्र की एकवाक्यता होने पर संख्यायुक्त प्रातिपदिकार्थ में ही प्रथमा होगी, संख्यारहित अव्यय से नहीं। परन्तु प्रातिपदिकग्रहण करने पर उसके सामर्थ्य से संख्यारहित अव्ययों से भी प्रथमा होती है। अथ वा लिङ्गग्रहण से सर्वत्र प्रथमा सिद्ध होने पर पूर्वपक्ष है; अत एव 'प्रातिपदिकग्रहणं किमर्थम्' यह भी कहीं पाठ है। 'अलिङ्ग अव्ययार्थ में भी प्रथमा हो सके' यह उत्तरपक्ष है।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरत्रेति**। 'उच्चैः, नीचैः' में प्रथमाविधान कर रहे हैं, यहाँ 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से उसका लुक् होने से श्रवण नहीं हो रहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है; फिर यहाँ प्रथमाविधान का क्या प्रयोजन है?

उत्तरभाष्य—**पदत्वमिति**। सुबुत्पत्ति होने पर यहाँ 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से सुबन्तलक्षण पदत्व अपेक्षित है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। यदि अलिङ्ग और असंख्यपदों से षष्ठी कर दी जाये तब भी सुबन्तलक्षण पदत्व सिद्ध हो जायेगा। षष्ठी होने पर उसका भी अव्ययनिमित्तक लुक् होने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से षष्ठी-निमित्तक पदत्व हो जायेगा। प्रयोजनवचादी-**इदं तर्हीति**। 'सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा' ८.१.२६ के द्वारा विद्यमान पूर्वप्रथमान्त से पर में युष्मद् और अस्मद् को अन्वादेश हो। जैसे-'ग्राम उच्चैस्ते स्वम्' इत्यादि।

अथ लिङ्गग्रहणं किमर्थम्? 'स्त्री' 'पुमान्' 'नपुंसक'मित्यत्रापि यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। एष एवाऽत्र प्रातिपदिकार्थः। इदं तर्हि 'कुमारी' 'वृक्षः' 'कुण्ड'मिति।

प्रश्नभाष्य—**अथ लिङ्गेति**। प्रकृतसूत्र में लिङ्गपद का निर्देश किस लिए है? 'सत्त्वभूत अर्थ का वाचक जो प्रातिपदिक है, उनका अर्थ लिङ्ग भी है' ऐसा मान कर प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**स्त्री पुमानिति**। 'स्त्री, पुमान्, नपुंसकम्' में भी प्रथमा हो सके, इसके लिए लिङ्गग्रहण है। 'प्रकृतसूत्र में मात्रपद का ग्रहण होने तथा 'सम्बोधने च' २.३.४७ इस सूत्र का आरम्भ होने से अधिकविशेषसद्भाव में प्रथमा नहीं हो सकेगी' ऐसा मान कर उत्तरपक्ष है। यहाँ स्त्रीत्व आदि अधिक द्रव्य वाच्य है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। प्रकृतसूत्र में लिङ्गग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। प्रातिपदिक जिस अर्थ का व्यभिचार नहीं कर सके वही प्रातिपदिकार्थ होता है। स्त्रीत्व आदि लिङ्ग के अभाव में स्त्री आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता है; अतः लिङ्ग भी प्रातिपदिक का ही अर्थ है। इस तरह प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा कहने पर लिङ्ग में भी प्रथमा हो जायेगी। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। स्त्रीत्व के विना भी 'कुमारो देवदत्तः' इस वाक्य में कुमारशब्द का प्रयोग देखा जाता है; अतः स्त्रीत्व को प्रातिपदिकार्थ नहीं कह सकते हैं। 'यहाँ कुमारीशब्द से लिङ्ग में प्रथमा हो सके' इसके लिए लिङ्गग्रहण है। 'वृक्षः कुण्डम्' यह पुम्-नपुंसक उपलक्षणार्थ है। इसका उदाहरण 'तटः तटम्' है। वृक्ष और कुण्ड इन दोनों शब्दों का पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग के विना प्रयोग नहीं होता है; अतः लिङ्ग की प्रातिपदिकार्थता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ परिमाणग्रहणं किमर्थम्? 'द्रोणः' 'खारी' 'आढक'मित्यत्राऽपि यथा स्यात्।

प्रश्नभाष्य—**अथ परिमाणेति**। प्रकृतसूत्र में परिमाण पद का निर्देश किस लिए है? द्रोण आदि परिमाण ही हैं; अतः प्रातिपदिकार्थ होने से ही उससे पर में प्रथमा सिद्ध हो जायेगी, ऐसा मान कर प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**द्रोण इति**। 'द्रोणः खारी, आढकम्' ये परिमाणवाचक शब्द हैं। जब मानमेयसम्बन्ध होने से व्रीहि आदि में द्रोण आदि शब्द शक्त होंगे, तब व्यभिचार होने से मेयपदार्थ की प्रातिपदिकार्थता नहीं होने से द्रोण आदि पदों से पर में प्रथमा प्राप्त नहीं हो सकेगी, उस दशा में भी प्रथमा हो सके, इसके लिए प्रकृतसूत्र में परिमाणग्रहण है।

अथ वचनग्रहणं किमर्थम्? इह समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिर्दृश्यते। तद्यथा-गर्गाः शतं दण्ड्यन्ता'मिति, अर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति, न च प्रत्येकं दण्डयन्ति। सत्येतस्मिन् दृष्टान्ते यत्रैतानि सर्वाणि समुदितानि भवन्ति तत्रैव स्यात्-द्रोणः खारी आढकमिति। इह न स्यात्-कुमारी वृक्षः कुण्डमिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रत्येकमपि वाक्यपरिसमाप्तिर्दृश्यते। तद्यथागुणवृद्धिसंज्ञे प्रत्येकं भवतः। इदं तर्हि प्रयोजनम्-उक्तेष्वप्येकत्वादिषु प्रथमा यथा स्यात्-एको द्वौ बहवः इति।

प्रश्नभाष्य—**अथ वचनेति**। अर्थ में कार्य असम्भव है, अतः प्रातिपदिकादिवचन से ही प्रथमा सिद्ध हो जायेगी; फिर वचनग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**इह समुदाये इति**। यहाँ विधीयमान होने से प्रथमा प्रधान है। समुदाय में अर्थ की परिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे 'गर्गाः शतं दण्ड्यन्ताम्' ऐसा कहने से शतत्वसंख्या समुदाय में पर्यवसित होती है। गर्गगोत्र वाले प्रत्येक से शत दण्ड नहीं लिया जाता है, अपि तु समुदाय से लिया जाता है। यहाँ यदि वचनग्रहण नहीं करते तो जहाँ 'द्रोणः, खारी, आढकम्' यह तीनों समुदित होते वहीं पर प्रथमा होती, परन्तु वचनग्रहण करने से प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होने से तीन वाक्य होता है तथा प्रत्येक से प्रथमा होने से दोष नहीं रहता है। इससे 'कुमारी, वृक्षः, कुण्डम्' में प्रत्येक से प्रथमा सिद्ध हो जाती है। आक्षेपक-**नैतदस्तीति**। प्रकृतसूत्र में वचनग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। आप ने उक्त लौकिकन्याय के द्वारा समुदाय में वाक्यपरिसमाप्ति बतायी, परन्तु प्रत्येक में भी वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे 'वृद्धिरादैच्' १.१.१ में वृद्धिसंज्ञा एवम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अदेङ् गुणः' १.१.२ में गुणसंज्ञा प्रत्येक की होती है; अतः प्रत्येक में प्रथमा होने से 'कुमारी, वृक्षः, कुण्डम्' में भी प्रत्येक से प्रथमा हो जायेगी। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। प्रकृति से एकत्व, द्वित्व तथा बहुत्व के उक्त होने पर भी एक, द्वि तथा बहु पद से प्रथमा हो सके, इसके लिए वचनपद का निर्देश है।

अथ मात्रग्रहणं किमर्थम्? एतन्मात्र एव यथा स्यात्, कर्मादिविशिष्टे मा भूदिति-कटं करोति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। कर्मादिषु द्वितीयाद्या विभक्तयस्ताः कर्मादिविशिष्टे बाधिका भविष्यन्ति। अथ वाऽऽचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'न कर्मादिविशिष्टे प्रथमा भवती'ति यदयं सम्बोधने प्रथमां शास्ति। नैतदस्ति ज्ञापकम्। अस्ति ह्यन्यदेतस्य वचने प्रयोजनम्। किम्? 'सामन्त्रितमिति वक्ष्यामी'ति। यत्तर्हि योगविभागं करोति। इतरथा हि 'सम्बोधने आमन्त्रित'मित्येव ब्रूयात्।

प्रश्नभाष्य—**अथ मात्रेति**। प्रकृतसूत्र में मात्रपद का निर्देश किस लिए है?

उत्तरभाष्य—**एतन्मात्र इति**। प्रातिपदिकार्थादिमात्र में ही प्रथमा हो, कर्मादिविशिष्ट 'कटं करोति' इत्यादि प्रातिपदिकार्थादि में प्रथमा न हो, इस लिए प्रकृतसूत्र में मात्रपद का निर्देश है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। कर्मादिविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा और द्वितीया दोनों प्राप्त होने पर द्वितीया आदि के अनवकाश होने से अपवादत्वात् द्वितीया आदि के द्वारा प्रथमा का बाध हो जायेगा; अतः कर्मादिविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा की आपत्ति नही रहेगी। अन्य प्रकार से भी कर्मादिविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा का वारण करते हैं-**अथ वेति**। यदि प्रातिपदिकार्थादि से अधिक अर्थ में भी प्रथमा होती तो सम्बोधनाधिक्यविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा हो जाती, पुनः इसी के लिए आचार्य ने जो 'सम्बोधने च' २.३.४७ सूत्र का आरम्भ किया, वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा-'कर्मादिविशिष्ट प्रातिपदिकार्थादि में प्रथमा नही होती है'।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'सम्बोधने च' २.३.४७ सूत्र का 'सामन्त्रितम्' २.३.४८ प्रयोजन है। इससे सम्बोधन में विहित प्रथमा की आमन्त्रितसंज्ञा होती है; अतः 'सम्बोधने च' २.३.४७ के द्वारा 'न कर्मादिविशिष्टे प्रथमा भवति' का ज्ञापन नही किया जा सकता है। व्यर्थ पड कर ही कोई भी सूत्र ज्ञापक होता है। यदि इसका कोई अन्य प्रयोजन है तो वह ज्ञापक नहीं बन सकेगा। ज्ञापनवादी-**यत्तर्हीति**। आचार्य को यदि सम्बोधन में विहित प्रथमा की मात्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आमन्त्रितसंज्ञा ही इष्ट थी तो इसके लिए दो सूत्रों के स्थान पर मात्र 'सम्बोधने आमन्त्रितम्' ऐसा एक सूत्र ही पढना चाहिये था। परन्तु यहाँ आचार्य ने एक सूत्र न पढ कर जो 'सम्बोधने च' २.३.४७ तथा 'सामन्त्रितम्' २.३.४८ यह पृथक्-पृथक् सूत्रन्यास किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'न कर्मादिविशिष्टे प्रथमा भवति'।

इदं तर्हि-उक्तेष्वप्येकत्वादिषु प्रथमा यथा स्यात्-एको द्वौ बहव इति। वचनग्रहणस्याप्येतत् प्रयोजनमुक्तम्, अन्यतरच्छक्यमवक्तुम् * प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमालक्षणे पदसामानाधिकरण्ये उपसंख्यानमधिकत्वात् * **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण-वचनमात्रे प्रथमालक्षणे पदसामानाधिकरण्ये उपसंख्यानं कर्तव्यम्। वीरः पुरुष इति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'अधिकत्वात्'। व्यतिरिक्तः प्रातिपदिकार्थ इति कृत्वा प्रथमा न प्राप्नोति। कथं व्यतिरिक्तः? पुरुषे वीरत्वम्।**

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'एकः, द्वौ, बहवः' में प्रकृति के द्वारा एकत्व आदि के उक्त होने पर भी प्रथमा हो सके, इसके लिए प्रकृत में मात्र पद का निर्देश है। यहाँ मात्रशब्द का सामान्यनिर्देश माना जा रहा है। जैसे-'ब्राह्मण-मात्रं पूजयति'। इसी तरह प्रातिपदिकार्थमात्र के उक्त होने पर भी प्रथमा होती है। यहाँ आचार्य कैयटजी इसे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं-मीयतेऽनयेति **मात्रा**=संख्या। समाहारद्वन्द्व में नपुंसक होने से ह्रस्वत्वनिर्देश है; अतः संख्या के उक्त होने पर भी प्रथमा होती है। अन्य आचार्य-**वचनस्येति**। प्रकृतसूत्र में 'अथ वचनग्रहणं किमर्थम्' तथा 'अथ मात्रग्रहणं किमर्थम्' इन दोनों का एक ही प्रयोजन- 'उक्तेष्वप्येकत्वादिषु प्रथमा यथा स्यात्' दिया है। जब दोनों का एक ही प्रयोजन है तो इनमें से किसी एक का परित्याग किया जा सकता है। वार्तिक-**प्रातिपदिकार्थेति**। प्रकृतसूत्र में मात्रपद का निर्देश है तथा 'सम्बोधने च' २.३.४७ यह पृथक् सूत्रपाठ भी किया है; अतः अधिक अर्थ का बोध होने पर प्रथमा नहीं हो पा रही है, वहाँ प्रथमाविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढना चाहिये। जैसे 'वीरः पुरुषः'। यहाँ पुरुषपद से प्रातिपदिकार्थ का बोध होने पर भी पुरुषनिष्ठ वीरत्व का अधिक बोध हो रहा है; अतः प्रथमा प्राप्त नहीं हो रही है; अतः यहाँ प्रथमाविधान के लिए वार्तिक का आरम्भ करना चाहिये।

* न वा वाक्यार्थत्वात् * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'वाक्यार्थ-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वात्'। यदत्राधिक्यं वाक्यार्थः सः। अथ वा 'अभिहिते प्रथमे'-त्येतल्लक्षणं करिष्यते * अभिहितलक्षणायामनभिहिते प्रथमाविधिः * **अभिहितलक्षणायामनभिहिते हि तर्हि प्रथमा विधेया। वृक्षः प्लक्ष इति** * उक्तं वा * **किमुक्तम्? 'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ती'ति गम्यते। वृक्षः प्लक्षः। 'अस्ती'ति गम्यते।**

भाष्यकार इस पक्ष का खण्डन करते हैं—**न वेति**। 'वीरः पुरुषः' में पुरुष में जो अधिक वीरत्वबोध हो रहा है, वह वाक्य का अर्थ है, प्रातिपदिक का नहीं; अतः पदसामानाधिकरण्य में अधिक बोध होने पर भी 'वीरः पुरुषः' इत्यादि में प्रथमाविधान के लिए अतिरिक्तवचन आवश्यक नहीं है। प्रश्नवार्तिक-**अभिहितेति**। तिङ्, कृत्, तद्धित एवं समास के द्वारा कर्ता आदि अर्थ उक्त होने पर प्रथमा होती है। 'वीरः पुरुषः' इस स्थल में अधिक अर्थ होने पर भी अभिहितत्वमात्राश्रया प्रथमा हो जायेगी। परन्तु 'वृक्षः प्लक्षः' में प्रातिपदिकार्थ किसी से उक्त नहीं है; फिर यहाँ प्रथमा कैसे होगी?

उत्तरभाष्य—**उक्तं वेति**। जहाँ प्रातिपदिक के साथ कोई क्रियावाचकपद प्रयुक्त नहीं होता है वहाँ अप्रयुक्त होने पर भी 'अस' धातु का प्रथमपुरुष लडन्तप्रयोग रहता है; अतः 'वृक्षः प्लक्षः' में 'वृक्षः अस्ति, प्लक्षः अस्ति' ऐसा बोध होगा। यहाँ लट् के द्वारा कर्ता उक्त है; अतः प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा हो जायेगी।

* अभिहितानभिहिते हि प्रथमाभावः * **अभिहितानभिहिते हि प्रथमा प्राप्नोति। क्व? प्रासादे आस्ते शयन आस्त इति। सदिप्रत्ययेनाभिहितमधिकरणमिति कृत्वा प्रथमा प्राप्नोति। एवं तर्हि 'तिङ्समानाधिकरणे प्रथमे'त्येतल्लक्षणं करिष्यते** * तिङ्समानाधिकरण इति चेत् तिङोऽप्रयोगे प्रथमाविधिः * **तिङ्समानाधिकरण इति चेत् तिङोऽप्रयोगे प्रथमा विधेया। वृक्षः प्लक्षः** * उक्तं पूर्वेण * **किमुक्तम्? 'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ती'ति गम्यते। वृक्षः प्लक्षः। 'अस्तीति गम्यत' इति।**

आक्षेपवार्तिक—**अभिहितानभिहिते हीति**। किसी के द्वारा अभिहित तथा किसी के द्वारा अनभिहित होने पर जिसके द्वारा अभिहित है वह प्रातिपदिकार्थ-सम्पन्न होगा तथा उससे प्रथमा विभक्ति होगी। जैसे 'प्रासादे आस्ते' में प्र-आङ्-पूर्वक सद् धातु से अधिकरण अर्थ में घञ् प्रत्यय है, एवं शीङ् धातु से भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकरण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय है। इस तरह यहाँ कृत् के द्वारा अधिकरण अर्थ के उक्त होने पर पुनः अधिकरण में सप्तमी नहीं होनी चाहिये, अपि तु यहाँ प्रथमा होनी चाहिये।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा' ऐसा कहेंगे। 'प्रासादे आस्ते, शयने शेते' में क्रमशः घञ् तथा ल्युट् के द्वारा अधिकरण उक्त होने पर भी तिङ्समानाधिकरण में अनुक्त है; अतः यहाँ प्रथमा की आपत्ति नहीं होगी। आक्षेपवार्तिक-**तिङ्समानेति**। यदि तिङ्समानाधिकरण में प्रथमा कहते हैं तो जहाँ 'वृक्षः प्लक्षः' में तिङ्समानाधिकरण नहीं है वहाँ प्रथमा नहीं होनी चाहिये।

उत्तरभाष्य—**उक्तं पूर्वेणेति**। 'जहाँ कोई क्रियावाचकपद नहीं है वहाँ 'अस' धातु का लट्परक प्रथमपुरुष अप्रयुज्यमान होने पर भी रहता है' ऐसा मैं पहले भी बता चुका हूँ। 'वृक्षः प्लक्षः' में अप्रयुज्यमान 'अस्ति' पद का योग होने पर तिङ्समानाधिकरण प्रथमा साधु हो जायेगी।

* शतृशानचोश्च निमित्तभावात् तिङोऽभाव- स्तयोरपवादत्वात् *

शतृशानचोश्च निमित्तभावात् तिङोऽभावः। क्व? पचत्योदनं देवदत्त इति। किं कारणम्? 'तयोरपवादत्वात्'। शतृशानचौ तिङ्ङपवादौ, तावत्र बाधकौ। न चाऽपवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते। पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः। प्रकल्प्य चाऽपवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते'। न तावत्र कदाचित् तिङादेशो भवति, अपवादौ तावच्छतृशानचौ प्रतीक्षेते। पाक्षिक एष दोषः।

आक्षेपक—**शतृशानचोरिति**। 'देवदत्त पच् ल्' इस दशा में जब तक तिङ् की उत्पत्ति नही है तब तक तिङ् का सामानाधिकरण्य नहीं होने से तिङ्सामानाधिकरण्य में विहित प्रथमा देवदत्त पद से नहीं हो सकेगी; अपि तु सामान्यरूप से विहित सभी स्वादि विभक्तियाँ होंगी। इस तरह देवदत्तपदोत्तर द्वितीया, तृतीया आदि प्राप्त होने पर अप्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान पर 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' ३.२.१२४ सूत्र के द्वारा तिङ् का अपवाद शतृ और शानच् की आपत्ति होगी। तिङ् का अपवाद शतृ और शानच् है तथा तिङ् उत्सर्गशास्त्र है। अपवाद के विषय को छोड कर उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति होती है तथा बाद में उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति होती है। इस नियम से लट् के स्थान में तिङ् का अपवाद शतृ और शानच् प्रत्यय ही होंगे। इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिङ् का सामानाधिकरण्य नहीं होने से 'पचत्योदनं देवदत्तः' में देवदत्तपद के उत्तर में प्रथमाविभक्ति नहीं हो सकेगी एवं यहाँ पच्धातूत्तर लट् को तिङ्ङादेश भी नहीं हो सकेगा, यह आक्षेपक का आशय है। यहाँ शतृ और शानच् का निमित्त अप्रथमासामानाधिकरण्य है, यह भाष्य का आशय है। अन्य आचार्य-**न तावदिति**। यदि आप शतृ और शानच् को तिङ् का अपवाद मान रहे हैं तब कभी भी तिङ् नहीं हो सकेगा। उत्सर्गशास्त्र तिङ् अपनी प्रवृत्ति से पूर्व कभी भी अपना अपवाद शतृ और शानच् की प्रतीक्षा करेगा। 'अप्रथमा' इस पद में प्रसज्यप्रतिषेधपक्ष मान कर अर्थनियमपक्ष में यह दोष दिया है। इसी में प्रत्ययनियमपक्ष मान कर दोषपरिहार के लिए कहते हैं-**पाक्षिक एष इति**। 'पक्षे भवः पाक्षिकः' यहाँ अध्यात्मादिगण वा.४.३.५८ के द्वारा ठञ्प्रत्यय है। तिङ्प्रत्यय अपना अपवाद शतृ और शानच् का एक पक्ष में ही प्रतीक्षा करेगा, उसी में यह दोष भी होगा।

कतरस्मिन् पक्षे शतृशानचोर्द्वैतं भवति-अप्रथमा वा विधिनाऽऽश्रीयते, प्रथमा वा प्रतिषेधेनेति? विभक्तिनियमे चाऽपि द्वैतं भवति-विभक्तिनियमो वा स्यादर्थनियमो वेति? तद्यदातावदर्थनियमोऽप्रथमा च विधिनाऽऽश्रीयते तदैष दोषो भवति। यदा हि विभक्तिनियमः, तदा यद्येवाऽप्रथमा विधिनाऽऽश्रीयते, अथापि प्रथमा प्रतिषेधेन, तदा न दोषो भवति। {प्रातिपदिकार्थ}।

जिज्ञासु—**कतरस्मिन् पक्षे इति**। 'लटः शतृशानचावप्रथमा- समानाधिकरणे' ३.२.१२४ सूत्र में 'अप्रथमा' ऐसा पढा गया है। यहाँ 'अप्रथमा' इस पर्युदास के द्वारा जब द्वितीया इत्यादि का ग्रहण होगा तब इस पक्ष में तिङ् का अपवाद शतृ और शानच् होगा, अथ वा 'अप्रथमा' इस पद में नञ्पद का प्रसज्यप्रतिषेधपक्ष मान कर निषेधमात्र मानेंगे। इस पक्ष में तिङ् का अपवाद शतृ और शानच् होगा? विभक्तिनियम माना जाये, अथ वा अर्थनियम माना जाये, अर्थनियमपक्ष में **द्वैतम्**=दोष है, यह बताया जा चुका है। विभक्तिनियमपक्ष में भी दोष होगा। नियम अनेक में आश्रित होता है; अतः अर्थनियम भी सामान्यरूप से विभक्तिविषय नियम होता है। विभक्ति का अन्य अर्थ से सम्बन्ध का निवर्तक विभक्तिनियम है जैसे 'कर्मण्येव द्वितीया'। अर्थ का अन्यविभक्ति से सम्बन्धनिवर्तक अर्थनियम होता है। जैसे 'कर्मणि द्वितीयैव'; यह विभक्तिनियम तथा अर्थनियम में भेद है। यहाँ कुल मिल कर चार पक्ष होते हैं-१-पर्युदास तथा अर्थनियम। २- पर्युदास तथा विभक्तिनियम। ३-प्रसज्यप्रतिषेध तथा अर्थनियम। ४-प्रसज्यप्रतिषेध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा विभक्तिनियम। यहाँ आद्यपक्ष में ही दोषोद्भावन किया गया है। 'कर्मणि द्वितीयैव' इस विभक्तिनियमपक्ष में द्वितीया आदि का नियम नहीं होने से प्रातिपदिकार्थमात्र में भी द्वितीया प्राप्त होने से तदाश्रय शतृ और शानच् प्राप्त हो रहा है, यह दोष है। परन्तु प्रसज्यप्रतिषेधपक्ष में प्रतिपदिकार्थमात्र में प्रथमा के ही होने से तदाश्रय निषेध प्राप्त होता है, यह अर्थनियमपक्ष में दोष नही है। शतृ और शानच् का अभाव होने से तिङ् हो जाने पर तिङ् का सामानाधिकरण्य प्रथमा विभक्ति ही होगी; अतः नियम से द्वितीया का व्यावर्तन हो जायेगा। परन्तु जब विभक्तिनियम करेंगे तब कर्म आदि अर्थों में द्वितीया इत्यादि विभक्तियाँ नियत होंगी। इस तरह जहाँ कर्म आदि अर्थ नहीं होंगे, वहाँ अनियत प्रथमाविभक्ति का विधान होने पर चाहे आप पर्युदासपक्ष मानें, अथ वा प्रसज्यपक्ष मानें, तिङ्स्थल में शतृ और शानच् की प्राप्ति नहीं होने से कोई दोष नहीं है। {प्रतिपदिकार्थ-}।

षष्ठी शेषे २.३.५०

शेष इत्युच्यते कः शेषो नाम? कर्मादिभ्यो येऽन्येऽर्थाः स शेषः। यद्येवं शेषो न प्रकल्पते। नहि कर्मादिभ्योऽन्येऽर्थाः सन्ति। इह तावद्-'राज्ञः पुरुषः' इति,-राजा कर्ता पुरुषः सम्प्रदानम्। 'वृक्षस्य शाखे'ति,-वृक्षः शाखाया अधिकरणम्। तथा यदेतत् स्वं नाम चतुर्भिरेतत् प्रकारैर्भवति-क्रयणादपहरणाद् याच्ञाया विनिमयादिति। अत्र च सर्वत्र कर्मादयः सन्ति।

सूत्रार्थ—'शेष अर्थ में षष्ठी हो'। राज्ञः पुरुषः।

प्रश्नभाष्य—**कः शेष इति**। आचार्य शेष में षष्ठी का विधान कर रहे हैं, शेष क्या है? क्या अप्रधान शेष है, कर्म आदि से भिन्न शेष है? यदि अप्रधान को शेष मानेंगे तो सभी कारक क्रिया के प्रति अप्रधान होते हैं, अतः उन सभी का शेषत्व हो जायेगा तथा सभी कारकों से षष्ठी की आपत्ति होगी। यदि 'उक्तादन्यः शेषः' पक्ष मानते हैं तो कर्म आदि के सर्वत्र होने से इतर शेषार्थ भी कहीं नहीं मिलेगा, अतः प्रश्न है-'शेष' ऐसा कह रहे हैं, शेष क्या है?

उत्तरभाष्य—**कर्मादिभ्य इति**। 'कर्मणि द्वितीया' २.३.२ 'चतुर्थी सम्प्रदाने' २.३.१३, 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' २.३.१८, 'अपादाने पञ्चमी' २.३.२८ 'सप्तम्यधिकरणे च' २.३.३६ एवं 'प्रतिपदिकार्थलिङ्ग- परिमाणवचनमात्रे प्रथमा' २.३.४६ ऐसा सूत्र का आरम्भ कर कर्म आदि अर्थों में द्वितीया आदि का विधान कर चुके हैं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः कर्म आदि से जो भिन्न है वह स्वस्वामिभाव आदि सम्बन्ध शेष अर्थ है, उसमें षष्ठीविधान कर रहे है। 'मातुः स्मरति' ऐसा वाक्य में क्रियाशब्द के रहने पर भी कर्मत्व की विवक्षा नही करके स्मरण के प्रति माता के विशेषणभाव का ही बोध होता है-मातृसम्बन्धिस्मरणम्। उत्तरपक्षी का अभिप्राय नही समझ कर अन्य आचार्य आक्षेप करते हैं-**यद्येवमिति**। क्रिया के अभाव में कहीं पर भी सम्बन्ध का बोध सम्भव नहीं हो सकेगा। क्रिया के रहने पर सर्वत्र कर्म आदि अन्यतम का बोध अवश्य होगा; अतः कर्म आदि से अन्य कोई अर्थ नहीं है, जो शेष हो सके। जहाँ सम्बन्ध अर्थ का बोध हो रहा है वहाँ भी कर्म आदि अर्थ कैसे हैं, इसे स्पष्ट करते हैं-**इह तावदिति**। 'राज्ञः पुरुषः' में राजा अपने राजकोष से **पुरुष**= भृत्य को धन दान करता है, अतः राजा कर्ता है तथा पुरुष सम्प्रदान है 'वृक्षस्य शाखा' में शाखा का अधिकरण वृक्ष है। वैशेषिकप्रक्रिया के अनुसार अवयव में अवयवी रहता है; अतः वृक्ष का अधिकरण शाखा है। परन्तु लोक की दृष्टि से भाष्यकार यहाँ शाखा का अधिकरण वृक्ष बता रहे हैं। जहाँ स्वत्वसम्बन्ध मान रहे हैं वहाँ पर भी कर्म आदि हैं, इसे स्पष्ट करते हैं-**तथा यदेतदिति**। चार प्रकार से किसी वस्तु पर स्वत्व होता है। १-**क्रयणात्**=मूल्य देकर खरीद लिया जाये। २-**अपहरणात्**= चोरी से वस्तु अपने अधीन कर ली जाये। ३-**याञ्चायाः**=माँग कर ले लिया जाये। तथा ४-**विनिमयात्**=किसी वस्तु से किसी वस्तु को बदल दिया जाये। यहाँ भी क्रियापद का सन्निवेश होने से सर्वत्र कर्म आदि अन्यतम का प्रवेश है।

एवं तर्हि कर्मादीनामभावः शेषः। कथं पुनः सतो नामाऽविवक्षा स्यात्? सतोऽप्यविवक्षा भवति। तद्यथा-अलोमिकैडका, अनुदरा कन्येति। असतश्च विवक्षा भवति। तद्यथा-समुद्रः कुण्डिका। विन्ध्यो वर्द्धितकमिति। किमर्थं पुनः शेषग्रहणम्? * प्रत्ययावधारणाच्छेषवचनम् *** प्रत्ययावधारणाच्छेषग्रहणं कर्तव्यम्। प्रत्यया नियताः, अर्था अनियतास्तत्र षष्ठी प्राप्नोति। तत्र शेषग्रहणं कर्तव्यं षष्ठीनियमार्थं-'शेष एव षष्ठी भवति, नाऽन्यत्रे'ति।**

उत्तरपक्षी—**एवं तर्हीति**। उक्त रीति से सर्वत्र कर्म आदि के होने पर भी जब कर्म आदि की अविवक्षा होगी तब वहाँ सम्बन्धमात्र होने से वह शेष होगा।

प्रश्नभाष्य—**कथं पुनरिति**। सत् कर्म आदि की अविवक्षा कैसे करेंगे?

उत्तरभाष्य—**सतोऽपीति**। सत् की भी अविवक्षा होती है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। जैसे 'अलोमिका एडका' में लोमकार्य नहीं होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोम की सत्ता नहीं होने पर भी उसकी अविवक्षा है। 'अनुदरा कन्या' में उदर होने पर भी उदरमहत्त्व का अभाव बताने के लिए उदर की अविवक्षा है। यहाँ सत् की अविवक्षा की गयी है। कहीं पर असत् की भी विवक्षा होती है। जैसे **कुण्डिका**=लघु जलाशय समुद्र है। कुण्डिका में बहुत जल प्रतिपादन के लिए समुद्र का कुण्डिका में आरोप किया जाता है। **वर्धितकः**=नीचे की ओर मोटा तथा उपर की ओर उठा हुआ पतला भात का ढेला **विन्ध्य**=पर्वत है। यहाँ भात का ढेला का महत्त्वप्रतिपादन के लिए उसमें विन्ध्यपर्वत का आरोप किया जाता है। इस तरह सत् कर्म आदि की अविवक्षा होने पर वह शेष हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। आचार्य मात्र 'षष्ठी' इतना ही सूत्रपाठ करते। कर्म आदि अर्थों में द्वितीया आदि विहित हैं। किसी अर्थ में विधान नहीं होने से अगत्या उक्त से अन्य शेष अर्थ में ही वह षष्ठी होती; इस तरह जब शेष अर्थ का लाभ हो रहा था, तब पुनः आचार्य शेषग्रहण क्यों करते हैं? अर्थनियमपक्ष में शेषग्रहण का प्रत्याख्यान करने के लिए यहाँ विचार किया जा रहा है।

उत्तरभाष्य—**प्रत्ययवधारणादिति**। 'प्रत्ययानाम् अवधारणात्= निश्चयात्'। प्रत्यय नियत हैं; परन्तु अर्थ अनियत है; अतः अनियत अर्थों में षष्ठी प्राप्त होने से नियत अर्थ शेष में ही षष्ठी हो सके, इसके लिए शेषग्रहण करना चाहिये, यह विभक्तिनियमपक्ष में कहा गया है।

*** अर्थाऽवधारणाद्वा * अथ वाऽर्था नियताः, प्रत्यया अनियतास्ते शेषेऽपि प्राप्नुवन्ति। तत्र शेषग्रहणं कर्तव्यं शेषनियमार्थं-'शेषे षष्ठ्येव भवति, नाऽन्ये'ति। अर्थनियमे शेषग्रहणं शक्यमकर्तुम्। कथम्? अर्था नियताः प्रत्यया अनियताः। ततो वक्ष्यामि-'षष्ठी भवती'ति। तन्नियमार्थं भविष्यति-'यत्र षष्ठी चाऽन्या च प्राप्नोति षष्ठ्येव तत्र भवती'ति।**

अब अर्थनियमपक्ष में भी शेषग्रहण का फल बताते हैं-**अर्थावधारणाद्वेति**। अथ वा अर्थ अनियत है तथा प्रत्यय नियत हैं। वे अनियतप्रत्यय द्वितीया आदि शेष अर्थ में भी प्राप्त होंगे; उसका वारण करने के लिए आचार्य शेषग्रहण करते हैं-'शेष में षष्ठी हो, अन्य में नहीं'। अब भाष्यकार अर्थनियमपक्ष में शेषग्रहण का प्रत्याख्यान करते हैं-**अर्थनियमे इति**। 'शेषे षष्ठ्येव भवति' यह अर्थनियम है। स्वादिविभक्तियों के विषय में यदि अर्थनियम मानेंगे तो प्रकृतसूत्र में शेषग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है। इस पक्ष में अर्थ नियत होंगे तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय अनियत होगा। इस पक्ष में मात्र 'षष्ठी' इतना ही सूत्र करेंगे। वह नियमार्थक होगी-'जहाँ षष्ठी तथा इतर यह दोनों विभक्तियाँ प्राप्त होंगी वहाँ षष्ठी ही हो, अन्य द्वितीया इत्यादि नहीं'।

* षष्ठी शेष इति चेद्विशेष्यस्य प्रतिषेधः * **षष्ठी शेष इति चेद्विशेष्यस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। राज्ञः पुरुष इत्यत्र राजा विशेषणं, पुरुषो विशेष्यः। तत्र प्रातिपदिकार्थो व्यतिरिक्त इति कृत्वा प्रथमा न प्राप्नोति। तत्र षष्ठी स्यात्, तस्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः** * तत्र प्रथमाविधिः * **तत्र षष्ठीं प्रतिषिध्य प्रथमा विधेया। राज्ञः पुरुष इति** * उक्तं पूर्वेण * **किमुक्तम्? 'न वा वाक्याऽर्थत्वा'दिति। यदत्राधिक्यं वाक्यार्थः सः। कुतो नु खल्वेतत्-'पुरुषे यदाधिक्यं स वाक्यार्थ इति, न पुना राजनि यदाधिक्यं स वाक्यार्थः स्यात्'। अन्तरेणापि पुरुषशब्दप्रयोगं राजनि सोऽर्थो गम्यते। न पुनरन्तरेण राजशब्दप्रयोगं पुरुषे सोऽर्थो गम्यते। अस्ति कारणं येनैतदेवं भवति। किं कारणम्? राजशब्दाद्धि भवान् षष्ठीमुच्चारयति। अङ्ग! हि भवान् पुरुषशब्दादप्युच्चारयतु, गंस्यते सोऽर्थः। ननु च नैतेनैवं भवितव्यम्। नहि शब्दकृतेन नामार्थेन भवितव्यम्। अर्थकृतेन नाम शब्देन भवितव्यम्।**

आक्षेपक—**षष्ठी शेष इति। शेष**=सम्बन्ध की विवक्षा में षष्ठीविधान कर रहे हैं। सम्बन्ध द्विष्ठ होता है; अतः विशेषण तथा विशेष्य दोनों से षष्ठी प्राप्त होने पर 'राज्ञः पुरुषः' इत्यादि में जैसे विशेषणवाचक राजनूपद के उत्तर में षष्ठी हो रही है, वैसे विशेष्यवाचक पुरुषपद के उत्तर में भी षष्ठी हो रही है, उसका प्रतिषेध कहना चाहिये। यहाँ 'राज्ञः पुरुषः' स्थल में विशेष्य पुरुष पद का तिङ्न्त के साथ योग नहीं है; अतः यह प्रातिपदिकार्थ नहीं है। इससे यहाँ प्रथमा प्राप्त नहीं है, अपि तु षष्ठी प्राप्त है, उसका निषेध कहा है।

उत्तरभाष्य—**तत्र प्रथमेति**। 'राज्ञः पुरुषः' में विशेष्यवाचक पुरुषपद से मात्र सम्बन्धमहिम्ना ही षष्ठी प्राप्त है। जो यहाँ सम्बन्ध है, वह वाक्य का अर्थ है, पुरुषपद का नहीं। यहाँ पुरुष प्रातिपदिक स्वार्थमात्र में है; अतः प्रथमा सिद्ध हो जायेगी। परन्तु राजनूपदोत्तर जो प्रातिपदिकार्थ से व्यतिरिक्त सम्बन्ध भास रहा है, वह वाक्यार्थ नहीं है; अतः विशेषणवाचक राजनूपदोत्तर षष्ठी होती है। अन्य आचार्य-**कुतो नु इति**। क्या कारण है कि 'राज्ञः पुरुषः' इस वाक्य में विशेष्यवाचक पुरुषपद से जो सम्बन्ध भास रहा है, उसे आप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्यार्थ मान रहे हैं; परन्तु विशेषणवाचक राजनूपद से उपस्थित सम्बन्ध को वाक्यार्थ क्यों नहीं मान रहे हैं? इतर आचार्य-**अन्तरेणापीति**। यदि पुरुषशब्द का उच्चारण किये विना मात्र 'राज्ञः' ऐसा राजनूपदोत्तर षष्ठी का उच्चारण किया जाये तो राजसम्बन्धी अर्थ का बोध होता है, परन्तु 'राज्ञः'पदरहित मात्र 'पुरुषः' इतना ही उच्चारण किया जाये तो पुरुषपद से सम्बन्ध अर्थ का बोध नहीं होता है; अतः पुरुषपद से जो सम्बन्ध अर्थ का बोध हो रहा है, वह वाक्यार्थ है, ऐसा मानना चाहिये। अन्य आचार्य-**अस्ति कारणमिति**। मात्र 'राज्ञः' इतना कहने से सम्बन्ध अर्थ का बोध इस लिए होता है कि राजनूपद के उत्तर में षष्ठी का उच्चारण किया जा रहा है; यदि पुरुषपद के उत्तर में षष्ठी का उच्चारण किया जाये तो इससे भी सम्बन्ध अर्थ का बोध होने लगेगा। इतर आचार्य-**ननु चेति**। शब्द के भाव से अर्थ का भाव तथा शब्द के अभाव से अर्थ का अभाव नहीं किया जाता है, अपि तु अर्थबोध कराने की इच्छा से विषय करने तथा विषय नहीं करने से शब्द का उच्चारणलक्षणभाव तथा अनुच्चारणलक्षण अभाव होता है। 'राज्ञः पुरुषः' में परोपकारिता होने से राजनूपदोत्तरषष्ठी होती है, परन्तु पुरुष उपकार्य है, अतः स्वनिष्ठत्वेन विवक्षित होने से पुरुषपद के उत्तर में प्रथमा विभक्ति होती है।

तदेतदेवं दृश्यताम्-अर्थरूपमेवैतदेवंजातीयकं येनात्रान्तरेणापि पुरुषशब्दप्रयोगं राजनि सोऽर्थो गम्यते। किं पुनस्तत्? स्वामित्वम्। किं कृतं पुनस्तत्? स्वकृतम्। तद्यथा-प्रातिपदिकार्थानां क्रियाकृता विशेषा उपजायन्ते तत्कृताश्चाख्याः प्रादुर्भवन्ति-कर्म करणमपादानं सम्प्रदानमधिकरणमिति। ताश्च पुनर्विभक्तीनामुत्पत्तौ कदाचिन्निमित्तत्वेनोपादीयन्ते कदाचिन्न। कदा च विभक्तीनामुत्पत्तौ निमित्तत्वेनोपादीयन्ते? यदा व्यभिचरन्ति प्रातिपदिकार्थम्। यदा हि न व्यभिचरन्ति, आख्याभूता एव तदा भवन्ति-कर्म करणमपादानं सम्प्रदानमधिकरणमिति।

इसी को और अधिक स्पष्ट करते हैं-**तदेवमिति**। 'राज्ञः' में स्वामित्वसम्बन्धरूप अर्थ स्वाभाविक है; पुरुषपद का प्रयोग नहीं होने पर भी उसका बोध होगा।

प्रश्नभाष्य—**किं कृतमिति**। पुरुष पद का प्रयोग नही करने पर भी मात्र 'राज्ञः' इतना ही पद से स्वामित्वसम्बन्धरूप अर्थ की उपस्थिति हो रही है, वह किसको निमित्त मान कर है?

उत्तरभाष्य—**स्वकृतिमिति**। स्व को निमित्त मान कर राजनूपदोत्तर षष्ठी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इस तरह अनियत स्वपदार्थ की अपेक्षा कर पुरुषपदार्थ के साथ योग होने से पूर्व ही राजनूपदोत्तर षष्ठी हो जायेगी तथा बाद में पुरुषपद के साथ अन्वय होगा; अतः सामान्यतः स्वमात्रनिरूपित षष्ठी ही राजनूपदोत्तर होगी तथा बाद में षष्ठ्यन्त 'राज्ञः' पद का पुरुषपद के साथ अन्वय होगा। पुरुष के सन्निधान से स्वविशेष का बोध होता है। इसी को पुनः स्पष्ट करते हैं-**तद्यथेति**। पहले प्रातिपदिकार्थों का सामान्यबोध होता है, बाद में जब उनका क्रिया के साथ योग होता है तब वे प्रतिपदिकार्थ ही धात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रय होने से कर्मसंज्ञक, क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्ट उपकारक होने से करणसंज्ञक, अवधिभूत होने से अपादानसंज्ञक, दान का कर्म से युक्त होकर सम्प्रदानसंज्ञक, तथा कर्ता और कर्म के द्वारा क्रिया का अन्वयी होने से अधिकरणसंज्ञक होते हैं। जब क्रिया के प्रति **'ताश्च पुनः'**=उन कर्म आदि संज्ञाओं की विवक्षा साधन के रूप में होती है तब वे कर्म आदि संज्ञायें 'हरिं वन्दे, दात्रेण लूनवान्' इत्यादि विभक्तियों की उत्पत्ति में निमित्त बन जाती हैं, परन्तु जब योग्यतामात्र की विवक्षा होती है, तब वे कर्म आदि संज्ञायें द्वितीया आदि की उत्पत्ति में कारण नहीं बनती हैं। जैसे 'हरिः वन्दनायां कर्म, दात्रं लवने करणम्' इत्यादि।

प्रश्नभाष्य—**कदा चेति**। विभक्ति की उत्पत्ति में कर्म आदि कब निमित्त नहीं होते हैं?

उत्तरभाष्य—**यदेति**। क्रियाविशेषविवक्षा में जब प्रातिपदिकार्थ शक्ति और लक्षणा से अतिरिक्त होता है तब कर्म आदि शक्तियाँ प्रातिपदिकार्थ का प्रतिपादन नहीं करती हैं। उस अवस्था में अपरोपकारी होने से स्वनिष्ठत्वरूप से मात्र प्रातिपदिकार्थ ही विवक्षित होगा। क्रिया की अपेक्षा करने पर 'दात्रेण' ऐसा करण में तृतीया का प्रयोग होगा, एवं स्व की अपेक्षा होने पर 'राज्ञः' ऐसा प्रयोग होगा। जैसे स्वनिष्ठत्वाश्रय होने से 'दात्रं करणम्' ऐसा प्रयोग होता है वैसे 'राजा स्वामी' यह भी प्रयोग होगा। इसी को आचार्य भर्तृहरि ने इस तरह से व्यक्त किया है—

स्वशब्दैरभिधाने तु स धर्मो नाभिधीयते।
विभक्त्यादिभिरेवासावुपकारः प्रतीयते।। इति।

परन्तु जब शक्ति से पृथक् प्रातिपदिकार्थ आदि का बोध होता है तब कर्म आदि में द्वितीया आदि विभक्तियाँ होती हैं।

यथैव तर्हि राजनि स्वकृतं स्वामित्वं तत्र षष्ठी भवत्येवं पुरुषेऽपि स्वामिकृतं स्वत्वं तत्र षष्ठी प्राप्नोति। राजशब्दाद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पद्यमानया षष्ठ्याऽभिहितः सोऽर्थ इति कृत्वा पुरुषशब्दात् षष्ठी न भविष्यति। न तर्हीदानीमिदं भवति-पुरुषस्य राजेति? भवति। राजशब्दात्तु तदा प्रथमा। न तर्हीदानीमिदं भवति-राज्ञः पुरुषस्येति? भवति। बाह्यमर्थमभिसमीक्ष्य। {षष्ठी}।

आक्षेपक—**यथैव तर्हीति**। जैसे स्वनिमित्तक स्वामित्व मान कर राजनूपद से षष्ठी है, वैसे पुरुषपद से भी स्वनिमित्तक षष्ठी प्राप्त होगी। सम्बन्ध द्विष्ठ होता है; अतः 'राज्ञः पुरुषः' में विशेषण तथा विशेष्य इन दोनों का स्पर्श करेगा। इस तरह जैसे विशेषणवाचक राजनूपद से षष्ठी है, वैसे विशेष्यवाचक पुरुषपद से भी षष्ठी प्राप्त होगी, यह आक्षेप है।

उत्तरभाष्य—**राजशब्दादिति**। विशेषण राजनूशब्द से उत्पन्न षष्ठी से स्वामित्व-सम्बन्ध उक्त है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्याय के द्वारा विशेष्यवाचक पुरुषपद से षष्ठी नहीं होगी। तो क्या 'पुरुषस्य' ऐसा षष्ठ्यन्तप्रयोग नहीं होता है?, इस भ्रान्ति से आक्षेप करते हैं-**न तर्हीति**। तो क्या 'पुरुषस्य राजा' यह षष्ठ्यन्तप्रयोग नहीं होगा?

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। जब पुरुष को विशेषण तथा राजा को विशेष्य की विवक्षा होगी तब 'पुरुषस्य राजा' यह प्रयोग होगा। यहाँ मात्र विशेषणवाचक पुरुष पद से षष्ठी तथा विशेष्यवाचक राजनूपद से प्रथमा विभक्ति ही होगी।

प्रश्नभाष्य—**न तर्हीति**। तो कभी विशेष्यवाचकपद से षष्ठी कर 'राज्ञः पुरुषस्य' ऐसा प्रयोग नहीं हो सकेगा?

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। बाह्य अर्थ गृह आदि की अपेक्षा से विशेष्यवाचकपद से भी षष्ठी हो जायेगी। जैसे 'राज्ञः पुरुषस्य गृहम्'। एक ही वस्तु का भिन्नविषय गुणप्रधानभाव विरुद्ध नहीं है, यह भाष्य का तात्पर्य है। {षष्ठी-}।

अधीगर्थदयेशां कर्मणि २.३.५२

* कर्मादिष्वकर्मकवद्वचनम् * **कर्मादिष्वकर्मकवद्भावो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? 'अकर्मकाणां भावे लो भवती'ति भावे लो यथा स्यात्-मातुः स्मर्यते, पितुः स्मर्यते इति।**

इगर्थ इव अर्थो यस्य स इगर्थः। सूत्रार्थ-'अधिपूर्वक इक स्मरणे धा.पा. १०४७ दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु धा.पा.४८१ तथा ईश ऐश्वर्ये धा.पा.१०२० के कर्म में शेषविवक्षा होने पर षष्ठी हो'। मातुः स्मरणम्। सर्पिषो दयनम् ईशनं वा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिदेशवार्तिक—**कर्मादिष्विति**। अधीगर्थ, दय तथा ईश धातु के कर्म में शेषत्वविवक्षा होने पर षष्ठीविधि में उक्त कर्म में अकर्मकवद् अतिदेश कहना चाहिये। इससे अकर्मकवद् होने से 'मातुः स्मर्यते, पितुः स्मर्यते' में धातु से पर भाव में लकार, कृत्य, क्त एवं खलर्थ प्रत्यय हो जायेंगे।

अथ वत्करणं किमर्थम्? स्वाश्रयमपि यथा स्यात्-माता स्मर्यते पिता स्मर्यत इति * कर्माभिधाने हि लिङ्गवचनाऽनुपपत्तिः * **कर्माभिधाने हि सति लिङ्गवचनयोरनुपपत्तिः स्यात्। मातुः स्मृतम्। मात्रोः स्मृतम्। मातॄणां स्मृतमिति। मातुर्यल्लिङ्गं वचनं च तत्स्मृत-शब्दस्याऽपि प्राप्नोति।**

प्रश्नभाष्य—**अथ वदिति**। वार्तिक में 'वत्' इस प्रत्यय का निर्देश किस लिए किया गया है।

उत्तरभाष्य—**स्वाश्रयमपीति**। वार्तिक में 'वत्' इस प्रत्यय का निर्देश इस लिए किया गया है कि उससे स्वाश्रयविधि भी हो सके। परार्थ में शब्द का प्रयोग होने से वत्प्रत्यय का प्रयोग नहीं होने पर भी अतिदेश हो सकता था। 'कर्मादिषु' में आदिशब्द आश्रयवाची है; अतः इससे कर्माश्रय द्वितीयाविधि का ग्रहण होने से कर्म में भी लकार आदि हो जायेंगे; इससे 'माता स्मर्यते, पिता स्मर्यते' में कर्म में भी लकार हो जायेगा। यदि आचार्य यहाँ वत्करण नहीं करते तो स्वाश्रयकार्य के अवश्य प्राप्त होने पर आरभ्यमाण अकर्मक अतिदेश से स्वाश्रय कर्मकार्य का बाध होने लगता; परन्तु वत्करण से स्वाश्रयकार्य का बाधरूप दोष नहीं आता है। अकर्मकवत् अतिदेश नहीं करने पर जो दोष होता, उसे स्पष्ट करते हैं-**कर्माभिधाने हीति**। यदि अकर्मकवत् अतिदेश नहीं करते तो लकार आदि के द्वारा कर्म ही उक्त होता, भाव नहीं; अतः कर्म का सामानाधिकरण्य होने से कर्म का जो लिङ्ग और वचन, वही लिङ्ग और वचन क्तान्त से भी होता। इस तरह 'माता स्मृता, मातरौ स्मृतौ, मातरः स्मृताः' यही वाक्य होता; परन्तु जब अकर्मकवत् अतिदेश करते हैं तब भाव में क्त प्रत्यय उत्पन्न होने पर एकवचन तथा नपुंसकलिङ्ग ही सर्वत्र होता है-स्मृतमिति।

* षष्ठीप्रसङ्गश्च * **षष्ठी च प्राप्नोति। कुतः? 'स्मृतशब्दात्' मातुः। सामानाधिकरण्यात् षष्ठी प्राप्नोति। अपर आह-** * षष्ठी-प्रसङ्गश्च * **षष्ठी च प्रसङ्क्तव्या। कुतः? 'मातृशब्दात्'। स्मृतशब्दे-नाभिहितं कर्मेति कृत्वा षष्ठी न प्राप्नोति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ च अकर्मकवत् अतिदेश नहीं करने पर अन्यत्र भी दोष होगा, उसे स्पष्ट करते हैं-**षष्ठीप्रसङ्गश्चेति**। यदि अकर्मकवत् अतिदेश नहीं करेंगे तो सामानाधिकरण्य होने से कर्मार्थक क्तान्त स्मृतशब्द से षष्ठी प्रत्यय की भी आपत्ति होगी-'मातुः स्मृतायाः, मात्रोः स्मृतयोः, मातॄणां स्मृतानाम्'। अन्य आचार्य भी यहाँ सामानाधिकरण्य होने से कर्मार्थक क्तान्त स्मृतशब्द से षष्ठी की आपत्ति का समर्थन करते हैं-**षष्ठीप्रसङ्गश्चेति**। **प्रसङ्क्तव्या**=प्रापणीया। भाष्यकार यहाँ षष्ठी की अतिव्याप्ति का खण्डन करते हैं-**स्मृतशब्देनापीति**। 'अनभिहिते' २.३.१ के अधिकार में विहित होने से कृत् के योग में अनुक्त कर्म में ही षष्ठी होगी। यहाँ क्त प्रत्यय के द्वारा कर्म अभिहित होने से कर्मवाची मातृशब्द से षष्ठी प्राप्त नहीं है; अतः उसका सामानाधिकरण्य स्मृतशब्द से भी षष्ठी की आपत्ति नहीं है।

तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। अविवक्षिते कर्मणि षष्ठी भवति। किं वक्तव्यमेतत्? नहि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? शेष इति वर्तते। शेषश्च कः? कर्मादीनामविवक्षा शेषः। यदा च कर्म विवक्षितं भवति तदा षष्ठी न भवति। तद्यथा-'स्मराम्यहं मातरं' 'स्मराम्यं पितर'मिति।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या स्मृतशब्द से उक्त होने से कर्म में षष्ठी नहीं हो, इसके लिए कोई वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इसके लिए कोई अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नही है। अधीगर्थ, दय और ईश के कर्म की अविवक्षा होने पर शेषत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। इससे जहाँ कर्म अविवक्षित होगा वही षष्ठी होगी, अन्यत्र नहीं।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। 'क्या अविवक्षित कर्म में षष्ठी होती है' इसके लिए किसी वचन का आरम्भ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नहीति**। अविवक्षित कर्म मे षष्ठीविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य 'षष्ठी शेषे' २.३.५० सूत्र का आरम्भ कर रहे हैं; उससे प्रकृतसूत्र में 'शेषे' पद की अनुवृत्ति होगी। कर्म आदि की अविवक्षा ही शेष है। जब कर्म विवक्षित होगा तब षष्ठी नहीं होगी। परन्तु जब कर्म अविवक्षित होगा तब षष्ठी हो जायेगी। कर्म विवक्षित होने पर षष्ठी की अप्राप्ति होने से द्वितीयाघटित वाक्य दिखाते हैं-स्मराम्यहं मातरमिति {अधीग-}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः २.३.५४

* अज्वरिसन्ताप्योः * अज्वरिसन्ताप्यो- रिति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-चौरं सन्तापयति, वृषलं सन्तापयति। अथ किमर्थं 'भाववचनाना'मित्युच्यते? यावता रुजार्था भाववचना एव भवन्ति? भावकर्तृकाद् यथा स्यात्। इह मा भूद्-नदी कूलानि रुजतीति। {रुजार्थानाम्}।

'रुजा=पीडा रोगः अर्थो येषां तेषाम्' ऐसा विग्रह है। 'वक्तीति वचनः' में कर्ता में 'ल्यु' प्रत्यय है। यहाँ प्रकृत्यर्थ विवक्षित नहीं है। 'भावः=धात्वर्थः वचनः=कर्त्ता येषां तेषाम्' ऐसा विग्रह है; अतः 'भाववचनानाम्' का 'भावकर्त्तृकाणाम्' यह फलितार्थ है। 'शेषे' २.३.५० तथा 'कर्मणि' २.३.५२ की अनुवृत्ति है। अतः सूत्रार्थ-'ज्वरवर्जित भावकर्त्तृक रुजार्थकों के कर्म में शेषत्वविवक्षा होने पर षष्ठी हो'। चौरस्य रोगस्य रुजा।

वार्तिक—**अज्वरिसन्ताप्योरिति**। उक्त सूत्र के स्थान पर 'रुजार्थानां भाववचनानामज्वरिसन्ताप्योः' ऐसा सूत्रपाठ करना चाहिये। इससे ज्वर तथा सन्ताप दोनों के योग में षष्ठी का प्रतिषेध हो जायेगा। इससे कर्मत्वरूप से अविवक्षा होने पर भी 'चौरं सन्तापयति' इत्यादि में कर्म में षष्ठी नहीं हो सकेगी।

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। 'रुजार्थानामज्वरेः' इतना ही सूत्र रखिये। रुजार्थक भाववचन ही होते हैं; अतः 'भाववचनानाम्' पद का निर्देश नही करने पर भी उसका लाभ हो जा रहा है; फिर 'भाववचनानाम्' पद का सन्निवेश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**भावकर्त्तृकादिति**। 'चौरस्य रोगस्य रुजा' इत्यादि भाववचनों में ही षष्ठी हो, 'नदी कुलानि रुजति' इत्यादि जहाँ धात्वर्थमात्र नही है, वहाँ षष्ठी न हो, इसके लिए 'भाववचनानाम्' पद का निर्देश है। {रुजार्थानां-}।

द्वितीया ब्राह्मणे २.३.६०

किमुदाहरणम्? गां घ्नन्ति। गां प्रतिदीव्यन्ति। गां सभासद्भ्य उपहरन्ति। नैतदस्ति। पूर्व्येणाप्येतत् सिद्धम्। इदं तर्हि-गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः। {द्वितीया ब्राह्मणे}।

'कर्मणि' २.३.५२ तथा 'दिवस्तदर्थस्य' २.३.५८ की अनुवृत्ति है। यह 'दिवस्तदर्थस्य' २.३.५८ का अपवाद है। सूत्रार्थ-'ब्राह्मणविषयप्रयोग में द्युतार्थक तथा क्रयविक्रय-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूपव्यापार के कर्म में द्वितीया हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। इस सूत्र का क्या उदाहरण है? पूर्वसूत्र 'विभाषोपसर्गे' २.३.५९ में व्यस्थित विभाषा होने से सोपसर्ग दिवु धातु के कर्म में वेद के ब्राह्मणभाग में द्वितीया सिद्ध हो जायेगी-'गां प्रतिदीव्यन्ति' इत्यादि; अतः प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**गामस्येति**। 'गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः' यह उदाहरण है। यहाँ 'दिवस्तदर्थस्य' २.३.५८ से नित्य ही षष्ठी प्राप्त है। पूर्वसूत्र तथा इस सूत्र के आरम्भ से ऐसा लगता है कि 'दिवस्तदर्थस्य' २.३.५८ सूत्र में 'शेषे' २.३.५० की अनुवृत्ति नहीं होती है। {द्वितीया-}।

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने २.३.६१

* हविषोऽप्रस्थितस्य * **हविषोऽप्रस्थितस्येति वक्तव्यम्। इन्द्राग्निभ्यां छागं हविर्वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य।** {प्रेष्यब्रुवोर्हविषो}।

प्र—पूर्वक इष गतौ धा.पा.११२७ दैवादिक प्रेरणार्थक है, उसका तथा ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि धा.पा.१०६३ धातु का कर्म हविष्-वाची होने पर उससे षष्ठी हो'।

जब हविः के साथ प्रस्थित को विशेषित करेंगे तब कर्म में षष्ठी प्राप्त नहीं हो सकेगी, अतः उस दशा में षष्ठीविधान के लिए वार्तिकावतार करते हैं-**हविषोऽप्रस्थितस्येति**। अप्रस्थित हविः कर्म में षष्ठी कहनी चाहिये। जैसे 'अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा'। जहाँ प्रस्थित हविः है वहाँ षष्ठी नहीं होगी। उसका उदाहरण देते हैं-इन्द्राग्निभ्यां छागं हविर्वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य'। {प्रेष्य-}।

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि २.३.६२

* षष्ठ्यर्थे चतुर्थीविधानम् * **षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या। या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वस्तिस्रो रात्रीरिति। 'तस्याः' इति प्रयोगे प्राप्ते। यां मलवद्वाससं सम्भवन्ति। यस्ततो जायते सोऽभिशस्तो, यामरण्ये तस्यै स्तेनो, यां पराचीं तस्यै ह्रीतमुख्यपगल्भो, या स्नाति तस्या अप्सुमारुको, याऽभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा, या प्रलिखते तस्यै खलतिरपमारी, याऽङ्क्ते तस्यै काणो, या दतो धावते तस्यै श्यावदन्, या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी, या कृणत्ति तस्यै क्लीबो, या रज्जुं सृजति तस्या उद्बन्धुको, या पर्णेन पिबति तस्या**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्मादुको जायते। अहल्यायै जार। मनाय्यैः तन्तुः'।

सूत्रार्थ—'वेद में चतुर्थी के अर्थ में बाहुलकात् षष्ठी हो'। जैसे 'पुरुषमृगश्चन्द्रमसे' 'गोधाः कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्'। 'वनस्पतिभ्यः' ऐसा प्राप्त होने पर 'वनस्पतीनाम्' ऐसा प्रयोग है।

वार्तिक—**षष्ठ्यर्थे इति**। वेद में बाहुलक से षष्ठ्यर्थ में चतुर्थी भी कहनी चाहिये। जैसे 'या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः' में 'तस्याः' ऐसा प्रयोग प्राप्त होने पर 'तस्यै' ऐसा चतुर्थ्यन्त प्रयोग है। यहाँ आगे के वैदिक उदाहरण में सर्वत्र षष्ठ्यर्थ में चतुर्थी है। यहाँ वेद ऋतुमती द्वारा ऋतुकाल में निषिद्ध का आचरण करने पर उसका प्रतिफल बता रहा है। इसका अर्थ इस प्रकार है-मलिन वस्त्र वाली रजस्वला के साथ समागम करने पर उससे **अभिशस्तः**= मिथ्यारोपितपातक पुत्र का जन्म होता है। जङ्गल में जिस रजस्वला का गर्भाधान किया जाये उससे **स्तेन**=चोर पुत्र पैदा होता है। **पराची**=लज्जा आदि के द्वारा मलिन मुख वाली अथ वा अन्यचित्ता रजस्वला में गर्भाधान करने पर उससे **ह्रीतमुखी**= लज्जामुख वाला, **अपगल्भः**=अप्रगल्भ पुत्र पैदा होता है। रजःस्राव की अवस्था में जल में स्नान करने वाली को **मारुकः**=मरणशील; तैल उबटन आदि करने वाली को **दुश्चर्मा**=कुष्ठी; जो **प्रलिखते**=चित्र आदि बनाती हो उसको **खलतिः**= विना केश का शिर वाला **अपमारी**=अकाल में मृत्यु को प्राप्त होने वाला; जो आखों में काजल आदि करे उसको काना; जो दातों को दातुन से साफ करे उसको **श्यावदन्**=मैला दाँत वाला; जो नखों का छेदन करे उसको खराब नख वाला; जो **कृणत्ति**=औषधि आदि का छेदन करे उसको नपुंसक; जो रस्सी बनावे उसे **उद्बन्धुकः**=गले में रस्सी बाधँ कर मरने वाला; जो **पर्ण**=पत्ते से जलपान करे उसको **उन्मादुकः**=उन्मत्तशील; जो **खर्व**=अग्निदग्ध शराव अथ वा **अञ्जलि**=अपक्व शराव से जलपान करे उसको **खर्व**=बौना पुत्र अथ वा पुत्री पैदा होती है। यह सम्पूर्ण वातें ऋतुमती पर लागू होती हैं। यहाँ सर्वत्र षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विहित है। तैत्तिरीयश्रुति में रजस्वलाप्रस्ताव में 'न सहासीत नास्या अन्नमद्याद् ब्रह्महत्यायै ह्येषा वर्णं प्रतिमुच्यास्तेऽथो खल्वाहुरभ्यञ्जनं वाव स्त्रिया अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं काममन्यद्' ऐसा उपक्रम कर 'यां मलवद्वाससं सम्भवन्ति' इत्यादि श्रुति कही गयी है। इसके आगे वेद में 'या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वस्तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत्, अञ्जिला वा पिबेदखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथायाऽहल्यायै जार मनाय्यै तन्तुरिति तस्मात्तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत्' ऐसा कहा है। यहाँ 'अहल्याया जारः' ऐसा प्राप्त होने पर 'अहल्यायै जारः' ऐसा प्रयोग है। प्रथम वाक्य का अर्थ है-'जो ऋतुमती **खर्वेण**=अग्निदग्ध शराव के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा जलपान करे उससे खर्व=वामन सन्तति होती है। यहाँ सर्वत्र षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी है।

तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् * योगविभागात् सिद्धम् * 'चतुर्थी'। ततः 'अर्थे बहुलं छन्दसि' इति। {चतुर्थ्य}।

प्रश्नभाष्य—तत्तर्हीति। क्या 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थीवचनम्' यह वार्तिक पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नही है। 'चतुर्थ्यर्थेबहुलंछन्दसि' इस संहितापाठ का योगविभाग करेंगे। 'चतुर्थी' यह प्रथमयोग होगा। 'अर्थे बहुलं छन्दसि' यह द्वितीययोग होगा। द्वितीययोग में प्रथमयोग की अनुवृत्ति होगी। अर्थ होगा-'बाहुलकात् वेद में अन्यविभक्तियों के अर्थ में भी चतुर्थी हो'। इससे षष्ठ्यर्थ में भी चतुर्थी हो जायेगी; अतः अतिरिक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नही है। {चतुर्थ्यर्थे-}।

कर्तृकर्मणोः कृति २.३.६५

कृद्ग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूत्-पचत्योदनं देवदत्त इति * कर्तृकर्मणोः षष्ठीविधाने कृद्ग्रहणानर्थक्यं लप्रतिषेधात् * **कर्तृकर्मणोः षष्ठीविधाने कृद्ग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'लप्रतिषेधात्'। प्रतिषिध्यतेऽत्र षष्ठी 'लप्रयोगे ने'ति। तस्य कर्मकर्त्रर्थं तर्हि कृद्ग्रहणं कर्तव्यम्। कृतो ये कर्तृकर्मणी तत्र यथा स्यादन्यस्य ये कर्तृकर्मणी तत्र मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। धातोर्हि द्वये प्रत्यया विधीयन्ते,-तिङश्च कृतश्च। तत्र कृत्प्रयोगे इष्यते, तिङ्प्रयोगे प्रतिषिध्यते। न ब्रूमः-इहार्थं तस्य कर्मकर्त्रर्थं कृद्ग्रहणं कर्तव्यमिति। किं तर्हि? उत्तरार्थम्-'अव्ययप्रयोगे ने'ति षष्ठ्याः प्रतिषेधं वक्ष्यति, स कृतोऽव्ययस्य ये कर्तृकर्मणी तत्र यथा स्याद्, अकृतोऽव्ययस्य ये कर्तृकर्मणी तत्र मा भूत्-उच्चैः कटानां स्रष्टेति।**

'अनभिहिते' २.३.१ का अधिकार है तथा 'षष्ठी शेषे' २.३.५० से 'षष्ठी' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'कृदन्त के योग में अनुक्त कर्त्ता एवम् अनुक्त कर्म में षष्ठी हो' जैसे कर्त्ता में 'कृष्णस्य कृतिः'। कर्म में 'जगतः कर्त्ता कृष्णः'।

प्रश्नभाष्य—कृद्ग्रहणमिति। प्रकृतसूत्र के स्थान पर मात्र 'कर्तृकर्मणोः' इतना ही सूत्र रखिये इससे तिङन्तस्थल 'पचत्योदनं देवदत्तः' में कर्म में तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पच्यते ओदनो देवदत्तेन' में कर्त्ता में षष्ठी प्राप्त हो रही है, परन्तु यह दोष इस लिए नहीं रहेगा कि आचार्य 'न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ सूत्र के द्वारा लादेश के योग में षष्ठी का निषेध कर रहे हैं; अतः लादेश तिङ् के योग में षष्ठी की अतिव्याप्ति हट जायेगी। इस तरह पारिशेष्यात् कृत् के योग में ही षष्ठी होगी; अतः 'कृति' पद का निर्देश नहीं होने पर भी जब 'कृति' अर्थ का लाभ हो रहा था, तब फिर आचार्य 'कृति' पद का निर्देश क्यों कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**तस्य कर्मकर्त्रर्थमिति**। कृदन्त के प्रति जो कर्म तथा कर्त्ता, उसी में षष्ठी हो, कृदन्त से अन्य के प्रति जो कर्म और कर्त्ता, उसमें षष्ठी न हो, इसके लिए कृद्ग्रहण करना चाहिये। आक्षेपक-**नैतदस्तीति**। 'धातोः' ३.१.९१ सूत्र का अधिकार कर आचार्य तिङ् तथा कृत् इन दो प्रत्ययों का ही विधान करते हैं। तिङ्प्रत्यय के योग में 'न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ से षष्ठी का निषेध कहते हैं; अतः कृत्प्रत्यय ही शेष रहा; उसके योग में कर्त्ता और कर्म में स्वतः षष्ठी हो जायेगी। कृद्ग्रहण का उत्तरार्थत्वनिराकरण के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं-**न ब्रूम इति**। इस सूत्र में कृद्ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं होने पर भी उत्तर सूत्र 'न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ में अनुवृत्ति के लिए कृद्ग्रहण करना चाहिये। इससे कृत्संज्ञ जो अव्यय, उसी के योग में कर्त्ता और कर्म में षष्ठी का निषेध होगा। जैसे 'ग्रामं गत्वा' इत्यादि। जो कृद्भिन्न अव्यय उच्चैः, नीचैः इत्यादि हैं, उनके योग में 'न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' २.३.६९ के द्वारा षष्ठी का निषेध न होगा। जैसे 'उच्चैः कटानां स्रष्टा'; अतः यहाँ कृद्ग्रहण है।

* तस्य कर्मकर्त्रर्थमिति चेत्प्रतिषेधेऽपि तदन्तकर्मकर्तृत्वात् सिद्धम् *
कृत एते कर्तृकर्मणी नाऽव्ययस्य, अधिकरणमत्राऽव्ययम्। इदं तर्हि प्रयोजनम्उभयप्राप्तौ कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधं वक्ष्यति, स कृतो ये कर्तृकर्मणी तत्र यथा स्यात्, कृतोर्ये कर्तृकर्मणी तत्र मा भूदिति। आश्चर्यमिदं वृत्तम्,-ओदनस्य च नाम पाको, ब्राह्मणानां च प्रादुर्भाव इति।

आक्षेपक—**तस्येति**। 'उच्चैः कटानां स्रष्टा' में यहाँ कटनिष्ठ कर्मत्व कृत्प्रत्ययनिरूपित है तथा स्रष्टा में कृत्प्रत्यय का भी कर्तृ अर्थ है। यहाँ अव्यय अधिकरणार्थक है; अतः अव्यय के योग में जब कर्त्ता और कर्म में षष्ठी प्राप्त नहीं है तब उसका निषेध व्यर्थ है। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। आचार्य 'उभयप्राप्तौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्मणि' २.३.६६ ऐसा सूत्र का आरम्भ कर कर्त्ता में षष्ठी का निषेध कहेंगे; वह कृत् के योग में जो कर्ता और कर्म, उन दोनों में एक वार षष्ठी प्राप्त होने पर एक ही कृत् के योग में जो कर्त्ता और कर्म उसी में निषेध की प्रवृत्ति हो, भिन्न-भिन्न कृत्प्रत्यय के योग में जो कर्ता और कर्म, उसमें निषेध की प्रवृत्ति न हो। इसका उदाहरण देते हैं-**आश्चर्यमिदमिति**। 'ओदनस्य च नाम पाकः' में घञन्त पाक के योग में कर्म में षष्ठी है। 'ब्राह्मणानां च प्रादुर्भावः' में घञन्त प्रादुर्भाव के योग में कर्ता में षष्ठी है। यहाँ कर्ता और कर्म में उभयत्र षष्ठी एक कृत्प्रत्ययनिमित्तक नहीं है, अपि तु भिन्न कृत्प्रत्ययनिमित्तक है; अतः कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी होती है। इस तरह 'कर्ता और कर्म में समान कृत्प्रत्ययनिमित्तक षष्ठी प्राप्त होने पर षष्ठी का प्रतिषेध हो' इस अर्थ का लाभ के लिए प्रकृतसूत्र में कृद्ग्रहण है।

अथ क्रियमाणेऽपि कृद्ग्रहणे कस्मादेवाऽत्र न भवति? 'उभयप्राप्ता'विति नैवं विज्ञायते-उभयोः प्राप्तिरुभयप्राप्तिः, उभयप्राप्ताविति। कथं तर्हि? उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति सोऽयमुभयप्राप्तिः कृत्, उभयप्राप्ताविति। अथ वा कृतो ये कर्तृकर्मणी तत्र यथा स्यात्तद्धितस्य ये कर्तृकर्मणी तत्र मा भूदिति-कृतपूर्वी कटं, भुक्तपूर्वी ओदनमिति।

प्रश्नभाष्य—**अथ क्रियमाणेऽपीति**। प्रकृत् सूत्र में कृद्ग्रहण करने पर 'ओदनस्य च नाम पाकः' 'ब्राह्मणानां च प्रादुर्भावः' में 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' २.३.६६ से कर्ता में षष्ठी का निषेध क्यों नही होता है?

उत्तरभाष्य—**उभयप्राप्तावितीति**। 'उभयप्राप्तौ' इस पद में तत्पुरुष नहीं है, अपि तु बहुव्रीहि है; अतः इसमें अन्यपदार्थ कृत् प्रसिद्ध होने से 'समान कृत् के योग में जो कर्ता और कर्म' ऐसा अर्थ लब्ध होगा। कृद्ग्रहण का अन्य प्रयोजन भी बताते हैं-**अथ वेति**। अथ वा कृद् के योग में जो कर्ता और कर्म उसी में षष्ठी हो, तद्धित के योग में जो कर्ता और कर्म, उसमें षष्ठी न हो, इसके लिए प्रकृत में कृद्ग्रहण है। इसका उदाहरण देते हैं-**कृतपूर्वीति**। 'कृतः पूर्वं कटोऽनेनेति कृतपूर्वी कटम्, भुक्तः पूर्वमोदनोऽनेनेति भुक्तपूर्वी ओदनम्' में 'पूर्वादिनिः' ५.२.८६ 'सपूर्वाच्च' ५.२.८७ के द्वारा तद्धित इनि प्रत्यय है। यहाँ तद्धित के योग में कर्मवाचक कट तथा ओदनपद से षष्ठी की अप्राप्ति के लिए प्रकृत में कृद्ग्रहण है।

ननु च वाक्येनैवाऽनेन न भवितव्यम्। तत्र द्वितीयया तावन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवितव्यम्। किं कारणम्? क्तेनाऽभिहितं कर्मेति कृत्वा। इनिप्रत्ययेन चापि नोत्पत्तव्यम्। किं कारणम्? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? सापेक्षमसमर्थं भवतीति।

'कृतः पूर्वं कटोऽनेन, भुक्तः पूर्वम् ओदनोऽनेन' ऐसा विग्रह कर आक्षेप करते हैं-**ननु चेति**। डुकृञ् करणे धा.पा.१४७२ तथा भुजी पालनाभ्यवहारयोः धा.पा.१४१७ यह दोनों सकर्मक धातु हैं; अतः उससे कर्म में क्त प्रत्यय होने पर कर्म उक्त होगा। इस तरह 'कृतः पूर्वं कटोऽनेन, भुक्तः पूर्वम् ओदनोऽनेन' ऐसा वाक्य होने से समासोत्तर 'कृतपूर्वी कटः, भुक्तपूर्वी ओदनः' ऐसा वाक्य होगा। अनुक्त कर्म में ही द्वितीया होती है तथा उसी में यहाँ प्रकृतस्थल में षष्ठी कही जा रही है। प्रकृत वाक्य में जब कर्म उक्त है तब उसमें द्वितीया नहीं होने से षष्ठी की आपत्ति भी नहीं दी जा सकती है। अथ च उक्त विग्रह में 'कृतपूर्व' शब्द कट की अपेक्षा कर रहा है; अतः सापेक्ष हुआ। सापेक्ष असमर्थवान् होता है। असमर्थों की तद्धितवृत्ति नहीं होने से यहाँ इनि प्रत्यय भी प्राप्त नहीं है।

यत्तावदुच्यते'द्वितीयया तावन्न भवितव्यम्। किं कारणम्? क्तेनाऽभिहितं कर्मेति कृत्वे'ति। योऽसौ कृतकटयोरभिसम्बन्धः स उत्पन्ने प्रत्यये निवर्तते। अस्ति च करोतेः कटेन सामर्थ्यमिति कृत्वा द्वितीया भविष्यति। यदप्युच्यते-'इनिप्रत्ययेन चापि नोत्पत्तव्यम्। किं कारणम्? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? सापेक्षमसमर्थं भवती'ति। नेदमुभयं युगपद् भवति वाक्यं च प्रत्ययश्च। यदा वाक्यं, न तदा प्रत्ययः। यदा प्रत्ययः सामान्येन तदा वृत्तिः। तत्रावश्यं विशेषार्थिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः-कृतपूर्वी। किम्? कटमिति। भुक्तपूर्वी। किम्? ओदनमिति।

उत्तरपक्षी आचार्य आक्षेप का निवारण करते हैं-**यत्तावदिति**। 'कृतः कटोऽनेन' इस वाक्य में कृत औ कट का सामानाधिकरण्य है, अतः इस अर्थविशेष में तद्धितवृत्ति सम्भव नहीं है। अतः कृ धातु से पहले कर्मसामान्य में अथ वा भाव में क्त प्रत्यय करेंगे। इससे 'कृतं पूवमनेन' इस विग्रह में इनि प्रत्यय करके 'कृतपूर्वी'शब्द निष्पन्न हो जायेगा। इसका 'पूर्वं कृतवान्' ऐसा अर्थ होगा। बाद में 'किं कृतवान्' इस तरह की कर्मजिज्ञासा में कट कर्म के साथ योग होगा; अतः 'करोति'क्रिया की अपेक्षा से कट का कर्मत्व हो जायेगा। असमर्थ होने से 'कृतपूर्वी कटम्' इत्यादि में जो इनि प्रत्यय की अप्राप्ति की आत्ति दी थी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह भी नहीं रहेगी। वह इस तरह कि भाव में अथ वा कर्मसामान्य में क्त प्रत्यय करके 'कृतं पूर्वमनेन, भुक्तं पूर्वमनेन' इस विग्रह में इनि प्रत्यय कर लेंगे, बाद में कर्मविशेष की जिज्ञासा होने पर उसका योग क्रमशः कट और ओदन कर्म के साथ होगा; अतः इनि प्रत्यय भी उत्पन्न हो जायेगा।

अथ वा इदं प्रयोजनं-कर्तृभूतपूर्वमात्रादपि षष्ठी यथा स्यात्,-भेदिका देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य काष्ठानामिति। {कर्तृकर्मणोः}।

अथ वा कृद्ग्रहण का अन्य प्रयोजन देते हैं-**अथ वेति**। **कर्तृभूतपूर्वमात्रात्**= अप्रधान कर्ता से भी षष्ठी हो सके, इसके लिए कृद्ग्रहण है। इस पक्ष में 'करोतीति कृत्' ऐसी व्युत्पत्ति होगी तथा कृत्पद से कर्ता अर्थ वाच्य होगा। इस तरह कर्ता में पुनः षष्ठीविधान होने से अप्रधान कर्ता में भी षष्ठी होगी। 'भेदिका देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य काष्ठानाम्' इस वाक्य को यदि तिङन्त में बदल दिया जाये तो यहाँ का भाष्य स्पष्ट हो जाता है। 'देवदत्तः काष्ठानि भिनत्ति, तं प्रेरयति यज्ञदत्तः, यज्ञदत्तो देवदत्तेन काष्ठानि भेदयति' यहाँ भिदिर् विदारणे धा.पा.१४३९ धातु से 'हेतुमति च' ३.१.२६ के द्वारा णिच्प्रत्यय है। णिच् प्रत्यय से प्रयोजक कर्ता का व्यापार वाच्य है; अतः णिजन्त में प्रयोजक कर्ता प्रधान तथा प्रयोज्य कर्ता अप्रधान होता है। णिजन्त भेदि धातु से 'धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्वक्तव्यः' वा.३.३.१०८ से धात्वर्थ में ण्वुल् प्रत्यय है। 'भेदिका देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य काष्ठानाम्' में णिजर्थव्यापाराश्रय प्रधान कर्ता यज्ञदत्त है तथा धात्वर्थव्यापाराश्रय देवदत्त अप्रधान कर्ता है। यहाँ प्रधान कर्ता से षष्ठी होती है, वह अप्रधान कर्ता से भी हो, इसके लिए प्रकृतसूत्र में कृद्ग्रहण है। {कर्तृकर्म-}।

उभयप्राप्तौ कर्मणि २.३.६६

* उभयप्राप्तौ कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधेऽकादिप्रयोगेऽप्रतिषेधः * **उभयप्राप्तौ कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधेऽकादिप्रयोगे प्रतिषेधो न भवतीति वक्तव्यम्। भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम्, चिकीर्षा विष्णमित्रस्य कटस्य।**

यह नियमसूत्र है। यहाँ 'उभयप्राप्तौ' शब्द से 'कर्तृकर्मणोः प्राप्तौ' अर्थ विवक्षित है। सूत्रार्थ-'कर्ता और कर्म में एक साथ षष्ठी प्राप्त होने पर कर्म में ही हो, कर्ता में नहीं'। जैसे 'जगतः कर्ता कृष्णः'।

वार्तिक—**अकादिप्रयोग इति**। 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' से कर्ता में षष्ठी का निषेधप्रकरण में अक आदि का प्रयोग होने पर षष्ठी का निषेध का प्रतिषेध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहना चाहिये। अर्थात् अक आदि का प्रयोग होने पर कर्ता में भी षष्ठी कहनी चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-भेदिका देवदत्तस्येत्यादि। यहाँ दोनों वाक्यों में क्रमशः देवदत्त और विष्णुमित्र कर्ता हैं तथा उसमें भी षष्ठी हुई है। 'पर्यायाऽर्हणोत्पत्तिषु ण्वुच्' ३.३.१११ से पर्याय आदि अर्थों में ण्वुच् प्रत्यय होकर 'भेदिका' यह पदनिर्देश है।

अपर आह- *अकाऽकारयोः प्रयोगे प्रतिषेधो नेति वक्तव्यं शेषे विभाषा* **शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः, शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः। शोभना खलु दाक्षायणस्य सङ्ग्रहस्य कृतिः, शोभना खलु दाक्षायणेन सङ्ग्रहस्य कृतिरिति।** {उभयप्राप्तौ}।

दूसरे आचार्य यहाँ अन्य प्रकार से भी वार्तिक़पाठ करते हैं-**अकाऽकारयो-रिति**। अक तथा अकारप्रत्यय को छोड कर शेष सभी प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी चाहते हैं। जैसे 'शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः'। जब कर्ता में षष्ठी नहीं होगी तब तृतीया होकर 'शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः' ऐसा वाक्य होगा। इसी तरह आगे के वाक्यों में भी योजना करनी चाहिये। {उभयप्राप्तौ-}।

क्तस्य च वर्तमाने २.३.६७

क्तस्य च वर्तमाने नपुंसके भाव उपसङ्ख्यानम् **क्तस्य च वर्तमाने नपुंसके भाव उपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। छात्रस्य हसितम्, नटस्य भुक्तम्, मयूरस्य नृत्तम्, कोकिलस्य व्याहृतमिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्** *शेषविज्ञानात् सिद्धम्* **शेषलक्षणाऽत्र षष्ठी भविष्यति। शेष इत्युच्यते, कश्च शेषः? कर्मादीनामविवक्षा शेषः। कथं पुनः सतो नामाऽविवक्षा स्यात्, यदा छात्रो हसति, नटो भुङ्क्ते, मयूरो नृत्यति, कोकिलो व्याहरति? सतोऽप्यविवक्षा भवति। तद्यथा-अलोमिकैडका' 'अनुदरा कन्ये'ति। असतश्च विवक्षा-'समुद्रः कुण्डिका' 'विन्ध्यो वर्द्धितक'मिति। यद्येवमुत्तरत्र चातुःशब्द्यं प्राप्नोतिइदमहेः सृप्तम्, इहाहिना सृप्तम्। इहाहिः सृप्तः, इहाहेः सृप्तं ग्रामस्य पार्श्वे ग्रामस्य मध्ये इति। इष्यते एव चातुःशब्द्यम्।**{क्तस्य च}।

सूत्रार्थ—'वर्त्तमानार्थक क्त के योग में षष्ठी हो'। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा। मनु अवबोधने धा.पा.१४७२, बुध अवबोधने धा.पा.११७२, एवं पूज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूजायाम् १६४३ धातु से 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' ३.२.१८८ के द्वारा वर्त्तमान में क्त प्रत्यय है।

वार्तिक—**नपुंसके इति**। नपुंसकभाव में वर्त्तमानार्थक क्त प्रत्यय होने पर उसके योग में ही षष्ठी कहनी चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-छात्रस्य हसित-मित्यादि। 'हासः हसितम्' इत्यादि में नपुंसकभाव में क्त प्रत्यय है। यहाँ छात्र आदि के कर्ता होने से उसमें तृतीया प्राप्त होने पर षष्ठीविधानार्थ वचन का आरम्भ है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'छात्रस्य हसितम्' इत्यादि में षष्ठीविधान के लिए 'क्तस्य च वर्त्तमाने नपुंसके भावे उपसंख्यानम्' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नही है। 'छात्रस्य हसितम्' इत्यादि में शेषलक्षणा षष्ठी हो जायेगी।

प्रश्नभाष्य—**शेष इतीति**। हसना, भोजन करना, नृत्य करना तथा व्याहारक्रिया के प्रति क्रमशः छात्र, नट, मयूर तथा कोकिल कर्ता हैं;फिर उनकी अविवक्षा कैसे की जा सकती है?

उत्तरभाष्य—**सतोऽपीति**। **सत्**=विद्यमान की भी अविवक्षा होती है। जैसे 'अलोमिका एडका। जिस **एडका**=भेंड़ का लोम किसी काम का नहीं होता है उसके रहने पर भी उसकी अविवक्षा की जाती है। अल्प उदर रहने पर भी उसकी अविवक्षा होने से 'अनुदरा कन्या' ऐसा कहा है। अतः 'छात्रस्य हसितम्' इत्यादि में सत् कर्ता की अविवक्षा होने से छात्र आदि से शेषलक्षणा षष्ठी हो जायेगी। कहीं पर असत् की भी विवक्षा होती है। जैसे कुण्डिका में जलातिशय होने से उसमें असत् समुद्र का आरोप कर 'समुद्रः कुण्डिका' ऐसा प्रयोग किया जाता है। **वर्द्धितक**=नीचे का भाग स्थूल तथा उपर का भाग कुछ पतला वाला भात का ढेला **विन्ध्य**=पर्वत है। वहाँ वर्द्धितक में असत् विन्ध्यपर्वत की विवक्षा की जाती है। आक्षेपक- **यद्येवमिति**। यदि सत् की अविवक्षा कर 'छात्रस्य हसितम्' इत्यादि में शेषलक्षणाषष्ठी कहेंगे तो उत्तरसूत्र 'अधिकरणवाचिनश्च' २. ३.६८ का उदाहरणविषयीभूत गत्यर्थक धातु से जहाँ अधिकरण में क्त प्रत्यय करेंगे, वहाँ 'इदमहेः सृप्तम्' में क्त प्रत्यय से अधिकरण अर्थ उक्त होने से अधिकरणवाची 'इदम्'शब्द से प्रथमा विभक्ति है। परन्तु अधिकरणवाची 'अहि'शब्द से षष्ठी है। 'इहाऽहिना सृप्तम्' में भाव में क्त प्रत्यय होने से अनुक्त कर्ता में तृतीया है। यहाँ कर्ता की अविवक्षा होने से शेषलक्षणा षष्ठी की आपत्ति हो रही है। 'इहाऽहिः सृप्तः' में कर्ता में क्त प्रत्यय है। 'इहाऽहेः सृप्तम्' में भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव में ही क्त प्रत्यय है। यहाँ शेषत्वविवक्षा में षष्ठी की आपत्ति दे रहे हैं। इस तरह यहाँ चार शब्दों की आपत्ति हो रही है।

समाधानभाष्य—**इष्यत एवेति**। वस्तुतः यहाँ चार शब्द होते ही हैं, आपत्ति नही है। {क्तस्य-}।

न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् २.३.६९

* लादेशे सल्लिङ्ग्रहणं किकिनोः प्रतिषेधार्थम् * **लादेशे सल्लिङ्ग्रहणं कर्तव्यम्। सल्लिटोः प्रयोगो नेति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'किकिनोः प्रतिषेधार्थम्'। किकिनोरपि प्रयोगे प्रतिषेधो यथा स्यात्-पपिः सोमम्। ददिर्गाः। किं पुनः कारणं न सिध्यति?** * तयोरलादेशत्वात् * **न हि तौ लादेशौ। अथ तौ लादेशौ स्यातां स्यात् प्रतिषेधः? बाढं स्यात्। लादेशौ तर्हि भविष्यतः। तत्कथम्? 'आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् चे'ति। 'लिड्व'दिति वक्ष्यामि। स तर्हि वतिनिर्देशः कर्तव्यो, न ह्यन्तरेण वतिमतिदेशो गम्यते। अन्तरेणाऽपि वतिमतिदेशो गम्यते। तद्यथा-'एष ब्रह्मदत्तः'। अब्रह्मदत्तं ब्रह्मदत्त इत्याह, तेन मन्यामहे-'ब्रह्मदत्तवदयं भवती'ति। एवमिहाप्यलिटं लिडित्याह, लिड्वदिति विज्ञास्यते।**

सूत्रार्थ—'लादेश, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ तथा तृन् के योग में षष्ठी न हो'।

वार्तिक—**लादेश इति**। लादेश के योग में षष्ठी का प्रतिषेधविधि में 'पपिः सोमम्' 'ददिर्गाः' में जहाँ 'आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च' ३.२.१७१ के द्वारा 'कि' और 'किन्' प्रत्यय का लिड्वद् अतिदेश है, वहाँ यह लादेश नही है; अतः उसके योग में कर्म में षष्ठी का निषेध नहीं होने से कर्म में षष्ठी की आपत्ति हो रही है, उसका निषेध कहना चाहिये। यदि यहाँ लिट् को 'कि' और 'किन्' आदेश होते तो उसके योग में षष्ठी का निषेध हो जाता; परन्तु लादेश नही होने से षष्ठी का निषेध नहीं हो पा रहा है; अतः 'पपिः सोमम्' इत्यादि में कर्म में षष्ठीनिषेध के लिए वार्तिक का आरम्भ करना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**लादेशाविति**। 'कि' और 'किन्' को भी हम लिट् के स्थान में आदेश कहेंगे। वह इस तरह कि 'आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च' ३.२.१७१ सूत्र में लिट् को 'लिड्वद्' ऐसी व्याख्या करेंगे। प्राश्निक आचार्य 'अपूर्व वतिनिर्देश करना चाहिये' ऐसा अर्थ मान कर कहते हैं-**स तर्हीति**। वतिनिर्देश के अभाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में अतिदेश गम्य नहीं होता है। आप यहाँ अतिदेश कर रहे हैं। वतिप्रत्यय का निर्देश नही होने पर अतिदेश गम्य नही होता है; अतः क्या यहाँ वतिप्रत्यय का निर्देश करना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**अन्तरेणापीति**। वतिप्रत्यय का निर्देश नहीं करने पर भी अतिदेश गम्य होता है। जैसे किसी ने अब्रह्मदत्त को ब्रह्मदत्त कहा तो वहाँ 'ब्रह्मदत्तवत्' ऐसा बोध होता है। वैसे प्रकृत में भी अलिट् 'कि' और 'किन्' को लिट् कहा जा रहा है, इससे लिट् से लिड्वद् अतिदेश का बोध हो जायेगा।

* उकारप्रयोगे न * **उकारप्रयोगे नेति वक्तव्यम्। कटं चिकीर्षुः, ओदनं बुभुक्षुः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। उकारोऽप्यत्र निर्दिश्यते। कथम्? प्रश्लिष्टनिर्देशोऽयम्-उ+उक=ऊक, ल+ऊक= लोकेति** * उकप्रतिषेधे कमेर्भाषायामप्रतिषेधः * **उकप्रतिषेधे कमेर्भाषायां प्रतिषेधो न भवतीति वक्तव्यम्। दास्याः कामुकः, वृषल्याः कामुकः** * अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः * **अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोः प्रतिषेधो न भवतीति वक्तव्यम्। पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः। पुरा वत्सानामपाकर्तोः। पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्।**

वार्तिक—**उकारप्रयोगे इति**। 'सनाशंसभिक्ष उः' ३.२.१६८ से जहाँ 'उ' प्रत्यय हो रहा है, वहाँ तदन्त के योग में षष्ठी का निषेध कहना चाहिये। इससे 'कटं चिकिर्षः, ओदनं बुभुक्षुः' में कर्म में षष्ठी का निषेध हो जाता है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। 'कटं चिकिर्षुः, ओदनं बुभुक्षुः' में कर्म में षष्ठी का निषेध के लिए 'उकारप्रयोगे न' यह वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य सूत्र में ही 'उ' प्रत्यय का निर्देश करते हैं। 'उ+उक=ऊक' ऐसा सवर्णदीर्घ-एकादेश है। गुण-एकादेश के द्वारा -लोक-' औसा निर्देश है; अतः 'उ' प्रत्यय के योग में भी षष्ठी का निषेध हो जायेगा। वार्तिक-**ऊकप्रतिषेधे इति**। उकान्त कम के योग में लोक में षष्ठी का निषेधमात्र नहीं कहना होगा। यहाँ कर्म में षष्ठीविधान कर 'दास्याः कामुकः' इत्यादि उदाहरण देते हैं। वार्तिक-**अव्ययप्रतिषेध इति**। अव्यय के योग में षष्ठीनिषेधविधि में तोसुन् और कसुन् का निषेध कहना चाहिये। अर्थात् तोसुन् और कसुन् प्रत्यय के योग में षष्ठी करनी चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-पुरा सूर्यस्येत्यादि।

* शानंश्चानश्शतृणामुपसंख्यानम् * **शानंश्चानश्शतृणामुपसंख्यानं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्तव्यम्। सोमं पवमानः। नडमाघ्नानः। अधीयन् पारायणम्। 'लप्रयोगे ने'ति प्रतिषेधो न प्राप्नोति। मा भूदेवं, 'तृ'न्नित्येवं भविष्यति। कथम्? 'तृ'न्निति नेदं प्रत्ययग्रहणम्। किं तर्हि? 'प्रत्याहारग्रहणम्'। क्व सन्निविष्टानां प्रत्याहारः? 'लट- श्शत्रि'त्यतः प्रभृत्याऽऽतृनो नकारात्। यदि प्रत्याहरग्रहणं 'चौरस्य द्विषन्' 'वृषलस्य द्विषन्'-अत्रापि प्राप्नोति * द्विषः शतुर्वावचनम् * **द्विषः शतुर्वेति वक्तव्यम्। तच्चाऽवश्यं वक्तव्यं प्रत्ययग्रहणे सति प्रति-षेधार्थम्। तदेव प्रत्याहारग्रहणे सति विध्यर्थं भविष्यति।**

वार्तिक—**शानंश्चानेति**। शानन्, चानश् तथा शतृ प्रत्यय के योग में भी षष्ठी का निषेध कहना चाहिये। यहाँ सूत्रस्थ 'ल'पद से 'लप्रयोगे षष्ठी न' ऐसा अर्थ माना जा रहा है। शनन् आदि प्रत्ययों के प्रयोग में लप्रयोग नहीं है; अतः प्रतिषेधप्राप्त नहीं होने से वार्तिकावतार है। भाष्यकार इस वार्तिक का भी खण्डन करते हैं-**मा भूदिति**। इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। सूत्रस्थ तृन् पद से तृन् प्रत्यय का ग्रहण नहीं है, अपि तु प्रत्याहार का ग्रहण है। इससे 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' ३.२.१२४ के तृ शब्द से 'तृन्' ३.२.१३५ सूत्रस्थ नकार तक का ग्रहण होने से मध्य में पठित 'पूङ्यजोः शानन्' ३.२.१२८, 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' ३.२.१२९ का भी ग्रहण होने से शानच्, शानन् तथा चानश् प्रत्यय के योग में भी षष्ठी का निषेध हो जायेगा। आक्षेपक-**यदीति**। यदि सूत्रस्थ तृन् पद से प्रत्याहार का ग्रहण करते हैं तो शतृप्रत्यय का योग होने पर 'चौरस्य द्विषन्, वृषलस्य द्विषन्' में भी षष्ठी का निषेध होने लगेगा। यहाँ 'द्विषोऽमित्रे' ३.२.१३१ से शतृ प्रत्यय है।

समाधानभाष्य—**द्विषः शतुरिति**। शतृप्रत्ययान्त द्विष अप्रीतौ धा.पा.१०१३ धातु के योग में षष्ठी का विकल्प से निषेध कहना चाहिये। इससे निषेध का अभावपक्ष में षष्ठी हो जायेगी। यदि तृन् पद से प्रत्यय का ग्रहण करेंगे तो निषेध के लिए इस वार्तिक का आरम्भ होगा। यदि प्रत्याहार का ग्रहण करेंगे तो विध्यर्थक होगा। {न लोकाऽव्यय-}।

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः २.३.७०

* अकस्य भविष्यति * **अकस्य भविष्यतीति वक्तव्यम्। यवाँल्लावको व्रजति। ओदनं भोजको व्रजति। सक्तून् पायको व्रजति** * इन आधमर्ण्ये च * **तत इन आधमर्ण्ये च भविष्यति चेति वक्तव्यम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शतं दायी सहस्रं दायी। ग्रामं गमी। किं प्रयोजनम्? सङ्ख्यातानुदेशो मा भूदिति।

सूत्र का यथासंख्य अन्वय बताने के लिए वार्तिक का आरम्भ करते हैं-**अकस्येति**। भविष्यत् अर्थ गम्य होने पर अक के योग में षष्ठी का निषेध कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-**यवानिति**। यहाँ उदाहृत तीनों वाक्यों में क्रशः यव, ओदन तथा सक्तु कर्म है। इसमें 'कर्तृकर्मणोः कृति' २.३.६५ से षष्ठी प्राप्त होने पर निषेध किया गया है। वार्तिक-**इन आधमर्ण्ये इति**। आधमर्ण्य तथा भविष्यत् अर्थ में 'इन्' के योग में षष्ठी का निषेध कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-**शतं दायीति**। यहाँ भी कर्म में षष्ठी प्राप्त होने पर उसका निषेध किया गया है। 'शतं दीयी' में 'आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः' ३.३.१७० से णिनि है, तथा 'ग्रामं गमी' में 'भविष्यति गम्यादयः' ३.३.३ से णिनि है। 'लावकः' इत्यादि में 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' ३.३.१० से भविष्यत् अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय है। यहाँ यथासंख्य अन्वय प्राप्त होने पर 'इन्' का भविष्यत् के साथ भी योग हो, इसके लिए वार्तिकावतार है, इसे बताते हैं-**संख्यातानुदेश इति**। {अकेनोर्भ-}।

कृत्यानां कर्तरि वा २.३.७१

कर्तृग्रहणं किमर्थम्? कर्मणि मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। भावकर्मणोः कृत्या विधीयन्ते तत्र कृत्यैरभिहितत्वात् कर्मणि षष्ठी न भविष्यति। अत उत्तरं पठति- *भव्यादीनां कर्मणोऽनभिधानात् कृत्यानां कर्तृग्रहणम्* **भव्यादीनां कर्म कृत्यैरनभिहितं 'गेयो माणवकः साम्नाम्'। भव्यादीनां कर्मणोऽनभिधानात् कृत्यानां कर्तृग्रहणं क्रियते। किमुच्यते-'भव्यादीनां कर्म कृत्यैरनभिहित'मिति, नेहाप्यनभिहितं भवति-'आक्रष्टव्या ग्रामं शाखे'ति?**

यहाँ कृत्य पद के द्वारा 'कृत्याश्च' ३.१.९५ इस अधिकार में विहित कतिपय प्रत्ययविशेष विवक्षित हैं। सूत्रार्थ-'कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी हो'। मया मम वा सेव्यो हरिः।

प्रश्नभाष्य—**कर्तृग्रहणमिति**। 'कृत्यानां वा' इतना ही मात्र सूत्रनिर्देश करने से ही 'मया मम वा सेव्यो हरिः' में विकल्प से षष्ठी हो जाती, फिर आचार्य कर्तृपद का निर्देश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**कर्मणि मेति**। इस वाक्य में कर्मवाचक हरि पद से विकल्प

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से षष्ठी न हो, इसके लिए कर्तृपद का निर्देश है। आक्षेपक-**नैतदस्तीति**। 'अनभिहिते' २.३.१ के अधिकार में प्रकृतसूत्र का आरम्भ कर रहे हैं; अतः कृत्यप्रत्यय होने पर जो अनभिहित होगा उसी से षष्ठी होगी। 'गेयो हरिः' में यत्प्रत्यय के द्वारा कर्म उक्त है; अतः उसमें षष्ठी की आपत्ति नहीं होगी।

उत्तरभाष्य—**भव्यादीनामिति**। 'गेयो माणवकः साम्नाम्' में 'भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा' ३.४.६८ के द्वारा कर्ता में यत् प्रत्यय विहित है। यदि प्रकृतसूत्र में कर्तृपद का निर्देश नही करेंगे तो 'गेयो माणवकः साम्नाम्' में कर्म अनुक्त है। यहाँ कर्म में षष्ठी की आपत्ति होगी। परन्तु कर्मपद का निर्देश करने पर यह दोष नही आता है। आक्षेपक-**किमुच्यते इति**। आप 'भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा' ३.४.६८ से विहित प्रत्यय को कर्ता में बता कर 'गेयो माणवकः साम्नाम्' में ही कर्म को अनुक्त क्यों कह रहे हैं?, 'आक्रष्टव्या ग्रामं शाखा' में भी ग्राम कर्म अनुक्त है। यहाँ भी उसमें षष्ठी की आपत्ति होगी।

एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते- 'कृत्यानाम्'। कृत्यानां प्रयोगे षष्ठी न भवतीति। किमुदाहरणम्? ग्राममाक्रष्टव्या शाखा। ततः-'कर्तरि वे'ति। इहापि तर्हि निषेधः प्राप्नोति,-गेयो माणवकः साम्नामिति। 'उभयप्राप्ता'विति वर्तते। ननु चोभयप्राप्तिरेवैषा। गेयो माणवकः साम्नामिति च, गेयानि माणवकेन सामानीति च भवति। उभयप्राप्तिर्नाम सा भवति यत्रोभयस्य युगपत् प्रसङ्गः। अत्र च यदा कर्मणि, न तदा कर्तरि, यदा कर्तरि, न तदा कर्मणीति भवति।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य तृतीये पादे तृतीयमाह्निकम्

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। प्रकृतसूत्र का हम योगविभाग करेंगे। 'कृत्यानाम्' यह प्रथम योग होगा। प्रथमयोग का अर्थ होगा-'कृत्यप्रत्ययों का प्रयोग होने पर षष्ठी न हो'। इससे 'आक्रष्टव्या ग्रामं शाखा' में ग्राम पद से षष्ठी का निषेध हो जायेगा। आक्षेपक-**इहापीति**। प्रकृतसूत्र का योगविभाग करने पर 'गेयो माणवकः साम्नाम्' में कर्मवाचक सामन्पद के उत्तर में भी षष्ठी का निषेध होना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**उभयप्राप्ताविति**। 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' २.३.६६ सूत्र से 'उभय-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्तौ' की अनुवृत्ति है। इससे प्रथम योग का अर्थ होगा-'कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त होने पर कृत्य प्रत्यय के योग में षष्ठी का निषेध हो'। 'गेयो माणवकः साम्नाम्' में कर्म सामन् तथा कर्ता माणवक इन दोनों में षष्ठी प्राप्त हो रहा है। जब कर्म में षष्ठी करेंगे तब 'गेयो माणवकः साम्नाम्' प्रयोग होगा। जब यत्प्रत्यय से कर्म उक्त मानेंगे तब उक्त कर्म में प्रथमा तथा अनुक्त कर्ता में तृतीया होने से 'गेयानि सामानि माणवकेन' प्रयोग होगा। उभयप्राप्ति वही होती है जहाँ कर्ता और कर्म में एक साथ षष्ठी प्राप्त हो। जैसे 'गेयो माणवकः साम्नाम्'। परन्तु जब कर्म में षष्ठी प्राप्त हो तथा कर्ता में न हो, एवं जब कर्ता में प्राप्त हो तथा कर्म में न हो, तब वह उभयप्राप्ति नही होगी।

श्रीमद्‌भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय तृतीय पाद तृतीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

तृतीय पाद भी पूर्ण हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ चतुर्थे पादे प्रथममाह्निकम् ❁

द्विगुरेकवचनम् २.४.१

किमर्थमिदमुच्यते? * प्रत्यधिकरणं वचनोत्पत्तेः सङ्ख्यासामानाधिकरण्याच्च द्विगोरेकवचनविधानम् * **प्रत्यधिकरणं वचनोत्पत्तिर्भवति। किमिदं 'प्रत्यधिकरण'मिति? अधिकरणमधिकरणं प्रति प्रत्यधिकरणम्। 'सङ्ख्यासामानाधिकरण्याच्च'। संख्यया बह्वर्थया चाऽस्य सामानाधिकरण्यम्। प्रत्यधिकरणं वचनोत्पत्तेः सङ्ख्यासामानाधिकरण्याच्च 'बहुषु बहुवचन'मिति बहुवचनं प्राप्नोति। इष्यते चैकवचनं स्यादिति। तच्चाऽन्तरेण यत्नं न सिध्यतीति 'द्विगोरेकवचनविधानम्'। एवमर्थमिदमुच्यते। अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हि?**

सूत्रार्थ—'द्विगु एकवचन में हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। प्रकृत में समाहारद्विगु का ही ग्रहण इष्ट है। समाहरण को ही समाहार कहते हैं। समाहार एक ही होता है; अतः स्वाभाविक एकवचन सिद्ध था, फिर इसी के लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**प्रत्यधिकरणमिति**। 'समाह्रियते इति समाहारः' ऐसा जब कर्म में घञ् प्रत्यय करेंगे तब समाह्रियमाण अनेक अर्थ का वाचक द्विगु होगा; जो एक नहीं, अपि तु अनेक होगा; अतः एकवचन प्राप्त नहीं होने से उसका विधानार्थ सूत्रारम्भ है। 'प्रत्यधिकरणं वचनोत्पत्तिः' में अधिकरणशब्द से द्रव्य वाच्य है; अतः यत्संख्य द्रव्याभिधान होगा तत्संख्याश्रय वचन की प्राप्ति होगी। जैसे 'पञ्चानामजानां समाहारः' में प्रत्येक से वचन उत्पन्न होने पर 'बहुषु बहुवचनम्' १.४.२१ से बहुवचन प्राप्त है; अतः एकत्वविधान के लिए सूत्रारम्भ है। 'संख्यासामानाधिकरण्याच्च' इसके द्वारा भाष्यकार समाहारपद को कर्मसाधन स्पष्ट करते हैं। भावसाधन मानने पर 'पञ्चानामजानां समाहारः' ऐसा वैयधिकरण्य होगा। आक्षेपक-**अस्तीति**। क्या प्रकृतसूत्र के आरम्भ का यह प्रयोजन है जो उपर बताया गया है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* तत्रानुप्रयोगस्यैकवचनाऽभावोऽद्विगुत्वात् * **तत्रानुप्रयोगस्यैकवचनं न प्राप्नोति। 'पञ्चपूलीय'मिति। किं कारणम्? 'अद्विगुत्वात्'। 'द्विगोरेकवचन'मित्युच्यते, न चाऽत्रानुप्रयोगो द्विगुसंज्ञः** * सिद्धं तु द्विग्वर्थस्यैकवद्वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'द्विग्वर्थस्यैकवद्वचनात्'। द्विग्वर्थ एकवद् भवतीति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नेदं पारिभाषिकस्य वचनस्य ग्रहणम्। किं तर्हि? अन्वर्थग्रहणम्। उच्यते वचनम्, एकस्यार्थस्य वचनम् एकवचनमिति** * एकशेषप्रतिषेधश्च * **एकशेषस्य च प्रतिषेधो वक्तव्यः। पञ्चपूली च पञ्चपूली च पञ्चपूली च पञ्चपूल्यः।**

यदि यही प्रयोजन है तो उस पर आक्षेप करते हैं-**तत्राऽनुप्रयोगस्येति**। यदि प्रकृतसूत्र का उपर्युक्त प्रयोजन माना जाये तो अनुप्रयोग होने पर 'छ'प्रत्ययान्त 'पञ्चपूलीयम्' द्विगुसंज्ञ नही है; अतः यहाँ एकवचन नही हो सकेगा, अपि तु बहुवचन की आपत्ति होगी। अन्य आचार्य-**सिद्धं त्विति**। द्विगु अर्थ में एकवत् अतिदेश करेंगे। 'छ'प्रत्ययान्त 'पञ्चपूलीयम्' के द्विगु नही होने पर भी उसका अर्थ द्विग्वर्थ है; अतः वहाँ एकवचन हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या 'पञ्चपूलीयम्' में एकत्वसिद्धि के लिए 'सिद्धं तु द्विग्वर्थस्यैकवद्वचनात्' यह वार्तिक पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नही है। उक्त वार्तिक का निर्देश नहीं करने पर भी 'पञ्चपूलीयम्' में एकवचन इस तरह होगा- 'द्विगुरेकवचनम्' सूत्र में वचन पद **पारिभाषिक**=रूढि नही है, अपि तु यौगिक है। यहाँ 'उच्यते' इस विग्रह में 'कृत्यल्युटो बहुलम्' ३.३.११३ से कर्म में ल्युट् प्रत्यय होकर वचन पद यौग्कि है। 'एकस्य अर्थस्य वचनमेकवचनम्' में वाच्यवाचकसम्बन्ध में षष्ठी है; इससे 'एक अर्थ का वाचक द्विगु है' ऐसा अर्थ हुआ। यहाँ सामर्थ्यवश यह अतिदेश उपपन्न होता है। जो अनेक अर्थ का वाचक है वह एक अर्थ का वाचक नही हो सकता है। चुँकि यहाँ एकत्व अर्थ का वाचक कहा जा रहा है, अतः सामर्थ्यवश एकत्वाश्रय की प्राप्ति के लिए द्विग्वर्थ का एकवद्भावविधान करते हैं। इस तरह द्विग्वर्थ में प्रयुज्यमान द्विगुभिन्न को भी एकवचन होने से 'पञ्चपूलीयम्' में एकवचन हो जाता है। वार्तिक-**एकशेषेति**। द्विगु का एकशेष करने पर 'पञ्चपूल्यः' में भी एकवचन प्राप्त हो रहा है, उसका निषेध कहना चाहिये।

* न वाऽन्यस्याऽनेकत्वात् * **न वा वक्तव्यः। किं कारणम्? 'अन्यस्याऽनेकत्वात्'। नैतद् द्विगोरनेकत्वम्। कस्य तर्हि? द्विग्वर्थ-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समुदायस्य * समाहारग्रहणं च तद्धितार्थप्रतिषेधार्थम् * **समाहारग्रहणं च कर्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'तद्धितार्थप्रतिषेधार्थम्'। तद्धितार्थे यो द्विगुस्तस्य मा भूदिति-पञ्चकपालौ पञ्चकपाला इति। किं पुनरयं पञ्चकपालशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते, आहो स्वित् समुदाये वर्तते। किं चातः? यदि तावत् प्रत्येकं परिसमाप्यते, पुरस्तादेव चोदितं परिहृतं च। अथ समुदाये वर्तते** * न वा समाहारैकत्वात् * **न वैतत् समाहारैकत्वादपि सिध्यति। एवं तर्हि-प्रत्येकं परिसमाप्यते। पुरस्तादेव चोदितं परिहृतं च।**

खण्डनभाष्य—**न वाऽन्यस्येति**। 'पञ्चपूल्यः' में जो बहुत्वबोध हो रहा है, वह द्विगु का नहीं है, अपि तु द्विग्वर्थसमुदाय का है; अतः वहाँ बहुवचन हो जायेगा। वहाँ एकत्व प्राप्त नहीं है, अतः निषेध व्यर्थ है। वार्तिक-**समाहारग्रहणमिति**। 'पञ्चसु कपालेषु संस्कृतौ पञ्चकपालौ, पञ्चसु कपालेषु संस्कृताः पञ्चकपालाः' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास, 'संस्कृतं भक्षाः' ४.२.१६ से विहित अण्प्रत्यय का 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से लुक् है। यहाँ तद्धितार्थ में द्विगु है। यहाँ भी एकवचन की आपत्ति हो रही है जिसका निषेध कहना चाहिये। आक्षेपक-**किं पुनरिति**। यह पञ्चकपालशब्द प्रत्येक में परिसमाप्त है, अथ वा समुदाय में परिसमाप्त है? यदि एक ही संस्कृत अर्थ में प्रत्यय उत्पन्न कर उसका लुक् करने पर एकशेष करते हैं तो 'पञ्चपूल्यः' के समान ही 'पञ्चकपालाः' है। यदि पहले ही 'पञ्चसु कपालेषु संस्कृताः' ऐसा बहुत्वसंख्यायुक्त अर्थ की विवक्षा करते हैं तो उन अर्थों के समाहित होने से समाहाररूपता होने से समाहारग्रहण करने पर भी निवृत्ति सिद्ध नहीं हो पा रही है।

अपर आह- * न वा समाहारैकत्वात् * **न वा योगारम्भेणैवार्थः। किं कारणम्? 'समाहारैक- त्वात्'। एकोऽयमर्थः समाहारो नाम तस्यैकत्वादेकवचनं भविष्यति।** {द्विगुरेक}।

यदि द्विगु को समुदाय में मानते हैं तो इस पक्ष में भाष्यकार 'द्विगुरेकवचनम्' सूत्र का खण्डन करते हैं-**न वा समाहारेति**। यदि समाहार को प्रत्येक में पर्यवसित मानेंगे तो उद्भूतावयवभेद की विवक्षा में द्विवचन तथा बहुवचन की प्राप्ति होने पर एकवचनविधानार्थ सूत्र आवश्यक है, परन्तु यदि समाहार में अवयवों की अनुद्भूत अवस्था मानेंगे तो स्वाभाविक एकत्व होने से एकवचन ही होगा; अतः इसके लिए पृथक् सूत्र करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि समाहार में अवयवों की उद्भूतावस्था की विवक्षा करेंगे तो प्रत्येक में वचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की प्राप्ति होने से द्विवचन और बहुवचन की प्राप्ति होने पर एकवचनविधानार्थ सूत्रारम्भ है। दो अथ वा बहुत पुरोडाश का पञ्चकपालों में संस्कार नही किया जाता है, अपि तु प्रत्येक का किया जाता है; अतः समाहार में उद्भूतावयवभेदविवक्षा भी है। अन्य आचार्य 'न वा समाहारैकत्वात्' वार्तिक का खण्डन करते हैं-**अपर आहेति**। समाहार में अवयवों की अनुद्भूतत्वविवक्षा होती है; अतः समाहार में सर्वदा एकवचन ही रहेगा, द्विवचन अथ वा बहुवचन नहीं; अतः एकवचनविधानार्थ किया गया प्रकृतसूत्र का आरम्भ व्यर्थ है। {द्विगुरेकवचनम्}।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २.४.२

* प्राणितूर्यसेनाङ्गानां तत्पूर्वपदोत्तरपदग्रहणम् * **प्राणितूर्यसेनाङ्गानां तत्पूर्वपदोत्तरपदग्रहणं कर्तव्यम्। प्राण्यङ्गानां प्राण्यङ्गैरिति वक्तव्यम्। तूर्याङ्गानां तूर्याङ्गैरिति वक्तव्यम्। सेनाङ्गानां सेनाङ्गैरिति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? व्यतिकरो मा भूदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्** * योगविभागात् सिद्धम् * **योगविभागात् सिद्धम्। योग-विभागः करिष्यते-'द्वन्द्वश्च प्राण्यङ्गानाम्'। ततः 'तूर्याङ्गानाम्'। ततः 'सेनाङ्गाना'मिति। स तर्हि योगविभागः कर्तव्यः? न कर्तव्यः। प्रत्येक- मङ्गशब्दः परिसमाप्यते।।**

सूत्रार्थ—'प्राण्यङ्ग, तूर्याङ्ग एवं सेनाङ्ग का द्वन्द्व एकवद् हो'।

वार्तिक—**प्राणितूर्येति**। प्राण्यङ्ग, तूर्याङ्ग एवं सेनाङ्ग का द्वन्द्व एकवद्भावविधि में प्राणि, तूर्य और सेनाङ्ग को ही पूर्वपद तथा उत्तरपद का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् यदि पूर्वपद अङ्गवाची है तो उत्तरपद को भी अङ्गवाची होना चाहिये, जैसे 'पाणिपादम्'; तभी एकवद्भाव हो, अन्यथा नहीं। अतः प्राण्यङ्ग का प्राण्यङ्ग के साथ, तूर्याङ्ग का तूर्याङ्ग के साथ एवं सेनाङ्ग का सेनाङ्ग के साथ समास होने पर ही एकवद्भाव होगा। इससे पूर्वपद प्राण्यङ्ग आदि तथा उत्तरपद अन्य होने पर, अथ वा पूर्वपद अन्य तथा उत्तरपद प्राण्यङ्ग आदि होने पर एकवद्भाव नहीं हो सकेगा।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या व्यतिकर में एकवद्भाववारण के लिए उक्त वार्तिक का होना आवश्यक है?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। व्यतिकर में एकवद्भाववारण के लिए उक्त वार्तिक का होना आवश्यक नही है। योगविभाग से ही व्यतिकरस्थल में एकवद्भाव का वारण हो जायेगा। प्रकृतसूत्र का हम योगविभाग करेंगे। इससे 'प्राण्यङ्गों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वन्द्व एकवद् हो' ऐसा अर्थ होगा। इससे 'पाणिघटौ' आदि में एकवद्भाव की आपत्ति नहीं रहेगी। अन्य आचार्य-**स तर्हीति**। द्वन्द्वान्त में श्रुत अङ्ग पद का प्रत्येक के साथ अन्वय हो जायेगा; अतः पृथक् तीन सूत्र निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। {द्वन्द्वश्च-}।

अनुवादे चरणानाम् २.४.३

इह कस्मान्न भवति-नन्दन्तु कठकालापाः, वर्द्धन्तां कठकौथुमाः? * स्थेणोः * स्थेणोरिति वक्तव्यम्। एवमपि 'तिष्ठन्तु कठकालापा' इत्यत्रापि प्राप्नोति * अद्यतन्यां च * अद्यतन्यां चेति वक्तव्यम्। उदगायत् कठकालापम्। प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्। उदगान्मौद-पैप्पलादम्।।

'शाखण्येतृविशेष चरणपदवाच्य है; तद्वाची का परस्पर द्वन्द्व एकवद् हो' यह सूत्रार्थ है।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। 'कठाश्च कालापाश्च कठकालापा नन्दन्तु, कठाश्च कौथुमाश्च कठकौथुमा वर्द्धन्ताम्' में चरणों का द्वन्द्व है, यहाँ एकवद्भाव क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**स्थेणोरिति**। ष्ठा गतिनिवृत्तौ धा.पा.९२८ तथा इण् गतौ धा. पा.१०४५ धातु का प्रयोग होने पर ही एकवद्भाव होगा। उक्त उदाहरण में टुनदि समृद्धौ धा.पा.६७ वृधु वृद्धौ धा.पा.७५९ धातु का प्रयोग है, अतः एकवद्भाव नहीं होता है। आक्षेपक-**एवमपीति**। 'तिष्ठन्तु कठकालापाः' 'यन्तु कठकौथुमाः' में ष्ठा तथा इण् धातु का प्रयोग है; अतः यहाँ एकवद्भाव की आपत्ति होगी।

उत्तरभाष्य—**अद्यतन्यामिति**। ष्ठा तथा इण् धातु का लुङ् में प्रयोग होने पर ही चरणों का एकवद्भाव होगा। जैसे 'उदगात् कठंकालापम्, प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्'। उक्त उदाहरणों में लोट् का प्रयोग होने से एकवद्भाव की आपत्ति नही है। {अनुवादे-}।

विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः २.४.७

*** ग्रामप्रतिषेधे नगरप्रतिषेधः * ग्रामप्रतिषेधे नगरप्रतिषेधो वक्तव्यः। अग्रामा इत्यत्राऽनगराणामिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-मधुरा-पाटलिपुत्रमिति * उभयतश्च ग्रामाणाम् * उभयतश्च ग्रामाणां प्रतिषेधो**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्तव्यः। शौर्यं च केतवता च शौर्यकेतवते। जाम्बवं च शालूकिनी च जाम्बवशालूकिन्यौ।।

सूत्रार्थ—'नदी तथा ग्रामभिन्न देशवाची भिन्नलिङ्गों का द्वन्द्व समाहार में एकवद् हो'। गङ्गा च शोणश्च गङ्गशोणम्। कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च कुरुकुरुक्षेत्रम्।

वार्तिक—**ग्रामेति**। ग्राम का द्वन्द्व में एकवद् का प्रतिषेधविधि में नगरों का द्वन्द्वविधि में एकवत् का प्रतिषेध कहना चाहिये। इससे 'मधुरा च पाटलिपुत्रं च मधुरापाटलित्रम्' में एकवद् हो जायेगा। वार्तिक-**उभयतश्चेति**। ग्राम तथा नगर इन दोनों अवयवों का द्वन्द्व होने पर ग्रामसम्बन्धी ही प्रतिषेध कहना चाहिये। **शौर्य**=नगर, **केतवता**=ग्राम, **जाम्बव**=नगर, **शालूकिनी**=ग्राम। यहाँ नगर और ग्राम का द्वन्द्व होने पर एकवद्भाव नहीं होता है। {विशिष्ट-}।

क्षुद्रजन्तवः २.४.८

क्षुद्रजन्तव इत्युच्यते, के क्षुद्रजन्तवः? क्षोत्तव्या जन्तवः क्षुद्रजन्तवः। यद्येवं यूकालिक्षं कीटपिपीलिकं दंशमशकमिति न सिध्यति। एवं तर्ह्यनस्थिकाः क्षुद्रजन्तवः। अथ वा येषां स्वं शोणितं नास्ति ते क्षुद्रजन्तवः। अथ वा येषामा सहस्रादञ्जलिर्न पूर्यते ते क्षुद्रजन्तवः। अथ वा येषां गोचर्ममात्रं राशिं हत्वा न पतितो भवति ते क्षुद्रजन्तवः। अथ वा नकुलपर्यन्ताः क्षुद्रजन्तवः।

क्षुद्रजन्तुरनस्थि स्यादथ वा क्षुद्र एव यः।
शतं वा प्रसृतौ येषां केचिदानकुलादपि।।

सूत्रार्थ—'क्षुद्रजन्तुओं के समाहार में द्वन्द्व एकवद् हो'।

प्रश्नभाष्य—**क्षुद्रजन्तव इति**। आचार्य 'क्षुद्रजन्तवः' ऐसा कह रहे हैं, क्षुद्रजन्तु कौन हैं? विरुद्धार्थस्मृति होने से यह प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**क्षोतव्या इति**। 'क्षुद्रा जन्तवः क्षुद्रजन्तवः' ऐसा कर्मधारय है। क्षुद्रशब्द से यहाँ क्षोतव्य अर्थ अपेक्षित है। क्षुदिर् संपेषणे धा.पा.१४४४ धातु से अर्हार्थक कृत्य प्रत्यय है। मसलने पर भी जो मरे नही, वह क्षुद्रजन्तु है। आक्षेपक-**यद्येवमिति**। यदि मसलने पर भी जो नही मरे उसी को क्षुद्रजन्तु कहेंगे तो जैसे जोंक आदि, तो जोंक आदि का द्वन्द्व ही एकवद् होगा, परन्तु अलिक्ष, कीट, पिपीलिक, दंश, मशक आदि का द्वन्द्व होने पर 'यूकालिक्षम्' आदि सिद्ध नहीं हो सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। यदि 'क्षोतव्या जन्तवः क्षुद्रजन्तवः'पक्ष में दोष है तो **अनस्थिकाः**=जिसके शरीर में **अस्थि**=हड्डी न हो, उसे क्षुद्रजन्तु कहेंगे। इससे 'यूकालिक्षम्' इत्यादि में एकवद् हो जायेगा। अथ वा जिनका अपना **शोणित**= रक्त नही होता है, अपि तु दूसरे का रक्त पी कर रक्तवान् होते हैं वे क्षुद्रजन्तु हैं। अथ वा हजारों का रक्त पीकर भी जिनकी पिपासा शान्त न हो, वे क्षुद्रजन्तु हैं। अथ वा जिनका वध करने में किसी प्रकार का पाप नही लगता हो वे क्षुद्रजन्तु हैं। अथ वा यूका, अलिक्षा से आरम्भ कर **नकुल**=नेवला-पर्यन्त सभी क्षुद्रजन्तु हैं। उपर्युक्त का ही वार्तिक में संग्रह करते हैं-क्षुद्रजन्तुरनस्थिः स्यादित्यादि। {क्षुद्रजन्तवः}।

येषां च विरोधः शाश्वतिकः २.४.९

किमर्थश्चकारः? *एवकारार्थश्चकारः* येषां विरोधः शाश्वतिकस्तेषां द्वन्द्व एकवचनमेव यथा स्याद्, यदन्यत् प्राप्नोति तन्मा भूदिति। किं चाऽन्यत् प्राप्नोति? 'विभाषा वृक्षमृगे'ति। तत्र 'पशुशकुनिद्वन्द्वे विरोधिनां पूर्वविप्रतिषिद्ध'मित्युक्तं स पूर्वविप्रतिषेधो न वक्तव्यो भवति।

सूत्रार्थ—'जिनका विरोध स्वाभाविक हो उनका द्वन्द्व एकवद् हो'। जैसे 'अहिनकुलम्। सर्प और नेवला का विरोध स्वाभाविक है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। सूत्र में 'च' पद का निर्देश किस लिए है?

उत्तरभाष्य—**एवकारार्थ इति**। 'च' पद का निर्देश निर्धारण के लिए है। इससे जिनका शाश्वतिक विरोध होगा, उनका ही एकवद्भाव होगा; जो अन्य 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् २.४.१२ के द्वारा विकल्प से एकवद्भाव प्राप्त है, वह नही होगा। इससे 'अश्वमहिषम्, काकोलूकम्' इत्यादि में नित्य ही एकवद्भाव होता है, विकल्प से नहीं। इस 'च'कारनिर्देश से लाघव यह है कि 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् २.४.१२ सूत्र पर 'पशुशकुनिद्वन्द्वे विरोधिनां पूर्वविप्रतिषिद्धम्' यह वार्तिक नहीं पढना पडता है।{येषां-}।

शूद्राणामनिरवसितानाम् २.४.१०

'अनिरवसिताना'मित्युच्यते, कुतोऽनिरवसितानाम्? आर्यावर्तादनिरवसितानाम्। कः पुनरार्यावर्तः? 'प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालकवनाद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्'। यद्येवं किष्किन्धगन्धिकं शकयवनं शौर्यक्रौञ्च'मिति न सिध्यति। एवं तर्ह्यार्यनिवासादनिरवसितानाम्। कः पुनरार्यनिवासः? ग्रामो घोषो नगरं संवाह इति। एवमपि य एते महान्तः संस्त्यायास्तेष्वभ्यन्तराश्चण्डालाः मृतपाश्च वसन्ति, तत्र 'चण्डालमृतपा' इति न सिध्यति। एवं तर्हि यज्ञात् कर्मणोऽनिरवसितानाम्। एवमपि 'तक्षायस्कारं' 'रजकतन्तुवाय'मिति न सिध्यति। एवं तर्हि पात्रादनिरवसितानाम्। यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण शुध्यति तेऽनिरवसिताः। यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणाऽपि न शुध्यति ते निवरसिता इति। {शूद्राणामनिर}।

सूत्रार्थ—'अनिरवसितानाम्=जो पात्र से बहिष्कृत नहीं हैं उन शुद्रों का द्वन्द्व एकवत् हो'।

प्रश्नभाष्य—**अनिरवसितानामिति**। अनिरवसितों का द्वन्द्व एकवत् कहा जा रहा है; यह अनिरवसित किंनिमित्तक लिए जायेंगे? एकदेशी-**आर्यावर्त्तादिति**। आर्यावर्त से बाहर जो निरवसित न हों वे अनिरवसित है।

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। आर्यावर्त की सीमा क्या है?

उत्तरभाष्य—**प्रागादर्शादिति**। **आदर्श**=पर्वतविशेष से पूर्व तथा कालकवन से पश्चिम, एवं हिमालय से दक्षिण तथा पारियात्र से उत्तर की भूमि आर्यावर्त है। 'दक्षिणेन, उत्तरेण' यह एनबन्तनिर्देश होने से यहाँ 'एनपा द्वितीया' २.३.३१ से द्वितीयाविभक्ति है। आक्षेपक-**यद्येवमिति**। यदि आर्यावर्त से अनिरवसितों का ग्रहण करेंगे तो 'किष्किन्धगान्धिकम्' इत्यादि में एकवद्भाव इष्ट है जो सिद्ध नहीं हो सकेगा। किष्किन्ध आदि आर्यावर्त से निरवसित हैं। एकदेशी-**एवं तर्हीति**। आर्यनिवास से जो निरवसित न हों, उनका द्वन्द्व एकवद् कहेंगे।

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। आर्यों का निवास कहा है?

उत्तरभाष्य—**ग्रामो घोष इति**। ग्राम, घोष, नगर तथा संवाह यह आर्यो का निवास है। ग्राम प्रसिद्ध है। गो, महिष आदि का निवास घोष है। वणिक्प्रधान को संवाह कहते हैं। आक्षेपक-**एवमपीति**। जो बडे-बडे **संस्त्याय**=निवासविशेष है, उसमें चण्डाल तथा **मृतपाः**=श्मशान के समीप में निवास कर मृतक का वस्त्र, चिताकाष्ठ आदि का संग्रह कर अपनी जीविका चलाने वाले डोम भी रहते हैं; अतः उनका एकवद्भाव होने से इष्ट रूप 'चण्डालमृतपाः' की सिद्धि नहीं हो सकेगी। एकदेशी-**एवं तर्हीति**। यज्ञकर्म से निरवसित न हों, उनका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ ग्रहण होगा। आक्षेपक-**एवमपीति**। यदि यज्ञकर्म से अनिरवसितों का ग्रहण करेंगे तो **तक्षा**=बढई तथा **अयस्कार**=लोहार, उनका ग्रहण नहीं हो सकेगा। तक्षा आदि यज्ञकर्म से बहिष्कृत हैं। सिद्धान्ती-**एवं तर्हीति**। जिनके भोजन के बाद संस्कार के द्वारा पात्र की शुद्धि हो जाती हो वे अनिरवसित हैं तथा जिनके भोजन करने पर संस्कार से भी पात्र की शुद्धि न होती हो, वे निरवसित हैं। {शूद्रा-}।

गवाश्वप्रभृतीनि च २.४.११

* गवाश्वप्रभृतिषु यथोच्चरितं द्वन्द्ववृत्तम् * **गवाश्वप्रभृतिषु यथोच्चरितं द्वन्द्ववृत्तं द्रष्टव्यम्। गवाश्वम्। गवाविकम्। गवैडकम्।**

'गवाश्वप्रभृतीनि' का अर्थ स्पष्ट करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं-**गवाश्वप्रभृतिष्विति**। गण में अवङ् आदेश कर जैसा निर्देश किया है वैसे को ही द्वन्द्व समझना चाहिये। अवङ् आदेश विकल्प से है; अतः जब अवङ् आदेश नहीं होगा तब उस पक्ष में पशुद्वन्द्व होने पर 'गोऽश्वं-गोऽश्वाः' यह रूप होगा; अतः यहाँ गणपाठरूप द्वन्द्व की साधुता ही बतायी जा रही है। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-गवाश्वमित्यादि। {गवाश्व-}।

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशु-शकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् २.४.१२

* बहुप्रकृतिः फलसेनावनस्पतिमृगशकुन्तक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानाम् * **फल-सेनावनस्पतिमृगशकुन्तक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां द्वन्द्वो विभषयैकवद् भवति बहुप्रकृति'रिति वक्तव्यम्।** फल-**बदरामलकम्। बदरामल-कानि।** सेना-**हस्त्यश्वम्। हस्त्यश्वाः।** वनस्पति-**प्लक्षन्यग्रोधम्। प्लक्षन्यग्रोधाः।** मृग-**रुरुपृषतम्। रुरुपृषताः।** शकुन्त-**हंसचक्रवाकम्। हंसचक्रवाकाः।** क्षुद्रजन्तु-**यूकालिक्षम्। यूकालिक्षाः।** धान्य-**व्रीहियवम्। व्रीहियवाः। माषतिलम्। माषतिलाः।** तृण-**कुशकाशम्। कुशकाशाः। शरशीर्षम्। शरशीर्षाः। किं प्रयोजनम्? बहुप्रकृतिरेव यस्तत्र यथा स्यात्। क्व मा भूत्? बदरामलके तिष्ठतः।**

'द्वन्द्वः' २.४.२ की अनुवृत्ति है। एक ही षष्ठी विषयभेद से भिन्न होती है; अतः वृक्षादि सप्त का अवयवत्वरूप से अन्वय है-वृक्षादीनां द्वन्द्वः। इससे 'वृक्षाद्यवयवक द्वन्द्व' ऐसा अर्थ होता है। परन्तु 'अश्ववडवा' आदि युगलत्रय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभेदरूप से अन्वय होने पर अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर इत्यात्मक द्वन्द्व होता है।

वार्तिक—**बहुप्रकृतिरिति**। एकवद्भावप्रकरण का शेषभूत यह वार्तिक है। 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' २.४.२ इत्यादि सूत्र के द्वारा फल, सेना इत्यादि का द्वन्द्व एकवद् होता हुआ बहुवचनान्तावयवक ही एकवत् हो, एकवचनान्तावयवक अथ वा द्विवचनान्तावयवक नहीं, यह वार्तिकार्थ है। प्रत्येक को उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-**फलेति**। 'बदराणि च आमलकानि चेति बदरामलकम्' एकवद्भाव का अभावपक्ष में 'बदरामलकानि'। 'बदरामलकम्' में 'जातिरप्राणिनाम्' २.४.६ से एकवद्भाव है। यहाँ नित्य एकवद्भाव प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र से विकल्प होता है, अतः 'बदरामलकानि' ऐसा बहुवचनघटित रूप भी देते हैं। परन्तु यहाँ आचार्य कैयटजी का कहना है कि 'बदरामलकानि' ऐसा रूप प्राप्त होने पर बहुवचनप्रकृति का नित्य एकवद्भाव कहा गया है। **सेना**-हस्तिनश्च अश्वाश्चेत्येतेषां समाहारः हस्त्यश्वम्। एकवद्भावविकल्प होने से 'हस्त्यश्वाः' ऐसा बहुवचनान्त भी होगा। यहाँ 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' २.४.२ से नित्य एकवद्भाव प्राप्त होने पर विकल्प से एकवद्विधानार्थ प्रकृतसूत्र में सेना पद का ग्रहण है। 'शरशीर्षाः'पर्यन्त सभी का उदाहरण मूल में स्पष्ट है। सर्वत्र बहुवचन से ही विग्रह करना चाहिये। एकवचन तथा द्विवचन में विग्रह होने पर एकवद्भाव नहीं होगा, अपि तु 'बदरामलके' ऐसा द्विवचनान्त ही होगा; इसे दिखाते हैं-**बहुप्रकृतिरेवेत्यादि**।

किं पुनरनेन या प्राप्तिः सा नियम्यते, आहो स्विदविशेषेण? किं चातः? यद्यनेन या प्राप्तिः सा नियम्यते, प्लक्षन्यग्रोधौ,-जातिरप्राणिना'मिति नित्यो द्वन्द्वैकवद्भावः प्राप्नोति। अथाऽविशेषेण, न दोषो भवति। यथा न दोषस्तथाऽस्तु।

जिज्ञासु—**किं पुनरिति**। क्या इस प्रदेश में पठित होने से इस सूत्र से विहित नियतविषय एकवद्भाव व्यवस्थित किया जा रहा है?, अथ वा प्रकरण में विहित एकवद्भाव व्यवस्थित किया जा रहा है? यदि इसी सूत्र से विहित एकवद्भाव व्यवस्थित कर रहे हैं तो इस पक्ष में दोष होगा, इससे 'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ' में 'जातिरप्राणिनाम्' २.४.६ के द्वारा नित्य एकवद्भाव की आपत्ति होगी। जिस वनस्पति आदि को अन्यसूत्र तथा प्रकृतसूत्र से एकवद्भाव प्राप्त है उन्हीं के विषय में संशय है, अन्यतरप्राप्तिविषय में नही। परन्तु यदि सामान्यरूप से प्राप्ति का नियमन करते हैं तो दोष नहीं होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**यथा न दोष इति**। व्यापकता होने से प्रकरण की अपेक्षा से यह विषयनियम है। जिसमें दोष नहीं है, वही मानिये-यहाँ प्रकृत में प्राप्त का ही नियमन मानिये; इसमें कोई दोष नहीं है।

* पशुशकुनिद्वन्द्वे विरोधिनां पूर्वविप्रतिषिद्धम् * **पशुशकुनिद्वन्द्वे विरोधिनां 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इत्येतद् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। पशुशकुनिद्वन्द्वस्याऽवकाशः-महाजोरभ्रम्। महाजोरभ्राः। हंसचक्रवाकम्। हंसचक्रवाकाः। 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इत्यस्याऽवकाश-श्रमणब्राह्मणम्। इहोभयं प्राप्नोति-काकोलूकम्। श्वश्रृगालमिति। 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इत्येतद् भवति पूर्वविप्रषिधेन।**

विप्रतिषेधवादी आचार्य—**पशुशकुनिद्वन्द्व. इति**। पशु और शकुनि के द्वन्द्व में पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ की प्राप्ति कहनी चाहिये। 'महाजोरभ्रम्, महाजोरभ्राः; हंसचक्रवाकम्, हंसचक्रवाकाः' में पशु और शकुनि का द्वन्द्व चरितार्थ है। 'श्रमणब्राह्मणम्' में 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ चरितार्थ है। 'काकोलूकम्' एवं 'श्वश्रृगालम्' में पशुशकुनिद्वन्द्व तथा 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ इन दोनों की युगपत् प्रवृत्ति होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ की प्रवृत्ति होती है।

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः* उक्तं वा * **उक्तं तत्र चकारकरणस्य प्रयोजनं-'येषां च विरोधः शाश्वतिकस्तेषां द्वन्द्व एकवचनमेव यथा स्याद् यदन्यत् प्राप्नोति तन्मा भू'दिति**
* अश्ववडवयोः पूर्वलिङ्गत्वात् पशुद्वन्द्वनपुंसकम् * **अश्ववडवयोः पूर्वलिङ्गत्वात् पशुद्वन्द्वनपुंसकं भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। अश्ववडवयोः पूर्वलिङ्गत्वस्याऽवकाशः-विभाषा पशुद्वन्द्वनपुंसकम्,-यदा न पशुद्वन्द्वनपुंसकं सोऽवकाशः-अश्ववडवौ। पशुद्वन्द्वनपुंसकस्याऽवकाशः-अन्ये पशुद्वन्द्वाः-महाजोरभ्रं महाजोरभ्राः। पशुद्वन्द्वनपुंसकप्रसङ्ग उभयं प्राप्नोति-'अश्ववडवम्' 'पशुवडवम्'। पशुद्वन्द्वनपुंसकं भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः?**
* प्रतिपदविधानात् सिद्धम् * **प्रतिपदविधानात् सिद्धम्। प्रतिपदमत्र नपुंसकं विधीयते'अश्ववडवपूर्वापरे'ति।**

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या उक्त पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त पूर्वविप्रतिषेध कहने की आवश्यकता नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' २.४.९ सूत्र पर इसे स्पष्ट किया जा चुका है। इस सूत्र में जो 'च' पद का निर्देश किया गया है उसका प्रयोजन यह है कि 'जिनका शाश्वतिक विरोध है उनका द्वन्द्व में एकवचन ही हो, जो अन्य प्राप्त है वह न हो'। विप्रतिषेधवादी-**अश्ववडवयोरिति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा पशुद्वन्द्व-नपुंसक के द्वारा 'पूर्ववदश्ववडवौ' २.४.२७ का बाध कहना चाहिये। 'अश्ववडवौ' जब 'विभाषा वृक्षमृगतृण–' की विकल्पपक्ष में प्रवृत्ति नही है तब 'पूर्ववदश्ववडवौ' २.४.२७ चरितार्थ है। 'अश्ववडवौ' से अन्य पशुद्वन्द्वस्थल 'महाजोरभ्रम्, महाजोरभ्राः' में पशुद्वन्द्व नपुंसक चरितार्थ है। 'अश्ववडवम्, पशुवडवम्' में पशुद्वन्द्व नपुंसक तथा 'पूर्ववदश्ववडवौ' २.४.२७ यह दोनों प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा पशुद्वन्द्व नपुंसक ही होता है। आक्षेपक-**स तर्हीति**। क्या 'अश्ववडवयोः पूर्वलिङ्गत्वात् पशुद्वन्द्वनपुंसकम्' यह पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। यह पूर्वविप्रतिषेध कहने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पशुग्रहण के द्वारा एकवद्भाव का विधान किया गया है; अतः प्रतिपदविधान होने से वहाँ 'स नपुंसकम्' २.४.१७ की प्रवृत्ति होती है। यहाँ 'स नपुंसकम्' २.४.१७ इस सूत्रघटक तद्शब्द के द्वारा एकवद्भावभाक् का परामर्श कर नपुंसकत्व का विधान है। इस तरह जैसे यहाँ एकवद्भाव का प्रतिपदविधान है वैसे नपुंसकत्व भी प्रतिपद विहित है-अश्ववडवपूर्वापरेति।

* एकवचनमनर्थकं समाहारैकत्वात् * **एकवद्भावोऽर्थकः। किं कारणम्? 'समाहारैकत्वात्'। एकोऽयमर्थः समाहारो नाम तस्यैकत्वादेकवचनं भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्-एतज्ज्ञास्यामि-इह नित्यो विधिरिह विभाषेति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। आचार्य-प्रवृत्तिर्ज्ञापयति'सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद् भवती'ति यदयं 'तिष्य-पुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्य'मित्याह। इदं तर्हि प्रयोजनं-'स नपुंसकमिति वक्ष्यामी'ति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य'। न तर्हीदानीमिदं वक्तव्यम्? वक्तव्यञ्च। किं प्रयोजनम्? पूर्वत्र नित्यार्थमुत्तरत्र व्यभिचारार्थं-'विभाषा वृक्षमृगे'ति।।**

एकवचन आरम्भ पर आक्षेप करते हैं—**एकवचनमिति**। वन, यूथ आदि में जैसे अवयवभेद तिरोहित होता है वैसे समाहार में भी अवयवभेद तिरोहित होता है; अतः वहाँ स्वाभाविक एकवचन ही होगा। द्विवचन, बहुवचन की आपत्ति नही हो रही है, फिर समाहार में जो एकवचनविधान किया गया, वह व्यर्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकदेशी-**इदं तर्हीति**। 'अमुकस्थल में नित्य एकवचन हो तथा अमुकस्थल में विकल्प से हो' यह व्यवस्था हो सके, इसके लिए एकवचन का आरम्भ है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। प्रकृत एकवचन आरम्भ का यह प्रयोजन नही है। सूत्रकार ने 'तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्' १.२.६३ सूत्र का प्रणयन कर स्पष्ट किया है कि सभी द्वन्द्व विकल्प से एकवद् होते हैं। एकदेशी-**इदं तर्हीति**। एकवद् अतिदेश होने पर ही 'स नपुंसकम्' २.४.१७ की प्रवृत्ति सम्भव है। 'स नपुंसकम्' २.४.१७ सूत्र का प्रणयन हो सके, इसके लिए एकवचनविधान करना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। इस वचन का यह भी प्रयोजन नहीं है। लिङ्ग **लोकाश्रय**=पाणिनिप्रभृति आचार्यों के अधीन होता है; अतः उसके लिए सूत्र का प्रणयन आवश्यक नहीं होने से एकवचनविधान व्यर्थ है।

आक्षेपभाष्य—**न तर्हीति**। तो क्या एकवचनविधान का आरम्भ नहीं करना चाहिये?

समाधानभाष्य—**वक्तव्यमिति**। एकवचनविधान अवश्य करना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि प्रकृत विभाषासूत्र से पूर्व में नित्य ही एकवचन हो तथा उत्तरसूत्र 'विभाषा वृक्षमृगतृण–' में विकल्प से एकवचन हो। 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषया एकवद्भवति' में सर्वशब्द एतत्प्रकरणस्थ सूत्रानुपात्तविषय है। {विभाषा-}।

विभाषा समीपे २.४.१६

किमुदाहरणम्? 'उपदशं पाणिपादम्' 'उपदशाः पाणिपादाः'। नैतदस्ति प्रयोजनम्, अयं द्वन्द्वैकवद्भाव आरभ्यते, तत्र कः प्रसङ्गो यदनुप्रयोगस्य स्यात्? एवं तर्ह्यव्ययस्य सङ्ख्ययाऽव्ययीभावोऽप्यारभ्यते, बहुव्रीहिरपि, तद्यदा-तावदेकवचनं तदाऽव्ययीभावोऽनुप्रयुज्यते एकार्थस्यैकार्थ इति। यदा बहुवचनं तदा बहुव्रीहिरनुप्रयुज्यतेबह्वर्थस्य बह्वर्थ इति।

सूत्रार्थ—'अधिकरणैतावत्त्वे' २.४.१५ की अनुवृत्ति है। **अधिकरण**=द्रव्य, उसका **एतावत्त्व**=इयती संख्या, उसका सामीप्य से परिच्छिन्न होने पर समाहार ही हो, अन्य नहीं' ऐसा नियम विकल्प से कहना चाहिये'।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। इस सूत्र का क्या उदाहरण है? अनुप्रयोग में दोष होने से प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**उपदशमिति**। 'दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशम्' यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामीप्य अर्थ है। समाहारविषय का 'उपदशं पाणिपादम्' होगा। परन्तु इतरेतरयोगद्वन्द्व में 'उपदशाः पाणिपादाः' यही रूप होगा।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। सूत्र के द्वारा द्वन्द्व का एकवद्भावविधान होने पर अनुप्रयोग का एकवद्भावविधान शब्दतः नहीं होता है; अतः 'पाणिपादम्, पाणिपादाः' यह जो अनुप्रयगों का विकल्प से एकवद्भाव किया वह किसी सूत्र से प्राप्त नही है। यदि अर्थ को एकवद्भाव होने से अनुप्रयोग को भी एकत्वसिद्धि मान लिया जाये तो यह भी उचित नहीं है। यदि 'दशानां समीपमुपदशम्' ऐसा अव्ययीभाव मानेंगे तो बहुवचन नहीं हो सकेगा। यदि बहुवचन कर भी दिया जाये तो बहुवचनविभक्ति को भी अव्ययीभाव में अमादेश ही होगा; अतः 'उपदशाः' यह सिद्ध नहीं हो सकेगा। अथ वा यदि बहुव्रीहि ही करेंगे तो उपदश और पाणिपाद से षष्ठी की आपत्ति होगी; जब कि यहाँ 'उपदशम्' यह रूप इष्ट है, इसी को मन में रख कर कहते हैं-**एवं तर्हीति**। संख्यावाची के साथ अव्यय 'उप' पद का समास करने पर अव्ययीभाव होगा तथा एकवचन होगा। आचार्य यहाँ अव्ययीभाव का आरम्भ करते हैं; अतः अव्ययीभाव ही होगा। 'दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशाः पाणिपादाः' यह बहुव्रीहि है। यहाँ यह भी प्राप्त है, अतः जब बहुव्रीहि होगा तब बहुत्व अर्थ होने से बहुवचन भी होगा। {विभाषा-}।

तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः २.४.१९

किमर्थमिदमुच्यते? 'संज्ञायां कन्थोशीनरेषु' इति वक्ष्यति तदतत्पुरुषस्य नञ्समासस्य, कर्मधारयस्य वा मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। नहि संज्ञायां कन्थान्त उशीनरेष्वतत्पुरुषो नञ्समासः, कर्मधारयो वाऽस्ति। उत्तरार्थं तर्हि। 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासाया'मिति वक्ष्यति, तदतत्पुरुषस्य नञ्समासस्य कर्मधारयस्य वा मा भूदिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। न हि तदाद्याचिख्यासायामुपज्ञोपक्रमान्तोऽतत्पुरुषो नञ्समासः कर्मधारयो वाऽस्ति।

यह अधिकारसूत्र है। सूत्रार्थ-'नञ्समास तथा कर्मधारय से भिन्न तत्पुरुष वक्ष्यमाण कार्यभाक् हो'।

उत्तर के कुछ सूत्रों में अन्यथासिद्धि देख कर प्रश्न करते हैं-**किमर्थमिदमिति**। आचार्य 'संज्ञायां कन्थोशीनरेषु' २.४.२० के द्वारा संज्ञा गम्यमान होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कन्थान्त को क्लीब कहेंगे, वह तत्पुरुषरहित, अथ वा नञ्समास अथ वा कर्मधारय को न, इसके लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है। आक्षेपक-**नैतदस्तीति**। उशीनरदेश में उत्पन्न कन्था का वाचक कन्थान्तसमास तत्पुरुषभिन्न, अथ वा नञ्समास, अथ वा कर्मधारय नहीं है, अपि तु तत्पुरुष ही है। यदि अतत्पुरुष, नञ्समास अथ वा कर्मधारय होता तो दोष प्राप्त होने से उसका वारण के लिए सूत्रारम्भ किया जा सकता था, परन्तु ऐसा नहीं है। यहाँ उशीनरदेशोत्पन्ना कन्थान्तसंज्ञा अनादि ही ली जाती है, इदानीन्तनी नहीं, यह आक्षेपक का हृदय है। प्रयोजनवादी-**उत्तरार्थं तर्हीति**। 'संज्ञायां कन्थोशीनरेषु' २.४.२० सूत्र के उत्तर में 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्' २.४.२१ सूत्रपाठ करेंगे, उसमें इस अधिकार का प्रयोजन है। उपज्ञान्त तथा उपक्रमान्त का प्राथम्य वाच्य होने पर नपुंसक होता है। वह तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय को न हो, इसके लिए प्रकृतसूत्र का आरम्भ है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय उपज्ञान्त तथा उपक्रमान्त होते तो प्रकृत अधिकार का प्रयोजन होता; परन्तु ऐसा नहीं है। तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय इनमें से कोई भी उपज्ञान्त तथा उपक्रमान्त नहीं है; अतः कोई दोष नहीं होने से उसका वारण के लिए किया गया अधिकार व्यर्थ है।

उत्तरार्थमेव तर्हि। 'छाया बाहुल्ये' इति वक्ष्यति, तदतत्पुरुषस्य नञ्समासस्य कर्मधारयस्य वा मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। न हि च्छायान्तो बाहुल्येऽतत्पुरुषो नञ्समासः कर्मधारयो वाऽस्ति। उत्तरार्थमेव तर्हि। 'सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा' 'अशाला चे'ति वक्ष्यति, तदतत्पुरुषस्य नञ्समासस्य कर्मधारयस्य वा मा भूदिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। न हि सभाऽन्तोऽशालायामतत्पुरुषो नञ्समासः कर्मधारयो वाऽस्ति। इदं तर्हि-'विभाषा सेनासुरे'ति वक्ष्यति, तदतत्पुरुषस्य नञ्समासस्य कर्मधारयस्य वा मा भूदिति। तत्पुरुष इति किमर्थम्? दृढसेनो राजा। अनञिति किमर्थम्? असेना। अकर्मधारय इति किमर्थम्? परमसेना। उत्तमसेना।

प्रयोजनवादी—**उत्तरार्थमिति**। उत्तरसूत्र 'छायाबाहुल्ये' २.४.२२ में अनुवृत्ति के लिए प्रकृत अधिकार का आरम्भ है। इससे पूर्वपदार्थ का बाहुल्य होने पर छायान्त को क्लीब होता है, वह तत्पुरुष को ही हो, तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय को न हो, एतदर्थ प्रकृत सूत्र का अधिकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। पूर्वपदार्थ का बाहुल्य होने पर छायान्तसमास तत्पुरुष ही मिलेगा, तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय नहीं, अतः अतिव्याप्ति नहीं होने से उसका वारणार्थ प्रकृत सूत्र का अधिकार व्यर्थ है। प्रयोजनवादी-**उत्तरार्थमिति**। आचार्य 'सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा' २.४.२३ तथा 'अशाला च' २.४.२४ ऐसा सूत्र कहेंगे; उसमें अनुवृत्ति के लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ है। इससे राजपर्यायपूर्व तथा सभान्तपूर्व को नपुंसक होता है, एवं संघातार्थ जो सभा, तदन्त को नपुंसक होता है; वह तत्पुरुष हो ही हो, तत्पुरुष-भिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय को न हो, एतदर्थ प्रकृत अधिकार है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। 'अशाला' में सभान्तसमास तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय नहीं है, अपि तु मात्र तत्पुरुष है। 'अशाला' इस वचन से संघातवचन सभाशब्द लेना चाहिये। समूही के अभाव में समूह की आपत्ति नहीं होती है; अतः षष्ठीतत्पुरुष का ही ग्रहण होगा, तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय का नहीं। प्रयोजनवादी-**इदं तर्हीति**। आचार्य 'विभाषा सेना-सुराच्छायाशालानिशानाम्' २.४.२५ ऐसा सूत्रपाठ करेंगे। उससे तत्पुरुष को ही विकल्प से नपुंसक हो, तत्पुरुषभिन्न, नञ्समास, अथ वा कर्मधारय को न हो, एतदर्थ प्रकृत अधिकार है। 'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्' २.४.२५ प्रदेश में मन्दबुद्धिअनुग्रह के लिए अधिकार किया गया है। 'दृढा सेना यस्य स दृढसेनो राजा' इस बहुव्रीहिस्थल में नपुंसक की अतिव्याप्तिवारण के लिए तत्पुरुषपद का निर्देश है। 'असेना' इस नञ्समासस्थल में क्लीबवारण के लिए अनञ्पद का निर्देश है। 'परमसेना' इत्यादि कर्मधारयस्थल में नपुंसक की अतिव्याप्तिवारण के लिए 'अकर्मधारयपद का निर्देश है। {तत्पुरुषोऽनञ्-}।

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २.४.२६

किमर्थमिदमुच्यते? द्वन्द्वोऽयमुभयपदार्थप्रधानस्तत्र कदा चित् पूर्वपदस्य यल्लिङ्गं तत्समासस्याऽपि स्यात्, कदा चिदुत्तरपदस्य; इष्यते च परस्य यल्लिङ्गं तत्समासस्य यथा स्यादिति, तच्चाऽन्तरेण यत्नं न सिध्यतीति 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो'रिति। एवमर्थ-मिदमुच्यते। तत्पुरुषश्चाऽपि कः प्रयोजयति? यः पूर्वपदार्थप्रधान एकदेशिसमासः-अर्द्धपिप्पलीति। यो ह्युत्तरपदार्थप्रधानः, दैवकृतं तस्य परवल्लिङ्गम्।

सूत्रार्थ—'द्वन्द्व तथा तत्पुरुष को पर का ही लिङ्ग है, पूर्व का नहीं'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुक्कुटमयुर्याविमे । मयुरीकुक्कुटाविमौ । अर्द्धपिप्पली ।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**द्वन्द्वोऽयमिति**। उभयपदार्थप्रधान द्वन्द्व होता है; अतः **तत्र**= द्वन्द्वघटकशब्दों के मध्य में कभी पूर्वपद का तथा कभी उत्तरपद का लिङ्ग प्राप्त होने पर अनियम होगा, अतः उत्तरपद का जो लिङ्ग वही समास का भी लिङ्ग हो, यह बताने के लिए सूत्र का अवतरण है। 'उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः' इस भाष्य से आचार्य स्पष्ट करते हैं कि अवयवार्थ से व्यतिरिक्त समुदायार्थ नही होता है। द्वन्द्व में जब परस्पर विरुद्ध दो लिङ्ग अपेक्षित होने पर दोनों ही लिङ्ग समुदायार्थ होंगे तब पर्याय से दो लिङ्गों के प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र नियमार्थक है।

प्रश्नभाष्य—**तत्पुरुषश्चापीति**। किस तरह का तत्पुरुष प्रकृतसूत्र के आरम्भ का प्रयोजक है? उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष होता है, अतः उत्तरपद का ही लिङ्ग होगा, पूर्वपद का नहीं, फिर तत्पुरुष का पर पद को लिङ्ग कहने का क्या अभिप्राय है?, यदि है तो वह कौन तत्पुरुष है?

उत्तरभाष्य—**यः पूर्वपदार्थप्रधान इति**। प्रायेण उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष होता है। जो उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष है उसका परवल्लिङ्ग **दैवकृत**=विना किसी यत्न के सिद्ध हो जायेगा। परन्तु कुछ ऐसा भी तत्पुरुष हैं जो पूर्वपदार्थ-प्रधान हैं। जैसे अर्द्धपिप्पली। इनका परवल्लिङ्ग विना सूत्रनिर्देश किये सिद्ध नहीं हो पा रहा है। यहाँ प्रधान होने से पूर्वपद का लिङ्ग प्राप्त है, जब कि उत्तरपद का जो लिङ्ग वही समास को इष्ट है जो सूत्रनिर्देश नहीं होने से उपपन्न नहीं हो पा रहा है, अतः पूर्वपदार्थप्रधान तत्पुरुष प्रकृतसूत्र का आरम्भक परमाणु है।

* परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति चेत् प्राप्तापन्नाऽलंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधः * **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति चेत् प्राप्तापन्नाऽलंपूर्व-गतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः**। प्राप्त-**प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः**। आपन्न-**आपन्नो जीविकामापन्नजीविकः**। अलंपूर्व-**अलं जीविकायै अलंजीविकः**। गतिसमास-**निष्कौशाम्बिः निर्वाराणसिः** * पूर्वपदस्य च * **पूर्वपदस्य च प्रतिषेधो वक्तव्यः। मयूरीकुक्कुटौ। यदि पुनर्यथा-जातीयकं परस्य लिङ्गं तथाजातीयकं समासादन्यदतिदिश्यते।**

वार्तिक—**परवल्लिङ्गमिति**। तत्पुरुष को परवल्लिङ्गविधि मे प्राप्तपूर्वपद, आपन्नपूर्वपद तथा अलम्पूर्वपद तत्पुरुष, एवं गतिसमासतत्पुरुष में परवल्लिङ्ग का निषेध कहना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये। 'प्राप्तजीविकः, आपन्नजीविकः' में 'प्राप्तापन्ने च द्वितीयया' २.२.४ से समास है तथा 'अलंजीविकः' में चतुर्थीसमास है। यहाँ सभी समास तत्पुरुष हैं तथा उत्तरपद स्त्रीलिङ्ग है, अतः परवल्लिङ्ग होने से 'प्राप्तजीविकः' आदि में स्त्रीलिङ्ग की आपत्ति हो रही है, उसका निषेध कहना चाहिये। 'निर्गतः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः, निर्गतो वाराणस्या निर्वाराणसिः' में उत्तरपद स्त्रीलिङ्ग है; अतः परवल्लिङ्ग कहने से यहाँ स्त्रीलिङ्ग की आपत्ति हो रही है, उसका निषेध कहना चाहिये। वार्तिक-**पूर्वपदस्य चेति**। 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' इसे सप्तमीनिर्देश मान कर यह वार्तिक है। इस पक्ष में प्रकृतसूत्र का अर्थ होगा-'द्वन्द्वे तत्पुरुषे च यत्परं तद्वल्लिङ्गं स्यात्'। यहाँ कार्यी का ग्रहण नहीं है, अपि तु सम्बन्धी 'पर'शब्द का निर्देश है। यहाँ कार्यी का ग्रहण नहीं है, अपि तु सम्बन्धी 'पर'शब्द का निर्देश है; अतः परशब्द से आक्षिप्त पूर्वशब्द ही कार्यी होगा। इससे 'मयुरीकुक्कुटौ' में पूर्वपद को पुंस्त्वातिदेश करने पर स्त्रीप्रत्यय की निवृत्ति प्राप्त हो रही है तथा 'कुक्कुटमयुर्यौ' में स्त्रीप्रत्यय की आपत्ति प्राप्त हो रही है। अथ च यदि 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' में षष्ठीविभक्ति तथा अवयव से समुदाय को भिन्न मानेंगे तो **परस्य**= उत्तरपद का जो लिङ्ग है उससे भिन्न लिङ्ग समास में प्राप्त होने पर 'परवत्' यह अतिदेश है। इसे बताते हैं-**यदि पुनरिति**। अवयव से समुदाय को भिन्न मानने पर ही मुख्य सादृश्य की उपपत्ति होती है।

* समासादन्यल्लिङ्गमिति चेदश्ववडवयोष्टाब्लुग्वचनम् * **समासादन्यल्लिङ्गमिति चेद् अश्ववडवयोष्टापो लुग्वक्तव्यः। अश्ववडवौ** * निपातनात् सिद्धम् * **निपातनात् सिद्धमेतत्। किं निपातनम्? 'अश्ववडवपूर्वापरे'ति** * उपसर्जनह्रस्वत्वं वा * **अथ वोपसर्जनस्येति ह्रस्वत्वं भविष्यति। इहापि तर्हि प्राप्नोति-'कुक्कुटमयूर्या'विति। अस्तु** * परवल्लिङ्ग'मिति शब्दशब्दार्थौ * **परवल्लिङ्ग'मिति शब्दशब्दार्था'वतिदिश्येते। तत्रौपदेशिकस्य ह्रस्वत्वम्, आतिदेशिकस्य श्रवणं भविष्यति।**

आक्षेपक—**समासादिति**। अवयव से समुदाय का भेद मान कर समुदायसमास से अन्यलिङ्ग मानने पर 'अश्ववडवौ' में टाप् का लुक् कहना पडेगा। यदि अवयव से समुदाय को अभिन्न मान कर पूर्वपद तथा उत्तरपद का लिङ्ग विकल्प से प्राप्त होने पर उत्तरपद का लिङ्गविधान के लिए प्रकृतसूत्र को नियमार्थक मानेंगे तो 'अश्ववडवौ' में टाप् की निवृत्ति प्राप्त नहीं होती है।

उत्तरभाष्य—**निपातनादिति**। 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपराधरोत्तराणाम्' २.४.१२ सूत्र में आचार्य ने 'अश्ववडव' ऐसा निर्देश किया है, इसी से टाप् की निवृत्ति हो जायेगी, अतः अतिरिक्तवचननिर्देश की आवश्यकता नहीं है। 'अश्ववडवौ' में अन्य प्रकार से भी टाप् की निवृत्ति बताते हैं-**उपसर्जन-ह्रस्वत्वमिति**। समास में समुदाय विशेष्य होता है तथा अवयवार्थ उपसर्जन; अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ से ह्रस्वादेश के द्वारा टाप् की निवृत्ति हो जायेगी। आक्षेपक-**इहापि तर्हीति**। यदि समुदायार्थ में अवयवार्थ को उपसर्जन मान कर 'अश्ववडवौ' में ह्रस्व के द्वारा टाप् की निवृत्ति मानेंगे तो समानस्थिति होने से 'कुक्कुटमयुर्य्यौ' में ह्रस्वादेश के द्वारा स्त्रीप्रत्यय की निवृत्ति प्राप्त होगी जो इष्ट नहीं है।

उत्तरभाष्य—**अस्त्विति**। 'परवल्लिङ्गम्' में तन्त्र अथ वा एकशेष के द्वारा लिङ्गशब्द लिङ्गाभिधायी प्रत्यय तथा अर्थ इन दोनों अर्थो का वाचक है; अतः शब्द तथा शब्दार्थ दोनों का अतिदेश है। औपदेशिक को ह्रस्वादेश होगा। इससे ह्रस्वादेश से ही 'अश्ववडवौ' में टाप् की निवृत्ति हो जायेगी, एवम् आतिदेशिक का श्रवण होगा। इससे 'कुक्कुटमयुर्य्यौ' में उत्तरपद मयुरी का लिङ्गातिदेश होने से उसका श्रवण होगा, वहाँ स्त्रीत्व की निवृत्ति नहीं होगी।

इदं तर्हि-दत्ता च कारीषगन्ध्या च दत्ताकारीषगन्ध्ये। दत्ता च गार्ग्यायणी च दत्तागार्ग्यायण्यौ। द्वौ ष्यङौ द्वौ ष्फौ च प्राप्नुतः। स्ताम्। पुंवद्भावेनैकस्य निवृत्तिर्भविष्यति। इदं तर्हि-दत्ता च युवतिश्च दत्ता युवती। द्वौ तिशब्दौ प्राप्नुतः। तस्मान्नैतच्छक्यं वक्तुं-'शब्दशब्दार्थावतिदिश्येते' इति। ननु चोक्तं-'समासादन्यल्लिङ्गमिति चेदश्ववडवयोष्टाब्लुग्वचन'मिति। परिहृतमेतत्-'निपातनात् सिद्ध'मिति।

आक्षेपक—**इदं तर्हीति**। 'दत्ता च कारीषगन्ध्या च' इस विग्रह में समास करने पर 'दत्ताकारीषगन्ध्ये' में द्वित्व है, अतः यहाँ 'तस्यापत्यम्' ४.१.९२ से विहित अण् को 'अणिञोरनार्षयोर्गुरुपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे' ४.१.७८ से ष्यङ् आदेश है, यहाँ दो अण् तथा उसके स्थान में दो ष्यङ् प्राप्त होगा। 'यस्येति च' ६.४.१४८ के द्वारा आकारलोप होने पर दो यकार का श्रवण प्राप्त होगा। 'हलो यमां यमि लोपः' ८.४.६४ यह लोप विकल्प से है; अतः लोपाभावपक्ष में दो यकार के श्रवण की आपत्ति बनी रहेगी। यदि यहाँ 'यणो मयो द्वे वाच्ये' वा.८.४.४७ से द्विर्वचन भी कहेंगे तो तीन यकार के श्रवण की आपत्ति होगी। 'दत्ता च गार्ग्यायणी च दत्तागार्ग्यायण्यौ' इस द्वन्द्वस्थल में 'प्राचां ष्फ तद्धितः' ४.१.१७ से दो ष्फ की आपत्ति होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**स्तामिति**। उक्त स्थल में दो ष्यङ् तथा दो ष्फ प्राप्त होने दीजिये। 'भस्याऽढे तद्धिते' भा.वा.६.३.३५ से एक-एक की निवृत्ति हो जायेगी; अतः उक्त आपत्ति नही रहेगी। आक्षेपक-**इदं तर्हीति**। 'दत्ता च युवतिश्च' इस विग्रह में द्वन्द्व करने पर लिङ्गाभिधायिप्रत्यय का ग्रहणपक्ष में 'यूनस्तिः' ४.१.७७ की दो वार प्रवृत्ति होने से दो 'ति'शब्द की आपत्ति होगी। यहाँ भसंज्ञा नही होने से पुंवद्भाव का अवसर नही है; अतः एक 'ति'शब्द की निवृत्ति नही हो सकने से दो 'ति'शब्द के श्रवण की आपत्ति होगी। अतः जो लिङ्गपद में तन्त्र मान कर लिङ्गाभिधायी प्रत्यय तथा अर्थ इन दोनों का अतिदेश कहा था, वह दोषग्रस्त हो गया। 'द्वन्द्व' यह अन्वर्थसंज्ञाविधान है तथा उसमें उभयपद प्रधान होता है; अतः उपसर्जनह्रस्वत्व की भी प्रवृत्ति नहीं होगी। अवयव से समुदाय को भिन्न मान कर समुदाय से अन्य लिङ्ग मानने पर 'अश्ववडवौ' में टाप् के लुग्विधान की जो आपत्ति दी थी, उसका समाधान 'निपातनात् सिद्धम्' बताया जा चुका है।

अथ वा नैवं विज्ञायते-परस्यैव परवदिति। कथं तर्हि? परस्येव परवदिति। यथाजातीयकं परस्य लिङ्गं तथाजातीयकं समासस्यातिदिश्यते। अथ पूर्वपदस्य न प्रतिषिध्यते, प्राप्तादिषु कथम्?

अन्यपक्ष में भी समाधान करते हैं—**अथ वेति**। 'परवत्' पद से 'परस्यैव परवत्' ऐसा पूर्वपद का लिङ्गनिषेध में तात्पर्य नही है, अपि तु सादृश्यार्थक वतिप्रत्यय का निर्देश होने से 'पर का जो लिङ्ग उसके सदृश समुदाय का लिङ्ग हो' यह अर्थ है। यह अतिदेश है। 'अवयवार्थ से भिन्न समुदाय द्वन्द्वार्थ है तथा वह अवयवलिङ्ग से ही लिङ्गवान् है' इस दर्शनपक्ष में भी पर्याय से लिङ्ग प्राप्त होने पर नियमार्थक वचन है। परन्तु जब द्वन्द्व का अर्थ समुदाय है तथा वह अलिङ्ग है' यह पक्ष मानेंगे तब प्रकृतसूत्र नियमार्थक होगा।

अथ=अतः पूर्वपद का लिङ्ग अप्राप्त होने पर निषेध नही है, अपि तु प्राप्त होने पर निषेध है। इस तरह 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' में षष्ठीनिर्देश मान कर 'उभयपदार्थ-प्रधानस्तत्पुरुषः' पक्ष में पूर्वपद का लिङ्गनिषेध हो जायेगा, इससे 'मयुरीकुक्कुटौ' में उत्तरपद का लिङ्ग होने से इसकी गति हो गयी। अब रही वात-प्राप्त, आपन्न, अलम् तथा गतिपूर्वसमास 'प्राप्तजीविकः' इत्यादि की; यहाँ पूर्वपद का लिङ्गनिषेध होने पर उत्तरपद का लिङ्ग प्राप्त होने से 'प्राप्तजीविकः' इत्यादि में स्त्रीत्व की आपत्ति हो रही है, उसकी क्या गति होगी?

* प्राप्तादिषु चैकदेशिग्रहणात् सिद्धम् * **प्राप्तादिषु चैकदेशिग्रहणात् सिद्धम्। 'द्वन्द्वैकदेशिनो'रिति वक्ष्यामि। तदेकदेशिग्रहणं कर्तव्यम्?**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न कर्तव्यम्। एकदेशिसमासो नाऽऽरभ्यते। कथमर्द्धपिप्पलीति? समानाधिकरणसमासो भविष्यति-अर्द्धं च सा पिप्पली च अर्द्ध-पिप्पलीति। न सिध्यति। परत्वात् षष्ठीसमासः प्राप्नोति। अद्य पुनरयमेकदेशिसमास आरभ्यमाणः षष्ठीसमासं बाधते। इष्यते च षष्ठीसमासोऽपि। तद्यथा-'अपूपार्द्धं मया भक्षितं' 'ग्रामार्द्धं मया लब्ध'मिति। एवं पिप्पल्यर्द्धमित्यपि भवितव्यम्। कथमर्द्धपिप्पलीति? समानाधिकरणो भविष्यति। {परवल्लिङ्गम्}।

अन्य आचार्य—**प्राप्तादिष्विति**। प्रकृतसूत्र में 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' के स्थान पर 'द्वन्द्वैकदेशिनोः' ऐसा पाठ करेंगे। 'प्राप्तजीविकः' इत्यादि एकदेशी समास हैं तथा उनके पूर्व का ही लिङ्ग होने से 'प्राप्तजीविकः' इत्यादि में स्त्रीत्व की आपत्ति नहीं रहेगी।

प्रश्नभाष्य—**तदेकदेशीति**। यदि प्रकृतसूत्र में 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' के स्थान पर 'द्वन्द्वैकदेशिनोः' ऐसा पाठ करते हैं तब क्या एकदेशिसमास के लिए आचार्य ने जो 'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' २.२.१, 'अर्द्ध नपुंसकम्' २.२.२ तथा 'द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्' २.२.३ यह तीनों सूत्र का आरम्भ किया है, उसे रखना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। 'द्वन्द्वैकदेशिनोः' ऐसा पाठ करने पर एकदेशी समास के लिए पूर्वोक्त तीनों सूत्रों का निर्देश आवश्यक नही है।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। यदि एकदेशी समास का विधान करने वाला तीनों सूत्रों का आरम्भ नहीं करेंगे तो 'अर्द्धपिप्पली' में समास कैसे होगा? एकदेशी का आरम्भ होने पर 'पिप्पल्या अर्द्धम्' इस विग्रह में 'अर्द्धपिप्पली' सिद्ध हो जा रहा था।

उत्तरभाष्य—**समानाधिकरणमिति**। 'समानाधिकरणे' २.१.४९ के अधिकार में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ सूत्र पढा गया है; अतः 'अर्द्ध च सा पिप्पली' इस विग्रह में उक्त सूत्र से समानाधिकरणसमास उक्त होकर 'अर्द्धपिप्पली' रूप की सिद्धि हो जायेगी।

खण्डनभाष्य—**न सिध्यतीति**। अर्द्ध पद का पिप्पली पद के साथ अभेद नही है, अपि तु भेद है; अतः उक्त दोनों पदों का समानाधिकरण नही हो सकेगा, अपि तु भेद होने से पिप्पली पद के उत्तर में षष्ठी विभक्ति होगी एवं षष्ठीसमास ही होगा। यदि यहाँ यह कहा जायेगा कि 'अर्द्ध नपुंसकम्' २.२.२ यह एकदेशी समास का आरम्भ षष्ठीसमास का बाध कर लेगा; अतः अवयव में समुदाय का आरोप कर अर्द्ध और पिप्पली इन दोनों पदों का सामानाधिकरण्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से षष्ठीसमास का बाध हो जायेगा, तो इसका उत्तर देते हैं-**इष्यते चेति**। षष्ठ्यन्त का अर्द्धपद के साथ समास भी इष्ट है। इसका प्रयोगप्रदेश भी दिखाते हैं-**तद्यथेति**। 'अपूपस्य अर्द्धम् अपूपार्द्धम्, ग्रामस्य अर्द्धं ग्रामार्द्धम्, पिप्पल्या अर्द्धं पिप्पल्यर्द्धम्'।

प्रश्नभाष्य—**कथं तर्हीति**। षष्ठीसमास में षष्ठ्यन्त का ही पूर्वनिपात होगा। इस तरह 'पिप्पल्यर्द्धम्' यही रूप होगा, जब कि 'अर्द्धपिप्पली' यह भी प्रयोग इष्ट है, वह कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**समानाधिकरण इति**। 'अर्द्धं च सा पिप्पली' इस विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २.१.५७ से समानाधिकरण समास होकर 'अर्द्धपिप्पली' भी रूप हो जायेगा। {परवल्लिङ्गम्-}।

रात्राह्नाहाः पुंसि २.४.२९

* अनुवाकादयः पुंसि * **अनुवाकादयः पुंसि भाष्यन्त इति वक्तव्यम्। अनुवाकः। शंयुवाकः। सूक्तवाकः।** {रात्राह्नाहाः}।

'द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' २.४.२७ की अनुवृत्ति है तथा इसका प्रथमा-बहुवचन के साथ विपरिणाम है। अनुवृत्त पद विशेष्य है; अतः तदन्त अर्थ का लाभ होगा। सूत्रार्थ-'रात्र, अह्न तथा अह शब्दान्त द्वन्द्व तथा तत्पुरुष पुल्लिङ्ग में ही हों, अन्य में नहीं'।

वार्तिक—**अनुवाकादय इति**। अनुवाकगणपठितशब्दों का पुल्लिङ्ग में ही प्रयोग होगा। इसका परिगणन करते हैं-अनुवाक इति।{रात्रा-}।

अपथं नपुंसकम् २.४.३०.

* पुण्यसुदिनाभ्यामह्नो नपुंसकत्वम् * **पुण्यसुदिनाभ्यामह्नो नपुंसकत्वं वक्तव्यम्। पुण्याहम्। सुदिनाहम्** * पथः संख्याऽव्ययादेः * **पथः संख्याऽव्ययादेरिति वक्तव्यम्। द्विपथं त्रिपथं चतुष्पथम्। उत्पथं विपथम्** * द्विगुश्च * **द्विगुश्च समासो नपुंसकलिङ्गो भवतीति वक्तव्यम्। पञ्चगवं दशगवम्।**

सूत्राथ—'न पन्थाः' इस विग्रह में नञ्समास, नञ् के नकार का लोप होने पर 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त 'अ'प्रत्यय तथा टिलोप होने पर अपथशब्द नपुंसक हो'। यह परवल्लिङ्गता का अपवाद है। तत्पुरुष में ही नपुंसक होगा, अन्य में नही।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुण्यसुदिनाभ्यामिति। पुण्य तथा सुदिन पद से पर में अह्नशब्द हो तो उसे नपुंसक कहना चाहिये-पुण्याहम्। सुदिनाहम्। **पथः संख्याव्ययादेरिति**। संख्यापूर्वपथिन्शब्द तथा अव्ययपूर्व पथिन्शब्द को नपुंसक कहना चाहिये। संख्यापूर्व-द्विपथम्, त्रिपथम्, चतुष्पथम्। अव्ययपूर्व-उत्पथम्, विपथम्। यहाँ 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ से समास तथा 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त 'अ'प्रत्यय तथा टिलोप है। **द्विगुश्चेति**। द्विगुसमास को भी नपुंसक कहना चाहिये-पञ्चगवम्। दशगवम्। यहाँ 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से समासान्त टच्प्रत्यय तथा अवङ् आदेश है।

* अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियाम् * **अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यत इति वक्तव्यम्। पञ्चपूली दशपूली** * वाऽऽबन्तः * **वाऽऽबन्तः स्त्रियां भाष्यत इति वक्तव्यम्। पञ्चखट्वी। पञ्चखट्वम्। दशखट्वी। दशखट्वम्** * अनो नलोपश्च * **अनो नलोपश्च वा च स्त्रियां भाष्यत इति वक्तव्यम्। पञ्चतक्षम्। पञ्चतक्षी। दशतक्षम्। दशतक्षी** * पात्रादिभ्यः प्रतिषेधः * **पात्रादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। पञ्चपात्रम्। द्विपात्रम्।** {अपथं नपुंसकम्}।

अकारान्तोत्तरपद इति। 'अकारान्त उत्तरपद द्विगु स्त्रीलिङ्ग में होता है' ऐसा कहना चाहिये। 'पञ्चानां पूलानां समाहारः पञ्चपूली, दशानां पूलानां समाहारः दशपूली'। विग्रह में भी उत्तरपद को अकारान्त होना चाहिये, अन्यथा मात्र समास में अकारान्तोत्तर कहने पर 'पञ्चगवम्' इत्यादि में भी स्त्रीत्व की आपत्ति होगी। **वाऽऽबन्त इति**। आबन्त द्विगु को विकल्प से स्त्रीलिङ्ग कहना चाहिये। पक्ष में नपुंसक होगा। इसका उदाहरण देते हैं-पञ्चखट्वी। पञ्चखट्वम्। दशखट्वी। दशखट्वम्। **अनो नलोपश्चेति**-द्विगु में अन्नन्त प्रातिपदिक को विकल्प से स्त्रीत्व तथा अन् के नकार का नित्य ही लोप कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-पञ्चतक्षम् इत्यादि। यहाँ तक्षन्शब्द अन्नन्त है। **पात्रादिभ्य इति**। पात्रादिगणपठित शब्दों को द्विगु में जो 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियाम्' कहा था, उसका निषेध कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-पञ्चपात्रम्। द्विपात्रम्।{अपथं-}।

अर्द्धर्चाः पुंसि च २.४.३१

* अर्द्धर्चादयः * **अर्द्धर्चादय इति वक्तव्यम्। अर्द्धर्चम्। अर्द्धर्चः। कार्षापणम्। कार्षापणः। कषायम्। कषायः। गोमयम्। गोमयः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरकम्। सरकः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम् * बहुवचननिर्देशात् सिद्धम् * **बहुवचननिर्देशाद् आद्यर्थो गम्यते।** {अर्द्धर्चाः}।

'अपथं नपुंसकम्' २.४.३० से यहाँ 'नपुंसकम्' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ- 'अर्द्धर्चादिगणपठित शब्दों को पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग हो'।

वार्तिक—**अर्द्धर्चादय इति**। 'अर्द्धर्चाः पुंसि च' के स्थान पर 'अर्द्धर्चादयः पुंसि च' ऐसा पाठ करना चाहिये था, इससे 'कार्षापणम्' इत्यादि में भी लिङ्ग की सिद्धि होती। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या 'अर्द्धर्चाः पुंसि च' के स्थान पर 'अर्द्धर्चादयः पुंसि च' ऐसा पाठ करना चाहिये था?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। 'अर्द्धर्चः' ऐसा एकवचननिर्देश से कार्य चल सकता था, परन्तु 'अर्द्धर्चाः' ऐसा बहुवचननिर्देश व्यर्थ पड कर गणपाठ की कल्पना करा देगा। {अर्द्धर्चाः-}।

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ २.४.३२

* अन्वादेशे समानाधिकरणग्रहणम् * **अन्वादेशे समानाधिकरणग्रहणं कर्तव्यम्। किं प्रयोजनम्?** * देवदत्तं भोजयेमं चेत्यप्रसङ्गार्थम् * **इह मा भूद्-देवदत्तं भोजयेमं च यज्ञदत्तं भोजयेति** * अन्वादेशश्च कथितानुकथितमात्रम् * **अन्वादेशश्च कथितानुकथितमात्रं द्रष्टव्यम्। तद् द्वेष्यं विजानीयादिदमा कथितमिदमैव यदाऽनुकथ्यत इति। तदाऽऽचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टे-अन्वादेशश्च कथितानुकथितमात्रं द्रष्टव्यमिति।**

'अन्वादेशे+अश्' ऐसा पदच्छेद है। सूत्रार्थ-'अन्वादेश में तृतीयाविभक्ति पर रहते इदम् को अश् आदेश हो' तथा वह अनुदात्त हो'। उदाहरण आगे स्पष्ट होगा।

पश्चात् कथनमात्र अन्वादेश प्रसिद्ध है। व्यधिकरणप्राप्ति का निवारण के लिए वार्तिकावतार करते हैं-**अन्वादेश इति**। अन्वादेशविधि में समानाधिकरणग्रहण करना चाहिये। इससे 'देवदत्तं भोजय इमं च यज्ञदत्तं भोजय' में व्यधिकरण होने से 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' २.४.३५ के द्वारा इदम् शब्द को एनादेश की आपत्ति निवृत्त हो जाती है। भ्रान्तिनिवारण के लिए वार्तिकावतार करते हैं-**अन्वादेशश्चेति**। यदि इदम्शब्द के द्वारा कोई विषय कहा गया, बाद में कार्यान्तरविधान के लिए यदि इदम्शब्द का प्रयोग करते हैं तभी अन्वादेश होगा। यदि इदम्शब्द से कोई विषय कह कर पुनः अदस्शब्द से कार्यान्तरविधान करते हैं तब अन्वादेश नही होगा। इसी को स्पष्ट करने के लिए आचार्य ने अनुग्रह कर वार्तिक पढा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ किमर्थमशादेशः क्रियते, न 'तृतीयादि'ष्वित्ये- वोच्येत। तत्र टायामोसि चैनेन भवितव्यम्, अन्याः सर्वाः हलादयो विभक्तयः, तत्रेद्रूपलोपे कृते केवलमिदमोऽनुदात्तत्वमेव वक्तव्यम्। अत उत्तरं पठति- * अशादेशवचनं साकच्कार्थम् * **अशादेशवचनं साकच्कार्थं क्रियते। साकच्कस्यापीदम आदेशो यथा स्याद्-इमकाभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता अथो आभ्यामहरप्यधीतमिति।**

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। प्रकृतसूत्र के स्थान पर 'अनुदात्तस्तृतीयादौ' मात्र इतना ही सूत्र रखिये। इदम् को अश् आदेश कहने की आवश्यकता नही है। 'टा' तथा 'ओस्' पर रहते 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' २.४.३५ के द्वारा इदम् को एन अन्वादेश ही होगा। वहाँ अश् का प्रसङ्ग बाधित है। शेष अजादिविभक्तियाँ भी स्मै, स्मिन् आदि आदेश तथा सुडागम के द्वारा हलादि हो जायेंगी। हलादिविभक्ति पर रहते 'हलि लोपः' ७.२त्र.११३ के द्वारा इदम् के इद्भाग का लोप हो जायेगा। मकार को अत्त्व, पररूप, एकादेश होने पर 'अ' मात्र शेष रहता है। इस तरह मात्र अन्वादेश में अनुदात्तविधान करने से ही कार्य चल जा रहा था, फिर यहाँ इदम् को अश् अन्वादेश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**साकच्कार्थमिति**। 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' ५.३.७१ से इदम् को अकच् आगम होने पर अकज्विशिष्ट को भी अश् आदेश हो सके, इसके लिए प्रकृत में 'इदमोऽन्वादेशेऽश्' का ग्रहण है। इसका प्रयोगस्थल दिखाते हैं-**इमकाभ्यामिति**।

अथ किमर्थं शित्करणम्? * शित्करणं सर्वादेशार्थम् * **शित्करणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'सर्वादेशार्थम्'। शित्सर्वस्येति सर्वादेशो यथा स्याद्- इमकाभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता अथो आभ्यामहर- प्यधीतमिति। अक्रियमाणे हि शित्करणेऽलोऽन्त्यस्य विधयो भवन्तीत्यन्त्यस्य प्रसज्येत।**

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। अन्वादेश को शिद्विशिष्ट क्यों पढते हैं? एकदेशी-**शित्करणमिति**। 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' १.१.५५ के द्वारा सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश हो, इसके लिए शित्करण है। इसका प्रयोगस्थल दिखाते हैं-**इमकाभ्यामिति**। यदि शित्करण नही करेंगे तो 'इदमः' यह षष्ठीनिर्देश होने से 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ के द्वारा अन्त्य अल् 'म्' को ही अकार अन्वादेश होगा।

* न वाऽन्त्यस्य विकारवचनानर्थक्यात् * **न वा वक्तव्यम्। किं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणम्? 'अन्त्यस्य विकारवचनानर्थक्यात्'। अकारस्याऽकारकरणे प्रयोजनं नास्तीति कृत्वाऽन्तरेणाऽपि शकारं सर्वादेशो भविष्यति * अर्थवत्त्वादेशप्रतिषेधार्थम् * अर्थवत्त्वकारस्याऽकारवचनम्। कोऽर्थः? 'आदेशप्रतिषेधार्थम्'। येऽन्येऽकस्यादेशाः प्राप्नुवन्ति तद्बाधनार्थम्। तद्यथा-'मो राजि समः क्वा'विति मकारस्य मकारवचने प्रयोजनं नास्तीति कृत्वाऽनुस्वारादयो बाध्यन्ते * तस्माच्छित्करणम् * तस्माच्छकारः कर्तव्यः। न कर्तव्यः। प्रश्लिष्टनिर्देशोऽयम्-'अ-अ' इति। 'अनेकाल्शित्सर्वस्ये'ति सर्वादेशो भविष्यति। अथ वा विचित्रास्तद्धितवृत्तयः। नान्वादेशेऽकजुत्पत्स्यते।

आक्षेपक—**न वाऽन्त्यस्येति**। 'त्यदादीनामः' ७.२.१०२ के द्वारा इदम् का अन्त्य 'म्' को अकार आदेश प्राप्त है, फिर उसी अकार को अकार-आदेशविधान का कोई फल नही होने से सामर्थ्यात् सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश हो जायेगा। इस तरह सर्वादेश सिद्ध होने पर उसी के निमित्त किया गया शित्करण व्यर्थ है। एकदेशी-**अर्थवत्त्वेति**। जैसे राजन्शब्द पर रहते सम् के मकार को मकार आदेश का कोई फल नही होने से मकार को प्राप्त अन्य आदेश 'मोऽनुस्वारः' ८.३.२३ का बाध होता है, वैसे प्रकृत में भी अकर को अकर आदेश व्यर्थ पड कर अकार का अन्य आदेश का बाध करेगा। इस तरह अकारविधान सार्थक है, निरर्थक नही; अतः अकारविधानसामर्थ्य से सर्वादेश नही कहा जा सकता हैं; अतः सर्वादेश के लिए शित्करण आवश्यक है।

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्य इति**। 'अ+अ=अ' ऐसा 'अतो गुणे' ६.१.९७ से पररूप-एकादेश होकर 'अ' यह अनेकाल् निर्देश है; अतः अनेकाल् होने से ही सर्वादेश हो जायेगा। आदेश का ही प्रत्याख्यान करते हैं-**अथ वेति**। तद्धितवृत्तियाँ विचित्र होने से अन्वादेश में भी प्राप्त हो रही थी, वह अन्वादेश में न हों, एतदर्थ शित्करण है। इससे 'इमकाभ्यां रात्रिरधीता, अथो आभ्यामहरप्यधीतम्' में अन्वादेश 'इमकाभ्याम्' यह नही होता है। {इदमोऽन्वा-}।

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ २.४.३३

किमर्थं त्रतसोरनुदात्तत्वमुच्यते? उदात्तौ मा भूतामिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। लित्स्वरे कृते निघाते एतदोऽनुदात्तत्वेन सिद्धम्। इदमिह प्रयोजनम्। सम्प्रधार्यम्-अनुदात्तत्वं क्रियतां लित्स्वर इति, किमत्र कर्तव्यम्? परत्वाल्लित्स्वरः। नित्यमनुदात्तत्वम्। कृतेऽपि लित्स्वरे प्राप्नोति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अकृतेऽपि। तत्र नित्यत्वादनुदात्तत्वे कृते लिति पूर्वं उदात्तभावी नास्तीति कृत्वा यथाप्राप्तः प्रत्ययस्वरः प्रसज्येत। तद्यथा-'गोष्पदप्रं वृष्टो देवः'-इत्यूलोपे कृते पूर्वं उदात्तभावी नास्तीति कृत्वा यथाप्राप्तः प्रत्ययस्वरो भवति। तस्मात् त्रतसोरनुदात्तत्वं वक्तव्यम्। {एतदः}।

'अन्वादेशेऽश्' २.४.३२ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'अन्वादेशविषय में त्र तथा तस् प्रत्यय पर रहते एतद् को अश् आदेश हो तथा वह अनुदात्त हो'। जैसे 'एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः। अथोऽत्राऽधीमहे। अतो न गन्तारः स्मः।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'एतदस्त्रतसोः' इतना ही सूत्र रखिये। त्रल् तथा तसिल् यह दोनों ही लित् हैं; अतः प्रकृत में 'लिति' ६.१.१९३ के द्वारा लित् से पूर्व को उदात्तस्वर होने पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ के द्वारा त्रल् तथा तसिल् इन दोनों को अनुदात्त हो जायेगा। इस तरह पुनः यहाँ आचार्य त्रल् तथा तसिल् को अनुदात्तविधान क्यों करते हैं? जिज्ञासु आचार्य-**इदमिहेति**। 'अत्र' तथा 'अतः' में लित्स्वर तथा अश् को अनुदात्त यह दोनों प्राप्त हो रहा है; यहाँ पहले क्या करना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**परत्वादिति**। प्रकृतसूत्र की अपेक्षा 'लिति' ६.१.१९३ स्वर पर है, अतः पर होने से लित्स्वर होगा। अन्य आचार्य-**नित्यमिति**। अनुदात्त करने तथा नहीं करने पर भी प्रकृतसूत्र के द्वारा अनुदात्तत्व हो रहा है, अतः कृताकृतसम्बन्धी होने से लित्स्वर की अपेक्षा प्रकृत अनुदात्त नित्य है। नित्य से पर का बाध होता है; अतः प्रकृत अनुदात्तस्वर ही होगा। इस तरह अश् को अनुदात्त कर देने पर लित् के समीप में कोई भावी उदात्तस्वर नहीं है; अतः अपवाद का विषय नहीं होने से उत्सर्ग की अवश्यम्प्राप्ति होगी। इससे 'गोष्पदप्रं वृष्टो देवः' की तरह 'अत्र, अतः' में भी प्रत्ययस्वर ही होगा। यहाँ 'गोष्पदप्रम्' में 'वर्षप्रमाण ऊलोपश्चाऽस्याऽन्यतरस्याम्' ३.४.३२ के द्वारा णमुल् प्रत्यय तथा ऊलोप का एक साथ विधान है; अतः लित्स्वर नहीं होने से प्रत्ययस्वर के द्वारा आद्युदात्तत्व होने पर कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर के द्वारा अन्तोदात्त होता है। {एतद-}।

द्वितीयाटौस्स्वेनः २.४.३४

कस्याऽयमेनो विधीयते। एतदः प्राप्नोति। इदमोऽपि त्विष्यते। तदिदमो ग्रहणं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्तते। क्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृतम्? 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादा'विति। यदि तदनुवर्तते, 'एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्ता'विती'दमश्चे'तीदमोऽपि प्राप्नोति। नैष दोषः। सम्बन्धमनुवर्तते। 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ'। 'एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ'। इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीया-दावश् भवति। ततो 'द्वितीयाटौस्स्वेनः'। इदम एतदश्च। 'तृतीयादा'-विति निवृत्तम्।

सूत्रार्थ—'द्वितीयाविभक्ति, टा तथा ओस् पर रहते इदम् तथा एतद् शब्द को एन अन्वादेश हो'। जैसे 'अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय। अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूतं स्वम्। एनम्, एनौ, एनान्। एनेन, एनयोः'।

प्रश्नभाष्य—**कस्यायमिति**। यहाँ किसका अन्वादेश 'एन' कहा जा रहा है? **एतद इति**। एतद् को 'एन' अन्वादेश कहा जा रहा है; जब कि इदम् को अन्वादेश 'एन' इष्ट है जिसका प्रकृतसूत्र में निर्देश नहीं है; अतः उसका निर्देश करना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। प्रकृतसूत्र में इदम्पद स्थानी का निर्देश आवश्यक नहीं है। 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ' २.४.३२ में आचार्य 'इदमः' इस षष्ठ्यन्त का निर्देश करते हैं, उसी का अनुवर्तन हो जायेगा। आक्षेपक-**यदि तदिति**। यदि उक्त 'इदमः' २.४.३२ पद का अनुवर्तन करेंगे तो मध्य में 'एतदस्त्रतसो- स्त्रतसौ चानुदात्तौ' २.४.३३ के साथ भी उसका सम्बन्ध होने से 'त्र' और 'तस्' पर रहते इदम् को भी अश् आदेश होने लगेगा।

खण्डनभाष्य—**नैष दोष इति**। 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ' २.४.३२ के बाद 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' सूत्र का पाठ करेंगे तथा 'एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ' २.४.३३ से 'एतदः' का अपकर्षण करेंगे। इससे 'एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ' २.४.३३ में इदम् के अन्वय की आपत्ति नहीं होगी।

अथ वा मण्डूकगतयोऽधिकाराः। तद्यथा-मण्डूका उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छन्ति तद्वदधिकाराः। अथ वैकयोगः करिष्यते 'इदमोऽन्वादेशे-ऽशनुदात्तस्तृतीयादावेतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ'। ततो 'द्वितीया-टौस्स्वेनः'। इदम एतदश्च। 'तृतीयादा'विति निवृत्तम्। अथ वोभयं निवृत्तं तदपेक्षिष्यामहे *एनदिति नपुंसकैकवचने* **एनदिति नपुंसकैकवचने कर्त्तव्यम्। कुण्डमानय प्रक्षालयैनत्; परिवर्तयैनत्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य प्रकार से भी इसका समाधान करते हैं-**अथ वेति**। अधिकार **मण्डूक**=मेढक की गति के समान गति वाले होते हैं। जैसे मण्डूक कूद-कूद कर चलता है, मध्य की भूमि से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है; वैसे 'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ' २.४.३२ सूत्र से इदम्‌पद की अनुवृत्ति 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' सूत्र में होगी। मध्य का सूत्र 'एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ' २.४.३३ में 'इदमः' का संयोग नहीं होगा। अन्य प्रकार से भी 'इदमः'शब्द का मध्य में असम्बद्धता बताते हैं-**अथ वैकयोग इति**। अथ वा एकग्रहणक वाक्य मानेंगे। तीनों सूत्रों को एक सूत्र मान कर व्याख्या करेंगे। इससे यहाँ अपेक्षालक्षणलौकिक अधिकार का आश्रयण करेंगे, शास्त्रीय का नही। लक्ष्यवश समुदायविषया ही अपेक्षा होगी। 'द्वितीया, टा, ओस्' पर रहते इदम् और एतद् पद की अनुवृत्ति होगी, यहँ 'तृतीयादौ' पद की निवृत्ति हो जायेगी। अथ वा 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' सूत्र में इदम् और एतद् इन दोनों की निवृत्ति प्राप्त होने पर उसकी अनुवृत्ति की अपेक्षा करेंगे। वार्तिक-**एनदिति**। द्वितीया-एकवचन में एतद् का एनद् अन्वादेश कहना चाहिये। यदि यहाँ एनादेश करेंगे तो 'अतोऽम्' ७.१.२४ से अम्‌भाव करने पर 'एनम्' यह रूप प्राप्त होगा, जब कि 'एनत्' यह रूप इष्ट है; अतः वार्तिक का आरम्भ है। इस का उदाहरण देते हैं-**कुण्डमानयेति**।

यद्येनत् क्रियते एनो न वक्तव्यः। का रूपसिद्धिः-अथो एनम्, अथो एने, अथो एनानीति? त्यदाद्यत्वेन सिद्धम्। यद्येवमेनश्रितको न सिध्यति, एनच्छ्रितक इति प्राप्नोति। 'यथालक्षणमप्रयुक्ते'। {द्वितीयाटौ}।

आक्षेपक—**यद्येनदिति**। यदि एतद् को नपुंसक में द्वितीया-एकवचन में एनत् आदेश करते हैं तो एन आदेश नही करना चाहिये। अथ वा नपुंसक में एतद् को एन आदेश करने पर 'एनम्, एने, एनानि' रूप होगा। यहाँ आक्षेपक ने वस्तुतः वार्तिक का खण्डन किया है। वह इस तरह कि सूत्र में जो एन आदेश किया जा रहा है, उसके स्थान पर एनत् आदेश कीजिये। इससे पुल्लिङ्ग में तथा 'औ', 'शस्' पर रहते 'त्यदादीनामः' ७.२.१०२ से अत्त्व आदेश के द्वारा तकार की निवृत्ति हो जायेगी। द्वितीया-एकवचन में 'स्वमोर्नपुंसकात्' ७.१.२३ से अम् का लुक् हो जाने से सामर्थ्यात् अत्त्व रुक जायेगा; अतः नपुंसक द्वितीया-एकवचन में 'एनम्' रूप की आपत्ति नही होगी, अपि तु 'एनत्' रूप ही रहेगा। **यद्येवमिति**। यदि 'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग्बाधते' (परि.शे. ५४) के द्वारा त्यदाद्यत्व नही करके अम् का लुक् करेंगे तो 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ के द्वारा प्रत्ययलक्षण का निषेध होने से त्यदाद्यत्व नही होने पर 'एनच्छ्रितकः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप होगा, जब कि 'एनश्रितकः' रूप इष्ट है, जो सिद्ध नही हो पा रहा है। सिद्धान्ती-**यथालक्षणमिति**। जिनका प्रयोग प्राप्त नही है उनका संस्कार लक्षण के अनुसार करना चाहिये। यहाँ यदि 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ सूत्र में अङ्गाधिकार का निर्देश करते हैं, तब प्रत्ययलक्षण के द्वारा 'एनच्छ्रितकम्' रूप होगा। यदि अनङ्गाधिकार में विहित अङ्गकार्य का निषेध है तब आदेश नही होने से 'एनच्छ्रितकः' रूप होगा। वस्तुतः अप्रयुक्त होने से 'एनश्रितकः' यह लक्षण का विषय नही है, ऐसा श्रीनागेशजी का कहना है। {द्वितीया-}।

आर्द्धधातुके २.४.३५

* जग्ध्यादिष्वार्द्धधातुकाश्रयत्वात् सति तस्मिन् विधानम् * **जग्ध्यादिष्वार्द्धधातुकाश्रयत्वात् सति तस्मिन्नार्द्धधातुके जग्ध्यादिभिर्भवितव्यम्। किमतो यत्सति भवितव्यम्?** * तत्रोत्सर्गलक्षणप्रतिषेधः * **तत्रोत्सर्गलक्षणं कार्यं प्राप्नोति तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। भव्यं प्रवेयम् आख्येयमिति। ण्यत्यवस्थितेऽनिष्टे प्रत्यय आदेशः स्यात्। ण्यतः श्रवणं प्रसज्येत। नैष दोषः** * सामान्याश्रयत्वाद् विशेषस्याऽनाश्रयः * **सामान्ये ह्याश्रीयमाणे विशेषोऽनाश्रितो भवति। तत्रार्द्धधातुकसामान्ये जग्ध्यादिष्वादेशेषु कृतेषु यो यतः प्रत्ययः प्राप्नोति स ततो भविष्यति।**

पादसमाप्तिपर्यन्त इसका अधिकार है। वार्तिक-**जग्ध्यादिष्विति**। 'आर्द्धधातुके' यह परसप्तमी होने से निमित्त है; अतः आर्द्धधातुका- व्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट कार्यी होने से 'अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति' २.४.३६ इत्यादि आदेश आर्द्धधातुक 'ति, कित्' पर रहते ही होंगे।

प्रश्नभाष्य—**किमतो यदिति**। 'आर्द्धधातुक पर रहते जग्धि आदेश होंगे' यह कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तरभाष्य—**तत्रेति**। 'आर्द्धधातुक पर रहते कार्य हो' यह कहने पर जग्धि आदि आदेशों में दोष नही होने पर भी 'भव्यम्, प्रवेयम्, आख्येयम्' में दोष है। यहाँ भाष्य में उत्सर्गशब्द से स्थानी विवक्षित है। आदेश अपवाद से उसका बाध प्राप्त होगा, उसका निषेध कहना चाहिये। 'भव्यम्' में अस धा.पा.१०६५ धातु से ण्यत् प्रत्यय 'अस्तेर्भूः' २.४.५२ से उसको भू आदेश तथा अज गतिक्षेपणयोः धा.पा.२३० धातु को 'अजेर्व्यघञपोः' २.४.५६ से 'वि' आदेश है। 'आख्येयम्' में चक्षिङ् (चक्ष्) धा.पा.१०१७ धातु से ण्यत् प्रत्यय तथा प्रकृति को 'चक्षिङः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख्याञ्' २.४.५४ के द्वारा ख्याञ् आदेश है। यहाँ ण्यत् प्रत्यय पर रहते ही उक्त आदेश होंगे। यहाँ 'ऋहलोर्ण्यत्' ३.१.१२४ सर्वत्र हलन्तलक्षण ण्यत् प्रत्यय है। उसके पर रहते सर्वत्र उक्त आदेश होने पर पर में ण्यत् प्रत्यय के श्रवण की आपत्ति होगी। इससे ण्यत् के णित् होने से णिन्निमित्तक वृद्धि होकर 'भाव्यम्, प्रवैयम्' इत्यादि वृद्धिघटित अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**नैष दोष इति**। सामान्य का आश्रयण में विशेष का आश्रयण नही होता है। जब अस को भू, अज को वि तथा चक्ष् को ख्या आदेश करेंगे, तो अजन्त होने से हलन्तलक्षण ण्यत् की निवृत्ति हो जायेगी एवम् 'अचो यत्' ३.१.९७ से अजन्तलक्षण यत् प्रत्यय होगा। इस तरह यत् के णित् नहीं होने से 'भव्यम्' इत्यादि में वृद्धि की आपत्ति निरस्त हो गयी।

* सामान्याश्रयत्वाद् विशेषस्याऽनाश्रय इति चेदुवर्णाऽकारान्तेभ्यो ण्यद्विधिप्रसङ्गः * **सामान्याश्रयत्वाद् विशेषस्याऽनाश्रय इति चेदुवर्णाऽकारान्तेभ्यो ण्यत्प्राप्नोति। लव्यं पव्यमिति। आर्द्धधातुकसामान्ये गुणे कृते यि प्रत्ययसामान्ये च वान्तादेशे 'हलन्ता'दिति ण्यत् प्राप्नोति। इह च दित्स्यं धित्स्यम्। आर्द्धधातुकसामान्येऽकारलोपे कृते 'हलन्ता'दिति ण्यत् प्राप्नोति।**

आक्षेपभाष्य—**सामान्याश्रयत्वादिति**। यदि सामान्य का आश्रयण कर विशेष का वारण करेंगे तो उकारान्त और आकारान्त से पर में ण्यत् की आपत्ति होगी। उक्त दोष व्यक्तिपक्ष में दिया गया है। 'उकारान्तेभ्यः' के द्वारा भाष्यकार जातिपक्ष को दोषवान् बता रहे हैं। पूञ् पवने धा.पा.१४८३, लूञ् लवने धा.पा.१४८४ यह उवर्णान्त धातु है। इससे अजन्तलक्षण यत् प्रत्यय तथा 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः' ७.३.४८ से गुण, 'वान्तो यि प्रत्यये' ६.१.७९ से वान्तादेश होने पर 'लव्, पव्' यह हलन्त हो गया; अतः यहाँ पर विशेष अजन्तलक्षण यत् की निवृत्ति हो जायेगी तथा हलन्तलक्षण 'ऋहलोर्ण्यत्' ३.१.१२४ से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त होगा। 'अत उपधायाः' ७.२.११६ से उपधा को णिन्निमित्तक वृद्धि होगी, इससे 'लाव्यम्, पाव्यम्' इस अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी। 'दित्स्यम्, धित्स्यम्' में सन्नन्त से अजन्तलक्षण यत् प्रत्यय तथा यत्प्रत्ययनिमित्तक सन्घटक अकार का लोप है। इस तरह 'दित्स्, धित्स्' यह हलन्त हो गया, अतः यहाँ अजन्तलक्षण सामान्य यत् की निवृत्ति हो जायेगी तथा हलन्तलक्षण विशेष ण्यत् प्रत्यय प्राप्त होगा। 'दित्स्यम्, धित्स्यम्' में यत्प्रत्यय होने पर 'यतोऽनावः' ६.१.२१३ से आद्युदात्त होता है। परन्तु जब ण्यत्प्रत्यय करेंगे तब 'तित्स्वरितम्' ६.१.१८५ के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरितत्व होगा, यह स्वर में भेद है।

* पौर्वापर्याऽभावाच्च सामान्येनाऽनुपपत्तिः * **पौर्वापर्याऽभावाच्च सामान्येन जग्ध्यादीनामनुपपत्तिः। न हि सामान्येन पौर्वापर्यमस्ति** * सिद्धं तु सार्वधातुके प्रतिषेधात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'सार्वधातुके प्रतिषेधात्'। अविशेषेण जग्ध्यादीनुक्त्वा 'सार्वधातुके ने'ति प्रतिषेधं वक्ष्यामि। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते।**

अब भाष्यकार आकृतिपक्षाश्रयण को भी असम्भव बता रहे हैं-**पौर्वापर्याभावादिति**। 'अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति' २.४.३६ से ल्यप् तथा तादि कित् पर रहते अद भक्षणे धा.पा.1011 धातु को जग्धि आदेश है। आदेश होने पर सामान्य अद के साथ प्रत्यय का पौर्वापर्य नही रहेगा; अतः अद आदि को जग्धि आदि आदेश नहीं हो सकेंगे। सामान्य व्यापक तथा नित्य होता है; अतः देशकृत तथा कालकृत पौर्वापर्य नही है। यहाँ सप्तमी का परत्व प्रतिपादित है; अतः उपपत्ति के लिए व्यक्तिपक्ष का आश्रयण करना चाहिये। इस पक्ष में भी 'भव्यम्' इत्यादि की असिद्धि होगी। 'आर्द्धधातुके' में जातिपक्ष में मात्र सप्तमी का परत्व लिया जायेगा। वह सार्वधातुक पर रहते भी है; अतः सार्वधातुक पर रहते भी अद को जग्धि आदेश प्राप्त हो रहा है, यह भाष्य का आशय है। इसका वारण करते हैं-**सिद्धं त्विति**। 'आर्द्धधातुके' में जातिपक्ष मानने पर जो अद को जग्धि आदेश प्राप्त हो रहा है उसका वारण के लिए 'सार्वधातुके न' ऐसा प्रतिषेधवचन का आरम्भ करेंगे। इससे सार्वधातुक पर रहते अद को जग्धि आदि आदेश की आपत्ति नहीं होगी। आक्षेपक-**सिध्यतीति**। 'सार्वधातुके न' इस प्रतिषेधवचन का आरम्भ करने पर लक्ष्य सिद्ध हो जा रहा है तथा दोष का मार्जन भी हो जा रहा है। परन्तु सूत्रभेदरूपदोष स्पष्ट है।

यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं-'जग्ध्यादिष्वार्द्धधातुकाश्रयत्वात् सति तस्मिन् विधान'मिति। परिहृतमेतत् 'सामान्याश्रयत्वाद् विशेषस्याविशेषस्याऽनाश्रय' इति। ननु चोक्तं-'सामान्याश्रयत्वाद् विशेषस्याऽनाश्रय इति चेदुवर्णाऽकारान्तेभ्यो ण्यद्विधिप्रसङ्ग' इति। नैष दोषः। वक्ष्यति तत्राऽज्ग्रहणस्य प्रयोजनम्-'अजन्तभूतपूर्वमात्रादपि यथा स्या'दिति।

अब सूत्र के यथान्यासपक्ष में ही दोष का वारण करते हैं—**यथान्यासमिति**। आप सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। इस पक्ष में 'जग्ध्यादिष्वार्द्धधातुकाश्रयत्वात् सति तस्मिन् विधानम्' यह दोष दिया था, इसका परिहारवचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'सामान्याश्रयत्वाद् विशेषस्याऽनाश्रयः' दिया जा चुका है। इस समाधान पर उवर्णान्त तथा आकारान्त को आदेश होने पर ण्यत् की आपत्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि 'अचो यत्' ३.१.८७ सूत्र पर आचार्य अज्ग्रहण का प्रयोजन बतायेंगे–अच् से यत् हो तथा अजन्तभूत पूर्वमात्र से भी यत् हो'। इससे 'भव्यम्' आदि में सम्प्रति अजन्तत्व के द्वारा आदेश के बाद भी यत्प्रत्यय रहेगा। एवं 'लव्यम्, पव्यम्' में सम्प्रति हलन्तत्व रहने पर भी भूतपूर्व अजन्तत्व के द्वारा यत्प्रत्यय ही होगा, ण्यत् नहीं।

यदप्युच्यते-'पौर्वापर्याऽभावाच्च सामान्येनाऽनुपपत्ति'रिति। अर्थसिद्धि रेवैषा यत्सामान्येन पौर्वापर्यं नास्ति। असति पौर्वापर्ये विषयसप्तमी विज्ञास्यते- 'आर्द्धधातुके विषये' इति। तत्राऽऽर्द्धधातुके विषये जग्ध्यादिषु कृतेषु यो यतः प्राप्नोति स ततो भविष्यति। अथ वा आर्द्धधातुकास्विति वक्ष्यामि। कास्वार्द्धधातुकासु? उक्तिषु युक्तिषु रूढिषु प्रतीतिषु श्रुतिषु संज्ञासु। {आर्द्धधातुके}।

जातिपक्ष में 'पौर्वापर्याऽभावाच्च सामान्येनाऽनुपपत्तिः' यह दोष दिया था, वह भी नहीं रहेगा। वह इस तरह कि 'सामान्य के साथ पौर्वापर्य न हो, यही हमारी प्रयोजनसम्पत्ति है'। सामान्य के साथ पौर्वापर्य नही होने से 'आर्द्धधातुके' में विषयसप्तमी मानेंगे। अर्थ होगा-'आर्द्धधातुक के विषय में वक्ष्यमाण आदेश हों'। इस तरह आर्द्धधातुकत्वबुद्धि होने पर अद आदि के स्थान में जग्धि आदि जो आदेश जहाँ प्राप्त होगा वहाँ हो जायेगा। इस तरह जातिपक्ष में दोष का वारण कर अब व्यक्तिपक्ष में भी दोष का वारण करते हैं-**अथ वेति**। प्रकृत में 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ से अच्प्रत्ययान्त आर्द्धधातुकशब्द का निर्देश है। इससे 'आर्द्धधातुकं विद्यते यासु तासु ताः' ऐसा भव्य आदि आर्द्धधातुकावयवक शब्दसंहति विवक्षित है। नित्य भव्य आदि शब्दों का साधुत्वमात्रप्रतिपादन शास्त्र के द्वारा बताया जा रहा है; अतः जो नित्यशब्दसंहति है उसी का साधुत्वबोध कराने के लिए शास्त्र की प्रवृत्ति इष्ट में ही होगी, अनिष्ट में नहीं। नित्यशब्दसंहति किस-किस में मिलती है, इसे स्पष्ट करते हैं-**उक्तिष्विति**। **उच्यन्ते**= उच्चार्यन्ते इति उक्तयः' जिसका उच्चारण किया जाये वह उक्ति ही शब्दसंहति है। अथ वा उच समवाये धा.पा.१२२३ धातु से क्तिन् कर उक्तिशब्द का प्रयोग है, इससे प्रकृतिप्रत्ययसमवाय ही संहति है, यह आया। **युक्तिषु**=अर्थ के साथ सम्बद्ध शब्दसंहति है। **रूढिषु**=परमार्थ नित्यों में शब्दसंहति है। **प्रतीतिषु**=प्रतीति में शब्दसंहति है। इसके द्वारा भाष्यकार नित्यशब्दों में भी व्यवहार की अनित्यता बताते हैं। इसी को पुनः स्पष्ट करते हैं-**श्रुतिष्विति**। श्रुति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और संहितायें शब्दसंहति हैं। व्यवहार में श्रुति का ही श्रवण होता है। बालव्युत्पत्ति के लिए नित्यशब्दों का भी प्रकृतिप्रत्ययविभागपूर्वक संज्ञायें की जाती हैं। इस तरह 'आर्द्धधातुके' की सप्तमी 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' २.३.३७ की सप्तमी है। इस तरह उत्तरसूत्रों में अधिकार होने से अर्थ होगा-शब्दसंहतिासु संहतिषु व्युत्पद्यमानासु अरत्यादीनां भ्वादय आदेशाः स्युः'। {आर्द्धधातुके}।

अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति २.४.३६

ल्यब्ग्रहणं किमर्थम्? न 'ति किती'त्येव सिद्धम्। ल्यपि कृते न प्राप्नोति। इदमिह सम्प्रधार्यं-ल्यप् क्रियतामादेश इति किमत्र कर्तव्यम्? परत्वाल्ल्यप्। अन्तरङ्ग आदेशः। एवं तर्हि सिद्धे सति यल्ल्यब्ग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः-'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब्बाधते' इति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'ल्यबादेश उपदेशिवद्वचनमनादिष्टार्थं बहिरङ्गलक्षणत्वा'दिति वक्ष्यति, तन्न वक्तव्यं भवति।

सूत्रार्थ—'ल्यप् तथा तादि कित् पर रहते अद धा.पा.१०११ धातु को जग्ध् आदेश हो'। जग्ध्वा। जग्धः।

प्रश्नभाष्य—**ल्यब्ग्रहणमिति**। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७.१.३७ के द्वारा क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है। 'प्र अद् क्त्वा' इस दशा में अनुबन्धलोप होने पर तादि कित् 'क्त्वा' पर रहते अद को जग्धि आदेश हो जायेगा तथा बाद में क्त्वा को ल्यबादेश होने पर 'प्रजग्ध्य' आदि की सिद्धि हो जायेगी। इस तरह प्रकृतसूत्र में जब ल्यब्ग्रहण के अभाव में भी अद को जग्धि आदेश हो रहा है तब इसी के लिए ल्यब्ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**ल्यपि कृते नेति**। उक्त स्थिति में क्त्वा को ल्यबादेश कर देने पर 'य' यह तादि कित् नहीं है; अतः यहाँ अद को जग्धि आदेश प्राप्त नहीं हो पा रहा है; अतः जग्धि आदेशविधान के लिए ल्यब्ग्रहण किया है। आक्षेपक-**इदमिहेति**। 'प्र अद् क्त्वा' इस दशा में क्त्वा को ल्यप् तथा अद को जग्धि आदेश यह दोनों आदेश एक साथ प्राप्त हो रहा है; अतः यहाँ विचार करना चाहिये-'पहले ल्यबादेश आदेश हो, अथ वा जग्धि आदेश हो'?

उत्तरभाष्य—**परत्वादिति**। 'अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति' की अपेक्षा 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७.१.३७ पर है; अतः परत्वात् पहले ल्यप् आदेश होगा। आक्षेपक-**अन्तरङ्ग इति**। तकारादिप्रत्ययमात्र की अपेक्षा करने से जग्धि आदेश अन्तरङ्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। परन्तु पूर्वपदापेक्ष समासाश्रय होने पर ल्यबादेश बहिरङ्ग है। अतः बहिरङ्ग ल्यबादेश की अपेक्षा अन्तरङ्ग जग्धि आदेश की ही पहले प्रवृत्ति होगी। ज्ञापनवादी-**एवं तर्हीति**। ल्यब्ग्रहण के अभाव में अन्तरङ्ग जग्धि आदेश होकर इष्ट रूप सिद्ध हो जा रहा है, इस तरह अकरणीय ल्यप् का ग्रहण कर आचार्य बताते हैं कि-'ल्यप् बहिरङ्ग होकर भी अन्तरङ्गविधि का बाध करता है'। जिज्ञासु आचार्य-**किमेतस्येति**। 'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब्बाधते' इस ज्ञापन का क्या प्रयोजन है? प्रयोजनवादी-**ल्यबादेश इति**। 'प्रधाय' में 'दधातेर्हिः' ७.४.४२ का वारण के लिए तथा 'प्रस्थाय' में 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' ६.४.६६ का वारण के लिए 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७.१.३७ सूत्र पर आचार्य ल्यबादेश-विधि में उपदेशिवद्वचन का ग्रहण कर उपदेशावस्था में ही ल्यबादेश कहेंगे जो प्रकृत ज्ञापन से नहीं कहना पडता है, यह लाघव है।

जग्धिविधिर्ल्यपि यत्तदकस्मात्, सिद्धमदस्ति कितीति विधानात्।
हिप्रभृतींस्तु सदा बहिरङ्गो, ल्यब्भरतीति कृतं तदु विद्धि।।१।।

एष एवाऽर्थः—

जग्धौ सिद्धेऽन्तरङ्गत्वात्, ति कितीति ल्यबुच्यते।
ज्ञापयत्यन्तरङ्गाणां ल्यपा भवति बाधनम्।।१।।

उपर भाष्य में जो विषय कह आये हैं उन्हीं को कारिका के रूप में व्याघ्रभूति ने भी स्पष्ट किया है, उसे दिखाते हैं—

जग्धिविधिरिति। तादि कित् पर रहते अद को जग्धि आदेश क्त्वा पर रहते भी सिद्ध होने से ल्यब्ग्रहण **अकस्मात्**=निष्प्रयोजन है तथा **सिद्धमदः**=जग्धिविधान सिद्ध हो जा रहा है। ल्यब्ग्रहण ज्ञापनार्थ है। इससे 'दधातेर्हिः' ७.४.४२ इत्यादि में बहिरङ्ग ल्यबादेश के पहले प्रवृत्त होने से ही 'प्रधाय, प्रस्थाय' इत्यादि में हित्व आदि की आपत्ति निरस्त हो जाती है। यहाँ ल्यबादेश से अन्तरङ्ग 'हि' आदेश का बाध हो जाता है, इसे बताते हैं-**ल्यब्भरतीति**। 'तदु' में 'उ' शब्द निपात अवधारणार्थक है; अतः 'तद् विद्धि एव' ऐसा अर्थ होगा। इसी अर्थ को अन्य कारिका से भी स्पष्ट करते हैं-**जग्धौ सिद्धे इति**। {अदो-}।

लुङ्सनोर्घस्लृ २.४.३७

*** घस्लृभावेऽच्युपसङ्ख्यानम् *** **घस्लृभावेऽच्युपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्**। **प्रात्तीति प्रघसः इति**। {लुङ्सनो}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति' २.४.३६ से 'अदः' षष्ठ्यन्तवचन स्थानी की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'लुङ् तथा सन् पर रहते अद को घस्लृ आदेश हो'। लुङ्-अघसत्। सन्-जिघत्सति।

वार्तिक—**घस्लृभावेऽपीति**। 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' ३.१.१३४ से कर्त्रर्थक अच् पर रहते भी अद को घस्लृ आदेश कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-**प्रात्तीतीति**। {लुङ्-}।

हनो वध लिङि २.४.४२

लुङि च २.४.४३

किमयं वधिर्व्यञ्जनान्तः, आहो स्विददन्तः? किं चातः? यदि व्यञ्जनान्तः * वधौ व्यञ्जनान्त उक्तम् * **वधौ व्यञ्जनान्त उक्तम्। किमुक्तम्? 'वध्यादेशे वृद्धितत्वप्रतिषेध इड्विधिश्चे'ति। अथाऽदन्तो न दोषो भवति। यथा न दोषस्तथाऽस्तु।** {हनो वध}।

सूत्रार्थ—'आर्द्धधातुक लिङ् पर रहते हन को वध आदेश हो'। वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासुः। २.४.४२।

'लुङ् पर रहते हन को वध आदेश हो'। अवधीत्। अवधिष्टाम्। अवधिषुः। २.४.४३।

प्रश्नभाष्य—**किमयमिति**। यहाँ हन को वध आदेश अदन्त है, अथ वा हलन्त है, यहाँ अकार का उच्चारण कार्यार्थ है, अथ वा उच्चारणार्थ है? यह प्रश्न है। यदि अकार को उच्चारणार्थ मानेंगे तो आदेश हलन्त होगा। हलन्तआदेशपक्ष में 'अवधीत्' में 'अतो हलादेर्लघोः' ७.२.७ से हलन्तलक्षणवृद्धि प्राप्त होगी, एवं 'वधकः' में ण्वुल् पर रहते 'आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्' २.४.४४ से वधादेश होने पर 'अत उपधायाः' ७.२.११६ से उपधावृद्धि प्राप्त होगी जिसका 'जनिवध्योश्च' ७.३.३५ से निषेध होता है। 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' १.१.५५ सूत्र पर आचार्य ने 'वध्यादेशे वृद्धितत्वप्रतिषेधः' ऐसा कहा है। 'वधकम्' में स्थानिवद्भाव के द्वारा आदेश वध में स्थानिवृत्ति हन्त्वधर्म का अतिदेश कर तत्व तथा उपधा को वृद्धि भी प्राप्त है। 'अवधीत्' इत्यादि में स्थानिवद्भाव के द्वारा स्थानिवृत्ति एकाच्त्व का अतिदेश कर 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' ७.२.१० से इड्निषेध प्राप्त है, इसका प्रतिषेध कर 'इड्विधिश्च' ऐसा भी स्थानिवत्सूत्र पर कहा है। इस तरह व्यञ्जनान्तपक्ष में दोष का वारण कर दिया है। यदि आदेश को 'वध' यह अदन्त मान लें तब 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५६ से अल्लोप के स्थानिवत् होने से उपधावृद्धि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होगी। एवं तादेशपक्ष में भी 'हनस्तोऽचिण्णलोः' ७.३.३२ में 'हनः' यह षष्ठीनिर्देश है, अतः 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ के द्वारा अन्त्य अल् को ही तादेश प्राप्त होगा, अन्त्य अल् धकार नहीं हो रहा है; अतः अदन्तपक्ष में भी उसको तादेश की आपत्ति नहीं है। हलन्तादेशपक्ष में दोष है जिसका वारण 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' १.१.५५ सूत्र पर किया जा चुका है। अदन्तादेशपक्ष में कोई दोष प्राप्त नहीं है, अतः आदेश को अदन्त ही मानना चाहिये। {लुङि-}।

इणो गा लुङि २.४.४५

*** इण्वदिकः * इण्वदिक इति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्- अध्यगात्। अध्यगाताम्। अध्यगुः। {इणो गा}।**

सूत्रार्थ—'इण् गतौ धा.पा.१०४५ धातु को लुङ् पर रहते गा आदेश हो'। अगात्। अगाताम्। अगुः।

वार्तिक-**इण्वदिक इति**। इक स्मरणे धा.पा.१०४७ धातु को इण्वद् अतिदेश कहना चाहिये। इससे लुङ् पर रहते इक को भी गा आदेश होकर 'अध्यगात्, अध्यगात्, अध्यगुः' की सिद्धि हो जायेगी। {इणो गा}।

णौ गमिरबोधने २.४.४६

'इण्वदिक' इत्येव। अधिगमयति। अधिगमयतः। अधिगमयन्ति।

वार्तिक—**इण्वदिक इति**। णिच् पर रहते इक स्मरणे धा.पा.१०४७ धातु को इण्वद् अतिदेश कहना चाहिये। इससे जैसे इण् को आदेश होता है वैसे अबोधन अर्थ गम्य होने पर इक को भी गम् आदेश हो जायेगा। इसका उदाहरण देते हैं-'अधिगमयति' इत्यादि। {णौ गमिरबोधने}।

सनि च २.४.४७

'इण्वदिक' इत्येव। अधिजिगमिषति। अधिजिगमिषतः। अधिजिगमिषन्ति। {सनि च}।

वार्तिक—**इण्वदिक इत्येव**। इक स्मरणे धा.पा.१०४७ धातु को इण्वद् अतिदेश कहना चाहिये। इससे सन् पर रहते इक धातु को भी गम् आदेश होगा। इसका उदाहरण देते हैं-अधिजिगमिषति' इत्यादि। {सनि च}।

गाङ्लिटि २.४.४९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङित्करणं किमर्थम्? * गाङ्यनुबन्धकरणं विशेषणार्थम् * **गाङ्यनुबन्धकरणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'विशेषणार्थम्'। क्व विशेषणार्थेनाऽर्थः?** 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङि'दिति। **गाकुटादिभ्योऽञ्णिन्ङि'दितीयत्युच्यमाने इणादेशस्यापि प्रसज्येत** * ज्ञापकं वा सानुबन्धकस्यादेशवचन इत्कार्याऽभावस्य * **अथ वैतज्ज्ञापयत्याचार्यः-'सानुबन्धकस्यादेशे इत्कार्यं न भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्?** * प्रयोजनं चक्षिङः ख्याञ् * **चक्षिङः ख्याञ् प्रयोजनं-चख्यौ ख्यास्यतीति। 'ङित' इत्यात्मनेपदं नित्यं न भवति।**

'इङश्च' २.४.४८ से स्थानिवचन 'इङः' की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'लिट् पर रहते इङ् अध्ययने धा.पा.१०४६ धातु को गाङ् आदेश हो'। अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे।

प्रश्नभाष्य—**ङित्करणमिति**। स्थानी इङ् ङित् है। स्थानिवद्भाव के द्वारा स्थानिवृत्ति ङित्त्व का आदेश में अतिदेश होगा, फिर उसी से आदेश को ङिल्लक्षण आत्मनेपद हो जाता, इस तरह आत्मनेपद सिद्ध था, फिर आचार्य यहाँ आदेश को ङित् क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**विशेषणार्थमिति**। आदेशकोटि में ङकार इत्संज्ञक नहीं रहने पर मात्र 'गा' इतना ही निर्देश करना होता। इससे 'इणो गा लुङि' २.४.४५ से विहित 'गा' तथा प्रकृतसूत्र से विहित 'गा' यह दोनों एक होते। इन दोनों में कोई भेदक नहीं होता, अतः दोनों में भेद स्पष्ट करने के लिए आचार्य प्रकृत आदेश को ङकार इत्संज्ञक पढते हैं। इससे 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्' १.२.१ ङकार इत्संज्ञक इङ्स्थानिक आदेश गाङ् ही लिया जाता है। यदि प्रकृत आदेश ङित् नही करते तो उक्त सूत्र 'गाकुटादिभ्यः-' ऐसा पढना पडता, जिससे इण्स्थानिक गादेश का भी ग्रहण होता। इससे 'अगासातां ग्रामौ देवदत्तेन' इत्यादि में ङित् होने से 'ईत्त्व की आपत्ति होती है। परन्तु 'गाङ्कुटादिभ्यः-' १.२.१ ऐसा कहने से इसी का ग्रहण होता है, गत्यर्थक गा का नहीं। ङित्करण का अन्य फल भी बताते हैं-**अथ वैतदिति**। जहाँ सानुबन्धक से षष्ठी का उच्चारण है वहाँ इत्संज्ञा से पूर्व ही आदेश होगा। अथ वा यदि आदेश ये पूर्व इत्संज्ञा कर भी दी गयी तो 'इत्संज्ञानिमित्तक कार्य नही होंगे' यह ज्ञापन के लिए ङकार का उच्चारण है। इस ज्ञापन का प्रयोजन बताते हैं-**प्रयोजनमिति**। चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि धा.पा.१०१७ धातु ङकार-इत्संज्ञक होने से नित्य आत्मनेपदी है। उसको 'चक्षिङः ख्याञ्' २.४.५४ के द्वारा ञकार-इत्संज्ञक आदेश किया जा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा है। यहाँ स्थानी ङकार इत्संज्ञानिमित्तक नित्य आत्मनेपद नहीं होता है; इससे लिट् परस्मैपद में 'चख्यौ', लृट् परस्मैपद में 'ख्यास्यति' इत्यादि भी सिद्ध हो जाते हैं।

* लटः शतृशानचौ * **लटः शतृशानचौ प्रयोजनम्। पचमानो यजमान इति। 'टित' इत्येत्वं न भवति** * युवोरनाकौ * **युवोरनाकौ च प्रयोजनम्। नन्दनः। कारकः। नन्दना। कारिकेति। उगिल्लक्षणौ ङीब्नुमौ न भवतः** * मेश्चाननुबन्धकस्याऽम्वचनम् * **मेश्चाननुबन्धकस्याऽम्वक्तव्यः। अचिनवम्। अकरवम्। असुनवम्।**

इस ज्ञापन का अन्यत्र भी प्रयोजन देते हैं—**लटः शतृशानचाविति**। 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' ३.२.१२४ के द्वारा लट् को शानच् आदेश है। लट् टित् है, अतः 'टित आत्मनेपदानां टेरे' ३.४.७९ से 'पचमानः' आदि में एत्व प्राप्त हो रहा है जो उक्त ज्ञापन से निरस्त हो जाता है। शतृ प्रत्यय परस्मैपदी है; अतः उससे टित् को एत्व की आपत्ति नहीं है, फिर भी उक्त सूत्र में सहनिर्देश होने से यहाँ भी सहनिर्देश किया गया है। उक्त ज्ञापन का अन्यत्र भी प्रयोजन देते हैं-**युवोरनाकाविति**। 'कारकः, कारिका' में 'वु' को अक, तथा 'नन्दनः, नन्दना' में 'यु' को 'अन' आदेश है। वस्तुतः यहाँ अनुनासिक होने से 'उँ' की इत्संज्ञा और लोप है तथा व्यञ्जनमात्र को आदेश है। इस तरह यहाँ स्थानी उगित् है; अतः 'नन्दनः' इत्यादि में 'उगितश्च' ४.१.६ से ङीप् तथा 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' ७.१.७० से नुम् की आपत्ति हो रही है जिसका वारण उक्त ज्ञापन से होता है। इस ज्ञापन में कुछ दोष भी है उसे अतिव्याप्तिरूप से दिखाते हैं-**मेश्चानुबन्धकस्येति**। 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' ३.४.१०१ के द्वारा ङित्स्थानिक मिप् को अम् आदेश होता है। स्थानिवृत्ति पित्त्व का आदेश में अतिदेश होने पर अम् पित् हो रहा है, अपित् सार्वधातुक ही ङिद्वद् होता है; अम् पित् हो गया, अतः ङित् नहीं होने से 'अचिनवम्, अकरवम्, असुनवम्' में गुणकार्य होता है। अब जब आप 'सानुबन्धकस्यादेश इत्कार्य न भवति' ज्ञापन कर रहे हैं तो इस ज्ञापन से आदेश अम् अपित् होगा; अतः अम् को ङिद्वद् अतिदेश होने से 'अचिनवम्' इत्यादि में 'क्ङिति' च' १.१.५ यह गुणप्रतिषेध होगा।

अत्यल्पमिदमुच्यते-'मे'रिति। 'तिप्सिम्मिपा'मिति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-वेद वेत्थ। अस्य ज्ञापकस्य सन्ति दोषाः। सन्ति प्रयोजनानि। समा दोषा भूयांसो वा। तस्मान्नाऽर्थोऽनेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञापकेन। कथं यानि प्रयोजनानि? नैतानि सन्ति। इह तावत् 'चक्षिङः ख्या'ञिति। ञित्करणसामर्थ्याद्विभाषाऽऽत्मनेपदं भविष्यति। 'लटः शतृशानचा'विति। वक्ष्यत्येतत्-'प्रकृतानामात्मनेपदानां टेरेत्वं भवती'ति। 'युवोरनाका'विति। वक्ष्यत्येतत्-'सिद्धं तु युवोरनुनासिकत्वा'दिति। {गाङ्}।

अन्य आचार्य—**अत्यल्पमिदमिति**। मात्र मिप् को अमादेशपक्ष में जो दोष दिया वह अल्प है। तिप्, सिप् और मिप् इन तीनों का आदेशपक्ष में उक्त दोष होगा। इससे विद ज्ञाने धा.पा.१०६४ धातु से लट् में तिपादि होने पर 'विदो लटो वा' ३.४.८३ से तिप् आदि को णल् आदि आदेश प्राप्त हैं; अतः तिप् को णल्, सिप् को थल् तथा मिप् को णल् आदेश भी अपित् होने से ङिद्वद् होगा। इस तरह क्रमशः प्रथम, मध्यम तथा उत्तमपुरुष एकवचन में 'वेद, वेत्थ, वेद' में 'क्ङिति च' १.१.५ के द्वारा लघूपधगुण का निषेध की आपत्ति हो रही है। इतर आचार्य-**अस्येति**। 'सानुबन्धकस्यादेशे इत्कार्यं न भवति' इस ज्ञापन में कुछ दोष है तथा कुछ प्रयोजन भी इससे सिद्ध होते हैं। इसके दोष भी बहुत हैं; अतः यह ज्ञापन नहीं करना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। यदि यह ज्ञापन नहीं करेंगे तो इसका जो प्रयोजन है वह कैसे सिद्ध होगा?

उत्तरभाष्य—**नैतानीति**। इस ज्ञापन का जो प्रयोजन बताया है वह वस्तुतः इस ज्ञापन का प्रयोजन नहीं है। चक्षिङ् को ख्याञ् ऐसा ञित् आदेश किया जा रहा है; अतः 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' १.३.७२ से ख्याञ् उभयपदी होगा। इससे 'चख्यौ, ख्यास्यति' इत्यादि में परस्मैपद भी हो जायेगा। रही वात 'पचमानः, यजमानः' में टि को एत्व की, उसकी भी निवृत्ति इस तरह होगी कि 'तिप्-तस्-झि-' ३.४.७८ इत्यादि में जो आत्मनेपद तङ् हैं उन्ही के टि को एत्व होगा। अन्य आत्मनेपद को नही होने से 'पचमानः' आदि में एत्व की आपत्ति नही है। उक्त ज्ञापन का 'नन्दन'' आदि भी प्रयोजन नहीं है। इसे आचार्य 'युवोरनकौ' ७.१.१ सूत्र पर 'यु, वु' में 'उ'वर्ण को अनुनासिक होने से निवृत्ति बतायेंगे तथा मात्र अनुनासिक यूँ को अन तथा अनुनासिक वूँ को अक आदेश करेंगे। इससे यहाँ आदेश अन तथा अक स्थानिवद्भाव के द्वारा उगित् नही हो रहा है। {गाङ् लिटि}।

चक्षिङः ख्याञ् २.४.५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किमयं क्शादिः, आहो स्वित् ख्यादिः * चक्षिङः क्शाङ्ख्याञौ * **चक्षिङः क्शाङ्ख्याञिति क्शादिश्च ख्यादिश्च** * ख्शादिर्वा * **अथ वा ख्शादिर्भविष्यति। केनेदानीं क्शादिर्भविष्यति? चर्त्वेन। अथ ख्यादिः कथम्?** * असिद्धे शस्य यवचनं विभाषा * **असिद्धे शस्य विभाषा यत्वं वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्?**

'आर्द्धधातुके' २.४.३५ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'आर्द्धधातुक पर रहते चक्षिङ् धा.पा.१०१७ धातु को ख्याञ् आदेश हो'।

'चक्शौ' तथा 'चख्यौ' यह दो प्रकार का रूप देखा जाता है; अतः शङ्का हो रही है कि यहाँ आदेश ककार-शकारादि है, अथ वा खकार-शकारादि है; इस आशङ्का से प्रश्न करते हैं-**किमयमिति**। यदि यहाँ एकतर आदेश का आश्रयण किया जाये तो इतर की असिद्धि हो रही है; अतः पूर्वपक्ष है।

उत्तरभाष्य—**चक्षिङ इति**। चक्षिङ् को ककार-शकारादि तथा खकार-शकारादि यह दोनों आदेश है। वार्तिक-**ख्शादिर्वेति**। अथ वा चक्षिङ् को ककार-शकारादि आदेश होगा। जिज्ञासु-**केनेदानीमिति**। यदि चक्षिङ् को ख्शाञ् आदेश करेंगे तो ख् को क् आदेश किससे होगा?

उत्तरभाष्य—**चर्त्वेनेति**। 'खरि च' ८.४.५५ के द्वारा खर् शकार पर रहते झल् खकार को चर्त्व होकर क् आदेश होगा।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। ख्याञ् आदेश होने पर चर्त्व के द्वारा ख् को क् आदेश कर रहे हैं। परन्तु यदि आदेश ख्याञ् करेंगे, तब यहाँ पर में खर् नही है; फिर ख् को क् आदेश कैसे करेंगे?

उत्तरभाष्य—**असिद्धे शस्येति**। 'पूर्वत्रासिद्धम्' ८.२.१ के अधिकार में णत्वविधान के अनन्तर श को विकल्प से यत्वविधान करना चाहिये। वहाँ पूर्व के प्रति यत्व को असिद्ध होने से य को निमित्त मान कर कोई कार्य नही होगा। परन्तु शकारनिमित्तक कार्य होगा। चर्त्व की कर्तव्यता में यत्व सिद्ध होता है; अतः ख् को चर्त्व नहीं होने से आख्याता इत्यादि सिद्ध हो जाते हैं।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। असिद्धप्रकरण में श को य-विधान करने का क्या प्रयोजन है?

* प्रयोजनं सौप्रख्येऽवुञ्विधिः * **सौप्रख्य इति योपधलक्षणो वुञ्विधिर्न भवति। सौप्रख्यीय इति। 'वृद्धाच्छ' इति च्छो भवति** * निष्ठा-नत्वमाख्याते * **आख्यात इति निष्ठानत्वं न भवति** * रुविधिः पुंख्याने *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुंख्यानमिति रुविधिर्न भवति * णत्वं पर्याख्याने * 'पर्याख्यान'मिति णत्वं न भवति * सस्थानत्वं नमः ख्यात्रे * नमः ख्यात्र इति सस्थानत्वं न भवति * वर्जने प्रतिषेधः * वर्जने प्रतिषेधो वक्तव्यः। अवसंचक्ष्याः। परिसंचक्ष्याः * असनयोश्च * असनयोश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः। नृचक्षा रक्षः। विचक्षण इति।

ख्शाञ्आदेशवादी—**प्रयोजनमिति**। यदि ख्याञ् आदेश करेंगे तो सौप्रख्य में 'धन्वयोपधाद् वुञ्' ४.१.१२१ के द्वारा योपधलक्षण वुञ् की आपत्ति होती है; जब कि श को य आदेश करने पर सपादसप्ताध्यायी 'धन्वयोपधाद् वुञ्' ४.१.१२१ की दृष्टि में त्रिपादी य आदेश असिद्ध होता है; अतः 'सौप्रख्यः' में योपधलक्षण वुञ् की आपत्ति नहीं रहती है। 'सुप्रचष्टे इति सुप्रख्यः' में 'आतश्चोपसर्गे' ३.१.१३६ से क प्रत्यय है। 'सुप्रख्येन निर्वत्तो देशः सौप्रख्यस्तत्र भवः सौप्रख्यीयः' में वुञ् के अभाव में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ की प्रवृत्ति होती है। शकार को यकार आदेश का अन्य भी फल देते हैं-**निष्ठानत्वमिति**। 'आख्यातः' इस निष्ठान्तप्रयोग में यत्व के असिद्ध होने से निष्ठा के तकार को 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' ८.२.४३ से होने वाला नकारादेश रुक जाता है। यहाँ आचार्य 'न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम्' ८.२.५७ इस निषेध में प्रतिपदोक्त ख्या प्रकथने धातु का ग्रहण मान रहे हैं, लाक्षणिक श को य आदेश होने पर ख्याञ् को नहीं; अतः निष्ठातकार को नत्व की आपत्ति का अभाव बता रहे हैं। शकार को यकारादेश का अन्य भी फल बता रहे हैं-**रुविधिरिति**। 'पुम्+ ख्यानम्' इस दशा में यादेश के असिद्ध होने से अम्परकत्व नहीं है; अतः 'पुमः खय्यम्परे' ८.३.६ से रुत्व की आपत्ति नहीं होती है। शकार को यकारादेश का अन्य भी फल बता रहे हैं-**णत्वमिति**। 'पर्याख्यानम्' में यादेश के असिद्ध होने से 'कुमति च' ८.४.१३ के द्वारा नकार को णत्व नहीं होता है। यहाँ णत्व का अभाव ही इष्ट है, जो शकार को यकारादेश होने पर ही सिद्ध होता है। शकार को यादेश करने का अन्यत्र भी फल बताते हैं-**सस्थानत्वमिति**। यकारादेश के असिद्ध होने से 'नमः ख्यात्रे' में 'शर्परे विसर्जनीयः' ८.३.३५ से विसर्ग को विसर्ग ही रहता है, अन्यथा यदि ख्याञ् आदेश करते तो 'कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च' ८.३.३७ के द्वारा जिह्वामूलीय की आपत्ति होती। पूर्वाचार्यों ने जिह्वामूलीय की सस्थानसंज्ञा दी है। निषेधवार्तिक-**वर्जने इति**। वर्जन अर्थ में शक्त होने पर चक्षिङ् को ख्शाञ् आदेश का निषेध कहना चाहिये। इससे आर्द्धधातुक पर रहने पर भी 'अवसंचक्ष्या, परिसंचक्ष्या' में में चक्षिङ् को ख्शाञ् आदेश नहीं होता है। वार्तिक-**असनयोश्चेति**। अस् तथा अन प्रत्यय पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहते चक्षिङ् को उक्त आदेश न हो। अस् पर रहते का उदाहरण देते हैं-**नृचक्षा रक्ष इति**। यहाँ रक्षःशब्द नपुंसक है; 'नृचक्षो रक्षः' ऐसा प्रयोग प्राप्त होने पर छान्दस प्रयोग 'नृचक्षा रक्षः' है। भाषा में 'नृचक्षो रक्षः' यही प्रयोग होगा। 'विचक्षणः' में 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' ३.२.१४९ से युच् प्रत्यय है। यहाँ अन पर रहते प्राप्त आदेश का प्रत्याख्यान है।

* बहुलं तणि * **बहुलं तणीति वक्तव्यम्। किमिदं तणीति? तणीति संज्ञाछन्दसोर्ग्रहणम्। किं प्रयोजनम्?** * अन्नवधकगात्रविचक्षणाजिराद्यर्थम् * अन्न-**अन्नम्**। वधक-**वधकम्**। गात्र-**गात्रं पश्य**। विचक्षण-**विचक्षणः**। अजिर-**अजिरे तिष्ठतीति**। {चक्षिङ्}।

वार्तिक—**बहुलमिति**। **तण**=संज्ञा और छन्दः में आर्द्धधातुकनिमित्तक सभी आदेश बाहुलक होंगे। इससे 'अन्नम्' में अद धातु को जग्धि आदेश नहीं हुआ। 'वधकम्' में ण्वुल् पर रहते हन को वध आदेश हो गया। 'विचक्षणः' में युच् प्रत्यय पर रहते चक्षिङ् को उक्त आदेश नहीं हुआ। 'गात्रम्' में औणादिक ष्ट्रन् प्रत्यय पर रहते इण् धातु को गा आदेश हो गया। 'अजिर' में अज धातु को वि आदेश नहीं हुआ। 'अजिरशिशिर-'लि.पु.५६ इस निपातन की अपेक्ष कर अजिर यह उदाहरण है। {चक्षिङः-}।

अजेर्व्यघञपोः २.४.५६

* घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानम् * **घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानं कर्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-समजनं समज्येति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। अपीत्येव भविष्यति। कथम्? अपीति नेदं प्रत्ययग्रहणम्। किं तर्हि? प्रत्याहारग्रहणम्। क्व सन्निविष्टानां प्रत्याहारः? अपोऽकारात् प्रभृत्या क्यपः पकारात्। यदि प्रत्याहारग्रहणं संवीतिर्न सिध्यति। एवं तर्हि नाऽर्थ उपसंख्यानेन, नाऽपि घञपोः प्रतिषेधेन। इदमस्ति-'चक्षिङः ख्याञ्' 'वा लिटी'ति। ततो वक्ष्यामि- 'अजेर्वी'। अजेर्वीभावो भवति वा।**

सूत्रार्थ—'आर्द्धधातुक के विषय में घञ् और अप् से भिन्न प्रत्यय पर रहते अज गतिक्षेपणयोः धा.पा.२३० धातु को वी आदेश हो'।

वार्तिक—**घञपोरिति**। घञ् और अप् प्रत्यय पर रहते अज को वी आदेश का निषेधविधि में क्यप् प्रत्यय पर रहते भी आदेश का निषेध कहना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे 'समजनम्' इस अर्थ में सम्पूर्वक अज धातु से क्यप् होने पर अज को वी आदेश का निषेध हो जाता है। आक्षेपक-तत्तर्हीति। क्या 'समज्या' मे वी आदेशप्रतिषेध के लिए उक्त वार्तिक पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। सूत्र में अप् पद से अप् प्रत्ययमात्र का ग्रहण नही है, अपि तु 'ऋदोरप्' ३.३.५७ के अकार से आरम्भ कर 'व्रजयजोर्भावे क्यप्' ३.३.९८ के पकार तक प्रत्याहार का ग्रहण है; अतः क्यप् प्रत्यय पर रहते सूत्र से ही आदेश का निषेध हो जायेगा। आक्षेपक-**यदीति**। यदि सूत्रस्थ अप् पद से प्रत्याहार का ग्रहण करेंगे तो मध्य में पठित 'स्त्रियां क्तिन्' ३.३.९४ का भी अप्ग्रहण से ग्रहण होगा। इस तरह क्तिन् प्रत्यय पर रहते अज धातु को वी आदेश नही होने से 'संवीतिः' की असिद्धि होगी। खण्डनवादी आचार्य वार्तिक तथा 'घञपोः प्रतिषेधः' का खण्डन करते हैं-**एवं तर्हीति**। उक्त वार्तिक का आरम्भ नही करेंगे तथा सूत्र में 'घञपोः' यह निषेधवचन भी नही पढेंगे। 'चक्षिङः ख्याञ्' 'वा लिटि' के अनन्तर मात्र 'अजेर्वी' इतना स्थानी एवम् आदेश का निर्देश करेंगे।

व्यवस्थितविभाषा चेति। तेनेह च भविष्यति-प्रवेता, प्रवेतुं, प्रवीतो रथः, संवीतिरिति। इह च न भविष्यति-'समाजः, उदाजः समजः, उदजः, समजनम्, उदजनं, समज्येति। तत्रायमप्यर्थः-इदमपि सिद्धं भवति-प्राजितेति। किं भो इष्यत एतद्रूपम्? बाढमिष्यते। एवं हि कश्चिद् वैयाकरण आह-'कोऽस्य रथस्य प्रवेतेति। सूत आह-'आयुष्मन्नहम् अस्य रथस्य प्राजिते'ति। वैयाकरण आह-'अपशब्द' इति। सूत आह-'प्राप्तिज्ञो देवानां प्रियो, न त्विष्टिज्ञः, इष्यत एतद्रूप'मिति। वैयाकरण आह-'अहो नु खल्वनेन दुरुक्तेन बाध्यामहे' इति।

'वा लिटि' २.३.५५ से 'वा' पद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'अजेर्वी' में करेंगे। यहाँ 'वा' शब्द का वाच्य विभाषा को व्यवस्थितविभाषा मानेंगे। व्यवस्थितविभाषा का अर्थ होगा-'जहाँ आदेश हो वहाँ नित्य हो तथा जहाँ आदेश न हो वहाँ नित्य ही आदेश न हो'। कहाँ आदेश हो तथा कहाँ आदेश न हो, इस दिशा में व्याख्यान करेंगे। इससे 'प्रवेता, प्रवेतुम्, प्रवीतो रथः' तथा 'संवीतिः' में नित्य ही अज को वी आदेश होगा। एवं व्याख्यान के द्वारा ही अज को वी भाव आदेशनिषेध भी निर्णय करेंगे। इससे 'समाजः' इत्यादि में अज को वी आदेश का निषेध हो जायेगा। 'वा' पद की अनुवृत्ति करने से वलादि आर्द्धधातुक पर रहते विकल्प आदेश होने से तृजन्त में विकल्प से आदेश होगा, इससे आदेश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभावपक्ष में 'प्राजिता' आदि पदों की सिद्धि भी हो जाती है। आक्षेपक- **किं चेति**। क्या अज धातु का तृजन्त में 'प्रातिजा' रूप इष्ट है?

उत्तरभाष्य—**बाढमिति**। अज धातु का तृजन्त रूप 'प्राजिता' इष्ट है। इसे प्रश्नोत्तर के रूप में स्पष्ट करते हैं-**एवं हीति**। किसी वैयाकरण ने पूछा-'इस रथ का **प्रवेता**=सारथि कौन है'? है। सूत ने उत्तर दिया-'श्रीमन्! मैं=सूत इस रथ का **प्राजिता**=सारथि हूँ। यहाँ तृच् पर रहते विकल्प से आदेश होने से 'प्रवेता' तथा आदेश का अभावपक्ष में 'प्राजिता' दोनों ही रूप अज धातु के ही हैं। इस पर वैयाकरण ने आक्षेप किया-'आप=सूत ने 'प्राजिता' यह अपशब्दप्रयोग किया है'। इस पर सूत ने वैयाकरण पर आक्षेप किया-'**प्रातिज्ञः**=जो सौत्रीप्राप्तिमात्र जानता है, आचार्य की इष्टि नहीं, वह '**देवानाम्प्रियः**'=मूर्ख होता है। यहाँ देवशब्द मूर्खवाची है। मूर्खो का प्रिय मूर्ख ही होता है। अथ वा सुखासक्त होने से शास्त्र में प्रवृत्ति नहीं होने से भी 'देवानाम्प्रियः' है। पराजित होकर अमर्षपूर्वक वैयाकरण कहता है-**अहो नु खल्विति**। आप=सूत की इस दुरुक्ति से मैं=वैयाकरण= सूत्रमात्र का अभ्यास करने वाला पराजित होकर मान लेता हूँ कि अज धातु का तृजन्त रूप 'प्राजिता' भी होता है।

सूत आह-'न खलु वेञः सूतः, सुवतेरेव सूतः'। यदि सुवतेः कुत्सा प्रयोक्तव्या-दुःसूतेनेति वक्तव्यम्। न तर्हीदानीमिदं 'वा या'विति वक्तव्यम्। वक्तव्यं च। किं प्रयोजनम्? नेयं विभाषा। किं तर्हि? आदेशोऽयं विधीयते। वेत्ययमादेशो भवत्यजेर्यौ परतः। वायुरिति। {अजेर्व्यं}।

इस पर सूत अपना पाण्डित्य दिखता है—**न खल्विति**। आप सूत पद की प्रकृति को वेञ तन्तुसन्ताने धा.पा.१००६=कपडा बुनने वाला=जो शास्त्राभ्यास से परे हो, ऐसा समझ रहे हैं, वह मैं नही हूँ, अपि तु षू प्रेरणे धा.पा.१४०६ धातुप्रकृतिक कर्त्रर्थक क्त प्रत्ययान्त सूत हूँ। रथप्रेरणा करने से रथवाह की 'सूत' यह संज्ञा है। यहाँ बाहुलकात् कर्ता मे क्त प्रत्यय है एवं 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थास-वसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ में चकार के द्वारा अनुक्त का समुच्चय होने से वर्तमान अर्थ में भी है। इससे सूत व्यञ्जना के द्वारा बता रहा है कि मैं शास्त्रज्ञ तथा लोकज्ञ दोनों हूँ; जब कि आप सूत्रमात्र का अभ्यास करके वैयाकरण बनना चाहते हैं। इस पर वैयाकरण सूत की निन्दा करता है-**यदि सुवतेरिति**। यदि षू प्रेरणे धा.पा.१४०६ वर्तमानकालिक कर्त्रर्थक क्तप्रत्ययान्त सूतशब्द मानते हैं तो जड पशुओं का प्रेरक होने से यहाँ कुत्सा भी है-पशुओं के ही साथ रहने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से तुम्हारी बुद्धि जड है; अतः सूत सूत नही हो, अपि तु दुःसूत हो।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**न तर्हीति**। यदि 'वा लिटि' २.४.५५ से 'वा' पद की अनुवृत्ति 'अजेर्वी' में कर रहे हैं तो 'यु' प्रत्यय पर रहते विकल्प से वी आदेश के लिए 'वा यौ' २.४.५७ इस सूत्र के निर्देश की आवश्यकता नही है। 'यु' प्रत्यय पर रहते भी 'अजेर्वी' से ही विकल्प से वी आदेश हो जायेगा।

समाधानभाष्य—**वक्तव्यमिति**। यहाँ 'वा यौ' २.४.५७ इस सूत्र में 'वा' पद विकल्पार्थक नही है, अपि तु विधेय है। यहाँ 'यु' प्रत्यय पर रहते अज शब्द को 'वा' आदेश होकर 'वायुः' रूप की सिद्धि होती है; अतः 'अजेर्वी' में 'वा' पद की अनुवृत्तिपक्ष में भी 'वा यौ' २.४.५७ इस सूत्र का आरम्भ अवश्य करना चाहिये। इस तरह यहाँ भाष्यकार ने पूर्वसूत्र से 'वा' पद की अनुवृत्ति करके वार्तिक तथा सूत्रस्थ 'अघञपोः' का प्रत्याख्यान कर दिया है। {अजेर्व्य-}।

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः २.४.५८

* अणिञोर्लुकि तद्राजाद् युवप्रत्ययस्योपसंख्यानम् * **अणिञोर्लुकि तद्राजाद् युवप्रत्ययस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्। बौधिः पिता, बौधिः पुत्रः। औदुम्बरिः पिता, औदुम्बरिः पुत्रः। अपर आह-** * अणिञोर्लुकि क्षत्रियगोत्रमात्राद् युवप्रत्ययस्योपसंख्यानम् * **अणिञोर्लुकि क्षत्रियगोत्रमात्राद् युवप्रत्ययस्योपसंख्यानं कर्तव्यमिति। जाबालिः पिता, जाबालिः पुत्रः। अपर आह-** * अब्राह्मणगोत्रमात्राद् युवप्रत्ययस्योपसंख्यानम् * **अब्राह्मणगोत्रमात्राद् युवप्रत्ययस्योपसंख्यानं कर्तव्यमिति। किं प्रयोजनम्? इदमपि सिद्धं भवति-भाण्डिजङ्घिः पिता, भाण्डिजङ्घिः पुत्रः। कार्णखरकिः पिता, कार्णखरकिः पुत्रः।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य चतुर्थे पादे प्रथममाह्निकम्

●

'ण्यक्षत्रियार्षञितः' पञ्चम्यन्त, 'यूनि' सप्तम्यन्त, 'लुक्' प्रथमान्त, 'अणिञोः' सप्तम्यन्त होने से यह चतुष्पद विधिसूत्र है। सूत्रार्थ- 'ण्यप्रत्ययान्त, क्षत्रियप्रत्ययान्त, आर्षप्रत्ययान्त तथा ञित्प्रत्ययान्त से पर मे विहित युवा इस अर्थ में विहित अण् तथा इञ् का लुक् हो'।

वार्तिक—**अणिञोरिति**। अण् और इञ् का लुक्प्रसङ्ग में तद्राजसंज्ञ से पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में विहित युवप्रत्यय का भी लुक् कहना चाहिये। यहाँ 'ते तद्राजाः' ४.१.१७४ से विहित तद्राजसंज्ञ प्रत्यय विवक्षित है। 'बुधस्यापत्यं बौधिः, उदुम्बरस्यापत्यम् औदुम्बरिः' में 'साल्वायवप्रत्यग्रथकलहकूटाश्मकादिञ्' ४.१.१७१ से इञ् प्रत्यय है। पुनः इञ्प्रत्ययान्त 'बौधिः, औदुम्बरिः' शब्द से 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ के द्वारा विहित फक् प्रत्यय का लुक् है। यहाँ अन्य वार्तिक भी है-**क्षत्रियगोत्रमात्रादिति**। अण् तथा इञ् का लुक्प्रसङ्ग में क्षत्रियगोत्रमात्र से पर में विहित युवप्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। इसका उदाहरण देते हैं-**जाबालिः पितेति**। 'जबालस्यापत्यम्' इस अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय कर 'जाबालिः' पद है। 'जाबालेर्युवा' इस अर्थ में 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ के द्वारा विहित फक् प्रत्यय का इस वार्तिक से लुक् होता है। यहाँ अन्य वार्तिक भी उद्धृत करते हैं-**अब्राह्मणगोत्रमात्रादिति**। ब्राह्मणगोत्र से भिन्नगोत्रप्रत्ययान्तमात्र से पर में विहित युवप्रत्यय का लुक् हो। इस वार्तिक से वैश्यगोत्रप्रत्यय से पर में विहित युवप्रत्यय का भी लुक् होता है। व्यापक होने से यही वचन प्रमाण है। भण्डिजङ्घ तथा कर्णखरक यह दोनों ही वैश्य हैं। इससे अपत्यार्थक इञ्प्रत्यय है। तदन्त से विहित फक् का लुक् है। {ण्यक्षत्रिय-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय चतुर्थ पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ चतुर्थे पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् २.४.६२

* तद्राजादीनां लुकि समासबहुत्वे प्रतिषेधः * तद्राजादीनां लुकि समास-बहुत्वे प्रतिषेधो वक्तव्यः। प्रिय आङ्ग एषां त इमे प्रियाऽङ्गाः। प्रियो वाङ्ग एषां त इमे प्रियवाङ्गा इति। किमुच्यते 'समासबहुत्वे प्रतिषेध' इति, यदा 'तनैव चेत्कृतं बहुत्व'मित्युच्यते, न चाऽत्र तेनैव कृतं बहुत्वम्? भवति वै किञ्चिद्-आचार्याः क्रियमाणमपि चोदयन्ति। तद्वा कर्तव्यम्-तेनैव चेद्बहुत्वमिति, समासबहुत्वे वा प्रतिधेषो वक्तव्य इति * अबहुत्वे लुग्वचनम् * अबहुत्वे लुग्वक्तव्यः। अतिक्रान्तोऽङ्गानत्यङ्ग इति। बहुवचने परतो यस्तद्राज इत्येवं च कृत्वा चोद्यते।

सूत्रार्थ—'बहुत्व अर्थो में तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का प्रत्ययार्थकृतबहुत्व होने पर लुक् न हो'। 'ते तद्राजाः' ४.१.१७२ से यहाँ अञ् ४.१.१६६ आदि प्रत्यय विवक्षित हैं।

वार्तिक—**तद्राजादीनामिति**। तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् का समासबहुत्व में निषेध कहना चाहिये। 'अङ्गा देशस्तत्र भव आङ्गः, वङ्गा देशस्तत्र भवो वाङ्गः' में 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' ४.१.१६६ से अञ् प्रत्यय है। 'प्रिय आङ्ग एषां त इमे प्रियाङ्गाः, प्रियो वाङ्ग एषां त इमे प्रियवाङ्गाः' इत्यादि में समासकृतबहुत्व है, अतः 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्' के द्वारा प्राप्त अञ्लुक् का निषेध कहा गया है। आक्षेपक-**किमुच्यत इति**। आचार्य 'तेनैव चेत्कृतं बहुत्वम्' ऐसा कह रहे हैं। इसका अर्थ है-'यदि तद्राजसंज्ञकप्रत्ययकृतबहुत्व हो, तभी तद्राजसंज्ञक का लुक् कहना चाहिये। परन्तु 'प्रियाऽऽङ्गाः, प्रियवाङ्गाः' में तद्राजसंज्ञकप्रत्ययकृतबहुत्व नहीं है, अपि तु समासकृतबहुत्व है; फिर यहाँ सूत्र से लोप प्राप्त नही है; पुनः उसका निषेध के लिए वार्तिकावतार क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**भवतीति**। कुछ ऐसे भी आचार्य होते हैं जो सूत्रसिद्धविषय को भी वार्तिकरूप में पढते हैं। यहाँ 'प्रियवाङ्गाः' इत्यादि में जो सूत्रसिद्ध लुङ्निषेध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, उसी को वार्तिकरूप से पढ दिया है। इस वार्तिक का अवतरण कर स्पष्ट किया है कि 'तेनैव' यह अवश्य निर्देश करना चाहिये। इसी अर्थ को स्पष्ट करने के लिए वार्तिकावतार है। अब प्रत्ययग्रहणपक्ष में दोषोद्भावनपूर्वक अर्थग्रहण की स्थापना करते हैं-**अबहुत्वे लुगिति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से 'समास' पद की अनुवृत्ति है। 'समासार्थ के बहुत्वभिन्न होने पर तद्राजसंज्ञक का लुक् कहना चाहिये' यह वार्तिकार्थ है। इसका उदाहरण देते हैं-**अतिक्रान्त इति**। यहाँ विग्रहवाक्य में प्रत्ययकृतबहुत्व होने से अञ् का लुक् है, तथा वृत्ति में समासार्थ अबहुत्व है; अतः प्रत्यङ्ग में प्रत्ययकृतबहुत्व नहीं होने पर भी समासकृत अबहुत्व होने से अञ्प्रत्यय का लुक् होगा। 'प्रत्यय यदि बहुत्व में उपपन्न हुआ हो तो उसका लुक् हो' ऐसा सूत्रार्थ है। इससे अत्यङ्ग में भी सूत्र से ही अञ् का लुक् हो जाता है। क्यों कि यहाँ अञ्प्रत्यय बहुत्व अर्थ में उत्पन्न है। परन्तु 'बहुवचन-प्रत्यय पर रहते जो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय, उसका लुक् हो' ऐसा अर्थ मान कर 'अबहुत्वे लुग्वचनम्' वार्तिक का निर्देश है।

अथ किमर्थं पुनरिदं, न बहुवचन इत्येव सिद्धम्? न सिध्यति। बहुवचन इत्युच्यते, न चाऽत्र बहुवचनं पश्यामः। प्रत्ययलक्षणेन भविष्यति। 'न लुमता तस्मि'न्निति प्रत्ययलक्षणस्य प्रतिषेधः। 'न लुमताऽङ्गस्ये'ति वक्ष्यामि। नैवं शक्यम्। इह हि दोषः स्यात्-पञ्चभिर्गार्गीभिः क्रीतः पटः पञ्चगार्ग्यः, दशगार्ग्य इति।

प्राश्निक आचार्य—**अथ किमर्थमिति**। 'बहुवचन प्रत्यय पर रहते तद्राजसंज्ञक का लुक् हो' ऐसा कहने से ही अत्यङ्ग में अञ् का लुक् हो जायेगा, फिर यहाँ इसी के लिए 'अबहुत्वे लुग्वचनम्' वार्तिक का निर्देश क्यों करते हैं? अन्य आक्षेपक-**बहुवचन इति**। बहुवचन पर रहते तद्राजसंज्ञक का लुक् कहा जा रहा है। परन्तु 'अत्यङ्गः' में पर में एकवचन देख रहा हूँ, यहाँ बहुवचन का पर में श्रवण नहीं है; फिर यहाँ अञ् का लुक् कैसे होगा? प्राश्निक आचार्य अपना पक्ष पुष्ट करते हैं-**प्रत्ययलक्षणेनेति**। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ के द्वारा अङ्गपदोत्तर बहुत्ववाची शस्प्रत्यय का लुक् हुआ है; 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ के द्वारा शस्प्रत्ययनिमित्तक अञ्लुक् का अतिदेश कर देंगे। इससे 'अत्यङ्गः' रूप ही रहेगा। अन्य आक्षेपक-**न लुमतेति**। 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ से प्रत्ययलक्षण का निषेध कहेंगे। 'लुमान् शब्द के द्वारा लुप्त जो प्रत्यय, उसके पर रहते जो अङ्ग, उसको अङ्गाधिकार से विहित अथ वा अन्य जो कार्य, वह न हो' यह 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ का अर्थ है। यहाँ प्रत्यय का लुक् करणीय है, समास अङ्ग का नहीं; अतः प्रत्ययलक्षण के द्वारा अञ्लुक्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जायेगा। आक्षेपक-**इह हि दोष इति**। यदि उक्त रीति से 'अत्यङ्गः' में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ के द्वारा अञ् का लुक् मानेंगे तो समानस्थिति होने से 'पञ्चभिर्गार्गीभिः क्रीतः पटः पञ्चगार्ग्यः पटः' इत्यादि में भी 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से 'यञ्' प्रत्यय के लुक् की आपत्ति होगी। यहाँ क्रीतार्थक आर्हीय ठक् प्रत्यय का 'अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ के द्वारा लुक् है, एवं 'लुक् तद्धितलुकि' १.२.४९ के द्वारा स्त्रीप्रत्यय का लुक् है। यहाँ प्रत्ययलक्षण के द्वारा भिस् का आश्रयण कर 'यञञोश्च' २.४.६४ से यञ् का लुक् प्राप्त हो रहा है। यहाँ अङ्ग का यञ्लुक् नहीं करना चाहिये। अन्यथा यहाँ 'पञ्चगर्गः, दशगर्गः' रूप की आपत्ति होगी; जब कि यहाँ 'पञ्चगार्ग्यः, दशगार्ग्यः' रूप इष्ट है। यहाँ समासवृत्त्यर्थ अन्य अर्थ पुल्लिङ्ग में शक्त है; अतः 'अस्त्रियाम्' २.४.६२ यह प्रतिषेधवचन भी यहाँ प्रवृत्त नहीं होता है।

* द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वचनम् * **द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वक्तव्यः। गर्गवत्सवाजा इति। इह च लुग्वक्तव्यः-गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यं, गर्गमयमिति। इह च-'अत्रय' इति-उदात्तनिवृत्तिस्वरः प्राप्नोति।**

द्वन्द्वेऽबहुषु लुगिति। द्वन्द्व में बहुत्वभिन्नप्रत्यय पर रहते प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। यहाँ वार्तिक में अकार का प्रश्लेष है। 'गार्ग्यश्च वात्स्यश्च वाज्यश्च इस विग्रह में यञन्त गार्ग्य आदि पदों का इतरेतरयोगद्वन्द्व है। यहाँ एक-एक का बहुवचनपरत्व नहीं है; समास से पर में जो बहुवचन जस् प्रत्यय उत्पन्न हुआ है, वह अन्त्य से पर में है, सभी से पर में नहीं। प्रत्ययनिर्देशपक्ष में 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ इस परिभाषा के उपस्थित होने से व्यवहितप्रत्ययों का लुक् प्राप्त नहीं होता है; अतः यहाँ व्यहित में प्रत्ययों का लुग्विधान के लिए वार्तिकावतार है। **इह च लुगिति**। 'गर्गेभ्य आगतम्' इस विग्रह में गार्ग्य पद से पर में आगत अर्थ में 'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः' ४.३.८१ से रूप्य तथा 'मयट् च' ४.३.८२ के द्वारा मयट् प्रत्यय है। यहाँ रूप्य तथा मयट् के पर रहते गर्गपदोत्तर यञ् प्रत्यय का लुक् है। यहाँ केवल सुबन्त से विग्रह किया गया है। परन्तु '–प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार होने से प्रातिपदिक से पर में ही प्रत्यय उत्पन्न होता है; अतः बहुवचनपरत्व का अभाव होने से प्रत्यय का लुक् प्राप्त नही है; अतः उसका लुक् कहना चाहिये। 'यञञोश्च' २.४.६४ से यञ् का लुक् करके बहुवचन में 'गर्गेभ्यः' ऐसा निर्देश है। आक्षेपक-**इह चेति**। 'अत्रेरपत्यानि' इस विग्रह में अत्रि पद से 'इतश्चानिञः' ४.१.१२२ से ढक् प्रत्यय है। कित् होने से 'कितः' ६.१.१६५ के द्वारा अन्तोदात्त है। यहाँ यदि जस् पर रहते लुक् कहेंगे तो 'अनुदात्तस्य यत्रोदात्तलोपः' ६.१.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६१ के द्वारा जस् को उदात्त की आपत्ति होगी।

*** सिद्धं तु प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे लुग्वचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे लुग्वचनात्'। प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे लुग्वक्तव्यः। यदि प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे लुगुच्यते, 'अस्त्रिया'मिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-आङ्ग्यः स्त्रियः, वाङ्ग्यः स्त्रिय इति। यस्य पुनर्बहुवचने परतो लुगुच्यते तस्य ईकारेण व्यवहितत्वान्न भविष्यति। यस्यापि तु बहुवचने परतो लुगुच्यते, तेनापि 'अस्त्रिया'मिति वक्तव्यम्। आम्बष्ठ्याः स्त्रियः, सौवीर्याः स्त्रियः इत्येवमर्थम्। अत्रापि चापा व्यवधानम्। एकादेशे कृते नास्ति व्यवधानम्। 'एकादेशः पूर्वविधौ स्थानिवद्भवती'ति स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमेव।**

अर्थनिर्देश का आश्रयण मान कर इसका परिहार करते हैं—**सिद्धं त्विति**। 'अत्रेरपत्यानि' में अपत्यार्थक ढक् प्रत्यय बहुत्व अर्थ में है; प्रत्ययार्थबहुत्व में उत्पन्न प्रत्यय का सूत्र से लुग्विधान है; जस् आदि बहुवचनप्रत्यय पर रहते नहीं; अतः उक्त दोष नही है। **यदीति**। यदि 'प्रत्ययार्थबहुत्व में ही प्रत्यय का लुक् हो' ऐसी व्याख्या करने पर सूत्र में 'अस्त्रियाम्' यह प्रतिषेध अवश्य कहना चाहिये; इससे 'अङ्गस्य अपत्यानि स्त्रियः आङ्ग्यः, वङ्गस्य अपत्यानि स्त्रियः वाङ्ग्यः' में भी प्रत्ययार्थकृतबहुत्व होने से लुक् प्राप्त है, उसका प्रतिषेध 'अस्त्रियाम्' ऐसा कहना चाहिये। परन्तु बहुत्वार्थक जस् आदि प्रत्यय पर रहते प्रत्यय का लुक् कहने पर 'आङ्ग्यः' इत्यादि में मध्य में ईकार का व्यवधान होने से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट नहीं होने से प्रत्यय का लुक् प्राप्त नही है; अतः प्रत्यय का लुक् प्राप्त नहीं होने से बहुत्वपरत्वपक्ष में 'अस्त्रियाम्' यह प्रतिषेध नही कहना पडता है। अर्थनिर्देशपक्षवादी-**यस्यापीति**। अर्थनिर्देशवादी को बहुवचनपरत्वपक्ष में भी 'आम्बष्ठ्याः स्त्रियः, सौवीर्याः स्त्रियः' में प्रत्यय का लुग्वारण के लिए 'अस्त्रियाम्' यह प्रतिषेधवनच अवश्य पढना चाहिये। यहाँ 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' ४.१.१७१ से ञ्यङ् प्रत्यय है। 'यङश्चाप्' ४.१.७४ से चाप् प्रत्यय एवम् एकादेश है। इसके 'अन्तादिवच्च' ६.१.८५ से अन्तवद्भाव के द्वारा व्यवधायकता नही होने से लुक् प्राप्त होने पर प्रत्ययपक्षवादी को भी 'अस्त्रियाम्' यह प्रतिषेध कहना चाहिये। प्रत्ययार्थपक्षवादी-**अत्रापीति**। 'आम्बष्ठ्याः' इत्यादि मे भी बहुवचनार्थक जस् प्रत्यय से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट प्रत्यय नही है, क्यों कि यहाँ मध्य में चाप् का व्यवधान है। प्रत्ययपक्षवादी-**एकादेशे कृत इति**। सवर्णदीर्घ-एकादेश करने पर अन्तवद्भाव होने से चाप् का व्यवधायकत्व नहीं होगा। प्रत्ययार्थपक्षवादी-**एकादेशः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वेति। 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५६ में 'पूर्वस्माद्विधिः पूर्वविधिस्तस्मिन्' इस पञ्चमीसमासपक्ष में स्थानिवद्भाव के द्वारा चाप् का व्यवधान रहेगा। इस तरह बहुवचनप्रत्ययपरत्वपक्ष में दोष है।

* द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वचनम् * **द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वक्तव्यः। गर्गवत्सवाजा इति** * गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुक् * **गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुग्वक्तव्यः। बिदानामपत्यं माणवको बैदः। बैदौ। किमर्थमिदं नाऽचीत्येवाऽलुक् सिद्धः? 'अची'त्युच्यते, न चाऽत्राऽजादिं पश्यामः। प्रत्ययलक्षणेन। 'वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्'।**

वार्तिक—**द्वन्द्वेऽबहुष्विति**। द्वन्द्वसमास में **अबहुषु**=बहुवचनभिन्न द्विवचन तथा एकवचन प्रत्यय पर रहते प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। 'गार्ग्यश्च वात्स्यश्च वाज्यश्च' इस एकवचन में विग्रह कर द्वन्द्व में यञ् प्रत्यय का लुक् है। इसकी विशदव्याख्या इसी सूत्र के भाष्य में कर चुका हूँ। प्रत्ययपक्ष में अन्त्य का प्रत्ययलुक् सिद्ध हो जाता है; परन्तु अन्य का नहीं। अर्थपक्ष में दोष देते हैं-**गोत्रस्य बहुष्विति**। जिसका लोप प्राप्त हो रहा हो ऐसा बहुत्व अर्थ में उत्पन्न अपत्यप्रत्यय युवाऽपत्यविवक्षा में अन्य अर्थ में अथ वा द्वित्वविशिष्ट में सङ्क्रमित हो रहा हो, तब वह बहुत्व अर्थ में उत्पन्न माना जायेगा; अतः उसका लुक् प्राप्त हो रहा है, उसका अलुक् कहना चाहिये। 'द्व्येकयोः' में द्विशब्द तथा एक शब्द क्रमशः द्वित्ववाची तथा एकत्ववाची है, अन्यथा द्वि, एक अर्थ में शक्त होने पर बहुवचन की आपत्ति होगी। जब विशेष्यांश में भी संख्या का भान न हो रहा हो, तब एकशेष के द्वारा बहु अर्थ में स्थित होगा, उस समय गोत्रप्रत्यय का लुक् कहना चाहिये, यह भाष्यकार का हृदय है। 'बिदस्यापत्यानि बहूनि' इस अर्थ में 'बिद'शब्द से 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ के द्वारा अञ्प्रत्यय है; तदन्त से युवापत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ्प्रत्यय है, उसका 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् है। परन्तु 'बिदानाम् अपत्यं माणवको बैदः, बिदानामपत्ये माणवकौ बैदौ,' इस विग्रह में विशेष्यांश में संख्या का भान नही हो रहा है; अतः बहुत्व में शक्त माना जायेगा। इस गोत्रप्रत्यय का लुक् प्राप्त हो रहा है, उसका एकवचन तथा द्विवचन में अलुक् कहा है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ से ही यहाँ गोत्रप्रत्यय का अलुक् हो जायेगा; फिर इसी अलुग्विधान के लिए अन्य वचन का आरम्भ क्यों करते हैं? अन्य आचार्य-**अचीति**। अजादि प्रत्यय पर रहते अलुक् कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जा रहा है। 'बैदः बैदौ' में कोई भी अजादि प्रत्यय नही देख रहा हूँ; फिर यहाँ अलुक् कैसे प्राप्त होगा? इतर आचार्य-**प्रत्ययेति**। 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से जिस इञ् का लुक् है उसका 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से अतिदेश कर देंगे, इससे अजादिप्रत्ययपरत्व मिल जायेगा।

खण्डनभाष्य—**वर्णाश्रये इति**। 'अचि' इस वर्णमात्र को निमित्त मान कर गोत्रप्रत्यय का 'अलुक्' ४.१.८९ कहा जा रहा है, अतः यह अलुक् वर्णाश्रयकार्य हुआ। वर्णाश्रयकार्य में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ की प्रवृत्ति नहीं होती है; अतः स्थानिवद्भाव नहीं होने से अलुक् प्राप्त हो रहा है जिसका विधान के लिए वार्तिक पढा गया है। यहाँ विग्रहवाक्य में 'बिदानाम्' ऐसा बहुवचननिर्देश होने से गोत्रप्रत्यय को भी बहुत्वार्थ माना गया है; अतः लुक् प्राप्त होने से उसे अलुक् कहा है।

* एकवचनद्विवचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि * **एकवचनद्विवचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि वक्तव्यः। बैदस्याऽपत्यं बहवो माणकाः-बिदाः। बैदयोर्वा बिदाः। अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुष्वित्युच्यमाने लुङ्न प्राप्नोति। मा भूदेवम्, अञन्तं यद् बहुषु, यञन्तं यद् बहुष्वि'त्येवं भविष्यति। नैवं शक्यम्। इह हि दोषः स्यात्-काश्यपप्रतिकृतयः-काश्यपा इति। ततोऽयमाह-'यस्य प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे लुक् 'द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वचन'मित्यस्य परिहारः'।**

अब विशेषण बैदप्रकृति के एकवचन अथ वा द्विवचन तथा उससे प्रत्यय बहुवचन में होने पर भी युवाऽपत्यप्रत्यय् का लुक् कहना चाहिये। 'बिदानामपत्यं माणवको बैदः' में 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से अञ् प्रत्यय है। पुनः अञन्त से युवाऽपत्य अर्थ में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय है। यही स्थिति द्विवचन से विग्रहस्थल 'बैदयोरपत्यं माणकः'स्थल में भी है। यहाँ 'ण्यक्षत्रियाषञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.१५८ से इञ् का लुक् है। 'बहुत्व अर्थ में शक्त जो अञ् प्रत्यय, बहुत्व अर्थ में शक्त जो यञ् प्रत्यय, उसी का लुक् हो' ऐसा कहेंगे। 'बैदस्य, एवं 'बैदयोः' में क्रमशः अञ् प्रत्यय एकत्व तथा द्वित्व अर्थ में है; अतः उसको लुक् प्राप्त नहीं है। आक्षेपक-**इह मा भूदिति**। प्रत्ययग्रहणपरिभाषा के द्वारा तदन्त का लाभ होने पर 'अञन्त जो बहुत्व अर्थ का वाचक, यञन्त जो बहुत्व अर्थ का वाचक' ऐसा अर्थ होगा; अतः प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय से बहुत्व अर्थ उपस्थित होने पर प्रत्यय का लुक् होगा। अन्य आक्षेपक-**नैवं शक्यमिति**। यदि अञन्तं यद् बहुषु' पक्ष मानेंगे तो 'काश्यपाः' में अञ्प्रत्ययान्त बहुत्व अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में है; अतः यहाँ अञ् के लुक् की आपत्ति होगी। 'कश्यपस्यापत्यं गोत्रम्' इस अर्थ में "अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से अञ् प्रत्यय है। 'काश्यप इव तत्प्रतिकृतयः' इस अर्थ में अञन्त गोत्रप्रत्ययान्त काश्यप से 'इवे प्रतिकृतौ' ५.३.९६ से कन् प्रत्यय है। उस कन् प्रत्यय का 'जीविकार्थे चापण्ये' ५.३.९९ अथ वा 'देवपथादिष्वर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु' (तत्रैव भाष्ये) इस पाठ से लुक् होता है। इस तरह यहाँ अञन्त काश्यप पद वहुत्व अर्थ में शक्त है; अतः अञ्प्रत्यय के लुक् की आपत्ति हो रही है। परन्तु 'कस्यपस्यायं गोत्रम्' इस विग्रह में कश्यप पद से उत्पन्न अञ् प्रत्यय एकत्व अर्थ में ही उत्पन्न है; अतः 'अञ् यो बहुषु' ऐसा अर्थपक्ष में यहाँ लुक् की आपत्ति नहीं है; अतः तदन्तविधिपक्ष का आश्रयण नही करना चाहिये। 'लुक्, श्लु, लुप्' यह तीनों संज्ञायें प्रत्यय के अदर्शन की ही हैं; अतः प्रत्यय के ही कार्यभाक् होने से 'वहुषु' इस पद के साथ प्रत्यय को ही विशेषित करना चाहिये। अब भाष्यकार दोनों ही पक्षों में क्रमशः परिहार बताते हैं-**ततोऽयमिति**। प्रकृत वाक्य का 'प्रत्ययार्थबहुत्वे लुग्, इति यस्य मतं सोऽयं स्वपक्षदोषकथनोत्तरमाह' ऐसा अन्वय है। 'किमाह' इस प्रश्न के उत्तर में 'द्वन्द्वे बहुषु लुग्वचनम्' इसका यह परिहार है' ऐसा कहा है। द्वन्द्व में बहुत्व अर्थविशिष्ट नहीं है, उसका प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये।

न वा सर्वेषां द्वन्द्वे बह्वर्थत्वात् **न वैष दोषः। किं कारणम्? 'सर्वेषां द्वन्द्वे बह्वर्थत्वात्'। सर्वाणि द्वन्द्वे बह्वर्थानि। कथम्। युगपदधिकरणविवक्षायां द्वन्द्वो भवति। ततोऽयमाह-यस्य बहुवचने परतो लुक्, यदि सर्वाणि द्वन्द्वे बह्वर्थान्यहमपीदमचोद्यं चोद्ये-'द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वचन'मिति, ममापि ह्यत्र सर्वत्र बहुवचनं परं भवति। लुकि कृते न प्राप्नोति। प्रत्ययलक्षणेन भविष्यति।**

इस वार्तिक का खण्डन करते हैं—**न वा सर्वेषामिति**। द्वन्द्व में सभी पदार्थ बह्वर्थक ही होते हैं। वहाँ एक-एक प्रत्ययान्त अनेकार्थ वाचक होता है; अतः बहुत्व होने से ही 'गर्गवत्सवाजाः' इस द्वन्द्व में यञ्प्रत्यय का लुक् हो जायेगा, इसके लिए अतिरिक्तवचन आवश्यक नहीं है। द्वन्द्व में सभी बह्वर्थ कैसे होते हैं?, इसे बताते हैं-**युगपदधिकरणेति**। द्वन्द्व में युगपदधिकरणवचनता की विवक्षा में प्रत्येक बहुत्व होगा; अतः उक्त स्थल में यञ् प्रत्यय का लुक् हो जायेगा। अतः इसके लिए किया गया उक्त वार्तिक का आरम्भ व्यर्थ है। तदन्तपक्ष में 'काश्यपाः' में जो दोष दिया था, उसका परिहार आगे बतायेंगे। 'बहुवचने परतो लुक्'पक्ष में जो दोष दिया था, उसका परिहार करते हैं-**यस्येति**। यदि द्वन्द्व में सभी पद बहुत्व अर्थ के वाचक हैं तथा 'गर्गवत्सवाजाः' इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वन्द्वस्थल में प्रत्येक पद बहुवचनार्थक होगा; अतः बहुवचनपरता होने से यहाँ मेरे मत में भी यञ् का लुक् हो जायेगा। इस मेरे मत में भी 'द्वन्द्वेऽबहुषु लुग्वचनम्' वार्तिक की आवश्यक नहीं है; अतः यहाँ जो न कहने योग्य वार्तिक है उसे आप कहने का परामर्श दे रहे हैं, इसे बताते हैं-**अचोद्यं चोद्य इति**। इसका 'अचोदनार्हं वस्तु त्वयाऽहं चोद्ये' यह अर्थ है। चुद धातु पृच्छत्यर्थक है। 'दुहियाचि-' भा.श्लो.वा.१.४.५१ में अर्थ का ग्रहण होने से यहाँ चुद धातु द्विकर्मक है। अथ वा चुद धातु व्यापारद्वयार्थक होने से द्विकर्मक है। वस्तुतः 'चाऽर्थे द्वन्द्वः' २.२.२९ सूत्र के भाष्य में युगपदधिकरणवचनतापक्ष का खण्डन कर दिया है; फिर भी यहाँ 'अञन्तं यञन्तं वा यद् बहुषु'पक्षपाती ने युगपदधिकरण-वचनतापक्ष को लेकर अपने पक्ष का मण्डन किया है; अतः समानप्रत्यासत्तिन्याय से 'बहुवचने परतो लुक्'पक्षपाती ने भी इसी न्याय से स्वपक्ष का पोषण कर दिया है। 'प्रत्ययो यद् बहुषु'पक्षधर आचार्य-**लुकीति**। 'गर्गवत्सवाजाः' इस द्वन्द्व में प्रत्यय का लुक् करने पर प्रत्यक को बहुवचन में शक्त नही माना जायेगा; अतः बहुवचनपरता नहीं होने से यहाँ यञ् का लुक् नहीं होगा। 'बहुवचने परतो लुक्'पक्षधर-**प्रत्ययलक्षणेनेनति**। 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६३ के द्वारा प्रत्ययलुक् होने पर भी यञ् का लुक् हो जायेगा। सुब्लुक् बहिरङ्ग है तथा यञ्लुक् अन्तरङ्ग है। बहिरङ्ग सुब्लुक् से अन्तरङ्ग यञ्लुक् का बाध होता है; अतः पहले सुब्लुक् हो जायेगा; फिर बहुवचनपरता नहीं रहेगी, यह आक्षेपक का तात्पर्य है। प्रत्ययलक्षण के द्वारा बहुवचनपरता रहेगी, यह उत्तरपक्षी का तात्पर्य है।

'न लुमता तस्मि'न्निति प्रत्ययलक्षणस्य प्रतिषेधः। 'न लुमताऽङ्गस्ये'ति वक्ष्यामि। ननु चोक्तं-'नैवं शक्यम्, इह हि दोषः स्यात्-पञ्चभिर्गार्गीभिः कृतः पटः पञ्चगार्ग्यः, दशगार्ग्य इति। इष्टमेवैतत् संगृहीतम्- पञ्चगर्गो दशगर्ग इत्येव भवितव्यम्। तथेदमपरमचोद्यं चोद्ये-गर्गरूप्यं गर्गमयम्-अत्रापि बहुवचन इत्येव सिद्धम्। कथम्? समर्थात् तद्धित उत्पद्यते। सामर्थ्यं च सुबन्तेन। यतोऽयमाह यस्य प्रत्ययार्थबहुत्वे लुक्। यदि समर्थात् तद्धित उत्पद्यतेऽहमपीदमचोद्यं चोद्ये-'गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलु'गिति। कथम्।? यस्यापि बहुवचने परतो लुक् तेनाप्यत्राऽलुग्वक्तव्यः। तस्यापि ह्यत्र बहुवचनं परं भवति।

आक्षेपक—**न लुमतेति**। 'न लुमता तस्मिन्' इस वार्तिकन्यासपक्ष में प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से आक्षिप्त प्रकृत्युद्देश्यक कार्य में ही निषेध होता है, प्रकृति का अवयवोद्देश्यक कार्य में नही। यहाँ प्रकृति का अवयवोद्देश्यक कार्य है; अतः यहाँ प्रत्ययलक्षण नही होगा। यदि वार्तिकस्थ 'तस्मिन्' इस पद में विषयसप्तमी माना जाये तब प्रत्ययलक्षण की प्रवृत्ति में कोई दोष नही रहेगा। इस पक्ष में 'अङ्गानतिक्रान्तोऽत्यङ्गः' की भी सिद्धि हो जायेगी। यदि युगपदधिकरणवचनतापक्ष को दुषित मान भी लिया जाये, तो दोनों पक्षों में दोष तदवस्थ है। 'न लुमता तस्मिन्'पक्ष में प्रत्ययलक्षण का निषेध होने से अन्य पक्ष देते हैं-**न लुमतेति**। 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ के द्वारा प्रत्ययलक्षणपक्ष का आश्रयण करेंगे। इससे बहुवचनपरता होने से 'गर्गवत्सवाजाः' में यञ् का लुक् हो जायेगा। यहाँ प्रत्ययलक्षणपक्ष का आश्रयणपक्ष में 'पञ्चभिर्गार्ग्यैभिः क्रीतः पटः' इस विग्रह में भी प्रत्ययलक्षणपक्ष के द्वारा बहुत्व का आश्रयण कर यञ् का लुक् होने से 'पञ्चगर्गाः, दशगर्गाः' की आपत्ति दी थी, यहाँ उक्त विग्रह में 'पञ्चगर्गाः, दशगर्गाः' यही रूप इष्ट है। सूत्र में जो 'अस्त्रियाम्' यह निषेध कहा है, वह अर्थान्तर में अनुपसङ्क्रान्त स्त्रीविषय में ही है, ऐसा कहा जा चुका है। एवं जो दूसरा दोष-गर्गरूप्यम्, गर्गमयम्' में प्रातिपदिक से तद्धितोत्पत्ति मान कर यञ् के लुक् की अप्राप्ति बतायी थी, वह भी नहीं रहेगी। वह इस तरह कि 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ के अधिकार में समर्थो से तद्धितोत्पत्ति कही गयी है। सुबन्त के साथ ही सामर्थ्य है। 'गर्गरूप्यम्' इत्यादि में सुबन्तबहुवचन से प्रत्यय उत्पन्न है; अतः यहाँ भी यञ् का लुक् हो जायेगा। पद ही प्रयोगार्ह होता है, प्रतिपदिक नही; अतः द्वितीय पद का सम्बन्ध सुबन्त के ही साथ होगा, यह अभिप्राय है। इस पक्ष में '-प्रतिपदिकात्' ४.१.१ यह अधिकार वृद्धादिविशेषणार्थ है। प्रत्ययार्थबहुत्व में लुक् मानने वाले के मत में बताते हैं-**यतोऽयमाहेति**। समर्थ से तद्धितोत्पत्ति बता रहे हैं तथा सुबन्त के साथ सामर्थ्य मान रहे हैं, इस पक्ष में प्रत्ययार्थबहुत्व में लुक् मानने वाले के मत में एकवचन तथा द्विवचन में बहुत्वार्थ नही होने से लुक् प्राप्त नही है; फिर जो वहाँ 'अलुक्' ऐसा प्रतिषेध कहा है वह प्रत्ययार्थबहुत्व में लुक् मानने वाले के पक्ष में लुक् का निषेध कहने की आवश्यकता नही है। 'बैदः, बैदः' में प्रत्ययार्थबहुत्व नही है; अतः अञ् का लुक् प्राप्त नही होने से प्रतिषेध व्यर्थ है, यह प्रत्ययार्थबहुत्ववादी का हृदय है। परन्तु बहुवचन प्रत्यय पर रहते जो प्रत्यय का लुक् मान रहे हैं, उनके मत में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ अतिदेश होने से 'बैदः, बैदौ' इत्यादि में बहुवचनपरता हो जायेगी तथा अञ् का लुक् प्राप्त होगा जिसका निषेध कहने से बहुवचनपरतापक्ष मानने वाले के मत में गौरव है।

न वक्तव्यः। अचीत्येवाऽलुक् सिद्धः। अचीत्युच्यते, न चाऽत्रा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऽजादिं पश्यामः। प्रत्ययलक्षणेन। ननु चोक्तं-'वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षण'मिति। यदि वा कानिचिद् वर्णाश्रयाण्यपि प्रत्ययलक्षणेन भवन्ति तथेदमपि भविष्यति।

बहुवचनपरतापक्षपाती—**न वक्तव्य इति**। बहुवचन पर रहते प्रत्यय का लुक्पक्ष में एकवचन तथा द्विवचन में 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ से अजादिनिमित्तक लुक् हो जायेगा; अतः इस पक्ष में भी एकवचन तथा द्विवचन में लुक् का प्रतिषेध नही कहना पडेगा। वस्तुतः यह दोनों पक्षों का साधारण परिहार है। अन्य आचार्य-**अचीत्युच्यत इति**। आचार्य लुक् के प्रति 'अचि' ऐसा निमित्तवचन का निर्देश कर रहे हैं। 'बैदः, बैदौ' में कोई अजादिप्रत्यय श्रुत नहीं है; फिर यहाँ अञ् का अलुक् कैसे होगा? इतर आचार्य-**प्रत्ययलक्षणेनेति**। 'बैदः, बैदौ' में अञन्त से युवार्थक प्रत्यय 'अत इञ्' ४.१.९५ का 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् है, उसका 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से अतिदेश करेंगे,। इससे अजादि प्रत्यय पर में मिल जायेगा। आक्षेपक-**ननु चोक्तमिति**। यहाँ लुक् अज्वर्णाश्रय है। वर्णाश्रयकार्य में प्रत्ययलक्षण नही होता है, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ; अतः यहाँ अतिदेश के द्वारा अजादि का लाभ नहीं कर सकते हैं।

उत्तरभाष्य—**यदि वेति**। जैसे 'अतृणेट्' में प्रत्ययलक्षण के द्वारा इमागम होता है वैसे यहाँ भी प्रत्ययलक्षण के द्वारा अजादित्व का लाभ हो जायेगा। इसका भाव इस प्रकार है-जो कार्य वर्णरूपाश्रय होता है, प्रत्ययत्वाश्रय नहीं, वह प्रत्ययलक्षण से नहीं होता है। जैसे 'गोहितम्' इत्यदि में अव् आदि आदेश। परन्तु इमागम हलादि पित् सार्वधातुकाश्रय है, अतः प्रत्ययाश्रय होने से होता है। इसी तरह 'गोत्रेऽलुगचि' २.४.५८ इत्यादि प्रत्ययाश्रय हैं; अतः यहाँ प्रत्ययलक्षण होने से अलुक् हो जायेगा।

अथ वाऽविशेषेणाऽलुकमुक्त्वा 'हलि ने'ति वक्ष्यामि। यद्य-विशेषेणाऽलुकमुक्त्वा 'हलि ने'त्युच्यते,-बिदानामपत्यं बहवो माणवका बिदाः-अत्राप्यलुक् प्राप्नोति।

अथ वा सामान्यरूप से सर्वत्र अलुक् का विधान करेंगे। इससे अच्, हल् उभय पर रहते 'गर्गरूप्यम्, गर्गमयम्' में अलुक् होगा। फिर सामान्य का अपवाद विशेष 'हलि नं' ऐसा निषेधवचन पढेंगे। इससे हल् पर रहते 'गर्गरूप्यम्, गर्गमयम्' में अलुक्प्रतिषेध होने से प्रत्यय का लुक् हो जायेगा। एवं 'बैदः, बैदौ' में इञ् अच् पर रहते अञ् का अलुक् ही रहेगा। आक्षेपक-**यद्यविशेषेणेति**। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामान्यरूप से प्रत्यय का अलुक् कह कर उसका विशेष 'हलि न' यह निषेधवचन पढेंगे तो अञन्त 'बैदाः' पद से युवार्थक 'अत इञ्' ४.१.९५ होने पर अच् इञ् प्रत्यय पर रहते अञ् का अलुक् होने से 'बिदाः' रूप की सिद्धि नही होगी।

अस्तु। पुनरस्य युवबहुत्वे वर्तमानस्य लुग्भविष्यति। पुनरलुक् कस्मान्न भवति? समर्थानां प्रथमस्य गोत्रप्रत्ययान्तस्याऽलुगुच्यते, न चैतत् समर्थानां प्रथमं गोत्रप्रत्ययान्तम्। किं तर्हि? द्वितीयमर्थमुपसङ्क्रान्तम्। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्-अत्रिभरद्वाजिका वशिष्ठकश्यपिका भृग्वङ्गिरसिका कुत्सकुशिकिकेत्येवमर्थम्।

उत्तरभाष्य—**अस्त्विति**। आप उक्त सामान्यविधान का विशेष 'हलि न' यह अपवाद रहने दीजिये। रही वात 'बिदाः' की। यहाँ आप अलुक् की प्राप्ति दिखा रहे हैं, वह नहीं रहेगी। अपत्याधिकार से अन्यत्र लौकिक अपत्यमात्र गोत्र का ग्रहण होगा; इससे युवबहुत्व में 'यञञयोश्च' २.४.६४ के द्वारा लुक् हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**पुनरिति**। लुक्शास्त्र की तरह अलुक्शास्त्र की प्रवृत्ति भी किसी से व्याहत नही है; फिर 'बिदाः' में प्राप्त अलुक् क्यों नही होता है?

उत्तरभाष्य—**समर्थानामिति**। समर्थो में प्रथम गोत्रप्रत्ययान्त का अलुक् कहा जा रहा है। 'बिदाः' में गोत्रप्रत्ययान्त समर्थो में प्रथम नही है; अपि तु अञन्त द्वितीय अर्थ में उपसङ्क्रान्त है; अतः यहाँ अञ् का अलुक् नहीं होगा। इसका भाव इस प्रकार है-प्रति सूत्र में 'समर्थानां प्रथमात्' ४.१.८२ की अनुवृत्ति है। इससे अर्थ होगा-'समर्थो में प्रथम गोत्रप्रत्यय का अलुक् हो'। प्राथमकल्पिकप्रत्ययार्थ में वर्तमान का प्राथम्य है। जैसे 'गार्गीयाः'। यहाँ युवप्रत्यय का लुक् करने पर युवलक्षण द्वितीय अर्थ में अञन्त शब्द उपसङ्क्रान्त है; अतः उसका प्राथम्य नहीं हो सकेगा। अतः यहाँ उसका अलुक् नही कहा जा सकता है। समर्थो में प्रथम गोत्रप्रत्ययान्त का अलुक् अवश्य कहना चाहिये। इसका अन्यत्र 'अत्रिभरद्वाजिका' इत्यादि में भी प्रयोजन है। 'अत्रेरपत्यानि' इस विग्रह में 'इतश्चाऽनिञः' ४.१.१२२ से ढक् प्रत्यय है। 'भरद्वाजस्यापत्यानि' इस विग्रह में भरद्वाज पद से पर में 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से अञ्प्रत्यय है। उक्त दोनों ढक्प्रत्ययान्त तथा अञ्प्रत्ययान्त होने से पर में युवबहुत्व में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय है। इस युवबहुत्वार्थक इञ्प्रत्यय का 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' २.४.५८ से लुक् है। 'अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ से ढक् प्रत्यय का अलुक् है। एवं 'यञञोश्च' २.४.६४ के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अञ् का लुक् है। ढक् तथा अञ् प्रत्यय का लुक् होने के बाद 'अत्रिभरद्वाजानां मैथुनिका' इस अर्थ में अत्रिभरद्वाज पद से 'द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः' ४.३.१२५ से वुन् प्रत्यय है। उसको अक आदेश है। यदि द्वितीय अर्थ में उपसङ्क्रान्त को अलुक् कहेंगे तो 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ इस यथान्यास में भी अञ् के अलुक् की आपत्ति होगी।

वशिष्ठकश्यपिकेति। 'वशिष्ठस्यापत्यानि' इस अर्थ में वशिष्ट पद से पर में 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' ४.१.११४ से ऋषिलक्षण अण् है। कश्यपस्यापत्यानि' इस अर्थ में 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ के द्वारा कश्यप पद से पर में अञ् प्रत्यय है। उक्त दोनों अण्णन्त तथा अञन्त पद से युवबहुत्व में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय है। उसका 'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः' ४.१.५८ से लुक् है। इसके बाद अण् और अञ् का लुक् है। 'वशिष्ठकश्यपानां मैथुनिका' इस अर्थ में 'द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः' ४.३.१२५ से वुन् प्रत्यय है। उसको अक आदेश होता है। यदि द्वितीय अर्थ में उपसङ्क्रान्त का भी अलुक् कहेंगे तो 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ इस यथान्यासपक्ष में भी अञ् का अलुक् की आपत्ति होगी।

भृग्वङ्गिरसिकेति। भृगु और अङ्गिरस पद से ऋषिलक्षण अण् ४.१.११४ है। अण्णन्त से युवबहुत्व में 'अत इञ' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय है। उसका 'अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ के द्वारा लुक् है; एवम् अण् प्रत्यय का भी लुक् है। फिर पूर्ववत् यह वुन् प्रत्यय होने पर 'भृग्वङ्गिरसिका' में अञ् का अलुक् प्राप्त होगा।

कुत्सकुशिकिकेति। कुत्स पद से ऋषिलक्षण अण् ४.१.११४ तथा कुशिक पद से बिदादिलक्षण अञ् ४.१.१०४ है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् है।

* गर्गभार्गविकाग्रहणं वा नियमार्थम् * **गर्गभार्गविकाग्रहणं वा क्रियते तन्नियमार्थं भविष्यति-एतस्यैव द्वितीयमर्थमुपसङ्क्रान्तस्याऽलुग्भवति, नाऽन्यस्ये'ति। यदप्युच्यते-'एकवचनद्विवचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि वक्तव्य' इति। मा भूदेवम्-'अञ्यो बहुषु यञ्यो बहुष्विति, अञन्तं यद् बहुषु, यञन्तं यद् बहुष्वि'त्येवं भविष्यति। ननु चोक्तं-'नैवं शक्यम्। इह हि दोषः स्यात्-काश्यपप्रतिकृतयः-काश्यपा' इति नैष दोषः। लौकिकस्य तत्र गोत्रस्य ग्रहणं, न चैतल्लौकिकं गोत्रम्। यस्य बहुवचने परतो लुक्, समासबहुत्वे तेन 'ने'ति प्रतिषेधो वक्तव्यः, 'तेनैव चेत्कृतं बहुत्व'मिति वा वक्तव्यम्। यस्य प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लुक्, तेना'ऽस्त्रिया'मिति वक्तव्यम् ।

गर्गभार्गविकेति। गर्गशब्द से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् ४.१.१०५ प्रत्यय है। उसका 'यञञोश्च' २.४.६४ के द्वारा लुक् है। भृगु पद से ऋषिलक्षण अण् ४.१.११४ प्रत्यय है। तदन्त से 'अत इञ' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय है। उसका 'अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ के द्वारा लुक् है। 'गर्गभृगूणां मैथुनिका' इस अर्थ में वुन् ४.३.१२५ प्रत्यय है। यहाँ 'अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठ-गोतमाङ्गिरोभ्यश्च' २.४.६५ के द्वारा प्राप्त लुक् का 'न गोपवनादिभ्यः' २.४.६७ से निषेध है। यदि द्वितीय अर्थ में उपसङ्क्रान्त का भी अलुक् होता तो आचार्य गोपवनादिगण में गर्गभार्गविका पद का ग्रहण नहीं करते। परन्तु आचार्य उक्त गण में गर्गभार्गविका पद का पाठ कर नियम करते हैं-'द्वितीय अर्थ में उपसङ्क्रान्त का अलुक् हो तो गर्गभार्गविका का ही हो, अन्य का नहीं'। इससे 'अत्रिभरद्वाजिका' में अञ् के अलुक् की आपत्ति नहीं होगी। अर्थनिर्देशवादी इसका परिहार करता है-**यदप्युच्यत इति**। इससे पूर्व में जो 'एकवचनद्विवचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि वक्तव्यः' ऐसा कहा था; इससे 'अञ् यो बहुषु, यञ् यो बहुषु' ऐसा अर्थ होने से बहुत्वार्थक अञ् और यञ् का लोप प्राप्त हो रहा था। परन्तु यहाँ हम 'अञ् यो बहुषु, यञ् यो बहुषु' ऐसा अर्थ नहीं करके 'अञन्तं यद् बहुषु, यञन्तं यद् बहुषु' ऐसा अर्थ करेंगे। इससे अञन्त तथा यञन्त समुदाय के बहुत्व अर्थ का वाचक होने से उसका अवयव अञ् एवं यञ् का लुक् कहेंग। इससे 'बैदस्यापत्यं बहवो माणवका बिदाः' में अञन्तसमुदाय के बहुत्वार्थक होने से अञ् का लुक् हो जायेगा। इस पर आप ने 'काश्यपप्रतिकृतयः काश्यपाः' में अञ्लुक् की आपत्ति दी थी, परन्तु वह नहीं रहेगी। वह इस तरह कि वहाँ गोत्रप्रत्यय अञ् तथा यञ् का लुग्विधि में **लौकिकस्य**=लौकिक अपत्य का ग्रहण होगा। काश्यप यह अञन्तशब्द प्रतिकृतिबहुत्व अर्थ में है, अपत्यबहुत्व में नहीं; अतः यहाँ अञ् के लुक् की आपत्ति नहीं होती है।

यस्य बहुवचने परतो लुक्, तस्याऽयमधिको दोषः-'अत्रय इत्युदात्त-निवृत्तिस्वरः प्राप्नोति'। तस्मात् प्रत्ययाऽर्थबहुत्वे लुगित्येष एव पक्षो ज्यायान्। अथेह कथं भवितव्यम्-गार्गी च वात्स्यश्च वाज्यश्चेति? यदि तावदस्त्री विधिनाऽऽश्रीयते, अस्त्यत्राऽस्त्रीति कृत्वा भवितव्यं लुका। अथ स्त्री प्रतिषेधेनाश्रीयते, अस्त्यत्राऽस्त्रीति कृत्वा भवितव्यं प्रतिषेधेन।

अब आचार्य दोनों ही पक्षों में दोष गिनाते हैं-**यस्य बहुवचने परत इति**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुवचनप्रत्यय पर रहते गोत्रापत्य अर्थ का वाचक अञ् और यञ् का लुक् मानने वाले के पक्ष में समासबहुत्व में अञ् तथा यञ् का लुक् प्राप्त होगा, उसका निषेध कहना पडेगा। अथ वा 'अञ्कृतबहुत्व हो अथ वा यञ्कृतबहुत्व हो' ऐसा अर्थ उसे भी मानना पडेगा। इस तरह बहुवचनपरतापक्ष में भी दोष है। यदि 'बहुत्व अर्थ में शक्त जो अञ् एवं यञ्, उसका लुक् हो' यह पक्ष मानेंगे, तो इस पक्ष में स्त्रीलिङ्ग में अतिव्याप्तिवारण के लिए 'अस्त्रियाम्' यह निषेधवचन पढना पडेगा। बहुवचन पर रहते लुक् कहने वाले के मत में लुक् का अपर निमित्त है; अतः 'अत्रयः' में उदात्तनिवृत्तिस्वर की आपत्ति होगी। 'अत्रेरपत्यानि अत्रयः' में 'इतश्चानिञः' ४.१.१२२ से ढक् प्रत्यय है। कित् होने से 'कितः' ६.१.१६५ से अन्तोदात्त है। यदि यहाँ जस्प्रत्यय पर रहते लुक् करेंगे तो 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' ६.१.१६१ से उदात्तस्वर की आपत्ति हो रही है। 'अस्त्रियाम्' यह दोष भी इस पक्ष में है; अतः भाष्यकार 'अयमधिको दोषः' कह रहे हैं। इस तरह दोनों ही पक्षों में कुछ-कुछ दोष हैं; फिर भी न्यून दोष होने से 'प्रत्ययार्थबहुत्वे लुक्' यही पक्ष मानना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**अथेह कथमिति**। 'गार्गी च वात्स्यश्च वाज्यश्च' इस विग्रह में एक-एक शब्दरूप स्त्रीपुंसात्मक समुदाय का वाचक है। 'अस्त्रियाम्' इस में नञ् को पर्युदासार्थक मानने पर सभी का लुक् होना चाहिये था; परन्तु प्रसज्यप्रतिषेधार्थक मानने पर किसी का लुक् नही होना चाहिये, ऐसा सन्देह में प्रश्न है। यहाँ समुदाय स्त्रीभिन्न है; अतः यञ् का लुक् होना चाहिये, वह क्यों नही होता है? यदि नञ् को प्रसज्यप्रतिषेधार्थक मान कर निषेध के रूप में स्त्री का ग्रहण करते हैं तब 'गार्गी' में स्त्रीत्व है; अतः यञ् के लुक् का निषेध होना चाहिये। इस तरह यहाँ सन्देह हो रहा है।

किं पुनरत्राऽर्थसतत्त्वम्? देवा एतज्ज्ञातुमर्हन्ति। अथ यो लोप्यलोपिनां समासस्तत्र कथं भवितव्यम्? उभयं हि दृश्यते 'शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु'। 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्य-काश्यपगालवाना'मिति। {तद्राजस्य}।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। यहाँ अर्थतत्त्व क्या है? तत्त्व और सतत्त्वशब्द ये दोनों पर्याय शब्द हैं।

उत्तरभाष्य—**देवा एतदिति**। उक्त वाक्य में लोप होगा, अथ वा नहीं?, इसे **देवाः**=दिव्यदृष्टि वाले पाणिनिप्रभृति पण्डित लोग ही जानेंगे। यहाँ पर्युदासपक्ष में 'गार्गी' में यञ् का लुक् होना चाहिये तथा प्रसज्यप्रतिषेधपक्ष में नही होना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये, यह दोनों पक्ष भाष्यसम्मत है।

प्रश्नभाष्य—**अथ य इति**। लोपभाक् तथा अन्य पदों का समास होने पर प्रत्यय का लुक् होगा, अथ वा नहीं? जब लोपभाक् पदों का एकसाथ समास होकर बहुत्व अर्थ की उपस्थिति हो रही हो, तब बहुत्वार्थाश्रय प्रत्ययलुक् करना चाहिये, अथ वा 'प्रत्यय से ही बहुत्व अर्थ उक्त होने पर प्रत्ययलुक् हो' इस पक्ष को मान कर वहाँ प्रत्ययलुक् नहीं करना चाहिये?, यह प्रश्न है।

उत्तरभाष्य—**उभयं हीति**। आचार्य के दोनों तरह के ज्ञापक हैं; अतः दोनों तरह के प्रयोग होते हैं। 'भृगुवत्साग्रायणेषु' में लुक् और अलुक् दोनों का समास है। यहाँ पूर्व के दोनों लोपी हैं; परन्तु तृतीय 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९ से विहित फक् प्रत्ययान्त लोपी नहीं है। यहाँ दो का लुक् किया है। 'अगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्' में पूर्व के दोनों लोपी हैं; परन्तु ऋषिलक्षण अण् ४.१.११४ प्रत्ययान्त गालवशब्द लोपी नहीं है। परन्तु यहाँ लोपी का लुक् नहीं किया गया है। इस तरह दोनों ही तरह के ज्ञापक होने से दोनों ही तरह का प्रयोग होता है। {तद्राजस्य-}।

यञञोश्च २.४.६४

* यञादीनामेकद्वयोर्वा तत्पुरुषे षष्ठ्या उपसङ्ख्यानम् * **यञादीनामेकद्वयोर्वा तत्पुरुषे षष्ठ्या उपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। गार्ग्यस्य कुलं गार्ग्यकुलं, गर्गकुलं वा। गार्ग्ययोः कुलं गार्ग्यकुलं, गर्गकुलं वा। बैदस्य कुलं बैदकुलं, बिदकुलं वा। बैदयोः कुलं बैदकुलं, बिदकुलं वा।**

पूर्व सूत्र से 'बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम्' २.४.६२ तथा 'लुक्' २.४.५८ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'गोत्र में जो यञन्त तथा अञन्त, उसका अवयव यञ् और अञ् का लुक् हो, परन्तु यह स्त्रीलिङ्ग में न हो'। जैसे 'गर्गाः, वत्साः, बिदाः'। स्त्रीलिङ्ग में 'गार्ग्यः' रूप होगा।

वार्तिक—**यञादीनामेकद्वयोर्वेति**। यञादि का लोपविधि में तत्पुरुष में एकवचन तथा द्विवचन में यञ् तथा अञ् का विकल्प से लुक् कहना चाहिये। पहले यञ् का क्रमशः एकवचन तथा द्विवचन में उदाहरण देते हैं-**गार्ग्यस्य कुलमिति**। यञ् का लुक्पक्ष में गर्गकुलम्। अभावपक्ष में गार्ग्यकुलम्। अञन्त में अञ्लुक् का उदाहरण देते हैं-**बैदस्य कुलमित्यादि**। यहाँ 'बिदस्यापत्यम्' इस अर्थ मे 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' ४.१.१०४ से अञ् प्रत्यय है। लुक् का अभावपक्ष में 'बैदकुलम्',

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लुक्पक्ष में 'बिदकुलम्' वाक्य होगा। इससे आगे जो भी प्रत्यय बहुत्व अर्थ में लुग्भागू हैं, वे सभी यहाँ यञादिपदघटित आदिपद से विवक्षित हैं। यहाँ आदि पद व्यवस्थावाची है; अतः इससे पूर्वविषय में 'आङ्गकुलम्' यही वाक्य होगा; इसे बताने के लिए प्रश्न करते हैं—

यञादीनामिति किमर्थम्? आङ्गस्य कुलमाङ्गकुलम्। आङ्गयोः कुलमाङ्गकुलम्। एकद्वयोरिति किमर्थम्? गर्गाणां कुलं गर्गकुलम्। तत्पुरुष इति किमर्थम्? गार्ग्यस्य समीपमुपगार्ग्यम्। षष्ठ्या इति किमर्थम्? शोभनगार्ग्यः। परमगार्ग्यः। {यञञोश्च}।

यञादीनामिति। तत्पुरुष एकवचन एवं तत्पुरुष द्विवचन में अपत्यगोत्रप्रत्यय का लुक् कहना चाहिये; इसी से 'गर्गकुलम्' इत्यादि की सिद्धि हो जायेगी। इस तरह लक्ष्य सिद्ध हो जा रहा था, फिर आचार्य यहाँ यञादिग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**आङ्गस्य कुलमित्यादि**। एकवचनविग्रह तथा द्विवचनविग्रह तत्पुरुष जो यञादि से पूर्व है, उस में प्रत्यय का लुक् न हो, इसके लिए यञादिग्रहण है।

प्रश्नभाष्य—**एकद्वयोरितीति**। वार्तिक में 'एकद्वयोः' ऐसा निवेश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**गर्गाणमिति**। 'गर्गाणां कुलम्' इत्यादि बहुवचन से विग्रह होने पर नित्य ही यञ् आदि का लुक् हो, एतदर्थ एकवचन तथा द्विवचन में विकल्प से लुग्विधान के लिए 'द्व्येकयोः पद का ग्रहण है।

प्रश्नभाष्य—**तत्पुरुष इति**। वार्तिक में 'तत्पुरुषे' पद का निवेश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**गार्ग्यस्य समीपमिति**। सामीप्य अर्थ में अव्ययीभाव होने पर 'उपगार्ग्यम्' में यञ् का लुक् न हो, एतदर्थ तत्पुरुषग्रहण है।

प्रश्नभाष्य—**षष्ठ्या इति**। वार्तिक में 'षष्ठ्याः' इस पद का निर्देश किस लिए है?

उत्तरभाष्य—**शोभनगार्ग्य इति**। 'शोभनश्चासौ गार्ग्यः, परमश्चासौ गार्ग्यः' इस विग्रह में विशेषणसमास होने पर यञ् का लुक् न हो, एतदर्थ 'षष्ठ्याः' पद का निर्देश है। {यञञोश्च}।

बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु २.४.६६

किमयं समुच्चयः प्राक्षु च भरतेषु चेति, आहो स्विद् भरत-विशेषणं प्राग्ग्रहणं-प्राञ्चो ये भरता इति। किं चातः? यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समुच्चयो भरतग्रहणमनर्थकम्। न ह्यत्र भरताः सन्ति। अथ प्राग्ग्रहणं भरतविशेषणम्? प्राग्ग्रहणमनर्थकम्। न ह्यप्राञ्चो भरताः सन्ति। एवं तर्हि समुच्चयः। ननु चोक्तं-'भरतग्रहणमनर्थकम्। न ह्यत्र भरताः सन्ती'ति। नाऽनर्थकम्। ज्ञापकार्थम्। किं ज्ञाप्यते? एतज्ज्ञापयत्याचार्यो-'ऽन्यत्र प्राग्ग्रहणे भरतग्रहणं न भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'इञः प्राचाम्'। भरतग्रहणं न भवति। औद्दालकिः पिता। औद्दालकायनः पुत्त्र इति।

पूर्व सूत्र से 'लुक्' २.४.५८ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'बह्वच् से पर में प्राच्यगोत्र तथा भरतगोत्र में वर्तमान इञ् प्रत्यय का लुक् हो'। जैसे प्राच्यगोत्र-'पन्नागारस्यापत्यानि पन्नागाराः'। यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् है। भरतगोत्र-'युधिष्ठिरस्यापत्यानि युधिष्ठिराः' कुरुलक्षण ण्य ४.१.१७२ प्रत्यय का बाध कर 'बाह्वादिभ्यश्च' ४.१.९६ से इञ् प्रत्यय है।

'प्राच्यभरतेषु' इस समस्तपद में द्वन्द्व तथा तत्पुरुष दोनों सम्भव है; अतः सन्देह होने से पूर्वपक्ष करते हैं-**किमयमिति**। 'प्राच्यभरतेषु' इस समुदित पद में इतरेतरयोगद्वन्द्व है, अथ वा 'प्राच्याश्च ते भरताः प्राच्यभरतास्तेषु' ऐसा विशेषणसमास होने से भरत में प्राच्य पद विशेषण है? दोनों ही पक्षों में दोष दिखाते हैं-**यदि समुच्चय इति**। यदि समुदाय में द्वन्द्व मानेंगे तो प्राक् में भरत नही है; अतः इस पक्ष में भरतग्रहण अनर्थक होगा। यहाँ गोबलिबर्दवत् सामान्य औरँ विशेष का भी द्वन्द्व मान रहे हैं। यदि तत्पुरुषसमासपक्ष में प्राक्पद को भरत का विशेषण मानेंगे तो भी प्राग्ग्रहण अनर्थक होगा। वह इस तरह कि व्यभिचारसम्भव होने पर ही विशेषण दिया जाता है। भरत प्राच्य ही हैं, अप्राच्य नहीं; अतः व्यावर्तक पद व्यर्थ है।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। प्रकृत पद में आप समुच्चय ही मानिये। इस पक्ष में आप ने जो भरतग्रहण का अनर्थक होना रूप दोष दिया था, वह नही रहेगा। यहाँ भरतग्रहण अनर्थक नहीं है, अपि तु ज्ञापकार्थ है। व्यर्थ पड कर भरतग्रहण ज्ञापन करेगा-'अन्यत्र सूत्रों मे प्राग्ग्रहण में भरतग्रहण नही करना पडता है'।

प्रश्नभाष्य—**किमेतस्येति**। इस ज्ञापन का क्या प्रयोजन है? ज्ञापनवादी-**इञः प्राचामिति**। अन्यत्र 'इञः प्राचाम्' २.४.६० सूत्र में भरत पद का ग्रहण नही करना पडता है। 'उद्दालको नाम भरतकुलोत्पन्नः, तस्यापत्यं गोत्रम् औद्दालकिः'। यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय है। 'औद्दालकेरपत्यं युवा' इस अर्थ में 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक् प्रत्यय है तथा यहाँ 'इञः प्राचाम्' २.४.६० से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इञ् प्रत्यय का लुक् है। {बह्वचः-}।

न गोपवनादिभ्यः २.४.६७

* गोपवनादिप्रतिषेधः प्राग्घरितादिभ्यः * **गोपवनादिभ्यः प्रतिषेधः प्राग्घरितादिभ्यो द्रष्टव्यः। हारितः हारितौ। बहुषु-हरिताः।**

पूर्व सूत्र से 'लुक्' २.४.५८ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ- 'गोपवनादिगण में पठित शब्दों से पर में गोत्रप्रत्यय का लुक् न हो'। गोपवनादिगण बिदाद्यन्तर्गण ४.१.१०४ है। 'गौपवनाः, शैग्रवाः'। यहाँ 'यञञोश्च' २.४.६४ से प्राप्त अञ्लुक् का निषेध है। बिदाद्यन्तर्गण होने पर भी गणपाठसमाप्ति तक नहीं है, अपि तु हरितादि से पूर्व तक ही गोत्रप्रत्यय का लुङ्निषेध कहना चाहिये। इससे 'हारितः, हारितौ' का बहुवचन में अञ्लुक् हो जायेगा। विग्रहस्पष्ट करने के लिए एकवचन और द्विवचन का भी 'हारितः, हारितौ' ऐसा निर्देश है। बहुवचन में अञ्लुक् होने पर 'हरिताः' ऐसा रूप है। {न गोप-}।

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे २.४.६९

किमर्थमद्वन्द्व इत्युच्यते? द्वन्द्वे मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। इष्यते एव द्वन्द्वे-भ्राष्ट्रककपिष्ठलाः। भ्राष्ट्रकिकापिष्ठलय इति। अत उत्तरं पठति- * अद्वन्द्व इति द्वन्द्वाऽधिकारनिवृत्त्यर्थम् * **अद्वन्द्व इत्युच्यते। किं प्रयोजनम्? 'द्वन्द्वाऽधिकारनिवृत्त्यर्थम्'। द्वन्द्वाऽधिकारो निवर्त्यते, तस्मिन्निवृत्तेऽविशेषेण द्वन्द्वे चाऽद्वन्द्वे च भविष्यति।** {उपकादिभ्यो}।

सूत्रार्थ—'उपकादिगणपठित शब्दों से पर में बहुत्व अर्थ में शक्त गोत्रप्रत्यय का द्वन्द्व तथा अद्वन्द्व इन दोनों में लुक् हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'अद्वन्द्वे' ऐसा निर्देश क्यों करते हैं? लुग्विकल्प के इष्ट होने से यह प्रश्न है। एकदेशी-**द्वन्द्वे मा भूदिति**। द्वन्द्व में गोत्रप्रत्यय का लुक् न हो, एतदर्थ 'अद्वन्द्वे' यह प्रतिषेधवचन है। आक्षेपक-**नैतदस्तीति**। द्वन्द्व में भी गोत्रप्रत्यय का विकल्प से लुक् इष्ट है। गोत्रप्रत्यय का लुक् होने पर 'भ्राष्ट्रककपिष्ठलाः' तथा अलुक्पक्ष में 'भाष्ट्रकिकापिष्ठलयः' रूप है। इसी उदाहरण से तिककितवादिगण में भ्राष्ट्रककपिष्ठल पद का अनार्षपाठ लक्षित होता है।

समाधानभाष्य—**अद्वन्द्व इतीति**। 'अद्वन्द्वे' ऐसा कहने से द्वन्द्वाधिकार की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निवृत्ति होती है। यहाँ अधिकारशब्द के द्वारा स्वरितत्वनिमित्त शास्त्रीय अधिकार का ग्रहण नहीं होता है, अपि तु पूर्वसूत्र 'तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे' २.४.६८ में पठित द्वन्द्वशब्द गृहीत है। पूर्वसूत्र में निर्दिष्ट द्वन्द्वशब्द में स्वरितत्वप्रतिज्ञा नहीं है; अपि तु अपेक्षालक्षण लौकिक अधिकार की निवृत्ति होती है। यहाँ द्वन्द्वशब्द से तद्विषयक अधिकार वाच्य है। नञ्शब्द के द्वारा उसी का निषेध द्योत्य है। उस तरह प्रकृतसूत्रस्थ अद्वन्द्वशब्द से-यहाँ नञ् की अपेक्षा नहीं है, उसकी अनपेक्षा होने पर सामान्यरूप से द्वन्द्व तथा अद्वन्द्व में विकल्प से लुक् होता है। {उपकादिभ्योऽ-}।

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् २.४.७०

* आगस्त्यकौण्डिन्ययोः प्रकृतिनिपातनं कर्तव्यम् * **आगस्त्यकौण्डिन्ययोः प्रकृतिनिपातनं कर्तव्यम्। 'अगस्ति' 'कुण्डिन'जित्येतौ प्रकृत्यादेशौ भवत इति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्?** * लुक्प्रतिषेधे वृद्ध्यर्थम् * **लुक्प्रतिषेधे वृद्धिर्यथा स्यात्** * प्रत्ययान्तनिपातने हि वृद्ध्यभावः * **प्रत्ययान्तनिपातने हि सति वृद्ध्यभावः स्यात्। आगस्तीयाः कौण्डिना इति। यदि प्रकृतिनिपातनं क्रियते, केनेदानीं प्रत्ययस्य लोपो भविष्यति?** * अधिकारात् प्रत्ययलोपः * **अधिकारात् प्रत्ययलोपो भविष्यति।**

सूत्रार्थ—'आगस्त्य तथा कौडिन्य इन दोनों का अवयव गोत्रप्रत्यय अण् तथा यञ् का बहुवचन में लुक् हो तथा अवशिष्ट प्रकृतिभाग का यथासंख्य अगस्ति तथा कुण्डिनच् यह आदेश हों'। अगस्तयः, कुण्डिनाः।

वार्तिक—**आगस्त्यकौडिन्ययोरिति**। सूत्र में अण्प्रत्ययान्त आगस्त्य तथा यञ्प्रत्ययान्त कौडिन्यशब्द से षष्ठी उच्चरित है; अतः प्रत्ययान्त स्थानी हो रहा है। इससे प्रत्ययान्त को उक्त आदेश होना चाहिये। प्रकृतिमात्र को ही उक्त आदेश हो, प्रत्ययान्त को नहीं, इसके लिए वार्तिक का आरम्भ करना चाहिये। परन्तु इस पक्ष में 'अगस्तीनां छात्राः' में अवृद्ध होने से 'छ' प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। यहाँ 'छ' प्रत्यय भी हो सके, एतदर्थ प्रकृतिनिपातन है। इससे प्रकृति को ही आदेशनिपातन करना चाहिये। इसका परिहार करते हैं-**लुक्प्रतिषेध इति**। 'गोत्रेऽलुगचि' ४.१.८९ से लुक्प्रतिषेध होने पर तत्सन्नियोगशिष्ट आदेश का भी अभाव होगा; अतः वृद्धसंज्ञक आगस्त्य शब्द से 'छ' सिद्ध हो जा रहा है। **प्रत्ययान्तनिपातने हीति**। यदि प्रत्ययान्त को आदेश कहेंगे तो 'आगस्तीयाः, कौण्डिनाः' में आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच् को वृद्धि नहीं हो सकेगी। प्राश्निक आचार्य-**यदि प्रकृतिनिपातनमिति**। यदि प्रत्यय का परित्याग कर अगस्त तथा कुण्डिन् इस प्रकृतिमात्र को अगस्ति तथा कुण्डिनच् आदेश करेंग तो जो यहाँ उक्त दोनों षष्ठ्यन्तपदों में दो गोत्रप्रत्यय क्रमशः अण् तथा यञ् प्रत्यय है, उसका लुक् कैसे होगा? उत्तरपाक्षिक आचार्य-**अधिकारादिति**। पूर्वसूत्र से 'लुक्' २.४.५८ की अनुवृत्ति प्रकृत सूत्र में है। 'लुक्' यह प्रत्यय के अदर्शन की संज्ञा है; अतः गोत्रप्रत्यय अण् तथा यञ् का लुक् होगा।

तत्तर्हि प्रकृतिनिपातनं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम् * योगविभागात् सिद्धम् * **योगविभागः करिष्यते 'आगस्त्यकौण्डिन्ययोः'। आगस्त्य-कौण्डिन्ययोर्बहुषु लुग्भवति। ततः 'अगस्तिकुण्डिनच्'। अगस्ति-कुण्डिनजित्येतौ च प्रकृत्यादेशौ भवत आगस्त्यकौण्डिन्ययोरिति। एवमपि प्रत्ययान्तयोरेव प्राप्नोति। प्रत्ययाद्धि भवान् षष्ठीम् उच्चारयति-'आगस्त्यकौण्डिन्ययो'रिति। नैष दोषः। यथापरिभाषितं प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपो भवन्तीति प्रत्ययस्यैव भविष्यति, अवशिष्टस्यादेशौ भविष्यतः॥**

प्राश्निक आचार्य—**तत्तर्हीति**। क्या प्रकृतिमात्र को आदेश हो, इसके लिए उक्त वार्तिक का आरम्भ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्यमिति**। अतिरिक्तवार्तिकवचन नहीं करना चाहिये। प्रकृतसूत्र का योगविभाग करेंगे। 'आगस्त्यकौण्डिन्ययोः' यह प्रथमयोग होगा। अर्थ होगा-'आगस्त्य और कौडिन्य का अवयव गोत्रप्रत्यय को बहुवचन में शक्त होने पर लुक् हो'। दूसरा योग 'अगस्तिकुण्डिनच्' होगा। अगस्ति और कुण्डिनच् यह दोनों आदेश होंगे। वे आगस्त्य तथा कौडिन्य को होंगे। आक्षेपक-**एवमपीति**। इस योगविभाग में भी 'आगस्त्यकौडिन्ययोः' में षष्ठी उच्चरित है; अतः प्रत्ययान्त को ही उक्त आदेश होंगे।

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। लुक्, श्लु तथा लुप् यह तीनों प्रत्यय की संज्ञा है; अतः प्रत्यय का लुक् हो जायेगा। प्रत्यय का लुक् होने पर अवशिष्ट प्रकृतिमात्र को ही क्रमशः अगस्त को अगस्ति तथा कुण्डिन को कुण्डिनच् आदेश होगा। {आगस्त्यकौडिन्ययोर-}।

यङोऽचि च २.४.७४

* ऊतोऽचि * **ऊतोऽचीति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-सनीस्रसो**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दनीध्वस इति। अथ 'ऊत' इत्युच्यमाने इह कस्मान्न भवति-योयूयः रोरूयः? विहितविशेषणम् ऊकारग्रहणम्-ऊकारान्ताद् यो विहित इति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। इष्टमेवैतत् संगृहीतं, सनीस्रंसो दनीध्वंस इत्येव भवितव्यम्। {यङोऽचि च}।

सूत्रार्थ—'अच्प्रत्यय पर रहते यङ् का लुक् हो'। सूत्र में 'च' पद का निर्देश है; अतः 'अच् प्रत्यय के नहीं रहने पर भी कहीं यङ् का बाहुलकात् लुक् हो', यह भी अर्थ है।

वार्तिक—**ऊतोऽचीति**। ऊदन्तधातु से पर में विहित यङ् प्रत्यय का भी अच् पर रहते लुक् कहना चाहिये। इससे स्रंसू धा.पा.७५४, ध्वंसू धा.पा.७५५ धातु से यङ् प्रत्यय का अच् ३.१.१३४ प्रत्यय पर रहते लोप कहना चाहिये। यदि यहाँ लुक् कहते तो 'न लुमताङ्गस्य' १.१.६३ इस प्रत्ययलक्षणप्रतिषेध से नलोप नहीं हो सकता था; अतः यहाँ यङ् का लोप कहा है। आक्षेपक-**अथ ऊत इतीति**। यदि ऊत् से पर में अच् प्रत्यय पर रहते यङ् का लोप कह रहे हैं तो यु मिश्रणेऽमिश्रणे च धा.पा.१०३३, रु शब्दे धा.पा.१.०३४ धातु भी उदन्त है। उससे पर में यङ् होकर 'योयूयः, रोरूयः' रूप है। यहाँ अच्प्रत्ययपरता भी है; फिर यहाँ यङ् का लोप क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**विहितविशेषणमिति**। ऊदन्त से विहित यङ् का ही लोप होता है। यहाँ ह्रस्वान्त उदन्त से यङ् विहित है तथा बाद में दीर्घ हुआ है; अतः यहाँ यङ्लोप नहीं होगा, अपि तु यङ्लोप ही होगा। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या 'सनीस्रसः, दनीध्वसः' की सिद्धि के लिए 'ऊतोऽचि' वार्तिक का आरम्भ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। यहाँ यङ् का लुक् ही करना चाहिये तथा 'न लुमताङ्गस्य' १.१.६३ इस निषेध से उपधानलोप का वारण करना चाहिये। इससे 'सनीस्रंसः, दनीध्वंसः' यही रूप होगा, 'सनीस्रसः, दनीध्वसः' नहीं। {यङोऽचि-}।

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २.४.७७

* गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम् * **गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणं कर्तव्यम्। इणो यो गाशब्दः, पिबतेर्यः पाशब्द इति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-अगासीन्नटः, अपासीच्छत्रमिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। इणो ग्रहणे तावद् वार्तम्। निर्देशादेव व्यक्तं 'लुग्वि-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करणस्य ग्रहण'मिति। पाग्रहणे चाऽपि वार्तम्। उक्तमेतत्-'सर्वत्रैव पाग्रहणेऽलुग्विकरणग्रहण'मिति।

पूर्व सूत्र से 'लुक्' २.४.५८ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'गाति, स्था, घु, पा तथा भू धातु से पर परस्मैपद प्रत्यय पर रहते सिच् का लुक् हो'।

अतिव्याप्तिवारण के लिए वार्तिक का आरम्भ करते हैं—**गापोर्ग्रहण इति**। इण् गतौ धा.पा.१०४५ को गा आदेश होता है, उसी का श्तिप्निर्देश 'गाति' ऐसा है। एवं पा पाने धा.पा.९२५ धातु जिसका पिब आदेश होता है, उसी का प्रकृत में ग्रहण करना चाहिये। इससे जहाँ इण्स्थानिक 'गा' नहीं है तथा पिब आदेश का स्थानी पा धातु नहीं है, वहाँ 'अगासीत्, अपासीत्' में सिच् का लुक् नहीं होगा।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या अतिव्याप्तिवारण के लिए उक्त वार्तिक का निर्देश करना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। अतिव्याप्तिवारण के लिए उक्त वार्तिक का आरम्भ नहीं करना चाहिये। लुग्विकरण तथा अलुग्विकरण इन दोनों की एकसाथ प्राप्ति होने पर लुग्विकरण का ही ग्रहण होता है, अलुग्विकरण का नहीं, इसके लिए श्तिप्प्रत्यय के साथ 'गाति' यह आचार्य का निर्देश ही काफी है। यहाँ लुग्विकरण का निर्देश कर रहे हैं, यह निर्देश से ही स्पष्ट है। 'पा'ग्रहण के लिए भी वार्तिकनिर्देश नहीं करना चाहिये। इसके लिए 'लुग्विकरणालुग्विकरण-योरलुग्विकरणस्य ग्रहणम्' इस परिभाषा के द्वारा इससे पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है। इससे 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' ६.४.६६ सूत्र में भी पा धातु अलुग्विकरण ही लिया जायेगा। इसको 'सर्वत्रैव' पद से स्पष्ट किया है। {गातिस्था-}।

तनादिभ्यस्तथासोः २.४.७९

* तथासोरात्मनेपदवचनम् * **तथासोरात्मनेपदस्य ग्रहणं कर्तव्यम्। आत्मनेपदं यौ तथासाविति वक्तव्यम्** * एकवचनग्रहणं वा * **अथ वैकवचने ये तथासी इति वक्तव्यम्। तच्चाऽवश्यमन्यतरत् कर्तव्यम्** * अवचने ह्यनिष्टप्रसङ्गः * **अनुच्यमाने ह्येतस्मिन्ननिष्टं प्रसज्येत। अतनिष्ट यूयम् असनिष्ट यूयमिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। यद्यपि तावदयं तशब्दो दृष्टापचारोऽस्त्यात्मनेपदम्, अस्त्येव परस्मैपदम्, अस्त्येकवचनम्, अस्ति बहुवचनम्। अयं न खलु थास्शब्दोऽदृष्टा-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पचार आत्मनेपदमेकवचनमेव च। तस्याऽस्य कोऽन्यः सहायो भवितुमर्हत्यन्यदत आत्मनेपदादेकवचनाच्च तद्यथा-'अस्य गोर्द्वितीये-नाऽर्थ' इति गौरेवाऽऽनीयते नाऽश्वो न गर्दभ इति। {तनादिभ्यस्त-थासोः} ।

'लुक्' २.४.५८, 'सिचः' २.४.७७ तथा 'विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः' २.४.७८ से 'विभाषा' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'तनादि से पर में त और थास् प्रत्यय पर रहते विकल्प से सिच् का लुक् हो'।

वार्तिक—**तथासोरिति**। त और थास् का ग्रहण में आत्मनेपद का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् आत्मनेपद जो त और थास् वही लोप में निमित्त हो। यहाँ अन्य पक्ष भी बताते हैं-**एकवचनग्रहणं वेति**। अथ वा एकवचन जो त और थास् प्रत्यय, ऐसा कहना चाहिये। उक्त दोनों वार्तिकों में किसी एक का निर्देश अवश्य करना चाहिये। उक्त दोनों वार्तिकों में किसी एक का निर्देश नहीं करेंगे तो इसमें जो दोष होगा, उसे बताते हैं-**अवचने हीति**। षणु दाने धा. पा.१४६४ धातु परस्मैपदी है। उससे लुङ्मध्यमपुरुष बहुवचन में 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' ३.४.१०१ के द्वारा 'थ' को 'त' आदेश होने पर तथा तनु विस्तारे धा.पा.१४६३ धातु से लुङ्मध्यमपुरुष बहुवचन में 'असनिष्ट, अतनिष्ट' में सिच् के लुक् की आपत्ति होगी। परन्तु उक्त दोनों वार्तिकों में किसी एक को मान लेने पर 'असनिष्ट, अतनिष्ट' में सिच् के लुक् की आपत्ति नहीं होती है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। क्या उक्त दोनों वार्तिकों में किसी एक का निर्देश किया जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नही है। आचार्य 'तथासोः' ऐसा कह रहे हैं। 'त' प्रत्यय आत्मनेपद एकवचन में तथा परस्मैपद ङित् लकारों में मध्यमपुरुषबहुवचन 'थ' को 'त' आदेश होकर बहुवचन में भी 'त' प्रत्यय मिलता है। इस तरह 'त' प्रत्यय आत्मनेपद एकवचन में तथा परस्मैपदबहुवचन में है। परन्तु थास् प्रत्यय मात्र आत्मनेपद एकवचन में ही है; अन्यत्र कही पर भी इसकी उपलब्धता नहीं है। उस आत्मनेपदी एकवचन थास् का आत्मनेपदी एकवचन 'त' प्रत्यय ही सहायक हो सकता है; बहुवचन तथा परस्मैपदी 'त' प्रत्यय नही। जैसे 'गो का सहायक ले आवो' ऐसा कहने पर दूसरा गो ही लाया जाता है, अन्य नही। वैसे आत्मनेपद एकवचन थास् प्रत्यय का **द्वितीय**=सकायक आत्मनेपद एकवचन ही हो सकता है, अन्य नही। इस तरह सहचरितन्याय से आत्मनेपद एकवचन 'त' का ग्रहण हो जायेगा, इसी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए अतिरिक्तवचन नहीं करना चाहिये।{तनादि-}।

आमः २.४.८१

* आमो लेर्लोपे लुङ्लोटोरुपसंख्यानम् * **आमो लेर्लोपे लुङ्लोटोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। तां वैजवापयो विदामक्रन्। अत्र भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। लिग्रहणं निवर्तिष्यते। यदि निवर्तते प्रत्ययमात्रस्य लुक् प्राप्नोति। इष्यत एव प्रत्ययमात्रस्य। आतश्चेष्यते, एवं ह्याह 'कृञ्चाऽनुप्रयुज्यते लिटी'ति। यदि च प्रत्ययमात्रस्य लुग्भवति तत एतदुपपन्नं भवति** * आमन्तेभ्यो णलः प्रतिषेधः * **आमन्तेभ्यो णलः प्रतिषेधो वक्तव्यः। शशाम ततास। वृद्धौ कृतायामाम इति लुक् प्राप्नोति।**

सूत्रार्थ—'आम् से उत्तर में लि का लुक् हो'।

वार्तिक—**आमो लेर्लोप इति**। आम् से उत्तर में लि का लुग्विधि में लुङ् तथा लोट् का भी लुक् कहना चाहिये। इससे 'विदामक्रन्' में लोट् का लुक् होता है तथा पुनः लेट्परक कृ का अनुप्रयोग होने पर विद धातु का 'विदामक्रन्' रूप होता है। इसी तरह लोट् में भी आम् से उत्तर में लोट् का लुक् तथा लोट्परक कृ का अनुप्रयोग होने पर विद धातु का 'विदाङ्कुर्वन्तु' रूप भी सिद्ध हो जाता है। अन्य आचार्य-**तत्तर्हीति**। क्या आम् से उत्तर में लुङ् तथा लोट् का लुक् कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त वार्तिकनिर्देश की आवश्यकता नहीं है। हम पूर्व सूत्र 'मन्त्रे घसह्वरणश-' २.४.८० से 'लेः' पद की अनुवृत्ति नहीं करेंगे। 'लेः' की निवृत्ति होने पर प्रत्ययमात्र का लुक् प्राप्त होगा; परन्तु वह इष्ट है; अतः आचार्य 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' ३.१.४० कह रहे हैं। वह प्रत्ययमात्र का लुक् होने पर ही उपपन्न होता है। प्रत्ययमात्र कहने से तरप् आदि का भी लुक् समझना चाहिये। वार्तिक-**आमन्तेभ्यो णल इति**। आमन्त से उत्तर में प्रत्यय का लुग्विधि में णल् के लुक् का निषेध कहना चाहिये। शम् तथा तम् धातु से उत्तर में लिट्स्थानिक तिप् को णलादेश होने पर णिन्निमित्तक उपधावृद्धि होगी। इस तरह 'शशाम्+अ, ततम्+अ' इस दशा में आम् से उत्तर में 'अ' प्रत्यय है; उसका लुक् प्राप्त हो रहा है, जिसका प्रतिषेध कहना चाहिये। भाष्यकार णल्लुक् के निषेध का खण्डन करते हैं-**आमन्तेभ्य इति**। अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा से 'शशाम, ततास' में णल्लुक् का वारण हो जायेगा। अर्थवान् आम्शब्द का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण होगा। 'शशाम, ततास' में आम् एकदेश है। समुदाय ही अर्थवान् होता है, उसका एकदेश अनर्थक होता है। शास्त्र की प्रवृत्ति अर्थवान् में ही होती है, अनर्थक में नहीं; अतः 'शशाम, ततास' में एकदेश आम् के अनर्थक होने से वह लुक् में निमित्त नहीं हो सकेगा।

* आमन्तेभ्योऽर्थवद्ग्रहणाण् णलोऽप्रतिषेधः * **आमन्तेभ्योऽर्थवद्ग्रहणाण् णलोऽप्रतिषेधः। अनर्थः प्रतिषेधोऽप्रतिषेधः। लुक् कस्मान्न भवति-शशाम ततामेति? 'अर्थवद्ग्रहणात्'। अर्थवत आम्शब्दस्य ग्रहणम्, न चैषोऽर्थवान्** * आमन्तेभ्योऽर्थवद्ग्रहणाण् णलोऽप्रतिषेध इति चेदमः प्रतिषेधः * **आमन्तेभ्योऽर्थवद्ग्रहणाण् णलोऽप्रतिषेध इति चेदमः प्रतिषेधो वक्तव्यः। आम** * उक्तं वा * **किमुक्तम्? 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्ये'ति।**

आक्षेपक—**आमन्तेभ्योऽर्थवदिति**। यदि आमन्तग्रहण में अर्थवद् का ग्रहण कर 'शशाम, ततास' में णल्लुक् की आपत्ति का वारण कर भी लेते हैं, तब भी अम धा.पा.१७२१ धातु अर्थवान् है। उसका लिट् में उपधावृद्धि होकर आम् भी अर्थवान् है। यहाँ आम् से उत्तर में णल्प्रत्यय का ग्रहण होगा; अतः इसका निषेध कहना चाहिये। भाष्यकार इस वार्तिक का भी खण्डन करते हैं-**उक्तं वेति**। 'सम्बन्धद्वय से जन्यविधि अपने सम्बन्धी का विघातक नहीं होती है' यह मैं पहले भी बता आया हूँ। यहाँ णित् णल् को निमित्त मान कर उपधावृद्धि है। वही आम् णल्लुक् का निमित्त नहीं हो सकेगा।

किं पुनर्लुगादेशानामपवादः, आहो स्वित्-कृतेष्वादेशेषु भवति * लुगादेशापवादः * **लुक्-आदेशानाम् अपवादः** * तिङ्कृताऽभावस्तु * **तिङ्कृतस्य त्वभावः। कस्य। पदत्वस्य** * सुबन्तपदत्वात् सिद्धम् * **'सुबन्तं पद'मिति पदसंज्ञा भविष्यति।**

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। यहाँ आम् से उत्तर में प्रत्यय का लुक् बता रहे हैं। क्या यह लुक् लकारस्थानिक आदेश होने पर तिङ् आदि का होगा, अथ वा आदेश से पूर्व लकार आदि का लुक् होगा? अर्थात् यहाँ लुक् आदेश का अपवाद है, अथ वा आदेशोत्तर लुक् की प्राप्ति होगी?

उत्तरभाष्य—**लुगादेशापवाद इति**। आदेशों का अपवाद लुक् है। यद्यपि यहाँ आदेश होने पर भी लुक् हो सकता था तथा आदेश से पूर्व भी लुक् हो सकता था, फिर भी तक्रकौण्डिन्यन्याय से जैसे सम्भव होने पर भी तक्रदान से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दधिदान का बाध होता है, वैसे यहाँ भी सम्भव होने पर भी लुक् से आदेश का बाध हो जायेगा। आक्षेपक-**तिङ्कृताऽभावस्त्विति**। 'सुप्तिङन्तं पदम्' १.४.१४ से पदसंज्ञा सुबन्त तथा तिङन्तनिमित्तक होती है। यदि यहाँ लकार के स्थान में तिङादेश होने से पूर्व ही लकार का लुक् करेंगे तो तिङन्त का अभाव होने से तिङन्त को निमित्त मान कर होने वाली पदसंज्ञा नहीं हो सकेगी। इससे तिङ्कार्य निघात आदि की अप्राप्ति होने से अनिष्टप्रसङ्ग होगा। यहाँ अन्य प्रकार से भी पदत्व की स्थापना करते हैं-**सुबन्तपदत्वादिति**। सुबन्त की भी पदसंज्ञा होती है; अतः आमन्त में सुबन्तनिमित्तक पदसंज्ञा हो जायेगी।

कथं स्वाद्युत्पत्तिः? * लकारस्य कृत्त्वात् प्रातिपदिकत्वं तदाश्रयं प्रत्ययविधानम् * **लकारः कृत्, 'कृत् प्रातिपदिक'मिति प्रातिपदिकसंज्ञा, तदाश्रयं प्रत्ययविधानम्, प्रातिपदिकाश्रयत्वात् स्वाद्युत्पत्तिर्भविष्यति। यद्येवं सुपः श्रवणं प्राप्नोति। 'अव्यया'दिति लुग्भविष्यति। कथमव्ययत्वम्?** * अव्ययत्वं मकारान्तत्वात् * **कृदन्तं मान्तमव्ययसंज्ञं भवतीत्यव्ययसंज्ञा भविष्यति। स्वरः कथम्-यत्प्रकारयाञ्चकार?** * स्वरः कृदन्तप्रकृतिस्वरत्वात् * **'कृदन्तमुत्तरपदं प्रकृतिस्वरं भवती'त्येष स्वरो भविष्यति।** * तथा च निघाताऽनिघातसिद्धिः * **तथा च निघाताऽनिघातसिद्धिर्भवति। चक्षुष्कामं याजयाञ्चकर। 'तिङ्ङतिङ' इति तस्य चाऽनिघातः, तस्माच्च निघातः सिद्धो भवति** * नञा तु समासप्रसङ्गः * **नञा तु समासः प्राप्नोति-न कारयाम् न हारयाम्। 'नञ् सुबन्तेन सह समस्यत' इति समासः प्राप्नोति** * उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्? असामर्थ्यादिति। नाऽत्र नञ आमन्तेन सामर्थ्यम्। केन तर्हि? लिङन्तेन। न चकार कारयाम्, न चकार हारयामिति।** {आमः}।

आक्षेपक—**कथमिति**। आमन्त से सुप्रत्ययों की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तरभाष्य—**लकारस्येति**। लकार की कृत्संज्ञा होती है; अतः कृदन्त होने से लकारान्त की पदसंज्ञा हो जायेगी। एवं पदाश्रय स्वादिप्रत्ययों का विधान हो जायेगा। आक्षेपक-**यद्येवमिति**। यदि लकारान्त कृदन्त की पदसंज्ञा कर स्वादि की उत्पत्ति करते हैं तब आमन्त से उत्तर में स्वादि का श्रवण होना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**अव्ययादिति**। 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से सुब्लुक् हो जायेगा; अतः यहाँ आमन्त से उत्तर में स्वादि के श्रवण की आपत्ति नहीं होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**कथमव्ययत्वमिति**। आमन्त की अव्ययसंज्ञा कैसे होती है?

उत्तरभाष्य—**मकारान्तत्वादिति**। 'कृन्मेजन्तः' १.१.३९ से मान्त कृत् की अव्ययसंज्ञा होती है। आम् यह मान्त कृत् है; अतः इसकी अव्ययसंज्ञा हो जायेगी।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**स्वरः कथमिति**। 'यत्प्रकारयाञ्चकार' में 'प्र'शब्द को अनुदात्तत्व इष्ट है, जो तिप् आदि के लुक् होने पर 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ से ही सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

उत्तरभाष्य—**स्वरः कृदन्तप्रकृतीति**। 'कारयाम्' के साथ 'प्र'शब्द का 'कुगतिप्रादयः' २.२.१८ से समास करने पर समासस्वर तथा अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर यह दोनों स्वर प्राप्त है, एवं कृत्स्वर भी प्राप्त है। यहाँ शेषनिघात के द्वारा गति का अनुदात्तत्व सिद्ध हो जाता है। कृदन्त उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है, यह नियम है। **तथा च**=आमन्त के तिङ्न्त नहीं होने से कहीं पर **निघात**=सर्वानुदात्त तथा अनिघात सिद्ध हो जाता है। 'अतिङ्न्त से पर में तिङ्न्त का निघात हो' यह 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ का अर्थ है। 'चक्षुष्कामं याजयाञ्चकर' में 'याजयाम्' यह अतिङ्न्त है; अतः अतिङ्न्त 'चक्षुष्कामम्' से उत्तर में अतिङ्न्त 'याजयाम्' को निघात नहीं होता है, एवम् अतिङ्न्त 'याजयाम्' से उत्तर में तिङ्न्त 'चकर' पद का निघात हो जाता है, यह आमन्त को सुबन्त मानने का फल है। आक्षेपक-**नञा त्विति**। आमन्त को सुबन्त मानने पर 'न कारयाम्, न हारयाम्' में नञ्समास प्राप्त होकर 'अकारयाम्, अहारयाम्' यह अनिष्ट रूप प्राप्त हो रहा है।

उत्तरभाष्य—**उक्तं वेति**। 'समर्थो का समास होता है' यह कहा जा चुका है। यहाँ आमन्त के साथ नञ् का सामर्थ्य नही है, अपि तु तिडन्त के साथ सामर्थ्य है' अतः यहाँ नञ्समास नहीं होगा। {आमः}।

अव्ययादाप्सुपः २.४.८२

* अव्ययादापो लुग्वचनानर्थक्यं लिङ्गाऽभावात् * **अव्ययादापो लुग्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'लिङ्गाऽभावात्'। अलिङ्गमव्ययम्। किमिदं भवान् सुपो लुकं मृष्यत्यापो लिङ्गं न मृष्यति। यथैव ह्यलिङ्गमव्ययम् एवमसङ्ख्यमपि? सत्यमेवमेतत्। प्रत्ययलक्षणमाचार्यः प्रार्थयमानः सुपो लुकं मृष्यति, आपः पुनरस्य लुकि सति न किञ्चिदपि प्रयोजनमस्ति। उच्यमानेऽप्येतस्मिन् स्वाद्युत्पत्तिर्न प्राप्नोति। किं कारणम्? 'एकत्वादीनाम् अभावात्'। एकत्वादिष्वर्थेषु**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वादयो विधीयन्ते, न चैषाम् एकत्वादयः सन्ति। अविशेषेणोत्पद्यन्ते, उत्पन्नानां नियमः क्रियते। अथ वा प्रकृतानर्थानपेक्ष्य नियमः क्रियते। के च प्रकृताः? एकत्वादयः। एकस्मिन्नेवैकवचनं, न द्वयोर्न बहुषु। द्वयोरेव द्विवचनं, नैकस्मिन्न बहुषु। बहुष्वेव बहुवचनं, नैकस्मिन्न द्वयोरिति। अथ वाऽऽचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति 'उत्पद्यन्तेऽव्ययेभ्यः स्वादय' इति, यदयम्- 'अव्ययादाप्सुप' इति लुकं शास्ति।

सूत्रार्थ—'अव्यय से पर में आप् तथा सुप् का लुक् हो'।

आक्षेपक—**आपो लुग्वचनेति**। आचार्य यहाँ अव्यय से पर में आप् का लुक् करते हैं। आप् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में होता है। अव्यय अलिङ्ग होते हैं; अतः उससे स्त्र्यर्थक आप् प्रत्यय नहीं हो सकेगा; फिर उसका लुग्विधान व्यर्थ है। अन्य आक्षेपक-**किमिदं भवानिति**। आप यहाँ आप् प्रत्यय के लुक् पर आक्षेप कर रहे हैं; सुप् के लुक् पर भी आप को आक्षेप करना चाहिये था, उसे क्यों नहीं किया? अव्यय जैसे अलिङ्ग होता है, वैसे असंख्य भी होता है; अतः अलिङ्ग होने से जैसे अव्यय से पर में आप् प्रत्यय प्राप्त नहीं है वैसे असंख्य होने से संख्यावाचक सुप् भी प्राप्त नहीं है। अन्य आचार्य इस आक्षेप का समर्थन करते हैं-**सत्यमेवमिति**। अव्यय में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से पदत्वलाभ के लिए आचार्य सुप् का लुक् चाहते हैं। परन्तु आप् का लुक् होने पर भी लिङ्गबोध के लिए उसका अतिदेश आवश्यक नहीं है। इतर आक्षेपक-**उच्यमानेऽपीति**। 'अव्ययादाप्सुपः' इस सूत्र का निर्देश होने पर भी संख्यावाचक नहीं होने से अव्ययों से पर में सुप् प्रत्यय उत्पन्न नहीं हो पा रहा है। एकत्व आदि अर्थों में ही सु आदि प्रत्यय होते हैं। अव्ययपदों से एकत्व आदि अर्थों का बोध नहीं होता है; अतः उससे स्वादि उत्पन्न नहीं हो सकेंगे।

उत्तरभाष्य—**अविशेषेणति**। स्वादिविधिवाक्य वाक्यान्तरनिरपेक्ष है; अतः पहले सामान्यविवक्षा में ही आप् तथा सुप् दोनों प्रत्यय उत्पन्न हो सकते हैं। उत्पन्न प्रत्ययों का विधि है; अतः यहाँ लुग्विधान किया जा रहा है। 'उत्पन्नानां नियमः' इस भाष्य से अर्थनियमपक्ष लेंगे। अथ वा एकत्व आदि प्राप्त हैं, उनकी अपेक्षा कर यहाँ नियम करेंगे। नियमाकार बताते हैं-**एकस्मिन्निति**। एकत्व अर्थ में ही एकवचन हो, द्वित्व अथ वा बहुत्व में नही। द्वित्व अर्थ में ही द्विवचन हो, एकत्व अथ वा बहुत्व में नहीं। बहुत्व अर्थ में ही बहुवचन हो, एकत्व अथ वा द्वित्व अर्थ में नही। यहाँ सामान्यविवक्षा में अव्यय से पर में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सभी वचनों की प्राप्ति हो सकती है, उसकी अपेक्षा से नियम है। इससे सुब्लुग्विधान किया गया है। अन्य पक्ष में भी यहाँ समाधान करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा प्रकृतसूत्र का आरम्भ कर आचार्य स्पष्ट करते हैं कि अव्यय से पर में आप् तथा सुप् यह दोनों प्रत्यय होते हैं। {अव्ययादाप्-}।

नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २.४.८३

* नाऽव्ययीभावादत इति योगव्यवसानम् * **'नाऽव्ययीभावादत' इति योगो व्यवसेयः। नाऽव्ययीभावाद् अकारान्तात् सुपो लुग्भवति। ततः-'अम्त्वपञ्चम्याः' इति। किमर्थो योगविभगाः?** * पञ्चम्या अम्प्रतिषेधार्थम् * **पञ्चम्या अमः प्रतिषेधो यथा स्यात्** * एकयोगे ह्युभयोः प्रतिषेधः * **एकयोगे ह्युभयोः प्रतिषेधः स्यात्। अमोऽलुकश्च। स तर्हि योगविभागः कर्तव्यः? न कर्तव्यः** * तुर्नियामकः * **तुः क्रियते, स नियामको भविष्यति-'अमेवाऽपञ्चम्या' इति।**

सूत्रार्थ—'अदन्त अव्ययीभाव से पर में आप् तथा सुप् का लुक् न हो', एवं पञ्चमी को छोड कर सुप् को अम् आदेश हो'।

वार्तिक—**नाऽव्ययीभावादत इति**। प्रकृतसूत्र का योगविभाग करना चाहिये। 'नाव्ययीभावादतः' यह प्रथमयोग होगा। अर्थ होगा-'अदन्त अव्ययीभाव से पर में सुप् का लुक् न हो'। दूसरा योग होगा-'अम्त्वपञ्चम्याः'। अर्थ होगा-'अदन्त अव्ययीभाव से उत्तर में पञ्चमी को छोड कर शेषविभक्तियों को अम् आदेश हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। आप इस सूत्र का योगविभाग क्यों कर रहे हैं? योगविभागवादी-**पञ्चम्या अम्प्रतिषेधेति**। योगविभाग करने पर मात्र पञ्चमी का ही अम्प्रतिषेध होता है। परन्तु यदि योगविभाग नहीं करते हैं तो सभी विभक्तियों का प्रतिषेध होता है तथा सभी विभक्तियों का लुक्प्रतिषेध भी होता है। अन्य आचार्य-**स तर्हीति**। क्या उक्त योगविभाग करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्य इति**। उक्त योगविभाग की आवश्यकता नहीं है। उक्त सूत्र में 'तु' पद का निर्देश किया है, वह नियामक होगा। इससे पञ्चमी को छोड कर शेष सभी विभक्तियों का अमादेश सिद्ध हो जायेगा।

* अमि पञ्चमीप्रतिषेधेऽपादानग्रहणम् * **अमि पञ्चमीप्रतिषेधेऽपादानग्रहणं कर्तव्यम्। अपादानपञ्चम्या इति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्?** * कर्मप्रवचनीययुक्तेऽप्रतिषेधार्थम् * **कर्मप्रवचनीययुक्ते मा भूद्-आ पाटलिपुत्रं वृष्टो देवः** * न वोत्तरपदस्य कर्मप्रवचनीययोगात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासात् पञ्चम्यभावः * न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'उत्तरपदस्य कर्मप्रवचनीययोगात्'। उत्तरपदमत्र कर्मप्रवचनीयुक्तम्। उत्तरपदस्य कर्मप्रवचनीययोगात्समासात् पञ्चमी न भविष्यति। यदा च समासः कर्मप्रवचनीययुक्तो, भवति तदा पञ्चमीप्रतिषेधः। तद्यथा-आ उपकुम्भात्। आ उपमणिकादिति।।

आक्षेपक—**अमि प्रतिषेध इति**। अपादानपञ्चमी का ही अम्प्रतिषेध कहना चाहिये। यदि सामान्यरूप से पञ्चमी को अमादेश का प्रतिषेध कहेंगे तो कर्मप्रवचनीय के योग में 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' २.३.१० से जो पञ्चमी हो रही है, अम्प्रतिषेध होने से 'आ पाटलिपुत्रं वृष्टो देवः' की असिद्धि होगी। यहाँ आङ् के योग में पञ्चमी है। यहाँ अपादान नहीं है; अतः उसको अमादेश होता है। भाष्यकार 'अमि पञ्चमीग्रहणेऽपादानग्रहणम्' का प्रतिषेध कर रहे हैं-**न वोत्तरपदस्येति**। उक्त वार्तिक नहीं पढना चाहिये। 'आ पाटलिपुत्रम्' यह समस्तस्थल है। यहाँ पञ्चमी उत्तरपद से विहित है, समास से नहीं। समास की प्रातिपदिकसंज्ञा होने से 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुप् का लुक् हो जायेगा। पुनः समास से सु प्रत्यय उत्पन्न होगा जिसको अमादेश होकर उक्त रूप हो जाता है। परन्तु जब समास से पञ्चमी श्रुत हो तब 'आ उपकुम्भात्' इत्यादि में पञ्चमी को अमादेश का निषेध कहना चाहिये। {नाऽव्ययीभावा-}।

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २.४.८४

* सप्तम्या ऋद्धिनदीसमाससङ्ख्यावयवेभ्यो नित्यम् * **सप्तम्यार्ऋद्धिनदीसमाससङ्ख्यावयवेभ्यो नित्यमिति वक्तव्यम्**। ऋद्धि-**सुमद्रं सुमगधम्**। ऋद्धि। नदीसमास-**उन्मत्तगङ्गं लोहितगङ्गम्**। संख्यावयव-**एकविंशतिभारद्वाजं, त्रिपञ्चाशद्गौतमम्**। {तृतीयासप्तम्यो}।

पूर्वसूत्र से 'अव्ययीभावादतोऽम्' २.४.८३ की अनुवृत्ति है। सूत्रार्थ-'अदन्त अव्ययीभाव से पर में तृतीया तथा सप्तमी को बहुलक अम् आदेश हो'। अपदिशम्, अपदिशेन। अपदिशम्, अपदिशे।

वार्तिक—**सप्तम्या इति**। ऋद्धि, नदीसमास तथा संख्यावयव अव्ययीभाव से उत्तर में सप्तमी को नित्य ही अम् आदेश कहना चाहिये। 'मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम्, मगधानां समृद्धिः सुमगधम्' में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि-' २.१.६ से अव्ययीभाव है। यहाँ सप्तमी का नित्य ही अव्ययीभाव है। 'उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन् देशे स उन्मत्तगङ्गं नाम देशस्तस्मिन्, लोहिता गङ्गा यस्मिन् देशे स लोहितगङ्गं नाम देशस्तस्मिन्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विग्रह में 'अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्' २.१.२१ के द्वारा अव्ययीभावसमास है। यहाँ सप्तमी को नित्य ही अम्भाव है। 'एकविंशतिभारद्वाजा वंश्याः, त्रिपञ्चाशद्गौतमा वंश्याः' इस विग्रह में 'संख्या वंश्येन' २.१.१९ के द्वारा अव्ययीभाव है। यहाँ भी सप्तमी को नित्य अम्भाव है। वस्तुतः बहुलग्रहण से लब्ध अर्थ का यहाँ वर्णनमात्र है, यह अपूर्व वार्तिक नहीं है। {तृतीया-}।

लुटः प्रथमस्य डारौरसः २.४.८५

* टितां टेरेविधेर्लुटो डारौरसः पूर्वविप्रतिषिद्धम् * **टितां टेरेविधेर्लुटो डारौरसो पूर्वविप्रतिषेधेन। टेरेत्वस्याऽवकाशः-पचते पचेते पचन्ते। डारौरसामवकाशः-श्वः कर्ता श्वः कतारौ श्वः कर्तारः। इहोभयं प्राप्नोतिश्वोऽध्येता श्वोऽध्येतारौ श्वोऽध्येतार इति। डारौरसो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन। स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः** * आत्मनेपदानां चेति वचनात् सिद्धम् * **आत्मनेपदानां च डारौरसो भवन्तीति वक्तव्यम्** * तच्च समसङ्ख्यार्थम् * **तच्चाऽवश्यमात्मनेपदग्रहणं कर्तव्यं समसंख्यार्थम्। सङ्ख्याताऽनुदेशो यथा स्यात्। अक्रियमाणे ह्यात्मनेपदग्रहणे षट् स्थानिनस्त्रय आदेशाः। वैषम्यात् सङ्ख्याताऽनुदेशो न प्राप्नोति। पूर्वविप्रतिषेधाऽर्थेन तावन्नार्थ आत्मनेपदग्रहणेन। इदमिह सम्प्रधार्यं-डारौरसः क्रियन्तां टेरेत्त्वमिति, किमत्र कर्तव्यम्? परत्वादेत्त्वम्।**

सूत्रार्थ—'लुट्स्थानिक प्रथमपुरुष को क्रमशः डा, रौ, रस् आदेश हो'।

विप्रतिषेधवादी—**टितां टेरेविधेरिति**। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' ३.४.७९ से टित् लुट् के स्थान में आदेश के टि को एत्व आदेश प्राप्त है, एवं प्रकृत सूत्र से डा, रौ, रस् आदेश भी प्राप्त है। 'पचते, पचेते, पचन्ते' में टि को एत्व चरितार्थ है तथा 'कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः' में 'तिप्, तस्, झि' को 'डा, रौ, रस्' आदेश चरितार्थ है। इङ् अध्ययने धा.पा.१०४६ धातु नित्य आत्मनेपदी है। इससे लुट्स्थानिक 'त, आताम्, झ' को टेरेत्व तथा 'डा, रौ, रस्' यह दोनों आदेश प्राप्त हो रहा है। यहाँ पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'डा, रौ, रस्' आदेश से टेरेत्वविधि का बाध होता हो जाता है।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। क्या यह पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। इस पूर्वविप्रतिषेध की आवश्यकता नही है। प्रकृतसूत्र के स्थान पर 'लुट आत्मनेपदानां प्रथमस्य च डारौरसः' ऐसा सूत्रपाठ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करेंगे। इससे लुट्स्थानिक आत्मनेपद को भी 'डा, रौ, रस्' आदेश ही होगा। 'च' पद से परस्मैपद का भी समावेश होगा तथा उसको भी 'डा, रौ, रस्' आदेश ही होगा। समसंख्यार्थ आदेश के लिए आत्मनेपदघटित सूत्रपाठ अवश्य करना चाहिये। यदि आत्मनेपदघटितसूत्रपाठ नहीं करेंगे तो परस्मैपद का 'तिप् तस्, झि' तथा आत्मनेपद का 'त, आताम्, झ' यह छह स्थानी हो रहे हैं; आदेश 'डा, रौ, रस्' यह तीन मात्र हो रहा है। इससे समसंख्यकविधि प्राप्त नहीं हो सकेगी। परन्तु आत्मनेपदग्रहण करने पर स्थानी तथा आदेश तीन-तीन ही होते हैं; अतः समसंख्यकविधि सिद्ध हो जा रही है। भाष्यकार पूर्वविप्रतिषेध का खण्डन कर रहे हैं-**पूर्वविप्रतिषेधार्थेनेति**। पूर्वविप्रतिषेध के लिए आत्मनेपद की आवश्यकता नहीं है। 'अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः' में 'त, आताम्, झ' को टेरेत्व तथा 'डा, रौ, रस्' यह दोनों आदेश प्राप्त हैं। यहाँ विचार किया जाये- पहले क्या हो? परत्ववादी आचार्य-**परत्वादिति**। 'डा, रौ, रस्' की अपेक्षा टेरेत्व ३.४.७९ पर है; अतः टेरेत्व ही होगा।

नित्या डारौरसः। कृतेऽप्येत्वे प्राप्नुवन्त्यकृतेऽपि प्राप्नुवन्ति। टेरेत्वमपि नित्यं, कृतेष्वपि डारौरस्सु प्राप्नोत्यकृतेष्वपि प्राप्नोति। अनित्यमेत्वम्। अन्यस्य कृतेषु डारौरस्सु प्राप्नोत्यन्यस्याऽकृतेषु प्राप्नोति। शब्दाऽन्तरस्य प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति।

इतर आचार्य—**नित्या इति**।'त, आताम्, झ' के टि को एत्व करने पर 'ते, आते, झे' को तथा एत्व नहीं करने पर 'त, आताम्, झ' को 'डा, रौ, रस्' आदेश प्राप्त हो रहा है; अतः कृताकृतसम्बन्धी होने से टेरेत्व की अपेक्षा 'डा, रौ, रस्' आदेश नित्य है। नित्यविधि से परविधि का बाध होता है- पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः' प.शे.३८। अन्य आचार्य-**टेरेत्वमपीति**। 'डा, रौ, रस्' आदेश होने पर तथा नहीं होने पर भी टि को एत्वविधि प्राप्त होने से टेरेत्व भी नित्य है। इतर आचार्य-**अनित्यमेत्वमिति**। आदेश नहीं होने पर प्रकृति को टेरेत्व प्राप्त है तथा आदेश होने पर 'डा, रौ, रस्' को टेरेत्व प्राप्त होने से यहाँ टेरेत्व शब्दान्तर को प्राप्तविधि हो गया; अतः टेरेत्व अनित्य है, नित्य नहीं।

डारौरसोऽप्यनित्याः, अन्यस्य कृते एत्वे प्राप्नुवन्त्यन्यस्याऽकृते। शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन्तोऽनित्या भवन्ति। उभयोरप्यनित्ययोः परत्वादेत्वम्। एत्वे कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानाड् डारौरसो भविष्यन्ति। समसंख्यार्थेन चापि नाऽर्थ आत्मनेपदग्रहणेन। स्थानेऽन्तरतमेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यवस्था भविष्यति। कुत आन्तर्यम्? अर्थतः। एकार्थस्यैकार्थो, द्व्यर्थस्य द्व्यर्थो, बह्वर्थस्य बह्वर्थः। अथ वा आदेशा अपि षडेव निर्दिश्यन्ते। कथम्? एकशेषनिर्देशात्। एकशेषनिर्देशोऽयम्।

अन्य आचार्य—**डारौरसोऽपीति**। एत्व करने पर 'ते, आते, झे' को तथा एत्व नहीं करने पर 'त, आताम्, झ' को 'डा, रौ, रस्' आदेश प्राप्त हो रहा है। इस तरह 'डा, रौ, रस्' भी शब्दान्तर को प्राप्त होने से अनित्य है। इस तरह दोनों के अनित्य होने पर पर एत्वशास्त्र की ही प्राप्ति होगी। एत्व कर लेने पर पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा 'ते, आते, झे' के स्थान पर क्रमशः 'डा, रौ, रस्' आदेश हो जायेगा। इस तरह आत्मनेपदग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रथमपुरुष आत्मनेपद तथा परस्मैपद इन दोनों में ही क्रमशः एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन यह तीन हैं तथा 'डा, रौ, रस्' भी तीन है; अतः समसंख्यक-विधि का लाभ हो जाने से एकवचन को एकवचन, द्विवचन को द्विवचन तथा बहुवचन को बहुवचन आदेश हो जायेगा। समसंख्यार्थ आत्मनेपदग्रहण का प्रत्याख्यान करते हैं-**अथ वेति**। अथ वा 'डारौरसः' में एकशेष होने से आदेश भी छह प्रकार का ही है। (विग्रह मूल में स्पष्ट है)।

अथैतस्मिन्नेकशेषनिर्देशे सति किमयं कृतैकशेषाणां द्वन्द्वो-डा च डा च-डा, रौ च रौ च रौ, रश्च रश्च रः, डा च रौ च रश्च डारौरस इति, आहो स्वित् कृतद्वन्द्वानामेकशेषः-डा च रौ च रश्च डारौरसः। डारौरसश्च डारौरसश्च डारौरसश्च डारौरस इति। किं चातः? यदि कृतैकशेषाणां द्वन्द्वोऽनिष्टं समसंख्यः प्राप्नोति। एकवचनद्विवचनयोर्डा प्राप्नोति, बहुवचनैकवचनयो रौ प्राप्नोति, द्विवचन-बहुवचनयोश्च रस्प्राप्नोति। अथ कृतद्वन्द्वानामेकशेषो न दोषो भवति। यथा न दोषस्तथाऽस्तु। किं पुनरत्र ज्यायः? उभयमित्याह। उभयं हि दृश्यते-बहु शक्तिकिटकं' 'बहूनि शक्तिकिटकानि'। 'बहु स्थाली-पिठरं' 'बहूनि स्थालीपिठराणि'। अथवाऽऽन्तर्यतो व्यवस्था भविष्यति। आन्तर्यादेकार्थस्यैकार्थो, द्व्यर्थस्य द्व्यर्थः, बह्वर्थस्य बह्वर्थ इति।

प्रश्नभाष्य—**अथैतस्मिन्निति**। इस एकशेषनिर्देश में क्या पहले एकशेष करके बाद में एकशेषों का द्वन्द्व किया गया है, अथ वा पहले द्वन्द्व करके द्वन्द्वपदों का एकशेष किया गया है? यदि पहले एकशेष करके बाद में द्वन्द्व करेंगे तो अनिष्ट समसंख्यविधि प्राप्त होगी। इस पक्ष में एकवचन तथा द्विवचन को 'डा' प्राप्त होगा, बहुवचन तथा एकवचन को 'रौ' आदेश प्राप्त होगा, तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विवचन एवं बहुवचन को 'रस्' आदेश प्राप्त होगा। परन्तु यदि पहले द्वन्द्व करेंगे एवं बाद में एकशेष करेंगे तो इष्ट समसंख्यविधि प्राप्त होने से कोई दोष नहीं है।

उत्तरभाष्य—**यथा न दोष इति**। जो निर्दुष्ट पक्ष 'कृतद्वन्द्वों का एकशेष' है, वही मानिये।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरत्रेति**। **अत्र**=इस तरह के विषयों में कृतद्वन्द्वों का एकशेषपक्ष मानना चाहिये? यह सामान्यरूप से प्रश्न है। कृतैकशेषों का द्वन्द्व दुष्ट होने से प्रशस्त नहीं है; अतः यह तद्विषयक प्रश्न नहीं है।

उत्तरभाष्य—**उभयमिति**। आप यहाँ दोनों पक्ष मानिये। पूर्वपक्षी का पूर्वपक्ष उदाहरणान्तरविषयक था, अतः उदाहरणान्तर देते हैं-**बहु शक्तिकीटकमिति**। 'बहु शक्तिकीटकम्, बहु स्थालीपिठरम्' में 'जातिरप्राणिनाम्' २.४.६ से एकत्व है। यहाँ बहुशब्द से प्राप्त बहुत्व की अन्यथानुपपत्ति होने से कृतैकशेषों का द्वन्द्व है। 'बहु शक्तिकीटकानि, बहु स्थालीपिठराणि' में बहुवचन की अन्यथानुपपत्ति होने से कृतद्वन्द्वों का एकशेष है; अतः उभयपक्ष न्याय्य है। परन्तु प्रकृत में कृतद्वन्द्वों का एकशेष न्याय्य है। अथ वा आन्तर्यतः व्यवस्था होने से एकार्थ को एकार्थ आदेश, द्व्यर्थ को द्व्यर्थ आदेश तथा बह्वर्थ को बह्वर्थ आदेश होगा। उक्त अर्थ को ही कारिकाद्वय से स्पष्ट करते हैं—

डारौरसः कृते टेरे यथा द्वित्वं प्रसारणे।
समसंख्येन नार्थोऽस्ति सिद्धं स्थानेऽर्थतोऽन्तराः।।

आन्तर्यतो व्यवस्थाऽत्र य एवेमे भवन्तु सर्वेषाम्।
टेरेत्वं च परत्वात् कृतेऽपि तस्मिन्निमे सन्तु।।

जैसे यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु धा.पा.१००२ धातु को सम्प्रसारण कर लेने पर 'ईजतुः, ईजुः' में द्वित्व होता है, वैसे पर टेरेत्व हो जाने पर पुनः-प्रसङ्गविज्ञान के द्वारा 'ते, आते, झे' को 'डा, रौ, रस्' आदेश होगा। इसी अर्थ को भाष्यकार आर्या के द्वारा दिखाते हैं-**आन्तर्यत इति**। यहाँ जो तीन आदेश का निर्देश किया है वे आन्तर्यतः एकार्थ को एकार्थ डा, द्व्यर्थ को द्व्यर्थ रौ, तथा बह्वर्थ को बह्वर्थ रस् आदेश होगा। अथ वा परत्वात् टेरेत्व कर लेने पर 'डा, रौ, रस्' आदेश होगा।

*** डाविकारस्य शित्करणं सर्वादेशार्थम् * डाविकारः शित्कर्तव्यः। किं प्रयोजनम्? 'सर्वादेशार्थम्'। 'शित्सर्वस्ये'ति सर्वादेशो यथा स्यात्। अक्रियमाणे हि शकारे'ऽलोन्त्यस्य विधयो भवन्ती'त्यन्त्यस्य**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसज्येत * निघातप्रसङ्गस्तु * **निघातस्तु प्राप्नोति। श्वः कर्ता। 'तासेः परं लसार्वधातुकमनुदात्तं भवती'त्येष स्वरः प्राप्नोति। यत्तावदुच्यते- 'डाविकारस्य शित्करणं सर्वादेशार्थ'मिति** * सिद्धमलोऽन्त्यविकारात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'अलोऽन्त्यविकारात्'। अस्त्वयमलोऽन्त्यस्य। का रूपसिद्धिः? कर्ता** * डिति टेर्लोपाल्लोपः * **डिति टेर्लोपेन लोपो भविष्यति। अभत्वान्न प्राप्नोति। डित्करणसामर्थ्याद् भविष्यति** * अनित्त्वाद्वा * **अथ वाऽनित्त्वादेतत् सिद्धम्। किमिद-मनित्त्वादिति? अन्त्यस्याऽयं स्थाने भवन्न प्रत्ययः स्यात्। असत्यां प्रत्यय-संज्ञायामित्संज्ञा न। असत्यामित्संज्ञायां लोपो न। असति लोपे-ऽनेकाल्। यदाऽनेकाल् तदा सर्वादेशः। यदा सर्वादेशस्तदा प्रत्ययः। यदा प्रत्ययस्तदेत्संज्ञा। यदेत्संज्ञा तदा लोपः।**

आक्षेपक—**डाविकारस्येति**। डाविकार=डादेश को शित् कहना चाहिये। इससे 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' १.१.५५ से सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होगा, अन्यथा षष्ठीनिर्देश होने से 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ के द्वारा अन्त्य अल् के स्थान पर आदेश की आपत्ति होगी। शित्करणपक्ष में प्राप्त दोष का निर्देश करते हैं-**निघात-प्रसङ्गस्त्विति**। डादेश को शित् करने पर 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' ३.४.११३ से वह सार्वधातुक होगा। इससे यहाँ 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकम् अनुदात्तमन्ह्विङोः' ६.१.१८६ से लसार्वधातुक डादेश को निघात की आपत्ति होगी। यहाँ जो 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से निघात प्राप्त है, उसका 'न लुट्' ८.१.२९ से निषेध हो जाता है। अब यहाँ भाष्यकार सूत्र के यथान्यासपक्ष में रूपसिद्धि बताते हैं-**यत्तावदिति**। सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। शित्करण की कोई आवश्यकता नहीं है। आप षष्ठीनिर्देश होने से स्थानी का अन्त्य अल् के स्थान में डा आदेश मानिये। इससे 'कृ तास् ति' अथ वा 'त' के अन्त्य अल् को 'डा' आदेश करने पर डित् पर रहते 'आस्' इतना टि का लोप होने से 'कर्ता' रूप बन जायेगा। आक्षेपक-**अभत्वादिति**। भसंज्ञा होने पर भसंज्ञक के टि का ही लोप होता है। यहाँ कही से भी भसंज्ञा प्राप्त नही है; फिर टिलोप कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**डित्करणेति**। यहाँ डकार की इत्संज्ञा का कोई अन्य फल नही है, अतः डित्करणसामर्थ्य से टिलोप हो जायेगा। अन्य प्रकार से भी इसकी सिद्धि बताते हैं-**अनित्त्वादिति**। अथ वा अनित् होने से रूप सिद्ध हो जायेगा। **अनित्**=इत्संज्ञारहित क्या है?, इसे बताते हैं-**अन्त्यस्यायमिति**। अन्त्य के स्थान में आदेश होने पर आदेश में प्रत्ययत्व नही रहेगा। प्रत्ययसंज्ञा नही होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डकार का लोप नहीं हो सकेगा, डकार का लोप नहीं होने पर आदेश अनेकाल् होगा। जब अनेकाल् होगा तब अनेकाल्लक्षणसर्वादेश होगा। जब सर्वादेश होगा तब आदेश में प्रत्ययत्व का अतिदेश हो सकेगा। 'प्रत्ययत्व 'तिप्' तथा 'त' यह समुदायवृत्तिधर्म है' ऐसा मान कर यह भाष्य है। जब आदेश में प्रत्ययत्व होगा, तब इत्संज्ञा होगी। जब इत्संज्ञा होगी, तब लोप होगा।

* प्रश्लिष्टनिर्देशाद्वा * **अथ वा प्रश्लिष्टनिर्देशोऽयम्-डा-आ=डा। सः 'अनेकाल्शित्सर्वस्ये'ति सर्वादेशो भविष्यति। यदा तर्ह्ययमन्त्यस्य स्थाने भवति तदा तिङ्ग्रहणेन ग्रहणं न प्राप्नोति।**

अन्य प्रकार से भी इसकी सिद्धि बताते हैं-**प्रश्लिष्टेति**। अथ वा 'डा+आ=डा' ऐसा प्रश्लिष्टनिर्देश अनेकाल् है; अतः सर्वादेश हो जायेगा। 'सिद्धमलोऽन्त्यविकारात्' ऐसा जो कहा था, उसमें दोषोद्भावन करते हैं-**यदा तर्हीति**। यदि अन्त्य अल् के स्थान पर 'डा' आदेश करेंगे तो तिङ्ग्रहण से आदेश 'डा' का ग्रहण नहीं हो सकेगा। तिङ्त्व धर्म 'ति' तथा 'त' में हैं, तदेकदेश में नहीं, ऐसा मान कर आक्षेप है।

* तिङ्ग्रहणमेकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात् * **एकदेशविकृतमनन्यवद् भवतीति तिङ्ग्रहणेन ग्रहणं भविष्यति। स्वरः कथम्?** * स्वरे विप्रतिषेधात् सिद्धम् * **स्वरे विप्रतिषेधात् सिद्धम्। इदमिह सम्प्रधार्यं-डारौरसः क्रियन्तामनुदात्तत्वमिति किमत्र कर्तव्यम्? परत्वादनुदात्तत्वम्।**

वार्तिककार स्वमत का पोषण करते हैं—**तिङ्ग्रहणमिति**। एकदेशविकृतन्याय के द्वारा तिङ् का एकदेश भी तिङ्ग्रहण से गृहीत हो जायेगा। इस तरह एकदेश अन्त्य के स्थान में आदिष्ट 'डा' का भी तिङ्ग्रहण से ग्रहण हो जायेगा।

प्रश्नभाष्य—**स्वरः कथमिति**। यदि अन्त्य के स्थान में आदेश करेंगे तो स्वर कैसे सिद्ध होगा?

उत्तरभाष्य—**स्वरे विप्रतिषेधादिति**। यहाँ तिङ् को 'डा, रौ, रस्' आदेश तथा 'तास्यनुदात्तेन्ङिद्दुपदेशाल्लसार्वधातुकम् अनुदात्तमन्हिङोः' ६.१.१८६ से लसार्वधातुक डादेश को निघात यह दोनों विधि एकसाथ प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा अनुदात्त हो जायेगा।

नित्या डारौरसः, कृतेऽप्यनुदात्तत्वे प्राप्नुवन्त्यकृतेऽपि प्राप्नुवन्ति। अनुदात्तत्वमपि नित्यं, कृतेष्वपि डारौरस्सु प्राप्नोत्यकृतेष्वपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्नोति। अनित्यत्वमनुदात्तत्वम्। अन्यस्य कृतेषु डारौरस्सु प्राप्नोत्यन्यस्याऽकृतेषु। शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति।

अन्य आचार्य—**नित्या इति**। अनुदात्त करने तथा नहीं करने पर दोनों ही स्थितियों में 'डा, रौ, रस्' आदेश प्राप्त हो रहा है। इस तरह कृताकृतसम्बन्धी होने से नित्य आदेश से अनुदात्तत्व का बाध हो जायेगा। इतर आचार्य-**अनुदात्तत्वमपीति**। 'डा, रौ, रस्' आदेश करने पर भी तथा आदेश नहीं करने पर भी प्राप्त होने से अनुदात्तत्व भी नित्य है। अन्य आचार्य-**अनित्यमिति**। शब्दान्तर को प्राप्तविधि अनित्य होती है। आदेश नहीं करने पर 'तिप्, तस्, झि; त, आताम्, झ' को अनुदात्तत्व प्राप्त है तथा आदेश होने पर 'डा, रौ, रस्' को अनुदात्तत्व प्राप्त है। इस तरह शब्दान्तर को प्राप्त अनुदात्तत्व अनित्य है।

डारौरसोऽप्यनित्याः, अन्यथास्वरस्य कृतेऽनुदात्तत्वे प्राप्नुवन्ति, अन्यथास्वरस्याऽकृते। स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन्तोऽनित्या भवन्ति। उभयोरनित्ययोः परत्वादनुदात्तत्वम्। अनुदात्तत्वे कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानाड् डारौरसः। टिलोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण सिद्धम्। न सिध्यति। किं कारणम्? अन्तरङ्गत्वाड् डारौरसः। तत्राऽन्तरङ्गत्वाड् डारौरस्सु कृतेष्वनुदात्तत्वं क्रियतां टिलोप इति, किमत्र कर्तव्यम्? परत्वाट्टिलोपेन भवितव्यम्। एवं तर्हि-'स्वरविप्रतिषेधात् सिद्धम्'। न्याय्य एवाऽयं स्वरे विप्रतिषेधः।

इतर आचार्य—**डारौरसोऽप्यनित्या इति**। 'डा, रौ, रस्' आदेश भी शब्दान्तर को प्राप्त होने से अनित्य है। यदि तास् से उत्तर में तिङ् को अनुदात्त करने के बाद आदेश करते हैं तो अनुदात्तविशिष्ट स्थानी के स्थान पर आदेश होता है। यदि अनुदात्त करने से पूर्व तिङ् को आदेश करते हैं तो अनुदात्तरहित को उक्त आदेश होता है। इस तरह शब्दान्तर को प्राप्त होने से 'डा, रौ, रस्' आदेश भी अनित्य है; अतः दोनों के अनित्य होने से परत्वात् पहले अनुदात्त होगा तथा बाद में पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा अनुदात्तविशिष्ट को 'डा, रौ, रस्' आदेश हो जायेगा। अन्य आचार्य-**टिलोप इति**। तिप् पित् है; अतः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से अनुदात्त है, उसको 'डा' आदेश भी स्थानिवद्भाव के द्वारा अनुदात्त होगा, उसको टिलोप होने पर निवृत्तिस्वर सिद्ध हो जायेगा। इतर आचार्य-**न सिध्यतीति**। अन्य निमित्त की अपेक्षा नहीं करने से 'डा, रौ, रस्' आदेश अन्तरङ्ग है; अतः वह पहले हो जायेगा। आदेश होने पर स्थानिवद्भाव के द्वारा 'डा' में पिल्लक्षण अनुदात्तत्व तथा डिल्लक्षण टिलोप दोनों प्राप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो रहा है, यहाँ पहले क्या करना चाहिये? अन्य आचार्य-**परत्वादिति**। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ की अपेक्षा 'डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः' (प्रकृतसूत्रस्थ) पर है; अतः परत्वात् टिलोप होगा। टिलोप हो लेने पर पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा 'डा' को अनुदात्त करेंगे। इतर आचार्य-**एवं तर्हीति**। यहाँ हम परविप्रतिषेध नहीं मान कर पूर्वविप्रतिषेध मानेंगे। स्वर में पूर्वविप्रतिषेध इष्ट भी है, यह इससे पहले बता चुका हूँ।

इदमिह सम्प्रधार्यम्-अनुदात्तत्वं क्रियतामुदात्तनिवृत्तिस्वर इति, किमत्र कर्तव्यम्? परत्वादनुदात्तत्वम्। अनुदात्तत्वे कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानादुदात्तनिवृत्तिस्वरो भविष्यति। तदेतत् क्व सिद्धं भवति? यत् पिद्वचनम्। यदपिद्वचनं तत्र न सिध्यति?

'डा, रौ, रस्' करने के बाद टिलोप करने की सम्प्रधारणा में कहते हैं-**इदमिहेति**। यहाँ अनुदात्तत्व किया जाये, अथ वा उदात्तनिवृत्तिस्वर किया जाये, यहाँ क्या करना चाहिये? अन्य आचार्य-**परत्वादिति**। उदात्तनिवृत्तिस्वर की अपेक्षा अनुदात्त पर है; अतः अनुदात्त ही होगा। अनुदात्त कर लेने पर पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा उदात्तनिवृत्तिस्वर भी सिद्ध हो जायेगा। अब तक के भाष्य से यह आया कि यदि अनुदात्तत्व नहीं किया जाये तो उदात्तनिवृत्तिस्वर सिद्ध नहीं हो सकेगा; फिर इन दोनों का विप्रतिषेध कैसे होगा?, तो इसे बताते हैं-**तदेतदिति**। तिप् अनुदात्त के स्थान पर डादेश स्थानिवद्भाव के द्वारा अनुदात्त है। वहाँ उदात्तनिवृत्तिस्वर सिद्ध होता है। परन्तु 'त' शब्द के स्थान पर डादेश किया जा रहा है वहाँ परत्वात् टिलोप होने पर अनुदात्त पर रहते उदात्तलोप नहीं होने से उदात्तनिवृत्तिस्वर सिद्ध नहीं हो पा रहा है। परन्तु यहाँ पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा अनुदात्तत्व ही होगा।

तत्रापि सिद्धम्। कथम्? इदमद्य लसार्वधातुकानुदात्तत्वं प्रत्ययस्वरस्यापवादः। न चाऽपवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते। 'पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते, पश्चादुत्सर्गाः' 'प्रकल्प्य वाऽपवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते'। तत्र तावदत्र कदाचित् प्रत्ययस्वरो भवत्यपवादं लसार्वधातुकाऽनुदात्तत्वं प्रतीक्षते। तत्राऽनुदात्तत्वं क्रियतां लोप इति, यद्यपि परत्वाल्लोपः, सोऽसावविद्यमानोदात्तत्वेऽनुदात्ते उदात्तो लुप्यते।

अपिद्वचन 'त'स्थानिक डादेश स्थल में उदात्तनिवृत्तिस्वर कैसे सिद्ध होगा?, इसे बताते हैं-**तत्रापि सिद्धमिति**। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ का 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकम् अनुदात्तमन्ह्विङोः' ६.१.१८६ अपवाद है। अपवाद के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय में उत्सर्ग की प्राप्ति नहीं होती है। पहले अपवाद की प्राप्ति होती है तथा बाद में उत्सर्ग की प्राप्ति होती है। अथ वा अपवादशास्त्र से पूर्व यदि उत्सर्ग की प्रवृत्ति होगी भी तो अपवाद के विषय को छोड कर ही उत्सर्ग की प्रवृत्ति होगी। इस तरह यहाँ प्रत्ययस्वर अपनी प्रवृत्ति से पूर्व अनुदात्तत्वस्वर की अवश्य प्रतीक्षा करेगा। इस तरह अनुदात्त तथा **लोप**=टिलोप दोनों प्राप्त होने पर परत्वात् लोप ही होगा। यहाँ शास्त्रीय अनुदात्तत्व गृहीत नहीं है, अपि तु उदात्तत्वाऽभावप्रयुक्त अनुदात्तत्व ही गृहीत है। इस दृष्टि से कहते हैं-**सोऽसाविति**। इस तरह अविद्यमान उदात्तत्वरूप अनुदात्तत्व पर रहते उदात्त का लोप होता है।

प्रत्ययस्वरापवादो लसार्वधातुकानुदात्तत्वम्।
तेन तत्र न प्रसक्तः प्रत्ययस्वरः कदाचित्॥१॥

प्रत्ययस्वरश्च तासेर्वृत्तिसंनियोगशिष्टः।
तेन चाऽप्यसावुदात्तो लोप्स्यते तथा न दोषः॥२॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
द्वितीयाऽध्यायस्य चतुर्थे पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

पूर्वोक्त अर्थ का ही दो श्लोकों में संग्रह करते हैं-**प्रत्ययस्वरापवाद इति**। 'वृत्तिसन्नियोगशिष्ट' इस पद में वृत्तिशब्द से प्रवृत्ति अर्थ वाच्य है। जब तास् प्रत्यय की प्रवृत्ति होगी तभी अपवाद नहीं होने से उदात्तत्व होगा, यह ग्रन्थ का भाव है। इस तरह प्रत्ययसन्नियोगशिष्ट होने से अन्तरङ्ग एवम् अपवादप्राप्ति का अभाव होने पर उदात्तत्वप्रयुक्त ही प्रत्यय उत्पन्न होगा। {लुटः-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
द्वितीय अध्याय चतुर्थ पाद द्वितीय आह्निक पर
डाँ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

चतुर्थ पाद भी पूर्ण हुआ

द्वितीय अध्याय भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुस्तकालय

Acc. 39800/31400

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयानुकूल ग्रन्थरत्नानि

- **(बृहत्) अनुवाद रत्नाकर** । डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी
- **अष्टाध्यायी** । 'चन्द्रलेखा' हिन्दी व्याख्या एवं अनेकोपयोगी विषययुक्त । पं० ईश्वरचन्द्रशर्मा । १-२ भाग
- **अष्टाध्यायी** । 'शान्ति' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । डॉ० नरेश झा
- **काशिका** । विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित । पं० ईश्वरचन्द्र शर्मा
- **कृत्प्रत्ययविश्लेषण** । कृत्प्रत्ययों का व्यापक तथा विशद् विश्लेषण । डॉ० गोपबन्धु मिश्र
- **परमलघुमञ्जूषा** । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । पं० वंशीधर मिश्र
- **परिभाषेन्दुशेखर** । तात्याशास्त्रीकृत 'भूति' टीका सहित
- **परिभाषेन्दुशेखर** । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित । आचार्य विश्वनाथ मिश्र
- **पाणिनीयशिक्षा** । 'वेदाङ्गशिक्षाविमर्श' संस्कृत एवं 'नारायणी' हिन्दी व्याख्या एवं परिशिष्ट सहित
- **प्रबन्धरत्नाकर** । (शास्त्री, आचार्य, बी.ए., एम.ए. आदि परीक्षोपयोगि शताधिक निबन्धों का संग्रह) । डॉ० रमेश चन्द्र शुक्ल
- **प्रौढमनोरमा** । (कारकादव्ययीभावान्तोभाग) सशब्दरत्न बालप्रकाशिका संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्तपाण्डेय
- **प्रौढमनोरमा** (पञ्चसन्ध्यन्त) । 'शब्दरत्न', 'भैरवी' एवं हिन्दीव्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
- **बृहद्धातुशब्दरूपसंग्रह** । डॉ० रामकिशोरशर्मा
- **बृहद्धातुसुकुमाकर** । (सिद्धान्तकौमुदी के सभी धातु-रूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्तमिश्र
- **बृहच्छब्दकुसुमाकर** । (शब्दरूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्त मिश्र
- **मुग्धबोधव्याकरण** । बोपदेवविरचित । श्रीदुर्गादासतर्कवागीश, श्रीरामतर्कवागीशकृत टीका सहित । सम्पा. पं० जीवानन्दविद्यासागर
- **लघुशब्देन्दुशेखर** । 'भैरवी', 'चन्द्रकला' एवं 'बैकुण्ठी' हिन्दी टीका सहित । बैकुण्ठनाथ शास्त्री
- **लघुसिद्धान्तकौमुदी** । विवेचनात्मक 'माहेश्वरी' हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० महेशसिंहकुशवाहा । १-२ भाग

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu